दो शब्द

कालिका पुराण के द्वितीय खण्ड पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि यह एक विशेष योजना के अनुसार लिखा गया है। इसके सभी अध्याय काफी बड़े हैं और उनमें जो वर्णन किये हैं उनको सर्वाङ्ग पूर्ण और विशद बनाने की चेष्टा की गई है। शिव-पार्वती का उपाख्यान जो अनेक पुराणों और रामायण आदि में विस्तारपूर्वक किया गया है, वह इस पुराण में काफी परिवर्तित रूप में दिया गया है। इतना ही क्यों वही "कालिकापुराण" का मुख्य आधार है। पार्वती ही "काली" कहलाती है और उसी को केन्द्र स्वरूप बनाकर इस खण्ड का अधिकांश कथानक पूरा किया गया है।

यद्यपि पार्वती के जन्म, तपस्या और भगवान शिव के साथ उसके विवाह का वर्णन इस पुराण में भी पाया जाता है, पर उसमें स्थान-स्थान पर कितनी ही भिन्नताएँ भी हैं। इसमें भी तारकासुर के वध के निमित्त शिव-पार्वती के विवाह और उनसे स्कन्द की उत्पत्ति की चर्चा है, पर साथ ही यह भी लिख दिया गया है कि इन दोनों के विवाह का निश्चय पहले ही हो चुका था और पार्वती बहुत पहले से ही शिव जी की सेवा किया करती थी। जब कामदेव ने शिवजी पर आक्रमण किया तो उस समय भी पार्वती वहाँ उपस्थित थी और उसी को देखकर शिवजी को काम-वेग उत्पन्न हुआ था। इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि जिस समय पार्वती तपस्या कर रही थी उस समय शिवजी ने स्वयं वेष बदल कर उसकी परीक्षा ली थी, और उसके आन्तरिक प्रेम का परिचय पाकर प्रणय की भिक्षा माँगी थी। पार्वती ने कहा "मैं तो आपको पति बना ही चुकी हूँ, पर आप मेरे पिता हिमवान के हाथों से मुझे कन्यादान के रूप में ग्रहण करें, जिससे

लौकिक रीति की भी पूर्ति हो जाय।" ये सब बातें रामायण में वर्णित शिव-पार्वती विवाह में नहीं मिलतीं हैं। "शिव पुराण" में पार्वती की परीक्षा के लिए ब्रह्मचारी के वेष मे शिवजी का आना लिखा है, पर उनमे प्रकट रूप से विवाह की कोई बात नही हुई।

इस प्रकार इस पुराण मे वर्णित शिव-पार्वती चरित्र अन्य पुराणो की तुलना मे बहुत कुछ मौलिक जान पडता है और उसमे हमको स्वाभिकता अधिक जान पडती है।

× × ×

इस पुराण के "राजधर्म" वर्णन मे कूटनीति तथा गुप्तचर विभाग का वर्णन अपने ढग का निराला ही है। राजा को सभी जिम्मेदार अधिकारियो और परिजनो की जाँच जिस प्रकार करने को लिखा है, वैसा शायद ही और किसी धर्म ग्रन्थ मे हो। राजा अपने मन्त्रियो की प्रामाणिकता की जाँच किस प्रकार कर इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण इस प्रकार है—

"दासियाँ, शिल्पिनी, वृद्धा, मेधा और धृति वाली स्त्रियाँ, जो राजमहल के भीतर और बाहर आती जाती रहती हैं और राज मन्त्रियो से भी परिचित हैं, उनके साथ गुप्त रूप से मत्रणा करके राज्याधिकारियो तथा परिजनो की परीक्षा ली जाय। वे स्त्रियाँ अधिकारियो मे से जिसे दूषित समझें उसके पास जाकर कहे कि राजा की प्रमुख रानी आपको चाहती है, यदि आपकी इच्छा हो तो मैं मिलन की व्यवस्था कर दूँ"। इसी प्रकार महलो मे रहने वाली रानियो, राज पुत्र वधू, पुत्र, पुत्री, पौत्र आदि के चरित्र की भी जाँच करनी चाहिए। वे जासूस स्त्रियाँ महल की स्त्रियो से गुप्त रूप से चर्चा करें कि अमुक राज्य-मन्त्री आपको चाहता है और वास्तव में आपके योग्य भी है। आप चाहें तो मैं मेल करा सकती हूँ। इस प्रकार की जाँच मे जो व्यक्ति दोषी सिद्ध हो उनको मरवा डालना चाहिए। स्त्रियो को भी दण्ड दिया जाय और यदि ऐसा व्यक्ति ब्राह्मण हो तो तो उसे देश निकाला दिया जाय।"

ऐसी ही परीक्षा अर्थ (धन) और धर्म (यज्ञ तथा कर्मकाण्ड) आदि के विषय मे भी की जानी आवश्यक है और जो व्यक्ति किसी दृष्टि से राजा से प्रतियोगिता का भाव रखता हो अथवा उसको हटाकर स्वय शासक बन बैठने की अभिलाषा रखता हो उन सबको कटक स्वरूप समझ कर, दूर हटा देना ही बुद्धिमत्ता है। इस अध्याय के अन्त मे यह भी प्रकट कर दिया गया है कि राजनीति की ये चालें बृहस्पति और शुक्र के राजनीति सम्बन्धी ग्रन्थो के आधार पर सग्रह की गई हैं। यद्यपि वर्तमान समय मे एकतंत्र शासको (राजाओ) का अन्त हो जाने से, ये बातें निरर्थक जान पडती हैं, जिस समय राज्य की बागडोर केवल एक दो व्यक्तियो के हाथ मे ही रहती थी और अन्य लोग उनको मारकर स्वय उस पद को ग्रहण करने के लिये सदैव षडयन्त्र रचते रहते थे उस समय निस्सन्देह इस प्रकार की जानकारी बडी महत्वपूर्ण थी।

× × ×

यद्यपि यह एक पौराणिक रचना है, जिसमे कालिका (महाशक्ति) की पूजा, उपासना, जप, ध्यान आदि का ही विशेष वर्णन किया गया है और देवी की विभिन्न शक्तियो—दुर्गा, चण्डी, तारा, कौमारी, छिन्नमस्ता धूमावती आदि की विभिन्न साधना विधियो पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है। हम जानते है कि आधुनिक विद्वान् इस प्रकार के पूजा-पाठ को निरर्थक और काल्पनिक बतलाते हैं और प्राचीन ज्ञान मार्ग वालों ने भी उसे बहुत नीचे दर्जे की उपासना माना है, क्योंकि उनके मतानुसार सबसे उच्चकोटि की उपासना अपनी आत्मा की है। जब मनुष्य अपनी आत्मा को परमात्मा का अश मानकर उसका ही ध्यान करने लगता है तभी वह ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बनता है। पाठको को यह देखकर कुछ आश्चर्य होगा कि इढ साम्प्रदायिक होते हुए भी कालिका-पुराण के रचयिता ने इस तथ्य को सर्वथा भुला नहीं दिया है, उन्होने गन्ध, पुष्प, अक्षत, नैवेद्य आदि से देवी की षोडशा-चार पूजा करने का विधान बतलाते हुए भी यह सकेत कर दिया है

कि साधक को देवी उपासना करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ये सब पदार्थ परमात्मा के अश है और हम भी इसी मे से निकले है—

अह देवोऽय नैवेद्य पुष्पगन्धादिक श यत् ।
पूजोपकरणार्थ च देवत्वमिह जायते ॥
देवाधारोह्यह देवो देव देवाम योजयेत् ।
सर्वेषा देवतासूप्या जायते शुद्धतापि च ॥

अर्थात्— 'मैं देव (ईश्वर) हूँ—जब यह भवना दृढ हो जाती है, तो पुष्प, गन्ध, नैवेद्य आदि पूजा के सभी उपकरण देव-स्वरूप मालूम पडने लगते हैं। ईश्वर ही सबका मूल है इसलिये मैं भी ईश्वर हूँ अतएव ईश्वर ही ईश्वर की पूजा कर रहा है, और सब कुछ ईश्वरमय है तो किसी वस्तु मे अशुद्धता का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है अर्थात् सभी पूजा सामग्री शुद्ध है और हम भी शुद्ध हैं।"

यह वेदान्त-शास्त्र का सर्वोच्च सिद्धान्त है और आधुनिक विज्ञान इसका खण्डन नही कर सका है। हम जानते है कि अनेक पाखडी और बातूनी भी स्वार्थसिद्धि के लिये ब्रह्मज्ञान और "एकोऽहम्, द्वितीयो-नास्ति" का ढिढोरा पीटा करते हैं, पर हम यहाँ वास्तविक वेदान्त सिद्धान्त और उस पर आन्तरिक विश्वास रखने वालो की चर्चा कर रहे हैं। इस दृष्टि मे 'कालिका पुराण' एक उपपुराण होते हुए भी बौद्धिक दृष्टि से अनेक ऐसी ही अन्य रचनाओ से उत्तम हैं।

× × ×

जैसा हमारा नियम है हमने इस पुराण के उतने ही भाग को अपने ग्रन्थ मे ग्रहण किया है, जिससे पाठक कुछ सद्‌शिक्षाए प्राप्त कर सकते है। जो बातें सभी पुराणो मे बार-बार दुहराई जा चुकी हैं उनको छोड दिया है।

२-४-१९७३ —प्रकाशक

विषय सूची

• • •

— * —

कालिका पुराण

[द्वितीय खण्ड]

★

।। भौमासुर की तपस्या ।।

स राजा नरकः श्रीमाश्चिरञ्जीवी महाभुजः ।
मानुषेणैव भावेन चिरं राज्यमथाकरात् ॥१
त्रेतायाश्च व्यतीतायां द्वापरस्य तु शेषतः ।
अभवच्छोणितपुरे वाणो नाम महासुरः ॥२
तस्याग्निदुर्गं नगरं स च शम्भुसखा बली ।
सहस्रबाहुर्दुर्धर्षः प्रियः पुनः स वै बलः ॥३
नरकेण समं तस्य महामैत्री व्यजायत ।
गमनागमनान्नित्यमन्योन्यानुग्रहैस्तथा ।
तयोरभूद् महाप्रीतिः पवनानलयोर्यथा ॥४
स च बाणः समाराध्य महादेवं जगत्प्रभुम् ।
आसुरेणाथ भावेन व्यचरच्चाकुतोभयः ॥५
तत्संसर्गात् स नरको दृष्ट्वा तस्याद्भुतां कृतिम् ।
तेनैव सह भावेन विहर्तुमुपचक्रमे ॥६
न ब्राह्मणान् पूजयति यथा पूर्वं तथा द्विजाः ।
न च यज्ञेषु दानेषु पूर्ववन्मुदितः स च ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—वह श्रीमान् राजा नरक जो चिरजीवी और महान् भुजाओं वाला था। मानुष भाव से ही चिरकाल

पर्यन्त उसने राज्य किया था ॥ १ ॥ त्रेता युग के व्यतीत हो जाने पर द्वापर के शेष में शोणितपुर में बाण नाम वाला महान् असुर हुआ था ॥ २ ॥ उसका अग्नि दुर्ग नगर था और वह बलवान् शम्भु का सखा था। उसके एक सहस्र बाहुऐं थीं और वह बहुत दुर्धर्ष था तथा राजा बलि का प्रिय पुत्र था ॥ ३ ॥ उसकी राजा नरक के साथ बड़ी भारी मित्रता हो गयी थी। नित्य ही गमन और आगमन से तथा परस्पर में अनुग्रह से उन दोनों में पवन और अनल की ही भाँति महती प्रीति हो गई थी ॥ ४ ॥ उस बाण ने जगत् के प्रभु भगवान् शम्भु की समाराधना की थी और वह बिना भय वाला होकर असुर भाव से विचरण किया करता था ॥ ५ ॥ उसी के संसर्ग से वह नरक भी उसकी इस अत्युद्भुत कृति को देखकर उसी के साथ उसी भाव से विहार करने का उसने आरम्भ कर दिया था ॥ ६ ॥ हे द्विजो ! वह फिर ब्राह्मणों का पूजन नहीं करता था जैसे कि पहिले किया करता था और वह यज्ञों में और दान देने में भी पूर्व की भाँति प्रसन्न नहीं होता था ॥ ७ ॥

न तथा विष्णुमभ्येति पृथिवीं वापि नार्च्चति ।
कामाख्यायां तथा भक्तिस्तदा तस्याथ नाभवत् ॥८
एतस्मिन्नन्तरे धातुस्तनयो मुनिसत्तम ।
वसिष्ठो नाम कामाख्या द्रष्टुं प्रागज्योतिषं गतः ॥६
तां दुर्गाभ्यन्तरे नीलकूटदेवीं व्यवस्थिताम् ।
द्रष्टुं गन्तुं वसिष्ठस्य न द्वारं नरको ह्यदात् ॥१०
ततो वसिष्ठः कुपितो वचनं परुषं मुनिः ।
अगाद नरकं घोरं गर्हयन्मुनिसत्तम ॥११
कथं पृथिव्यास्तनयो वराहस्य सुतोऽञ्जसा ।
देवीं द्रष्टुं ब्राह्मणस्य न ददासि तथागतः ॥१२
किं ते कुलोचितं कर्म त्वं करोषि धरात्मज ।
देवीं प्राग्ज्योतिषं गत्वा पूजयिष्ये जगन्मयीम् ॥१३

तत स नरको राजा प्राप्तकाल क्षिते सुत ।
परुषेणाथ वाक्येन तमाक्षिप्य निरस्तवान् ॥
ततो मुनि स कुपित शशाप नरक नृपम् ॥१४

पूर्व की तरह वह भगवान् विष्णु के समीप मे गमन नही किया करता था और वह पृथिवी का भी अर्चन नही करता था। उस अवसर पर कामाख्या मे उस भाँति की भक्ति उसकी नही हुई थी । ८ । इसी बीच मे विधाता का पुत्र मुनियो म परम श्रेष्ठ वसिष्ठ नाम वाले कामाख्या का दर्शन करने के लिए प्राग्ज्योतिष पुर म गये थे ॥ ९ ॥ दुर्ग के अन्दर व्यवस्थित उस नील कूट देवी का दर्शन करने के लिये जाने को वसिष्ठ मुनि को नरक ने द्वार नही दिया था । १० । इसके अनन्तर मुनि श्रेष्ठ बहुत कुपित होकर वीर नरक की निन्दा करते हुए कठोर वचन बोले थे । ११ । वसिष्ठ मुनि ने कहा—कैसे पृथिवी का पुत्र और वराह का सुत अचानक ही ब्राह्मण को देवी के दर्शन करने के लिये स्वागत नही करता है । १२ । हे रजरा के पुत्र ! तेरे कुल मे उचित कर्म क्या है ? जिसको कि तू कर रहा है। प्राग्ज्योतिष पुर म जाकर मैं देवी का पूजन करूँगा । १३ । मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वह राजा नरक जो पृथ्वी का पुत्र था काल प्राप्त होकर कठोर वाक्य के द्वारा उस मुनि पर आक्षेप करके उसने उनको निरस्त कर दिया था। इसके उपरान्त उस मुनि ने कुपित होकर राजा नरक को शाप दे दिया था । १४ ।

नचिराद् येन जातोऽसि तेन मानुषरूपिणा ।
मरण भविता पाप वराहकुलपासन ॥१५
मृते त्वयि महादेवी कामाख्या जगता प्रभुम् ।
पूजयिष्याम्यह पाप तिष्ठ यास्ये स्वमालयम् ॥१६
त्व यावज्जीविता पाप कामाख्यापि जगत्प्रभु ।
सर्व परिकर सार्धमन्तर्धानाय गच्छतु ॥१७

इत्युक्त्वा ब्रह्मपुत्र स स्वस्थान गतवान् मुनि ।
वसिष्ठस्तेन भौमेन निरस्त कुपितो भृशम् ॥१८
गते वसिष्ठे नरक शीघ्र विस्मयसंयुत ।
जगाम देवीभवन नीलकूट महागिरिम् ॥१९
तत्र गत्वा न चापश्यत कामाख्या कामरूपिणीम् ।
न योनिमण्डल तस्या सर्वान परिकरास्तथा ॥२०
तत स विमना भूत्वा क्षितिं सस्मार मातरम् ।
पितर च जगन्नाथ नरक प्रभुमव्ययम् ॥२१

वसिष्ट मुनि ने कहा—हे वराह के कुल को कलङ्कित करने वाले ! हे पापी ! जिससे अभी उत्पन्न हुआ है उसी मानुष रूप मे मरण को प्राप्त होगा । १९ । तेरे मृत हो जाने पर जगतो की प्रभु महादेवी कामाख्या को मैं पूजित करूँगा। हे पापी ! तुम यहाँ स्थित रहो मैं तो अपने निवास स्थान को चला जाऊँगा ।१६। हे पापी ! जब तक तू जीवित रहेगा तब तक जगत् की स्वामिनी यह कामाख्या देवी भी सब परिकरो के साथ अन्तर्धान को प्राप्त हो जावे । १७ । मार्कण्डेय मुनि ने कहा—वह ब्रह्माजी के पुत्र मुनि इतना कहकर अपने स्थान को चले गये थे । उस भूमि के पुत्र के द्वारा निरस्त किये हुए मुनि वसिष्ठ बहुत ही अधिक कुपित हो गये थे ॥ ११८ ॥ वसिष्ठ मुनि के चले जाने पर नरक शीघ्र ही विस्मय मे सयुत होकर नील कूट महान् गिरि पर देवी के भवन मे चला गया था । १६ । वहाँ पर जाकर उसने कामरूप वाली कामाख्या देवी को नही देखा था । उसके योनिमण्डल को और सब परिकरों को भी नही देखा था । २० । इसके उपरा त वह बहुत ही उदास हो गया था और माता पृथिवी का उसने स्मरण किया था । नरक ने अविनाशी जगत् के नाथ प्रभु पिता का भी स्मरण किया था ॥ २१ ॥

न तावपि तदा यातौ यस्य प्रत्यक्षता द्विजा ।
व्युत्क्रान्तिसमयस्येति नीतिहीनस्य शम्भवे ॥२२

चिर प्रतीक्ष्य तौ तत्र भौमो वज्रध्वजस्तदा ।
अप्राप्तक्षितिविष्णु स सशोकः स्वं निवेशनम् ॥२३
स गच्छन् स्वगृहं भौमः पुरीं स्वां दृष्टवांस्तु सः ।
पूर्वश्रिया परित्यक्तां मलिनां वनितामिव ॥२४
देव्यामन्तर्हितायां तु वेदवादविवर्जितम् ।
पुण्यस्वल्पदारजनं तत् पुरं समपश्यत ॥२५
न देवास्तत्र गच्छन्ति न विप्रा न महर्षयः ।
बभूव नगरं तस्य स्वल्पयज्ञक्रियोत्सवम् ॥२६
ईतयो बहवो जाता मृताश्च बहवो जनाः ।
लौहित्यनदराजोऽपि हीनतोयस्तदाऽभवत् ॥२७
बहूनि विपरीतानि दृष्ट्वा स नरकस्तदा ।
मेने मरणमासन्नमात्मनो ब्रह्मशापतः ॥२८

हे द्विजो ! उस समय में वे दोनों ही उसके सामने प्रत्यक्ष रूप में प्रकट नहीं हुए थे क्योंकि वह समय का व्युत्क्रमण करने वाला और शम्भु के लिये नीति से विहीन हो गया था । २२ । उस भूमि के पुत्र ने वहाँ पर चिर काल तक उन दोनों की प्रतीक्षा की थी । उस समय में वज्रध्वज वह विष्णु भगवान् और क्षिति को न प्राप्त करने वाला होकर शोक से युक्त हो अपने घर में चला गया था । २३ । अपने घर को जाते हुए उस भूमि के पुत्र ने अपनी पुरी को देखा था जो अपनी पूर्व की श्री से परित्यक्त थी और मलिन वनिता की ही समान हो रही थी । २४ । उस देवी के अन्तर्धान हो जाने पर उस पुर को उसने वेद वाद से रहित और पवित्र दाराजनों के स्वल्प रह जाने वाला ही पाया था । २५ । वहाँ पर न तो देव गण जाते हैं और न विप्र तथा महर्षिगण ही जाया करते हैं । उसका नगर बहुत ही कम यज्ञों की क्रिया तथा उत्सवों वाला हो गया था । २६ । बहुत सी ईतियाँ उस समय में हो गई थीं (विनाश करने वाली ६ प्रकार की ईतियाँ होती हैं) और बहुत से जन

अचल मति हुई थी। उसने वाण के नगर की ओर दीप्त दूत को प्रेषित किया था ॥३२॥ वह शीघ्र गमन करने वाले रथ के द्वारा शोणित पुर को जा कर फिर उसने भूमि के पुत्र नरक का वृत्तान्त शीघ्र ही वाण के लिये निवेदन कर दिया था ॥३३॥ जिस प्रकार से वसिष्ठ मुनि ने शाप दिया था और जैसे अम्बिका अन्तर्धान हो गई थी और जैसे प्राग्ज्योतिष नाम वाले पुर में विघ्न उत्पन्न हो गया था ॥३४॥ भूमि और माधव का समय जिस तरह से व्यतिक्रान्त हुआ था अर्थात् समय का अतिक्रमण किया गया था—यह सब भूमि पुत्र के उस दूत ने वलि के पुत्र वाण से कह दिया था ॥३५॥

स समाकारमित्रस्य सम्यग् दवपराभवम् ।
स्वय जगाम नरक सभाजयितुमीश्वर ॥३६
स काचनविचित्राग युक्तमश्वशतैस्त्रिभि ।
लोहचक्र च वयाघ्र मयूरध्वजभूषितम् ॥३७
हेमदण्डसितच्छत्रच्छादित किंकिणीगण ।
नानारत्नौघरचितमारुरोह महारथम् ॥३८
स सहस्रभुत श्रीमाश्चतुर गवलयु न ।
प्राग्ज्योतिष भौमपुरमचिरादाजगाम ह ॥३९
समासाद्य महावाहुर्वाण प्राग्ज्योतिषश्वरम् ।
हीन पूर्वश्रिया मित्रमपश्यन्नगर च तत् ॥४०
स तेच पूजितो वाणो यथायोग्य सुतेन को ।
पप्रच्छ कि निमित्त ते हीनश्रीकमभूत् पुरम् ॥४१
शरीर च यथापूव तथा न तव राजते ।
मनश्च ते नाति हृष्ट तत्र हेतु वदस्व मे ॥४२

उसने समान आकार वाले मित्र का यह पराभव जो दैव के ही द्वारा हुआ था भली भाँति जानकर वह ईश्वर नरक को समधान अर्थात् सान्त्वना देने के लिये वहाँ स्वय ही गया था ॥३६॥ वह सुवर्ण से रचित

विचित्र वज्रों वाले—तीन सौ अश्वों से युक्त—लोहे के पहियों वाले—वैयाघ्र—मयूर ध्वज से भूषित—सुवर्ण के दण्ड वाले सित छत्र से समाच्छादित—किङ्किणी गणों से समन्वित—अनेक रत्नों के समूह से निर्मित महान् रथ पर वह समारूढ़ हुआ था ॥३७॥३८॥ वह एक सहस्र भुजाओं वाला—श्रीमान् चतुरङ्गिणी सेनाओं से युक्त होकर भौम (नरक) के पुर प्राग्ज्योतिष में शीघ्र ही समागत हो गया था ॥३९॥ उसके समीप पहुँच कर महा बाहु बाण ने प्राग्ज्योतिष नगर के स्वामी को पूर्व श्री से हीन मित्र को और उस नगर को देखा था ॥४०॥ वह वहाँ पर पृथिवी के सुत उसके द्वारा यथा उचित रीति से वह पूजित किया गया था अर्थात् उसका समुचित सत्कार किया था। और उसने पूछा था कि किस कारण से तुम्हारा यह पुर श्री से हीन हो गया था। ॥४१॥ बाण ने कहा—आपका यह शरीर भी जैसा पहिले था वैसा शोभित नहीं हो रहा है। आपका मन भी पहिले के समान प्रसन्न नहीं है—इसमें क्या कारण है यही मुझे कृपाकर बतलाइये ॥४२॥

एवमाक्षीणि पृष्टः स नरकः क्षितिनन्दनः ।
यथा वसिष्ठशापोऽभूत् तत् सर्वं तस्य चाब्रवीत् ॥४३
यच्च तं भौमवदनात्तद्दूतायेरितं पुरा ।
ज्ञात्वा तथा स प्रोवाच बाणो वज्रध्वज पुनः ॥४४
नहि मन्युस्त्वया कार्यः सुखे दुःखे शरीरिणाम् ।
यावत् परिवर्तते नैनाभ्यां कोऽपि हीयते ॥४५
परं तत्र प्रतीकारः कार्यो धीरैर्विमूतये ।
भवानपि प्रतीकारं कर्तुमर्हति सम्प्रति ॥४६
स एष मानुषः पृथ्व्यामसाधारणमूर्तिभिः ।
बाधते दानवो वापि दैत्यो वाप्यथवासुरः ॥४७
राक्षस पिशाचो वापि ज्ञानवान् सहते नहि ।
न कौटिल्यं देवगणे सार्धं कुर्वन्तितस्मन ।
यथा यथा प्रकारेण प्रशमायैव न थिय ॥४८

तस्य चेष्टनमो देवो विष्णुर्नित्यं सनातनः ।
स न शक्तस्य कुरुते मनोऽनिष्ट मनागपि ॥४६

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस प्रकार से बहुत से प्रश्न पूछे गये भूमि के पुत्र उस नरक ने जिस तरह से वशिष्ठ मुनि का दिया हुआ शाप हुआ था वह सभी उसको कह दिया था ॥४३॥ भूमि के पुत्र से जो भी सुना था वह पहिले ही दूत के द्वारा आवेदित था। उस भाँति स जान करके बाण उस वज्र ध्वज से पुन बोला था ॥४४॥ बाण ने कहा—आपको क्रोध नहीं करना चाहिए। शरीर धारियों को सुख और दुख चक्र की ही भाँति परिवर्तित होते रहा करते हैं अर्थात् सुख के बाद दुख और दुख के पश्चात् सुख लौट फेर कर आया करते हैं। इन सुख दुख से कोई भी हीन नहीं हुआ करता है ॥४५॥ परन्तु धीर पुरुषों को विभूति के लिये उसमें प्रतीकार करना ही चाहिए। आप भी अब उसका प्रतीकार करने के योग्य होते हैं। अर्थात् आपको भी प्रतीकार करना ही चाहिए ॥ ४६ ॥ पृथिवी में यह मनुष्य असाधारण विभूतियों से वर्धित होता है। ऐसा सभी को होता है चाहे कोई दानव हो—दैत्य हो अथवा असुर हो ॥४७॥ राक्षस हो अथवा किन्नर हो—इन्द्र उनको सहन नहीं किया करता है। वह इन्द्र देवगणों के साथ इधर-उधर कुटिलता किया करता है। और जिस—किसी भी प्रकार से उसकी श्री को भ्रष्ट करके उसे विनष्ट कर दिया करता है ॥४८॥ उस का परम इष्टतम देव नित्य ही सनातन विष्णु भगवान् हैं। वे इन्द्र का थोड़ा सा भी अनिष्ट कभी नहीं किया करते हैं ॥४९॥

य समाराधयेद् विष्णु शक्रस्यानिष्टकारक. ।
तस्मै वर तु सच्छिद्र दत्त्वा त शातयत्वित ॥५०
चिरमाराधितो विष्णुरिष्टान् कामान् प्रयच्छति ।
महता कायदुःखेन पूजित सम्प्रसीदति ॥५१
विनेष्टदेवतापूजा विभूतिमतुला पुमान् ।

क. प्राप्नोति श्रुत पूर्वं न वा पूर्वतरः क्वचित् ॥५२
त्वया नाराधित पूर्वं ब्रह्मा वा विष्णुरीश्वरः ।
तेन तेऽद्य महाविघ्ना उत्पन्ना विषये तव ॥५३
यो वा विष्णु. पालकस्ते न निसर्गानुकम्पकः ।
किन्तु ते स क्षितेर्वाक्यात्त्वया चाराधितो मुहुः ॥५४
दत्त छिद्र च ते विष्णुर्नापराध्यास्त्वया द्विजाः ।
इतोऽन्यथा त्व भविता हृतश्रीरिति नः श्रुतम् ॥५५
अपराध्यस्त्वया भूप वसिष्ठ. परमो मुनिः ।
तेन स्मरणमात्रेण नायातौ क्षितिमाधवौ ॥५६

इन्द्र के अनिष्ठ करने वाला जो भी कोई भगवान् विष्णु की समाराधना किया करता है उसको अच्छिद्र वरदान देकर उसका शासन करते हैं ॥५०॥ चिरकाल पर्यन्त आराधना किये हुए भगवान् विष्णु अभीष्ट कामो का प्रदान किया करते हैं और महान् शरीर के दुख से पूजा दिये हुए वे परम प्रसन्न हो जाया करते हैं ॥५१॥ इष्ट देवता की पूजा के बिना कौन पुरुष अतुल विभूति को प्राप्त किया करता है अर्थात् कोई भी नही पाता है । पूर्व मे होने वालो में भी ऐसा कही भी कोई पुरुष पूर्व मे नहीं सुना गया है ॥५२॥ तुमने पूर्व मे ब्रह्माजी की अथवा ईश्वर भगवान् विष्णु की आराधना नही की है । इसी कारण से तुमको आज ही विघ्न समुत्पन्न हुए है जो तुम्हारे विषय मे ही हैं ॥५३॥ जो भगवान् विष्णु है जो स्वभाव से ही अनुकम्पा करने वाले है तुम्हारे पालन करने वाले नही हो रहे हैं । किन्तु तुमने पृथिवी के वाक्य से पुन. उनकी आराधना की थी ॥५४॥ विष्णु भगवान् ने तुम को छिद्र दे दिया है । आपको द्विजो का अपराध नही करना चाहिए । अन्यथा इससे आप हृत श्री हो जाँयगे—ऐसा हमने सुना है ॥५५॥ आपने परम श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि का अपराध किया है हे भूप ! इसीलिये उस स्मरण मात्र मे पृथिवी और माधव नही समागत हुए है ॥५६॥

तस्मात्त्वं मित्र बुध्यस्व कौटिल्यं हरिमेधस ।
नाधुना युज्यते भौम तवादासीनताकृतिः ॥५७
यत्ते मनसि तातोऽयमिति सम्प्रत्ययः स ते ।
वराह एव ते तातः स च लोकान्तरं गतः ॥५८
वराहोऽपि हरेरंश इति यच्छ्रूयते त्वया ।
तस्यांशः इत्यनुक्रोशः केन वा क्रियते वद ॥५९
तस्मात्त्वं कुरु शम्भोर्वा ब्रह्मणो वाधुनाऽर्च्चनम् ।
स ते प्रसन्नः परममिष्टकामं प्रदास्यति ॥६०
विघ्नो वा मुनिशापो वा महेन्निर्वातिपीडकः ।
विधौ प्रसन्ने शम्भौ वा नचिरात्क्षयमेष्यति ॥६१
जातसम्प्रत्ययो भौमो वाणस्य वचनात् तदा ।
सुप्रीतः समुवाचेदं धीरघर्घनिस्वनः ॥६२

हे मित्र ! इस कारण से आप हरि भगवान् की मेधा की कुटिलता को समझ लीजिए। हे भौम ! अर्थात् भूमि के पुत्र नरक ! इस समय में आपकी उदासीन आकृति का होना युक्त नहीं होता है। ॥५७॥ जो तुम्हारे मन में यह है कि यह मेरे तात हैं, ऐसा विश्वास है वह तो दूसरे लोक में चले गये हैं क्योंकि वराह ही आपके पिता थे। वह चले गये हैं ॥५८॥ वराह भी हरि भगवान् का ही अंश है जिनका आप सेवन किया करते हैं। उसका अंश है—यह अनुकम्पा ही है। यह किसके द्वारा किया जाता है, बतलाइए ॥ ५९ ॥ इससे अब तुम भगवान् शम्भु का अथवा ब्रह्माजी का अभ्यर्चन करिए। वह प्रसन्न होकर आपको परम अभीष्ट काम प्रदान कर देंगे ॥ ६० ॥ विघ्न अथवा मुनि का शाप या पीड़ा करने वाली महती ईति विधाता अथवा शम्भु भगवान् के प्रसन्न होने पर ये सभी शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जायेंगे। ६१। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—उस समय में वाण के वचन से भौम अर्थात् नरक को पूर्ण विश्वास समुत्पन्न

हो गया था। वह बहुत ही प्रसन्न होकर धीरता से घर्घर ध्वनि वाला यह वचन बोला ॥६२॥

यत् त्वया गदितं बाण हितं मे मित्रवत्सल ।
तत् कार्यमचिरादेव तपश्चरणमुत्तमम् ॥६३
विष्णुर्नाराधनीयो मे तत्र हेतुस्त्वयोदितः ।
नैवाराध्यस्तथा शम्भुरन्तर्गुप्तः स मे पुरे ॥६४
तस्माद् ब्रह्मा समाराध्यो वचनात् तव मित्रक ।
तत्पुत्रस्य महाबाहो लौहित्यस्याम्बुसन्निधौ ॥६५
भवताध्यापितश्चाहं शिष्योऽस्य गुरुणा यथा ।
मित्र मित्र यथा धीर साम्ना परमवल्गुना ॥६६
इत्युक्त्वा स महाबाहुर्बाणं वज्रध्वजस्तदा ।
यथावत् पूजयामास तन्मित्रं मित्रवत्सलः ॥६७
अर्चयित्वा यथायोग्यं प्रस्थाप्य च बले सुतम् ।
ब्रह्माराधनमत्युग्रं कर्तुमिच्छन् क्षितेः सुतः ॥६८
स तीरे नदराजस्य लौहित्यस्य महात्मनः ।
ब्रह्माचलं समारुह्य तपस्तप्तुमुपस्थितः ॥६९
स मानुषेण मानेन क्षितिपुत्र शतं समाः ।
जलाहारव्रतेनैव समानर्च पितामहम् ॥७०

भौम ने कहा—हे मित्रों पर प्यार करने वाले ! जो भी आपने कहा है वह मेरा हित है अर्थात् भलाई करने वाला है। वह मैं तुरन्त ही उत्तम तपश्चर्या करूँगा ॥ ६३ ॥ मुझे भगवान् विष्णु की आराधना नहीं करनी चाहिये क्योंकि उसमें हेतु बतला दिया है। उसी भाँति शम्भु भगवान् की भी आराधना नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे मेरे पुर में अन्तर्गुप्त है ॥६४॥ इस कारण ब्रह्माजी की ही आराधना करनी चाहिए ऐसा ही है मित्र ! आपका भी वचन है। हे महाबाहो ! उनके पुत्र लौहित्य के जल की सन्निधि में आपके द्वारा मैं अध्यापित

किया गया है जिस तरह से गुरु के द्वारा शिष्य को पढाया जाता है। हे धीर ! जैसे मित्र को मित्र परम वल्गु साम से किया करता है। ॥६५॥६६॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इतना वाण से कहकर वह महाबाहु वज्रध्वज ने उस समय में यथावत् उस मित्र की पूजा की थी क्योंकि वह मित्रों पर प्यार करने वाला था ॥६७॥ क्षिति के पुत्र नरक ने यथोचित रूप से अर्चन करके और वलि के पुत्र को प्रस्थापित करके अर्थात् विदा करके उसने अत्यन्त उग्र ब्रह्माजी की आराधन करने की इच्छा की थी ॥६८॥ वह महात्मा लौहित्य के तट पर जो कि नदी का राजा था यथावन पर समास्थित होकर तपश्चर्या करने के लिये उपस्थित हो गया था ॥६९॥ उस क्षिति के पुत्र ने मनुष्यों के मान से सौ वर्ष तक जल के आहार के व्रत से पितामह की अर्चना की थी ॥७०॥

सन्तुष्टः शतवर्षान्ते ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रत्यक्षीभूय नरकस्याग्रतः समुपस्थितः ॥७१
प्रीतोऽस्मि ते वर दास्ये वर वरय सुव्रत ।
इति चोवाच नरकं स तदा कमलासनः ॥७२
स दृष्ट्वा सर्वलोकेशं प्रत्यक्ष कमलासनम् ।
प्रणम्य प्राञ्जलिः प्रोचे विनयानतकन्धरः ॥७३
देवासुरेभ्यो रक्षोभ्यः सर्वेभ्यो देवयोनितः ।
अवध्यत्व सुरश्रेष्ठ वरमेकं प्रयच्छ मे ॥७४
अविच्छिन्ना सन्ततिर्मे यावच्चन्द्रो रविस्तपेत् ।
तावद्भवतु लोकेश द्वितीयोऽय वरो मम ॥७५
तिलोत्तमाद्या या देव्यः सद्रूपगुणसंयुताः ।
तास्ता मे दयिताः सन्तु सहस्राणि तु षोडश ॥७६
अजेयत्व सदा श्रीर्मा न जहातु कदाचन ।
इति पंच वरा मेऽद्य वृतास्त्वत्तः पितामह ॥७७

लोकों के पितामह सौ वर्ष तक तप करने के अन्त में परम सन्तुष्ट हुए थे और प्रत्यक्ष में आकर नरक के सामने समुपस्थित हो गये

थे।७१। हे सुव्रत! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हो गया हूँ। मैं तुमको वरदान दूँगा। जो भी चाहो वर माँग लो। उन भगवान् कमलासन ने यह उस अवसर पर नरक ने कहा था।७२। उस नरक ने समस्त लोकों के स्वामी कमलासन प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन करके उसने उनको प्रणाम किया था और फिर दोनो को जोडकर विनय से अवनत कन्धरा को करके बोला-हे सुरश्रेष्ठ! आप मुझे एक वरदान यह दीजिए कि मैं देवों से—असुरों से—राक्षसों से और सभी देव योनियों से अवध्य होऊँ अर्थात् वध होने के योग्य न रहूँ ॥७३॥७४॥ मेरी सन्तति भी विच्छिन्न न होवे और वह जब तक रहे जब तक ये चन्द्र तथा दिवाकर रहें। हे लोकेश्वर! तभी तक मेरी सन्तति अव्यय बनी रहे—यही मेरा दूसरा वरदान है ॥७५॥ तिलोत्तमा आदि जो देवियाँ सुन्दर रूप और गुणों से समन्वित हैं वे-वे सब सोलह सहस्र मेरी दयिता हो जावें ॥७६॥ मुझे अजेयत्व की प्राप्ति होवे अर्थात् मैं किसी से भी विजित न होऊँ। और श्री मुझको कभी भी परित्याग न करे। हे पितामह! ये मेरे पाँच वर हैं जो आपसे मैंने आज वरण करने की इच्छा प्रकट की है ॥७७॥

मायया मोहितो भौमो मुनिशाप विस्मृत्य च।
अन्यद्वरान्तरं वव्रे मुनिशापस्तथा स्थितः ॥७८
एवमस्त्विति तान् सर्वान् वरान् दत्वा पितामहः।
उवाचेद द्वापरान्ते सन्ध्यायां सुरकन्यका ॥७९
तिलोत्तमाद्यास्ते जाया सम्भविष्यन्ति भूतले।
न यावन्नारदो याति वचध्वज पुरं तव।
तावन्न मैथुने योज्या भवता ता क्षितेः सुत ॥८०
इत्युक्त्वा सर्वलोकेश क्षणादन्तर्हितोऽभवत्।
मुदमासाद्य परमां स्वस्थानं नरकोऽप्यगात् ॥८१
ततो मुदितलोकं त नगरं श्रीनिषेवितम्।
सदा सोत्साहसम्पूर्णमीतिविघ्नविवर्जितम् ॥८२
अभवन् पशुसंघश्च वाजिवारणकुम्भकैः।

सम्पूर्णं देवराजस्य दयितेवामरावती ॥८३
उत्तीर्णतपस श्रुत्वा बाणो दत्तवर तथा ।
स्वय पुनरुपातिष्ठद् भौम वज्रध्वज तदा ॥८४

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—वह भौम नरक माया से मोहित हो गया था और मुनि के शाप को विस्मृत कर दिया था। मुनि का शाप उसी भाँति स्थित था। उसने अन्य अन्य वरदानो की याचना की थी ॥७८॥ पितामह ने ऐसा ही होवे—ऐसी रीति मे उन सब वरों को देकर यह कहा था—द्वापर के अन्त मे सन्ध्या म तिलोत्तमा आदि सुर कन्याऐं भतल मे तेरी पत्नियाँ होगी। हे वज्रध्वज ! अब तक देवर्षि नारद तेरे पुर मे नहीं जाते हैं। हे क्षिति के पुत्र ! तब तक आपको उनके साथ मैथुन कर्म नहीं करना चाहिए ॥७६॥८०॥ इतना ही कहकर सब लोकों के ईश एक ही क्षण मे अन्तर्धान हो गये थे। नरक भी परम प्रसन्नता की प्राप्ति करके अपने स्थान को गमन कर गया था ॥८१॥ इसके अनन्तर वह उस प्रसन्न लोगों वाले नगर को चला गया था। वह नगर श्री से निषेवित था और सदा ही उत्साह से परिपूर्ण था तथा ईतियों के विघ्नों से रहित था ॥८२॥ वह नगर देवराज की दयिता (प्यारी) अमरावती ही के समान पशुओं के समुदायों से और अश्व—गज कुम्भकों से परिपूर्ण हो गया था ॥८३॥ बाण ने नरक को उत्तीर्ण तप वाला तथा दिये हुए वरों वाला श्रवण करके उस समय मे वह वज्रध्वज के समीप मे पुनः स्वय समुपस्थित हो गया था ॥८४॥

स गत्वा भौमनगर बाण प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ।
पप्रच्छ नरक मित्र तपस सन्निवेशनम् ॥८५
पुत्र त्वया तपस्तप्त किं वा चीर्णं त्वया व्रतम् ।
कीदृशो वा वरो लब्धस्त्व ममाख्यातुमर्हसि ॥८६
दृष्ट तव पुर सर्व प्रहृष्टजनसकुलम् ।
वाजिवारणरत्नौघै पूरित मगलस्वनै ॥८७
दृश्यतेऽद्य त्वया पाल्य शस्यपूर्णमनामयम् ।

कथ्यतां वा कथं ब्रह्मा वरं तुभ्यं प्रदत्तवान् ॥८८
ब्रह्मा स्वयं पर्वतरूपधारी
कामेश्वरीं धर्तुमिहावतीर्ण ।
तत्र स्वयं सम्प्रति पसमेति
पुरा न यावच्छपते वसिष्ठ ॥८९
सोऽयं पुरे मे वलिपुत्र राजते
देवौघमेव्योऽप्यमरोत्तमाश ।
तत्राहमेको वरतोयभोजनो
वर्षाण्यकार्षं च तप शतानि वै ॥९०
लौहित्यतीरे घनवायुसेविते
मनोहरे प्राणभृता सुखप्रदे ।
तप प्रवृत्तस्य मुख समागम-
च्छरद् यथैका शरदा शतानि मे ॥९१

उस बाण ने नरक के प्राग्ज्योतिष नामक नगर में गमन करके फिर अपने मित्र नरक से तपश्चर्या का सुन्दिर वैशन पूछा था ॥८५॥ उसने पूछा कि आपने तप कहा किया था अथवा आपने क्या व्रतों को चीर्ण किया था। आपने किस प्रकार का वर प्राप्त किया था यह सभी आप मुझसे कहने के योग्य हैं ॥८६॥ अब मैंने आपके पुरको सम्पूर्ण रूप से प्रसन्न जनों से सकुल देखा है ! अश्व—गज और रत्नों के समूहों से तथा मङ्गल ध्वनियों से भरा—पूरा देखा है ॥८७॥ आज आपके द्वारा पालन के योग्य प्रजा एवं भूमि शस्त्रों से परिपूर्ण और रोग रहित देखी जा रही है। आप बतलाइये ब्रह्माजी ने कैसे आपको वरदान दिया था ॥८८॥ नरक ने कहा—पर्वत के रूप को धारण करने वाले ब्रह्माजी स्वयं कामेश्वरी को धारण करने के लिये यहाँ पर अवतीर्ण हुए थे। वहाँ पर अब स्वयं यस गमन किया करता है जब तक पहिले वसिष्ठ मुनि शाप नहीं देते हैं ॥८९॥ हे बलि पुत्र ! वह यह मेरे पुर में

विराजित होते हैं जो देवों के समुदाय द्वारा सेव्य हैं और अमरों का उत्तम अंग हैं। वहाँ पर मैं अकेला जल के आहार करने वाला सौ वर्ष तक तपस्या करने वाला रहा था ॥६०॥ सौहित्य कातर अन वायु से सेवित था वह परम मनोहर था और प्राणियों को सुख प्रदान करने वाला था। वहाँ पर तपस्या करने में प्रवृत्त हुए मुझे सुख पूर्वक सौ वप एक वर्ष की ही भाँति समागत हुए थे ॥६१॥

ततः स तुष्टश्चतुराननोऽभवन्
प्रत्यक्षतो मां त्वगदच्च मद्धितम्।
तव प्रसन्नोऽस्मि वरं यथेप्सितं
दास्ये गृहाणेति पुरोऽस्य भूत्वा ॥६२
अवध्यता मे सुरयोनितः सुरा-
दच्छिन्नसन्तानः जेयता तथा।
सदा विभूतिर्न जहातु मामिति
वराश्च नार्यो नवयौवनान्विता ॥६३
एते वराः पञ्च मया ततो वृता
सोऽपि प्रतिश्रुत्य गतो निजास्पदम्।
ततोऽहमभ्येत्य पुरं निजं मुदा
मन्त्रिप्रवीरैः सहितः पुनस्तान् ॥६४
पौरान् सवन्धून् सगणानमादयम्
दानेन मानेन च भोजनेन ॥६५
इतीरितं तस्य वले सुतस्तदा
भौमस्य श्रुत्वा मुमुदे न तत्क्षणात्।
इदं तदोचे वचनं क्षितेः सुत
तरसायुक्तं न च सूनृतोद्भवम् ॥६६
न ते मुने शापमतीत्य गन्तु
भूना मतिमित्थ तदा विधे पुरं।

कथं तु भद्रं भविता तवेह
भावीत्यवश्यं क्षितिपुत्र नित्यम् ॥६७
कृतस्य करणं नास्ति दैवाधिष्ठितकर्मणः ।
भावीत्यवश्यं यद्भाव्यं तत्र ब्रह्माप्यबाधकः ॥६८

इसके उपरान्त चतुरानन वे ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये थे और प्रत्यक्ष में समागत होकर उन्होंने मेरे हित के वचन कहे थे। उन्होंने मेरे सामने होकर मुझ से कहा था—मैं तुम पर प्रसन्न हो गया हूँ और जो भी तुम्हें अभीष्ट होगा वही वर तुमको दूँगा—तुम मुझसे वर ग्रहण करलो ॥६२॥ मैंने उनसे पाँच वरदानों की याचना की थी—सुर योनि से मुझसे मेरी अवध्यता होवे—मेरी सन्तति कभी भी छिन्न न होवे—अजेयता मुझे प्राप्त रहे—विभूति सदा ही बनी रहे और कभी भी मेरा परित्याग न करे। और परम श्रेष्ठ नव यौवन से समन्वित मेरी नारियाँ होवें—ये ही पाँच वरदान मैंने माँगे थे। उनने भी सभी वरदानों को प्रतिश्रुत किया था और फिर वे अपने स्थान को चले गये थे। इसके उपरान्त मैं प्रसन्नता से अपने नगर में प्राप्त हो गया था। फिर मैंने मन्त्रियों में श्रेष्ठों के सहित पुनः उस नगर निवासियों को गणों के सहित दान मान और भोजन के द्वारा प्रसन्न किया था ॥६३॥६४॥६५॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस तरहसे उसके कहेहुए वचनका श्रवण करके वनिके पुत्र उस क्षण में प्रसन्न नहीं हुआ था और उस समय में उसने भूमि के पुत्र से यह वचन कहा था वह वचन उस काल के युक्त था और सूनृतोद्भव नहीं था। अर्थात् प्रिय लगने वाला नहीं था ॥६६॥ बाण ने कहा—हे मित्र! उस समय में विधाता के आगे आपकी बुद्धि मुनि के शाप अतिक्रमण करने की नहीं हुई थी। यहाँ पर आपका कल्याण कैसे होगा। हे भूमि पुत्र! जो होनहार है वह नित्य ही अवश्य ही होने वाली है ॥६७॥ किये हुए दैव से अधिष्ठित कर्म का करण नहीं है। जो होनहार है वह अवश्य ही होगी ही उसमें ब्रह्मा भी बाधक नहीं हो सकते हैं ॥६८॥

तस्मात् त्वं सुमहावीरानसुरान पावकोपमान् ।
सन्ध्याय च पुरस्कृत्य साचिव्ये विनियोजय ॥९९
द्वारि संस्थाप्य वै वीरान् देवैरपि दुरासदान् ।
अतिक्रमस्व देवेश यदि लब्धवरो भवान् ॥१००
विधिना यो वरो दत्तो भवते तत्-परीक्षयम् ।
कर्तुमर्हसि जायायामपुत्रो जनयात्मजम् ॥१०१
इत्युक्त्वा प्रययौ वाणो ययावत् तेन पूजितः ।
नरको मित्रवचन कर्तुं समुपचक्रमे ॥१०२

इस कारण से आप बहुत महान् वीर असुरों को सन्धि करके उन्हें आगे करो और मन्त्रियों के पदों पर उनको नियुक्त करो ॥९९॥ जो देवों को भी दुरासद हों ऐसे वीरों को द्वार पर संस्थापित करो। आप यदि वरदान प्राप्त किये हुए हैं तो देवेश्वर का भी अतिक्रमण करो ।१००। विधा ने जो वर दिया है आपके लिये वह परीक्षण है। अपुत्र आप जाया में आत्मज को जन्म दो ।१०१॥ इतना कहकर बाण उससे द्वारा पूजित होकर वहाँ से चला गया था। नरक ने भी अपने मित्र के द्वारा कहे हुये वचनों के अनुसार ही कार्य करने का आरम्भ किया था ॥१०२॥



॥ नरकासुर उपाख्यान ॥

ऋतुमत्या तु जायाया काले स नरकः क्रमात् ।
भगदत्त महाशीर्ष मदवन्त सुमालिनम् ॥१
चतुरो जनयामास पुत्रानेतान् क्षितेः सुतः ।
महासत्त्वान् महावीर्यान् वीरं रन्यैर्दुरासदान् ॥२
ततो वाणस्य वचनाद् हयग्रीवं तथा मुरम् ।

स धायाथ समानीय सनापत्येऽभ्यपचयत् ॥३
मुरु सन्निहित श्रुत्वा हयग्रीव भौमिना ।
ये ये क्षितौ तदा त्यामन्नसुरास्तेऽपि सगता ॥४
हयग्रीव मुरु श्रुत्वा नरकेण समागतम् ।
निसुन्दसुन्दनामारावसुरौ सैनिक सह ॥५
विरूपाक्षस्तदा दत्य सव तेन समागमन् ।
तत स पश्चिमद्वारि नरक सेनया सह ॥६
मुरु द्वाराधिप चक्र हयग्रीव तथोत्तर ।
पूवद्वारि निसुन्दन्तु विरूपाक्ष तु दक्षिणे ॥७

मार्कण्डेय महर्षि न कहा—काल के सम्प्राप्त होने पर भूमि के पुत्र नरक ने क्रम से ऋतुमती अपनी जाया में भगदत्त—महा वीर्य—मदव त और सुमाली इन चार पुत्रों का समुत्पन्न किया था जो कि महान् सत्व वाले—महान् वीर्य—पराक्रम वाले और अन्य वीरों के द्वारा दुरासद थे ॥१॥२॥ इसके अनन्तर बाण के वचन के अनुसार हयग्रीव तथा मुरु को बुला कर इनके साथ सन्धि करके अपने सेना के अधिपत्य पदों पर अभिषिक्त कर दिया था ॥३॥ भौम के द्वारा नियुक्त किये हुए मुरु और हयग्रीव को सुनकर उस समय में जो जो भी भूमि पर असुर थे वे भी सब सङ्गत हो गये थे।४। नरक के द्वारा समागत मुर और हयग्रीव को सुनकर सेना के सहित निसुन्द और सुन्द नामा वाले तथा दैत्य विरूपाक्ष उस समय में ये सभी समागत हो गये थे। इसके अनन्तर उस नरक ने सेना के साथ पश्चिम द्वार पर मुरु को द्वार का अधिष्ठ बना दिया था तथा हयग्रीव का उत्तर द्वार पर नियुक्त किया था। पूव द्वार पर निसुन्द को और विरूपाक्ष को दक्षिण द्वार पर नियुक्त किया था ॥५॥६॥७॥

मध्ये पचजन सुन्द सैनापत्येऽभ्यपेचयत् ।
मुरु क्षुरान्तान् पाशाश्च षट्सहस्राण्ययोजयत् ॥८

द्वारि तत् पुररक्षार्थं सत्कृत क्षितिसूनुना ।
एव पूर्वान् पूर्वतरानवमत्य सुमन्त्रिण ॥६
असुरैरेव सतत सोऽसुरो मुदितोऽभवत् ।
पूर्वं गृहीत भाव स परित्यज्य क्षिते· सुत· ॥१०
आसुर भावमासाद्य बाधते त्रिदिवौकस ।
न देवान् न मुनीन् सर्वान् न च जानाति काञ्चन ॥११
सुरेश्वर जिगायाशु हयग्रीवसहायवान् ।
एव स चासुर भाव तन्वानो विचरन् क्षितौ ॥१२
बाणस्य वचनाच्छक्र बाधयत्येव वै मुनीन् ।
देवेश्वर त्रिधा जित्वा हयग्रीवसहायवान् ।।१३
अदित्या कुण्डलयुग त्रिपु लोकेपु विश्रुतम् ।
सर्वरत्नामृतस्रावि दु खविघ्नहर परम् ॥१४

मध्य मे पचजन मुन्द को सेनापति के आधिपत्य पद पर नियुक्त किया था अथवा अभिषिक्त कर दिया था। मुरु को दुरान्त को और पाशा को छै सहस्रों को योजित किया था ॥८॥ द्वार पर भूमि पुत्र के द्वारा पुर की रक्षा के लिये इनका सत्कार किया गया था। इस प्रकार से जो पूर्व मे थे तथा उसमे भी पहिले थे उन अच्छे मन्त्रियों को हटा दिया था ॥६॥ वह असुर निरन्तर असुरो के ही साथ से परम प्रसन्न हुआ था। उस भूमि के पुत्र ने पूर्व मे ग्रहण किये हुए भाव का परित्याग कर दिया था ॥१०॥ वह आसुर भाव को प्राप्त करके देवो को बाधा दिया करता था। वह न तो देवो को—न मुनियों को और किन्ही भी सबको नहीं जानता था अर्थात् अन्य किसी का भी आदर नही किया करता था ॥११॥ सुरेश्वर को शीघ्र ही उसने हयग्रीव की सहायता से युक्त होकर जीत लिया था। इस प्रकार से वह आसुर भाव को बढाता हुआ ही पृथ्वी पर विचरण किया करता था ॥१२॥ बाण के वचन मे वह हयग्रीव की सहायता से समन्वित होकर देवों के स्वामी इन्द्र को

बधा देता हैं और मुनियो को भी बाधा दिया करता है। देवश को तीन प्रकार से जीतकर अदिति के दो कुण्डलो को जो तीनो लोको मे प्रसिद्ध हैं जो सर्वरत्ना मृन का स्रवण करने वाले थे और दुख तथा विघ्नो का हरण करने वाले परम श्रेष्ठ थे ॥१३॥१४॥

जहार नरको भौमो निर्भीतो मुनिशापत ।
एव देवान् बाधमानो मुनीन् विप्रान क्षिते सुत ।
पचवर्षसहस्राणि राज्य प्राग्ज्योतिपेऽकरोत् ॥१५
एतस्मिन्नन्तरे देवी महाभारार्दिता क्षिति ।
ब्रह्माविष्णुमुखान् देवान् रक्षार्थं शरण गता ।
इद चोवाच धातार प्रणम्योर्वो समाधवम् ॥१६
दानवा राक्षसा दैत्या हरिणा ये च सूदिता ।
ते राज्ञा मन्दिरे जाता अधुना बलगर्विता ॥१७
तेपा भारमह सोढु न शक्नोमि महत्तरम् ।
असख्याताश्च ते सर्वे तान् सख्यातु न चोत्सहे ॥१८
अष्टौ शतसहस्राणि तेपा मुख्या महाबल ।
तेऽप्यतिबलान् वोढु न ताञ्छक्नोमि चाधुना ॥१९
बाण बले सुत वीर कस धेनुकमेव च ।
अरिष्ट च प्रलम्ब च सुनामान मेरुं शलम् ॥२०
चारणमुष्टिको मल्लौ जरासन्ध महाबलम् ।
नरक च हयग्रीव निसुन्द सुन्दमेव च ॥२१

भूमि के पुत्र नरक ने मुनि के शाप से निर्भीत होकर उन कुण्डलो का हरण कर लिया था। इस तरह से देवो को—मुनियो को और विप्रो को बाधा करता हुए उस भूमि के पुत्र ने पाँच सहस्र वर्ष तक प्राग्ज्योतिष मे राज्य का शासन किया था। १५। इसी बीच मे महान् भार से पीड़ित हुई पृथ्वी देवी ब्रह्मा—विष्णु प्रमुख देवो की शरणागति मे अपनी रक्षा के लिये गयी थी। वहाँ पृथ्वी ने ब्रह्माजी और माधव प्रभु को प्रणाम करके यह कहा था। १६। पृथिवी ने कहा—

दानव—राक्षस और दैत्य जो हरि के द्वारा मर्दित कर दिये गये थे व सब राजाओं के मन्दिर में इस समय में बल से गर्वित होकर समुत्पन्न हो गये थे ।१७। उनका इतना अधिक भार है कि उसको सहन और वहन करने में समर्थ नहीं हूँ । उनकी संख्या इतनी अधिक है कि मैं उन सब की गणना वर्तमान में भी असमर्थ हूँ और मुझे उत्साह नहीं होता है कि मैं गिनलाऊँ ।१८। उनमें मुख्य महान् बल वाले आठ सौ सहस्र हैं । उनमें भी अत्यधिक बल वाले हैं । मैं इस समय में उनका वहन करने में असमर्थ हूँ ।।१९।। उनके नामों को बताते हुए पृथ्वी ने कहा—बाण—बलि का पुत्र, घोर कंस, धेनुक अरिष्ट—प्रलम्ब, सुनामा, मुर, शल, मल्ल चारण और मुष्टिक, महान् बल शाली जरा सन्ध, नरक, हयग्रीव, निसुन्द और सुन्द हैं ।। २० ।। २१ ।।

विरूपाक्ष पञ्चजन हिडिम्ब च वकं बलम् ।
जटासुरं च किर्मीरमनायुधमलम्बुषम् ।।२२
सौभाग्य च जरासन्ध द्विविद चापि वानरम् ।
श्रुतायुध महादैत्य शतायुधमथापरम् ।।२३
ऋष्यशृङ्गसुत चैव सुबाहुमतिबाहुकम् ।
कालकेयांस्तथा दैत्यान् हिरण्यपुरवासिन ।।२४
एतेषा तु पदक्षोभैर्विशीर्णाहि दिने दिने ।
लोकान् वोढु न शक्नोमि तानिमान्तु सुरोत्तमा ।।२५
नचेद्रक्षा प्रकुर्वन्ति भवन्त सुरसत्तमा ।
सदा विशीर्णा यास्यामि पातालमवशाऽधुना ।।२६
ततस्तस्या वच श्रुत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
इत्यूचुस्ते करिष्याम क्षिते भारविमोक्षणम् ।।२७
विसृज्य पृथिवी देवी सर्वे देवा सनातनम् ।
माधव तोषयामासुर्भारावतरण प्रति ।।२८

विरूपाक्ष—पञ्चजन—हिडिम्ब—वक—बल—जटासुर—

किर्मीर मनायुध—अलम्बुष—सौभाख्या—जरासन्ध—वानर द्विविद—श्रुतायुध—महादैत्य शतायुध—ऋष्य शृङ्ग सुत—सुबाहु—अति बाहुक—कालवज्ज—हिरण्य पुरवासी दैत्य इन सबके पदों में क्षोभों से मैं दिनो दिन विशीर्ण हो रही हूँ। हे सुरोत्तमो ! मैं लोकों का वहन करने में असमर्थ हो रही हूँ। आप इनका विहनन करिये। ।।२२—२५।। यदि सुर श्रेष्ठ मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो मैं परमाधिक विशीर्ण होकर इस समय में अवश होकर पाताल में चली जाऊँगी। ।२६। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर ब्रह्मा—भगवान् विष्णु और महेश्वर ने उसके वचन का श्रवण करके उन्होंने यह कहा था कि पृथ्वी के भार का विमोचन हम करेंगे। २७। पृथ्वी देवी को विदा करके सभी देवगण सनातन माधव को भूमि के भार के उतारन के विषय में प्रसन्न करने लगे थे ॥ २८ ॥

स तु तुष्ट सुरान् सर्वान् स्वाशीरवरन्तु वै ।
क्षितौ भारावतारायेत्युक्त्वा स्वयमिह प्रभु ॥२६
अवतीर्णोऽथ देवक्या गर्भे भारावतारणे ।
विष्णु चावतरिष्यन्त ज्ञात्वा देवा सनातनम् ॥३०
रम्भातिलोत्तमाद्याश्च देव्यो रूपगुणान्विता ।
क्षिता रुत्पादयामासु सहस्राणि तु षोडश ॥३१
ता सर्वा हिमवत्पृष्ठे क्रीडमाना वरस्त्रिय ।
अपश्यन्नरको भौमस्ता जहार तदा हठात् ॥३२
ते ता र्धार्षता देव्यो नीता प्राग्ज्योतिष प्रति ।
नरक प्रार्थयामासु समय मैथुन प्रति ॥३३
नारदो यावदायाति नगर प्रति भौम ते ।
अस्माक कुरु रक्षा च तावन्नो मुञ्च मैथुने ॥३४
स समेष्यति वीर त्वा न चिरान्नो ह्यनुग्रहात् ।
तेन दृष्टा वय सार्धमेष्याम सगम त्वया ॥३५

वे परम प्रसन्न होकर समस्त सुरों से उन्होंने कहा था कि वे सब भूमि में उसके भार को उतारने के लिये अपने-अपने अंशों से अवतरित होवें—इतना कहकर प्रभु स्वयं भी यहाँ पर भार के अवतारण में देवकी के गर्भ में अवतीर्ण हुए थे। देवों ने स्वयं भगवान् विष्णु को अवतीर्ण होते हुए जान कर जो कि सनातन है। उन देवगणों ने रम्भा और तिलोत्तमा आदि देवियों को जो रूप लावण्य और गुणों से समन्वित थी उन सोलह सहस्रा को उत्पादित कर दिया था ॥२९॥३०॥३१॥ वे सब परम श्रेष्ठ नारियाँ हिमालय के पृष्ठ भाग पर क्रीडा करने वाली थी। उनको भूमि के पुत्र नरक ने देखा था और उनको हठ से अर्थात् बल पूर्वक उसने हरण कर लिया था। उस नरक ने उन सबको धर्षित किया था और अपने प्राग्ज्योतिष नगर में उन सबको ले आया था। नरक ने मैथुन के प्रति समय उस उन से प्रार्थना की थी। उन्होंने कहा हे भौम ! जब तक देवर्षि नारद तेरे नगर की ओर आते हैं तब तक आप हमारी रक्षा करें और मैथुन के प्रति हमको छोड़ देवें। ३२। ३३। । ३४। वे शीघ्र ही हमारे प्रति अनुग्रह करके हे वीर ! आपके समीप में आये गे। उनके द्वारा देखी गयी हम सब तुम्हारे साथ सङ्गम करने के लिये आजामेंगी ॥३५॥

इति सम्प्रार्थितस्ताभिर्नरको भूमिनन्दन. ।
ब्रह्मवाक्य तदा स्मृत्वा एवमस्त्विचिवान् मुहु ॥३६
एतस्मिन्नन्तरे देवो भगवान् लोकभावन ।
देववया जठराज्जातो वृद्धो नन्दगृहेऽभवन् ॥३७
कसकेशिप्रलवादीन् हत्वा दैत्याननेकश. ।
अकरोद् द्वारकावास सागरे सलिलान्तरे ॥३८
तत्राष्टौ कन्यकास्तेन स्वयमेण च स्वीकृता ।
कालिन्दी मानुपोरुपा रुक्मिणी रमणी तत. ॥३९
नग्नजित्तनया सत्या लक्ष्मणा चारुहासिनी ।

सुशीला शीलसम्पन्ना तथा जाम्बवती सती ॥४०
एतासु स्त्रीषु च तना ह्युरुसाम्य नम्य च ।
षट्त्रिंशद्वत्सरा जाता वलदेवसहायिन ॥४१
प्रद्युम्नसाम्बप्रमुखा पुत्रास्तस्य महाबला ।
जातास्तत्र द्विजश्रेष्ठा शास्त्रे शस्त्रे च वाविदा ॥४२

उनके द्वारा इस प्रकार से प्रार्थना किया गया उस भूमि के पुत्र नरक ने उस अवसर पर ब्रह्माजी के वाक्य का स्मरण करके गया ही होवे —यह उसने कहा था । ३६ । इसी बीच में लोकों की रक्षा करने वाले देव भगवान् देवकी के गर्भ से समुत्पन्न हुये थे । और नन्द के घर में पालित होकर बड़े हुए थे । ३७ । उन प्रभु ने कंस केशी और प्रलम्ब आदि अनेक दैत्यों को मार कर जल के अन्दर सागर में बसी हुई द्वारका पुरी में अपना निवास किया था । ३८ । यहाँ पर उन्होंने अपने धर्म से आठ कन्याओं को स्वीकार किया था । उनमें मानवी के रूप वाली कालिन्दी थी—रमणी—नग्नजित् की पुत्री—सत्या—चारु हास वाली लक्ष्मणा—परम सुशील और शील से सम्पन्न सती जाम्बवती थी । ३९ । ४० । बलदेव की सहायता वाले उनको इन नारियों में अनुराग करने वाले उनको छत्तीस वर्ष व्यतीत होगये थे । ४१ । हे द्विज श्रेष्ठो ! उसके महान् बल वाले इस प्रकार से प्रद्युम्न—साम्ब जिनमें प्रमुख थे ऐसे पुत्र समुत्पन्न हुये थे जो शास्त्र में और शस्त्र विद्या में परम पण्डित थे ॥ ४२ ॥

अनेके निहता दैत्या भारभूतास्तदा क्षिते ।
प्रहृष्ट क्रीडमानश्च द्वारकायामुवास स ॥४३
अथ शक्रस्तदायातो नरकेणार्दितो भृशम् ।
द्वारका प्रति कृष्णस्य दर्शनाय गणै सह ॥४४
तत्र गत्वा परिष्वज्य कृष्ण लोकनमस्कृतम् ।
पूजितस्तेन वहुश आसने काचने स्थित ॥४५

कथयामास हरये नरकस्य विचेष्टितम् ।
शक्रो यथा पूर्ववृत्त यथा वा वर्ततेऽधुना ॥४६
शृण कृष्ण महाबाहो यदर्थमहमागत ।
कथयिष्यामि तत् सर्वं तत्र शका न सकुरु ॥४७
भूमिपुत्रोऽसुरो नाम्ना नरक. सुरमर्दन ।
चिरजीवी पुरा विष्णुक्षितिभ्या परिपालितः ॥४८
अधुना स क्षिति विष्णुमवज्ञाय दुरासद. ।
बाणस्य वचनाद् भौमो ब्रह्माण पर्यतोषयत् ॥४९

उस समय मे जो भूमि के भार स्वरूप थे ऐसे अनेक दैत्यो को निहत कर दिया था। फिर परम प्रसन्न होकर क्रीडा करते हुए उन्होने द्वारका मे निवास किया था।४३। इसके अनन्तर इन्द्रदेव अपने गणो के सहित नरक के द्वारा अत्यन्त उत्पीडित होकर वहाँ पर समागत हुआ और द्वारका मे भगवान् के दर्शन के लिये ही उपस्थित हुआ था।४४। वहाँ पर गमन करके लोगो के द्वारा वन्दित प्रभु कृष्ण का परिष्वजन करके उनके द्वारा पूजित होते हुए वह सुवर्ण के आसन पर विराजमान हो गया था॥ ४५ ॥ वहाँ पर उस इन्द्रदेव ने भगवान् हरि के लिये नरक का जो विचेष्टित था वह सब कह दिया था। जो पूर्व मे हुआ था और इस समय म हो रहा है वह सभी इन्द्र ने निवेदन कर दिया था।४६। इन्द्र ने कहा—हे महाबाहो! हे श्रीकृष्ण! जिस प्रयोजन के लिये मैं यहाँ आया हूँ उसका आप श्रवण कीजिए। मैं वह सभी कुछ निवेदन करूँगा। इसमे आप कुछ भी शङ्का न करिए।४७। एक भूमि का पुत्र नरक नाम वाला असुर है जो सुरो का मर्दन करने वाला है। वह चिरजीवी है और पहिले भगवान् विष्णु और क्षिति के द्वारा पालित हुआ है।४८। इस समय म वह दुरासद वह क्षिति और भगवान् विष्णु की अवज्ञा करके बाण के वचन से उसने तप के द्वारा ब्रह्माजी को परितुष्ट कर लिया है।४९।

ब्रह्मत स वरान् लब्ध्वाह्यतीवाभूत् प्रदर्पित. ।
माधव पृथिवी वापि सस्मार न कदाचन ॥५०
पूर्वमासीत् स धर्मात्मा ह्याराधितसुरो व्रती ।
अधुना बाधते सर्वानासुर भावमाश्रितः ॥५१
अदिते कुण्डले मोहाज्जहारामृतसम्भवे ।
देवानृषीन् बाधमानो विप्राणामप्रिये रत. ॥५२
मा चापि बाधते नित्य कामगामी दुरासद ।
जेता तु सुरदैत्यानामवध्य सर्वदेहिनाम् ॥५३
तव चाप्यन्तरप्रेक्षी त पाप जहि भूतये ।
त्वदर्थं सर्वदेवर्षी देवगन्धर्वकन्यका ॥५४
पुरा पर्वतमुख्ये तु हिमवत्यवतारिता ।
चतुर्दश सहस्राणि सहस्रे द्वे शताधिके ॥५५
ता सर्वा कन्यका पाप. प्रमह्य वरदर्पित ।
जहार स दुराधर्षो हयग्रीवसहायवान ॥५६

ब्रह्माजी से वरदानो को प्राप्त करके वह अत्यन्त ही घमण्डी हो गया है। वह इस समय मे एसा दर्पित हो गया है कि न तो उसने माधव का और न पृथ्वी का कभी भी स्मरण किया है। ५०। पूर्व म वह धर्मात्मा था सुरो की आराधना की थी और वह व्रतधारी था किन्तु इस समय मे वह आसुर भाव का आश्रय वाला होकर सबको बाधा दिया करता है।५१। अदिति के अमृत से समुद्भूत दोनो कुण्डलो का मोह से उसने हरण कर लिया था और देवगणो को और ऋषियो को बाधा देता हुआ वर्गो के अप्रिय कर्म मे वह रत रहता है। ५२। कामगामी दुरासद वह मुझको भी नित्य बाधा देता है। वह सुरो का और दैत्यो का जीतने वाला है तथा समस्त देहधारियो से वध करने के अयोग्य है अर्थात् कोई भी देहधारी उसका वध करने मे समर्थ नही है।५३। आपका भी वह अन्तर प्रेक्षी है। उस पापी को भूति के लिए

वध कीजिए। सब देवगणो ने आपके लिये देवो और गन्धर्वों की कन्याएँ पहिले मुख्य पर्वत पर हिमालय में अवतारित की थी। वे सोलह सहस्र हैं। वरदान के घमण्ड मे भरे हुए पापी उसने वे सभी कन्याएँ बलपूर्वक हरण करली हैं। वह दुराधर्ष हैं और हयग्रीव की सहायता वाला है॥ ५४—५६॥

सागरे यानि रत्नानि पृथिव्या च त्रिविष्टपे।
तानि सर्वाणि संहृत्य प्रमथ्य सुरमानुषान् ॥५७
तीरे लौहित्यतीर्थस्य सोऽकरोन्मणिपर्वतम्।
तस्मिन् गिरौ पुरी रम्या कारयित्वाऽलकाह्वयाम् ॥५८
ता सर्वा वासयामास देवगन्धर्वयोषित।
एकवेणीधरा सर्वा सम्भोगपरिवर्जिता ॥५९
त्वामेव ता प्रतीक्षन्ते सनाथा कुरु कृष्ण ता।
यावदागच्छति पुर भवतो नारदो मुनि ॥६०
तावन्न मैथुन यत्न भौम त्व सकरिष्यसि।
इति ता सनय चक्रे नरकस्य दुरात्मन ॥६१
नारदश्च तदायात प्राग्ज्योतिषपुर प्रति।
यदा त्व नरक हन्तु गन्ता तत्पुरमुत्तमम् ॥६२
तस्मात् त्व पापकर्माण नरक नरकोपमम्।
जहि देवमनुष्याणा कण्टक त दुरासदम् ॥६३

सागर में जो भी रत्न हैं—पृथिवी और स्वर्ग में जो हैं उन सबको संहृत करके और सुरो तथा मनुष्यो का प्रमथन करके उसने लौहित्य तीर्थ के तट पर मणि पर्वत बनाया है। उस पर्वत में अलका नाम वाली रम्य पुरी की रचना कराकर देवो और गन्धर्वो की नारियो का वहां पर ही उसने बसा दिया है। वे सब एक वेणी को धारण करने वाली हैं और सम्भोग से वर्जित हैं॥ ५७—५९॥ वे सब आपकी ही प्रतीक्षा कर रही हैं। हे कृष्ण! अब उन सबको सनाथ

करिए। जब तक आपके पुर में नारद मुनि आगमन करें हे भीम! तब तक उनके साथ मैथुन करने का तुम प्रयत्न नहीं करोगे। यही उस हीन दुरात्मा नरक के साथ समय किया था। जिस समय में नारद मुनि उस प्राग्ज्योतिष पुर के प्रति आयात होवें उसी समय में आप उसके उत्तम पुर में नरक के हनन करने के लिये गमन करेंगे॥ ६०—६२॥ इस कारण से उस पाप कर्म करने वाले नरक के ही सदृश नरक को मार दीजिए क्योंकि वह बहुत दुरासद है और देवों तथा मनुष्यों का कण्टक है॥ ६३॥

वधात् तस्य क्षिति देवी पुत्रशोकं न चाप्स्यति।
स्वयमेव वधं तस्य देवेभ्यो यदयाचत॥६४
तस्मात् तं जहि पापिष्ठं नरकं पापपूरुषम्।
स्त्रीरत्नान्यपि रत्नानि तं निहत्य समुद्धर॥६५
इत्युक्तो जगतां नाथः शक्रेण सुमहात्मना।
प्रतिजज्ञे क्षितिसुतं हन्तुं प्रति तदैव हि॥६६
प्रतिज्ञाय वधं तस्य शक्रेण सह केशवः।
तदैव यात्रामकरोत् प्राग्ज्योतिषपुरं प्रति॥६७
आरुह्य गरुडं कृष्णः सत्यभामाद्वितीयकः।
प्राग्ज्योतिषमुखोऽगच्छद्वामवस्त्रिदिवं ययौ॥६८
दिवमाक्रम्य गच्छन्तौ कृष्णशक्रौ महाद्युती।
यादवा ददृशुस्तत्र सूर्याचन्द्रमसौ यथा॥६९
सस्तूयमानौ गन्धर्वैर्देवैरप्सरसां गणैः।
कृष्णः शक्रः क्षणादेव गतौ खे तावदृश्यताम्॥७०

उसके वध कर देने से देवी पृथिवी पुत्र के शोक को नहीं प्राप्त होगी क्योंकि उसने स्वयं ही उसके वध करने के लिये देवताओं से प्रार्थना की थी। ६४। इस कारण से उस महान् पापी पाप पुरुष नरक का वध करिये। उसका हनन करके स्त्री रत्नों को तथा अन्य रत्नों

उद्धार कीजिये अर्थात् इन सबको वहाँ से ले आइये ।६५। महान् आत्मा वाले इन्द्र के द्वारा इस प्रकार से जगतो के नाथ से कहा गया तो उन्होंने पृथ्वी के पुत्र नरक के हनन करने के लिये प्रतिज्ञा की थी और उसी समय मे मार देने का वचन दिया था ।६६। इन्द्र के साथ भगवान् केशव उसके वध करने की प्रतिज्ञा करके उन्होंने उसी समय म प्राग्ज्योतिष पुर की ओर यात्रा करदी थी ।६७। भगवान् कृष्ण ने गरुड पर समारोहण किया था और उनके साथ दूसरी सत्यभामा भी थी वे प्राग्ज्योतिष की ओर मुख करके चले गये थ और इन्द्रदेव स्वर्ग म गमन कर गये थे ।६८। दिवमोर्ग का आक्रमण करके गमन करते हुये इन्द्र और श्री कृष्ण को जो महती द्युति मे सम्पन्न थे यादवो ने वहाँ पर सूर्य और चन्द्र के समान ही इन दोनो को देखा था ।६९। वे दोनो गन्धर्व—देव और अप्सराओं के गणो के द्वारा संस्तवन किये हुये थे। श्री कृष्ण और इन्द्र क्षण भर म ही आकाश म अदृश्य हो गये ॥७०॥

तत क्षणेन गरुडेनाससाद जगत्पति ।
पुर प्राग्ज्योतिष रम्य नरकेण वशीकृतम् ॥७१
स दुर्ग मौरवं पाशै षट्सहस्रैर्भयकरैः ।
क्षुरान्तैर्वेष्टित पार्श्वे मृत्युपाशैरिवोच्छ्रितम् ॥७२
निर्गच्छन्त पुरान् तस्मात् नारद च ददर्श स ।
स तु देवमुनि श्रीमान् यदागान्नरक प्रति ॥७३
तदा प्राग्ज्योतिष गत्वा सत्कृतस्तेन नारद ।
सगमे समय प्रोचे नरकाय स योषिताम् ॥७४
प्रवर्ततेऽद्य चैत्रस्य शुक्लपक्षस्य पचमी ।
नवन्या तु धरापुत्र प्राप्नोनि महदापदम् ॥७५
तदा यदि चतुर्दश्या सुस्नाता योषितस्त्विम ।
सुरतेषु त्वया तत्र प्रयोक्तव्या यथासुखम् ॥७६

नादरस्य वच श्रुत्वा नरकों भयमोहित ।
आसार च प्रसार च नगरे सन्न्यवेदयत् ॥७७

फिर क्षण भर मे ही जगत् के स्वामी गरुड के द्वारा नरक से वशीकृत परम रम्य प्राग्ज्योतिष पुर मे प्राप्त हो गये थे अर्थात् वहाँ पर पहुँच गये थे । ७१ । वह दुर्ग छः सहस्र भयङ्कर मौरव पाशों से और क्षुरान्तों से वेष्टित था और पार्श्व मे मृत्यु पाशों के समान उच्छित था । ।७२। उन्होंने उस पुर से उसी समय मे निकलते हुये नारद को देखा था। वह देव मुनि श्रीमान नरक के प्रति गये थे ।७३। उस समय म प्राग्ज्योतिष मे गमन करके वे नारद मुनि उसके द्वारा सत्कार को प्राप्त हुये थे । उन्होने नरक म योपितो के साथ सङ्गम करने म उस समय कह दिया ।७४। आज चैत्र म स के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी प्रवृत्त है। हे धरा पुत्र ! नवमी तिथि मे तुम महान् आपदाओं को प्राप्त करते हो ।७५। उस समय मे चतुर्दशी म यदि ये योषितें सुस्नात हो उसी समय मे तुमको सुख पूर्वक सुरता म प्रयुक्त करनी चाहिय । ।७६। देवर्षि नारदजी के इस वचन का श्रवण करके नरक भय से मोहित हो गया था। उसने आसार और प्रसार नगर मे निवेदित कर दिया था ॥७७॥

रक्षिभी रक्षित राज्य रक्षित च समन्तत ।
भयहर्षयुतो भौम समय समवैक्षत ॥७८
तस्मिन्नवसरे प्राप कृष्ण प्राग्ज्योतिष पुरम् ।
प्रथम पश्चिम द्वारमासाद्य गरुडध्वज ॥७९
पाशाना षटसहस्राणि क्षुरान् सञ्छिद्य नैकधा ।
जघान स मुरु दैत्यं सानुग च सवान्धवम् ॥८०
षट्सहस्रा महावीरा दानवा द्वारि सस्थिता ।
हताश्चक्रेण हरिणा तदैव मुरुणा सह ॥८१
मुर हत्वा सहस्राणि पुत्रास्तस्यापराश्च षट् ।

जघान चक्रेण तदा खण्डशोऽन्याश्च दानवान् ॥८२
ततोऽनेकशिलासघानतिक्रम्य जनार्दन ।
सगण सानुग चैव निसुन्द समपोथयन् ॥८३
एको यो योधयेद्देवान् सहस्र वत्सरान् पुरा ।
शक्र च समतिक्रम्य महावीरपराक्रम ॥८४

भौम (नरक) ने राक्षसो से सुरक्षित नगर को सभी ओर से राज्य को रक्षित कर दिया था। और भय तथा दर्प से युक्त नरक ने समय की प्रतीक्षा की थी। उस अवसर मे भगवान् श्री कृष्ण प्राग्ज्योतिष नगर मे प्राप्त हो गये थे। प्रथम गरुड ध्वज भगवान् पश्चिम द्वार पर प्राप्त हुए थे। ७६। छै सहस्र पाशो के छुरो का अनेक प्रकार से सभी भाँति छेदन करके उन्होंने गणों के साथ और बान्धवो के सहित मुर दैत्य का हनन कर दिया था। ८०। छै सहस्र महान् वीर दानव द्वार पर संस्थित थे भगवान् हरि ने उसी समय मे मुर के साथ ही चक्र से निहत कर दिये थे। ८१। मुर को मार कर दूसरे जो छै सहस्र उसके पुत्र थे उस समय उनको चक्र से मार गिराया था और अन्य दानवो को भी खण्ड खण्ड कर दिया था ॥८२॥ इसके उपरान्त वहाँ पर अनेक जो शिलाओ के संघ थे उन सब का अतिक्रमण करके भगवान् जनार्दन ने गणो के सहित और अनुचरो से सयुत निसुन्द का मार गिराया था।८३। जिसने एक ही ने पहिले सहस्र वर्ष तक देवो से युद्ध किया था और महान् पराक्रम वाला वीर था उसने इन्द्र पर आक्रमण किया था ॥ ८४ ॥

त जघान हयग्रीव समतिक्रम्य केशव ।
मध्ये लौहित्यसज्ञस्य भगवान् देवकीसुत ॥८५
औदकाया विरूपाक्ष सुन्द हत्वा महाबल ।
तत पचजन वीर जघान परमेश्वर ॥८६
एतान् हत्वा महाकायान् महावीर्यान् दुरासदान् ।

आससाद जगन्नाथ पुरं प्राग्ज्योतिषाह्वयम् ॥८७
वियत्स्थैर्दैवतं सर्वैर्नारदेन महात्मना ।
जयशब्दै स्तूयमान प्रविवेश यथेश्वर ॥८८
श्रिया युक्तां दीप्यमाना प्रकाशाट्टालभूषिताम् ।
स मेने नगरी विष्णु विमिन्द्रस्यामरावती ॥८९
तत्र युद्धं महद्भूत नानाप्रहरणोद्यमम् ।
भीरूणा त्रासजनन शूराणा हर्षवर्धनम् ।
यथा देवासुर युद्ध तथैव समपद्यत ॥९०
तत शार्ङ्ग विनिर्मुक्तै र्बाणैस्तान् दानवान् बहून् ।
निजघान महाबाहुर्गरुडस्थो जनार्दन ॥९१
अष्टौ शतसहस्राणि अष्टौ शतशतानि च ।
हत्वासुरान महाबाहुर्नरक त समासदत् ॥९२

भगवान् केशव ने आक्रमण करके उस हयग्रीव का हनन किया था। महान् बलवान् भगवान् देवकी के पुत्र ने मध्य मे लौहित्य नामक की भौदका मे विरूपाक्ष और सुन्द का हनन किया था। इसके अनन्तर फिर परमेश्वर ने वीर पञ्चजन को मारा था ॥८५—८६॥ इन महान् शरीरो वाले तथा महान् वीर्य वाले दुरासदो का वध करके फिर जगत् के नाथ प्राग्ज्योतिष पुर मे प्राप्त हो गये थे ॥ ८७ ॥ आकाश मे स्थित देवो के द्वारा तथा महात्मा नारद के द्वारा जय—जयकार की ध्वनि से संस्तवन किये गये ईश्वर ने प्रवेश किया था ॥ ८८ ॥ उन भगवान् विष्णु ने श्री से समन्वित—देदीप्यमान—प्रकाश अट्टालिकाओ से विभूषित उस नगरी को ऐसा ही समझा था कि क्या यह इन्द्र की अमरावती है ॥ ८९ ॥ वहाँ पर महान् युद्ध हुआ था जिसमे अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र थे। वह युद्ध ऐसा भयङ्कर हुआ था जो डरपोको को भय देने वाला था और शूरो के हर्ष को बढाने वाला था। जैसा कि देवासुर युद्ध हुआ था ठीक उसी प्रकार का यह युद्ध भी हुआ था

॥ ६० ॥ फिर गरुड पर विराजमान महान् बाहुओं वाले जनार्दन प्रभु ने अपने शार्ङ्ग नामक धनुष से छोड़े गये बाणों के द्वारा उन बहुत—से दानवों का हनन कर दिया था। ६१। महान् बाहुओं से समन्वित प्रभु आठ सौ सहस्र और आठसौ असुरों को मारकर नरक के समीप में पहुँच गये थे। ६२।

तत श्रुत्वा स नरक पतितानसुरान् बहून् ।
दृष्ट्वा कृष्ण महाबाहु गरुडस्य महाबलम् ॥६३
वसिष्ठशाप सस्मार समय माधवस्य च ।
नारदस्य वचश्चापि वरच्छिद्र तथा विधे ॥६४
स प्राप्तकालश्च तदा केशवेन समागत. ।
युद्धमेव पर मेने स्मरन् बाणवचस्तदा ॥६५
स काचन समारुह्य रथ वज्रध्वज वरम् ।
लोहचक्राष्टसयुक्तं निनल्वप्रमित रथम् ॥६६
युक्तमश्वसहस्रं स्तु वज्रध्वजविराजितम् ।
नानाप्रहरणोपेत बहुतूणीरसयुतम् ।
अगच्छन् समारायाशु नरक पृथिवीसुत. ॥६७
स गच्छन् समारायाशु मानुपं भावमर्चितम् ।
निन्द्य तथासुर मेने स्मरन् पूर्ववचो हरे ॥६८

इसके अनन्तर उस नरक ने बहुत से असुरों को मृत हुए सुनकर गरुड पर स्थित महा बलवान् महाबाहु भगवान् कृष्ण का दर्शन किया था। ६३। उसने वसिष्ठ मुनि के शाप का तथा माधव के समय का स्मरण किया था। उसने देवर्षि नारद जी के वचन और विधाता के वर के छेदन का भी स्मरण किया था। ६४। उस समय में काल के प्राप्त हो जाने वाले ने भगवान् के सामने समागमन किया था। उस समय में बाण के वचन का स्मरण करते हुए उसने युद्ध करना ही परम कर्त्तव्य मान लिया था ॥ ६५ ॥ वह सुवर्ण के रथ पर समारूढ

हुआ था जो वज्र की ध्वजा वाला और श्रेष्ठ था। वह रथ लोहे के आठ चक्रों (पहियों) से युक्त था तथा त्रिनल्व प्रमित था। उस रथ में एक हजार अश्व थे और वज्र की ध्वजा से सुशोभित था उस रथ में अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र विद्यमान थे तथा बहुत तूणीर भी रक्खे हुए थे। ऐसे रथ में बैठकर पृथिवी का पुत्र नरक गमन करने के लिये शीघ्र ही चला गया था ॥९६—९७॥ वह जब युद्ध के लिये जा रहा था तो उसने शीघ्र ही मनुष्य भाव को त्याग किया था और हरि के पूर्व वचन का स्मरण करते हुए उसने असुर भाव को निन्दा अर्थात् बुरा मान लिया था ॥९८॥

क्षणात् कृष्ण स ददर्श गरुडोपरि संस्थितम् ।
शंखचक्रगदाशार्ङ्ग वरासिधरमच्युतम् ॥९९
किरीटकुण्डलयुत श्रीवत्सवक्षस हरिम् ।
कौस्तुभांद्भासितोरस्क पीताम्बरधर परम् ॥१००
स तेन युयुधे वीरो विष्णुना प्रभविष्णुना ।
प्राग्ज्योतिषाधिपो भौमो नरक पृथिवीसुत ॥१०१
स युध्यत् कृष्णनिकटे कालिका कालिकोपमाम् ।
रक्तास्यनयना दीर्घा खड्गशक्तिधरा तदा ॥१०२
अपश्यज्जगता धात्री कामाख्यामपि मोहिनीम् ॥१०३
स विस्मितस्तदा भीतस्ता दृष्ट्वा जगता प्रसूम् ।
योद्धव्यमित्येव तदा युयुधे नरकोऽसुर ॥१०४
तेन सार्धं तदा कृष्ण कृत्वा सुमहदद्भुतम् ।
युद्ध यादृक् पुरा भूत न देवे न च मानुषे ॥१०५

क्षण भर में ही उसने भगवान् कृष्ण का गरुड पर विराजमान हुए का दर्शन प्राप्त किया था। भगवान् कृष्ण शंख—चक्र—गदा—शार्ङ्ग धनुष—वर और असि (खड्ग) को धारण किये हुये थे। अच्युत थे। ९९। वे किरीट और कुण्डलों को धारण करने वाले थे और उन के वक्ष स्थल में श्री वत्स का चिह्न था। कौस्तुभ मणि से समुद्भासित

वक्ष स्थल में थुन—पीताम्बर धारी परम द्युति का उसने दर्शन किया था। १००। उस प्रभा विष्णु भगवान् विष्णु के साथ उस वीर ने युद्ध किया था। वह प्राग्ज्योतिष नगर का स्वामी पृथिवी का पुत्र भौम नर था। उसने श्रीकृष्ण के निकट में युद्ध करते हुये कलिका के समान कालिका को देखा था जिसके लाल नेत्र और मुख था—विशाल काय थी—वह उस समय में खड्ग और शक्ति को धारण किये हुए थी। १०१।१०२। उसने धात्री और मोहिनी कामाख्या का भी वहाँ दर्शन किया था। १०३। उस समय में जगत् को प्रसूत करने वाली उस देवी का दर्शन करके वह भय से भीत होकर बहुत ही विस्मित हो गया था। युद्ध तो करना ही है अतएव उस समर में नरका सुर ने युद्ध किया था। १०४। उस अवसर पर भगवान् कृष्ण ने उसके साथ सुमहान् अद्भुत युद्ध किया था। जैसा युद्ध पहिले देवों में और मनुष्यों में कभी भी नहीं हुआ था ॥ १०५॥

ततस्तेनाथ भौमेन युद्धकेलिं स माधवः।
चिरं कृत्वा जघानाथ देवेन्द्रं प्रतिहर्षयन् ॥१०६
सुदर्शनेन चक्रेण मध्यदेशे तदा हरिः।
द्विधा चिच्छेद नरकं खण्डितोऽप्यपतद् भुवि ॥१०७
विभक्ततच्छरीरं तु भूमौ निपतितं तदा।
विराजन्ते वज्रभिन्नो यथा गैरिकपर्वतः ॥१०८
पतिते तनये देवी पृथ्वी दृष्ट्वा शरीरकम्।
शोकवेगं तदा सेहे ज्ञात्वा कालं तदागतम् ॥१०९
अदितेः कुण्डलयुगं स्वयमादाय काश्यपी।
उपातिष्ठत गोविन्दं वचनं चेदमब्रवीत् ॥११०
त्वया वराहरूपेण यदाहं चोद्धृता दुरा।
तदा त्वद्गात्रसंस्पर्शात् पुत्रो मे नरकः स्थितः।
सोऽय त्वया पालितश्च पातितश्चाधुना सुतः ॥१११

गृहाण कुण्डले चेमे अदिते सर्वकामदे ।
सन्तति चास्य गोविन्द प्रतिपालय नित्यदा ॥११२

इसके अनन्तर उस भौम के साथ भगवान माधव ने युद्ध की क्रीडा को चिरकाल पर्यन्त करके इसके उपरान्त देवेन्द्र को हर्षित करते हुए प्रभु ने उसका हनन कर दिया था । १०६ । उस समय में भगवान् हरि ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा मध्य देश में दो भागों में छेद कर मार गिराया था । वह नरक खण्ड-खण्ड होकर भूमि पर गिर गया था। वह खण्ड ऐसे शोभित हो रहे थे जैसे वज्र से भिन्न हुआ गैरिक पर्वत होवे । १०८ । तनय के गिर जाने पर देवी पृथिवी ने उसके पतित शरीर का अवलोकन करके उस समय में शोक के वेग को सहन कर लिया था क्योंकि उसने समागत काल का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । । १०९ । काश्यपी अर्थात् पृथ्वी अदिति के दोनों कुण्डलों को लेकर स्वयं उपस्थित हुई थी और भगवान् गोविन्द से यह वचन कहा था— । ११० । पृथिवी ने कहा—आपने वराह के रूप से पहिले मेरा उद्धार किया था । उसी समय में आपके गात्र के स्पर्श से यह नरक मेरा पुत्र गर्भ में स्थित हुआ था । वह आपके ही द्वारा प्रतिपालित हुआ था और अब वह सुत आपने ही मार गिराया है । ११८ । अब आप अदिति के इन दोनों कुण्डलों को ग्रहण कीजिए जो कि सब कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं और अब आप इसकी सन्तति का हे गोविन्द ! नित्य ही प्रतिपालन कीजिए । ११२ ।

भारावतरणे देवि नरकस्य वधः पुरा ।
त्वयैव प्रार्थितो यस्मात् तेनासौ निहतो मया ॥११३
पालयिष्येऽस्य सन्तानं देवि त्वद्वचनादहम् ।
प्राग्ज्योतिषेऽभिषेक्ष्यामि नृपारं भगदत्तकम् ॥११४
एवमुक्त्वा महाबाहुर्भगवान् मधुसूदनः ।
अन्तःपुरं विवेशाथ नरकस्य धनालयम् ॥११५

स तत्र दद्दृशे वीरो रत्नानि विविधानि च ।
राशीभूतानि शुद्धानि पर्वतानिव राजन ॥११६
मुक्तामणिप्रवालाना वैदूर्यस्य च पर्वतम् ।
तथा रजतकूटानि वज्रकूटानि माधव ॥११७
सुवर्णसाचयान् रुक्मदडान् रत्नमयध्वजान् ।
वाहनानि विचित्राणि यानानि शयनानि च ॥११८
खचितानि स्वर्णरत्नैर्महार्हाणि महान्ति च ।
यद् यद् दृष्ट च यावच्च धन रत्न मणिस्तथा ॥११९

श्री भगवान न कहा—हे देवि ! पहिले भार के अवतरण करने के लिये आपने ही नरक के वध की प्रार्थना की थी । इसीलिये मैंने इसका वध किया है ॥११३॥ हे देवि ! आपके वचन से मैं इसकी सन्तान का प्रतिपालन करूँगा इसके नाती भगदत्तक का मैं प्राग्ज्योतिप म अभिषेक कर दूँगा ॥११४॥ इस तरह से कहकर महाबाहु भगवान् मधुसूदन प्रभु ने अन्त पुर मे प्रवेश किया था जो कि नरक के धन का आलय था ॥११५॥ वहाँ पर उन वीर ने अनेक प्रकार के रत्न देखे थे । वे सब शुद्ध रत्न समुदाय म एकत्रित हो रहे थे जैसे कोई पर्वत शोभायमान होवे । ११६ । वहाँ पर मुक्तामणि और प्रवालो का तथा वैदूर्यमणिका एक पर्वत—सा ही लग रहा था तथा रत्नकूट और वज्रकूट भी माधव प्रभु ने देखे थे । ११७ । सुवण के सञ्चित ढेरो का—रुक्मदण्डो को और रत्नो से परिपूर्ण ध्वजा—विचित्र वाहनो को—यानो को और शयनो को देखा था । ११८ । ये सभी स्वर्ण और रत्नो स खचित थे—ये महान् मूल्य वाले और बहुत बडे थे । जो—जो भी देखा और जितना धन—रत्न और मणिया थी उस प्रकार की और उतनी नरक आलय के अतिरिक्त अन्य स्थान म कही भी नही देखे गये थे ॥११९॥

भुवि तादृक् च नो दृष्टमन्यत्र नरकालयात् ।

न कुवेरस्य नेन्द्रस्य न यमस्याप्यपा पतेः ॥१२०
तावन्ति धनरत्नान यावन्ति नरकालवे ।
केशवोऽप्यथ तत्रैव नारदेन च सङ्गत ॥१२१
अवेक्ष्यान्त पुरधन सार सा त्तर तत ।
तेषां समाददे ग्राह्य प्रभूत परवीरहा ॥१२२
या दत्ता वैष्णवीशक्तिर्विष्णुना प्रभविष्णुना।
हत्वा भौम तु ता शक्ति जगृहे देवकीसुत ॥१२३
पृथिव्या नारदेनैव सहित. केशवस्तदा।
भगदत्त भौमसुत प्राग्ज्योतिपपुरोत्तमे ॥१२४
अभिषिच्य तदा भूत पुरमध्ये न्यवेशयत् ।
अभिषिक्त तु त दृष्ट्वा भगदत्त तदा क्षिति ॥१२५
नप्तुरर्थेऽथ ता शक्ति केशव समयाचत ।
केशवोऽपि क्षितेर्वाक्यान्नारदानुमतेन च ।
ता शक्तिं भगदत्ताय सुप्रीतमनसा ददौ ॥१२६

जितना धन और जितने रत्न नरक के आलय मे थे वैसे और उतने कुवेर—इन्द्र—यम और वरुण के यहाँ पर भी नहीं थे । भगवान् केशव वहाँ पर ही देवर्षि नारद के साथ सङ्गत हुये थे । उस अन्त. पुर के धन का अवेक्षण करके जो सार तथा सारतर था पर वीरो के हनन करने वाले ने ग्रहण करने के योग्य बहुत उनमे से ले लिया था।१२०।।१२१।१२२। प्रभु विष्णु भगवान् विष्णु ने जो वैष्णवी शक्ति दी थी उसको भौम का हनन करके देवकी सुत ने शक्ति को वापिस ग्रहण कर लिया था।१२३। पृथिवी देवी न देवर्षि नारद के सहित उस अवसर पर भगवान् केशव ने भगदत्त भौम के सुत को प्राग्ज्योतिष उत्तम पुर मे अभिषिक्त करके उस पुर के मध्य मे निवेशित कर दिया था। क्षिति ने उस भगदत्त अभिषिक्त किया हुआ देखकर अपने नप्ता (नाती) के लिये भगवान् केशव से उसी शक्ति की याचना की थी।

भगवान् केशव ने भी नारदजी की अनुमति प्राप्त करके क्षिति के कहने से सुप्रसन्न मन से उस अदिति को भगदत्त के लिये दे दिया था ॥१२४—१२६॥

यच्छत्रं वरुणं जित्वा काचनस्त्रविसान्नकम् ।
समानयत् पुरा भौमस्तच्छत्रं हरिराददे ॥१२७
अष्टभारसुवर्णानि यस्सामृवति चान्वहम् ।
यत् क्रोशमात्रविस्तीर्णमर्धयोजनमुच्छ्रितम् ॥१२८
रत्नोत्तमानि सर्वाणि चतुर्दन्तांस्तथा गजान् ।
चतुर्दशसहस्राणि पूजिता प्रमदास्तथा ॥१२६
द्वारकां प्रति दैत्यौघैर्वाहयामास केशवः ॥१३०
या देवकन्यकाः पूर्वं नरकेण हृता बलात् ।
तासां कृत्वा हृषीकेशो वेणीबन्धविमोक्षणम् ॥१३१
वासोभिर्भूषणैर्दिव्यैस्ताः सत्कृत्य मुहुर्मुहुः ।
आरोप्य च विमाने तु रक्षिभिर्बलिभिर्दृढैः ॥१३२
नारदाधिष्ठिता नवा द्वारकां प्रत्यवाहयत् ।
यः कृतः सुरकन्यार्थे भामने मणिपर्वतः ॥१३३

जिस छत्र को वरुण को पराजित करके भौम पहिले ले आया था जो कि काञ्चन को स्रवण करने वाले नाम से संयुत था उस छत्र को भगवान् हरि ने ले लिया था ॥१२७॥ जो आठ भार सुवर्ण को प्रतिदिन स्रवित किया करता था जो एक कोस तक विस्तीर्ण और आधे योजन तक ऊँचा था ॥ १२८ ॥ केशव भगवान् ने समस्त उत्तम रत्नों को तथा चार दांतों वाले गजों को—चौदह हजार पूजित प्रमदाओं को दैत्यों के समुदायों के द्वारा द्वारका के प्रति भेज दिया था। ॥ १२६—१३० ॥ पूर्व में जो देव कन्याऐं नरक के द्वारा लायी गयी थीं और बलपूर्वक उनका हरण किया गया था उनके लिये हृषीकेश भगवान् ने वेणीबन्ध विमोक्षण किया था। उनको अनेक वस्त्र और

दिव्य भूषणों से सत्कृत किया था। उनको विमान में बिठाकर सुदृढ़ और बली रक्षकों से रक्षित करके वे सब नारद मुनि से अधिष्ठित होती हुई द्वारका की ओर भेजदी गयी थी। जो सुर कन्याओं के लिए भूमि सुत ने मणियों का पर्वत बनाया था ॥१३१—१३३॥

मणिरत्नौघसम्पूर्णो दिवाकरसमप्रभः।
उत्पाट्य तं जगन्नाथस्तार्क्ष्यपृष्ठे न्यधापयत् ॥१३४
तथैव वारणं छत्रं गरुडोपरि माधवः।
आरोप्य सत्यया सार्धमासीन सुमना हरिः ॥१३५
भगदत्तं समाभाष्य पृथिवीं च जगत्पतिः।
प्रतस्थे द्वारकां वीरो वियन्मार्गेण वै द्रुतम् ॥१३६
सुपर्णः काञ्चनस्तथा चित्रमणिपर्वतम्।
केशवं सत्यया सार्धं हेलया वै वहन् ययौ ॥१३७
क्षणेन द्वारकां प्राप्य केशवः परवीरहा।
मुदं च लेभे सकलैर्बान्धवैश्च तथा गणैः ॥१३८
वह पर्वत मणियों और रत्नों के समूह से परिपूर्ण था और सूर्य

एव काली महामाया कालिकाख्या जगन्मयी ।
विष्णु च जगता नाथ पगपर्गन हरिम् ॥१३६
जगत्कारणकर्तार ज्ञानगम्य जगन्मयम् ।
सन्मोहयत्येव तथा ह्यनुरागविरागवान् ॥१४०
अनुगृह्णाति मित्राणि ह्यमित्राणि निहन्ति च ।
नाराणु मूटा रमत द्वन्द्वेनापि च मुह्यते ॥१४१
इति व कथित विप्रा यथाभून्नरकोऽसुर ।
यथा च वरलाभोऽभूद यथा चास्य विचेष्टितम् ॥१४२
आराधिना यथा ब्रह्मा याण युद्धाय भौमिना ।
किमन्यदुचित वाच्मि तद्ध्र वन्तु द्विजोत्तमा ॥१४३

इसी रीति म महामाया—जगन्मयी कालिका नाम वाली काली जगता क नाथ—परावर क पति हरि भगवान् विष्णु को जो जगत के कारणो म करने वाले है—ज्ञान के ही द्वारा जानने के योग्य है और जगत् स परिपूर्ण है उसी भाँति सम्मोहित किया करती है जो अनुराग और विराग दोनो ही म समन्वित है ॥ १३६—१४० ॥ जो मित्र है उन पर अनुग्रह किया करते हैं और जो शत्रु है उनका हनन किया करते है । ये नारियो मे गूढ होकर रमण किया करते है । और द्वन्द्वो मे भी मोहित होते है ॥ १४१ ॥ हे विप्रो ! यह आपके सामने मैंने कह दिया है जैसे नरक असुर हुआ था । और जिस तरह से वरदानो का लाभ उसको हुआ था । और जैसा भी कुछ उसका विचेष्टित अर्थात् कृत्य था ॥ १४२ ॥ बाण की वुद्धि से भौमी ने जिस तरह से ब्रह्माजी की आराधना की थी । हे द्विजोत्तमो ! अब और क्या कथन करने के लिए क्या उचित है । हे द्विजोत्तमो ! अब आप लोग मुझसे कहते जाय ॥१४३॥



॥ नारद-आगमन वर्णन ॥

कथ गिरिसुता काली बभूव जगता प्रसूः ।
दाक्षायणी त्यक्ततनु, कथमाप हर पतिम् ॥१
कथमर्द्धशरीर सा जहार च पिनाकिन ।
एतन्न पृच्छता सम्यक् कथयस्व महामते ॥२
शृणुध्व मुनिशार्दूला यथा दाक्षायणी सती ।
भूता गिरिसुता पूर्वं यथार्द्धमहरत्तनुम् ॥३
यदाऽत्यजत्तनु देवी पूर्वं दाक्षायणी सती ।
तदैव मनसागच्छन् मेनका हिमवद्‌गिरिम् ॥४
यदा हरेण सहिता दक्षकन्या हिमाचले ।
चिक्रीड च तदा तस्या मेनकाऽभृद् हितैपिणी ॥५
तस्या सुता स्यामिति च आधाय मनसि द्विजा ।
त्यक्तप्राणा तदा देवी भूता हिमवत सुता ॥६
यदा दाक्षायणी प्राणान दक्षकोपाज्जहौ पुरा ।
तदैव मेनका देवी आरिराधयिप शिवाम् ॥७

ऋषियों ने कहा—गिरि की पुत्री काली कैसे जगतों को प्रसूत करने वाली हुई थी । दाक्षायणी अर्थात् दक्ष की पुत्री ने तनु का त्याग करके हर को फिर अपना पति किस प्रकार से प्राप्त कर लिया था ? उसने पिनाकी प्रभु का आधा शरीर कैसे हरण किया था—यह सब हम पूछने वाले हैं । हे महामते ! आप भली भाँति यह सब वर्णन कीजिए ॥ १—२ ॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे मुनि शार्दूलो ! आप लोग अब श्रवण कीजिए कि जिस तरह से दाक्षायणी सती हुई और फिर गिरि की पुत्री ने जैसे पूर्व मे आधा शरीर हरण किया था ॥ ३ ॥ पूर्व में दाक्षायणी सती ने शरीर का त्याग किया था । उसी समय मे हिमवान् गिरि को मेनका मन से गई थी ॥४॥ जिस समय मे हिमाचल पर दक्ष कन्या हर के साथ खेलती थी उस समय मे मेनका उसकी

हिमैषिणी हुई थी ॥५॥ हे द्विजो ! मैं उसकी सुना होऊँ—यह मन मे धारण करके उसी मेना से देवी ने प्राण त्याग दिये थे और वह हिमवान् की पुत्री हुई थी ॥ ६॥ जिस समय मे पहिले दक्ष के ऊपर क्रोध करके दाक्षायणी ने प्राणो का त्याग किया था। उसी समय मे मेनका देवी शिवा की आराधन करने की इच्छा वाली हुई थी।७।

महामाया जगद्धात्री योगनिद्रा सनातनीम् ।
मोहिनी सर्वभूतानां शरण सर्वनाकिनाम् ॥८
अष्टम्यामुपवासं तु कृत्वा सा नवमीतिथौ ।
मोदकैर्बलिभि पिष्टै पायसैर्गन्धपुष्पकै ॥९
चैत्रे मासि समारभ्य सप्तविंशतिवत्सरान् ।
यावत् सम्पूजयामास पुत्रार्थिन्यन्वहं शुचि. ॥१०
गंगायामोषधिप्रस्थे कृत्वा मूर्ति महीमयीम् ।
कदाचित् सा निराहारा कदाचित् सा धृतव्रता ॥११
शिवाविन्यस्तमनसा सप्तविंशतिवत्सरान् ।
निनाय मेनका देवी परमा भूतिमिच्छती ॥१२
सप्तविंशतिवर्षान्ते जगन्माता जगन्मयी ।
सुप्रीताऽभवदत्यर्थं प्राह प्रत्यक्षतां गता ॥१३

उसने महामाया—जगत् की धात्री—सनातनी योगनिद्रा—मोहिनी जो सब प्राणियों का मोहन करने वाली है और सब स्वर्गवासियों की रक्षिका है उसी शिवा का आराधन किया था ॥ ८ ॥ उसने अष्टमी मे उपवास करके नवमी तिथि मे मोदकों से—बलियो से—पिष्टों से और पायसों से तथा गन्ध और पुष्पो से चैत्र मास से आरम्भ करके सत्ताईस वर्ष तक प्रतिदिन शुचि होकर पुत्र की इच्छा वाली ने भली भाँति पूजा की थी ॥ ९—१० ॥ गङ्गा मे ओषधियों के प्रस्थ में मृत्तिका से परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण करके पूजा करती थी। किसी समय तो बिना ही आहार के रह जाती थी और किसी समय में

व्रत के धारण करने वाली होती थी।११। शिवा में अपने मन को विन्यस्त कर देने वाली उस मेनका देवी ने जो परम भक्त की इच्छा रखने वाली थी सत्ताईस वर्ष व्यतीत किये थे ॥ १२ ॥ सत्ताईस वर्षों के अन्त में जगत् की माता जगन्मयी परम प्रसन्न हो गई थी और प्रत्यक्ष में प्राप्त होकर बोली।१३।

यत् प्रार्थित त्वया देवि मत्तस्तत्प्रार्थयाधुना ।
दास्ये तवाहं तत्सर्वं वाञ्छितं यद् हृदा भवेत् ॥१४
ततः सा मेनका देवी प्रत्यक्ष कालिका गताम् ।
दृष्ट्वैव प्रणनामाथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥१५
देवी प्रत्यक्षतो रूपं तव दृष्टं मयाधुना ।
त्वामहं स्तोतुमिच्छामि प्रसन्ना यदि मे शिवे ॥१६
ततः सा मातरित्युक्त्वा कालिका सर्वमोहिनी ।
बाहुभ्यां चारुवृत्ताभ्यां मेनका परिषस्वजे ॥१७
ततः सा मेनका देवी कालिकां परमेश्वरीम् ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभि शिवां प्रत्यक्षतः स्थिताम् ॥१८
प्रेम्यन्तीं जगद्धाम चण्डिकां लोकधारिणीम् ।
प्रणमामि जगद्धात्रीं सर्वकामार्थसाधिनीम् ॥१९
नित्यानन्दा ज्ञानमयी योगनिद्रा जगत्प्रसूम् ।
प्रणमामि शिवां शुद्धां विधिशौरिशिवात्मिकाम् ॥२०
मायामयी महामाया भवाशोकविनाशिनीम् ।
मागम्य वनिता भद्रा नमामि त्वां चितिं शिवाम् ॥२१

देवी ने कहा — हे देवि ! आपने जो प्रार्थना की थी वह अब मुझसे मांगना करो । मैं तुमको सभी कुछ दे दूँगी जो भी तुम्हारे हृदय में वाञ्छित मनोरथ होवे ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर मेनका देवी ने प्रत्यक्ष में समागत हुई कालिका का दर्शन करके उसने देवी को प्रणाम किया

था। इसके अनन्तर वह यह वचन योली ॥ १५ ॥ देवी, मैंने इस समय मे आपका प्रत्यक्ष मे स्वरूप का दर्शन प्राप्त किया है। हे शिवे ! यदि आप मुझ पर सुप्रसन्न है तो मैं आपकी स्तुति करना चाहती हू ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर सबको मोहित करने वाली कालिका 'मात'—यह कहकर फैली हुई बाहुओं से मेनका का उसने आलिङ्गन किया था।१७। इसके उपरान्त उस मेनका देवी ने परमेश्वरी कालिका देवी का अभीष्ट वाणियों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में विराजमान शिवा का स्तवन किया था ॥ १८ ॥ मेनका ने कहा—जगत् के धाम को प्रेरणा करने वाली—लोकों को धारण करने वाली चण्डिका जगत् की रानी और सब कामों और अर्थ को साधन करने वाली को मैं प्रणाम करती हूँ॥ १९ ॥ नित्य आनन्द वाली—ज्ञान से परिपूर्णा—योग निद्रा—जगत् को प्रसूत करने वाली—शुद्धा—शिवा—विधाता, शौरि और शिव के स्वरूप वाली को मैं प्रणाम करती हू ॥ २० ॥ मायामयी—महामाया—भक्तों के शोक का विनाश करने वाली—काम की वनिता—चिति शिवा आपको मैं नमस्कार करती हूँ।२१।

सत्त्वोद्रेकाद् या भवित्रीह
नित्या चापि प्राणिना बुद्धिरूपा ।
सा त्व बन्धच्छेदहेतुर्यतीना
कस्ते कथ्यो मादृशीभि: प्रभावः ॥२२
ता त्व साम्ना सिद्धिभक्तिस्तथार्चा
या वृत्तिर्या यजुषा दीर्घरूपा ।
हिंसा या चाऽथवेदस्य सा त्व
नित्यं कामं त्वं ममेष्टं विधेहि ॥२३
नित्यानित्यैर्भावहीनैः पुरस्यै -
स्तन्मात्रैर्यैर्यत्यते भूतवर्ग. ।
तेषा शक्तिस्त्वं सदा नित्यरूपा
का ते योषा योग्यं वक्तुं समर्था ॥२४

क्षितिर्धरित्री जगतां त्वमेव
त्वमेव नित्या प्रकृतिस्वरूपा ।
यया वशं क्रियते ब्रह्मरूप
सा त्वं नित्या मे प्रसीदास्तु मातः ॥२५
त्वं जातवेदोगतशक्तिरूपा
त्वं दाहिका सूर्यकरस्य शक्तिः ।
आह्लादिका त्वं बहु चन्द्रिकाया-
स्तां तामहं स्तौमि नमामि चाम्बिकाम् ॥२६
योषा योषित्प्रियाणां त्वं विद्या त्वं चोर्ध्वं रेतसाम् ।
वाञ्छा त्वं सर्वजगतां माया च त्वं तथा हरेः ॥२७
याऽनेकरूपाणि विधाय नित्यं
सृष्टिं स्थितिं हानिमपीह कर्त्री ।
ब्रह्माच्युतस्थाणशरीरहेतुः
सा त्वं प्रसीदाद्य पुनर्नमस्ते ॥२८

सत्व के उद्रेक से मिथ्या जो यहाँ पर होने वाली हैं और जो नित्या प्राणियों की बुद्धि के स्वरूप वाली हैं वही आप यतियों के बन्धन का छेदन करने का हेतु हैं ऐसा कौन है जो तुम जैसों के द्वारा आपका प्रभाव कहने के योग्य होवे । अर्थात् आपके प्रभाव को कोई भी मुख सरी का नहीं कह सकता ।२२। जो आप सामों की सिद्ध की शक्ति हैं तथा अर्चा हैं जो आप यजुर्वेद की ऋचाओं की दीर्घ रूप वाली वृत्ति है—जो आप अथर्व वेद की हिंसा हैं वह आप नित्य काम है और मेरे इष्ट का करें ।२३। नित्या नित्य—सामहीन—पुरुष जिन तन्मात्राओं से भूतों का वर्ग पतित होता है उनकी सदा नित्य रूपा शक्ति आप ही है । कौन सी स्त्री है जो आपके योग्य कथन करने से समर्थ हो ।२४। जगतों का धारण करने वाली क्षिति आप ही हैं—आप ही नित्या प्रकृति के स्वरूप वाली है जिसके द्वारा ब्रह्म स्वरूप वाला वश किया जाता है

वह आप नित्या हैं मुझ पर हे माता ? प्रसन्न होवें । २५ । आप जात वेद में रहने वाली शक्ति के स्वरूप वाली हैं —सूर्य के किरणों की दाह करने वाली शक्ति आप ही हैं —सूर्य के किरणों की दाह करने वाली शक्ति आप ही हैं—अ प ही चन्द्रमा का आह्लाद करने वाली शक्ति हैं— उन आपका मैं स्तवन करती हूँ और उस अम्बिका को मैं प्रणाम करती हूँ । २६ । सावित्री के विप्रों की आप योषा हैं—आप ऊर्ध्व रेताओं की आप ही विद्या हैं—आप समस्त जगतों की वाञ्छा हैं और आप ही भगवान् हरि की माया हैं । २७ । जो नित्य ही अनेक स्वरूपों को धारण कर के सृष्टि—स्थिति और हानि को करने वाली हैं । आप ही ब्रह्मा— अच्युत और शिव के शरीरों के हेतु हैं । वह आप आज मुझ पर प्रसन्न हो जाइए । मैं आपको पुनः प्रणाम करती हूँ ॥२८॥

ततः सा जगतां माता कालिका पुनरेव हि ।
उवाच मेनकां देवी वाञ्छितं वरयेत्युत ॥२९
ततः सा प्रथमं पुत्रशतं वव्रे यशस्विनी ।
वीर्यवच्चायुषा युक्तमृद्धिसिद्धिसमन्वितम् ॥३०
पश्चात् तथैकां तनयां सुरूपां गुणशालिनीम् ।
कुलद्वयानन्दकरीं भुवनत्रयदुर्लभाम् ॥३१
ततो भगवती प्राह मेनकां मुनिसन्निभाम् ।
स्मितपूर्वं तदा तस्याः पूरयन्ती मनोरथम् ॥३२
शतं पुत्राः सम्भवन्तु भवत्या वीर्यसंयुताः ।
तत्रैको बलवान्मुख्यः प्रथमं सम्भविष्यति ॥३३
सुता च तव देवानां मानुषाणां च रक्षसाम् ।
हिताय सर्वजगतां भविष्याम्यहमेव ते ॥३४
त्वं सुखप्रसवा नित्यं तथा नित्यं पतिव्रता ।
अम्लाना रूपसम्पन्ना सुभगा च भविष्यसि ॥३५

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर वह जगतों की माता

वसन्तसमये देवी नवम्यामृक्षयोगतः ॥४१
अर्द्धरात्रे समुत्पन्ना गङ्गेव शशिमण्डलात् ।
तस्यां तु जातायां प्रसन्ना अभवन् दिशः ॥४२

इस रीति से इतना कहकर जगत् की धात्री वहीं पर अन्तर्धान हो गई थी। मेनका परम प्रसन्नता की प्राप्ति करके अपने स्थान में प्रवेश कर गयी थी।३६। इसके उपरान्त काल के सम्प्राप्त होने पर मेनका ने अचलों में उत्तम मैनाक पर्वत को प्रसूत किया था जो आज तक भी पक्षों के सहित सागर के मध्य में निवास किया करता है।३७। मेनका ने स्पर्शों से आगत द्रवेन्द्र का प्रसव किया था। उस सती ने अन्य एक सौ पुत्रों का क्रम से समुत्पन्न किया था।३८। ये सभी पुत्र महान् वीर्य वाले—महान् सत्त्व से समन्वित और सभी प्रकार के गुण—गणों से सुसम्पन्न थे। इसके उपरान्त वह जगन्मयी योग निद्रा कालिका देवी जिसने पूर्व में सती के रूप का त्याग कर दिया था जन्म ग्रहण करने के लिये मेनका के समीप में गयी थी। समय के अनुसार मेनका के उदर से शिवा ने समुद्भूत होकर सागर से लक्ष्मी की ही भाँति समुत्पत्ति ग्रहण की थी। वसन्त के समय में नक्षत्र के योग में नवमी तिथि में देवी आधी रात्रि में शशि के मण्डल से गङ्गा के ही समान समुत्पन्न हुई थी। उसके समुत्पन्न होने पर सभी दिशायें प्रसन्न हो गयी थीं ॥३९—४२॥

अनुकूलो ववौ वायुर्गम्भीरो गन्धवान् शुभः ।
बभूव पुष्पवृष्टिश्च तोयवृष्टिस्तथापरा ॥४३
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जगर्जुश्च घनाघनम् ।
तस्यां तु जातमात्रायां सर्वं स्वास्थ्यमपद्यत ॥४४
तां तु दृष्ट्वा तदा जातां नीलोत्पलदलानुभाम् ।
श्यामां सा मेनका देवी मुदमापातिहर्षिता ॥४५
देवाश्च हर्षमतुलं प्रापुस्तत्र मुहुर्मुहुः ।

तुष्टुवुश्चान्तरिक्षस्था गन्धर्वाप्सरसा गणा ॥४६
सा तु नीलोत्पलदलश्यामा हिमवत सुताम् ।
कालीति नाम्ना हिमवानाजुहाव कृतोदने ॥४७
बान्धवैस्तु समस्तैस्तन्नाम्ना सा पार्वतीति च ।
कालीति च तथा नाम्ना कीर्तिता गिरिनन्दिनी ॥४८
सत सा ववृधे देवी गिरिराजगृहे शुभा ।
गंगेव वर्षासमये शरदीवाथ चन्द्रिका ॥४९

उस अवसर परम शुभ—सुगन्धित और गम्भीर वायुवहन करने लगा था। उस समय से पत्थों की वर्षा हुई थी और जल की वृष्टि भी हुई थी। जो अग्नियाँ शान्त थी वे प्रज्वलित होगई थी और घन गम्भीर गर्जन करने लगे थे। उस देवी के समुत्पन्न होतेही सामने सबने स्वास्थ्य की प्राप्ति की थी। ४३। ४४। नील कमलों के दलों के अनुसार समुत्पन्न हुई उसका दर्शन करके जो श्यामा थी, देवी मेनका अतीव हर्षित होकर परमाधिक आनन्द को प्राप्त हुई थी। ४५। और देवों ने भी उस समय में बारम्बार अतुल हर्ष की प्राप्ति की थी। गन्धर्व और अप्सराओं के समुदाय आकाश में संस्थित होकर स्तवन कर रहे थे। ४६। हिमवान् ने उस नील उत्पल दल के समान श्यामा हिमवान् की सुता। को कृत दिन में हिमवान् ने से 'काली' इस नाम से बुलाया था। ४६। ४७। समस्त बान्धवों के द्वारा उस नाम से वह पार्वती—यही कही गयी थी। तथा काली—इस नाम से गिरिनन्दनी कीर्तित की गयी थी।४८। इसके उपरान्त वह शुभा देवी गिरिराज हिमवान् के घर में बड़ी हो गई थी। जिस तरह से वर्षा के समय में गङ्गा बढ़ जाया करती है तथा शरत्काल में चाँदनी बढ़ी हो जाती है ॥४९॥

एधमानानुदिवसं पार्वती चार
दध्रे सानुदिन कासो चन्द्रवि
सा यालमायमापन्ना श्रीहन्त

सखीभि- प्राप विपला कालिन्दीव सरिद्व्रजै ॥५१
षड्गुणास्ता स्वय देवीं पूर्वजन्मवशीकृताः ।
स्वयमीयुर्द्विजश्रेष्ठा प्रावृष कालिका यथा ॥५२
अतिचक्राम स्वगुणं सा देवी देवकन्यका- ।
रूपैरप्सरसः सर्वा गीतैर्गन्धर्वकन्यका- ॥५३
सा बाल्य एव सतत बन्धुवर्गप्रिया शुभा ।
गुणै स्वबन्धून् पितरं मातरं चाप्यतोषयत् ॥५४
मातुः स्तुतिकरी नित्य पितृपूजनतत्परा ।
सर्वदा भ्रातृसहिता जगन्माताऽभवत्तदा ॥५५
सर्वदा सा जगन्माता कन्या सा समुपस्थिता ।
पितु- समीपे वसति कालिन्दीव विभावसो ॥५६

प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हुई वह सुन्दर अङ्गों वाली अधिक सुन्दरता को वह काली चन्द्र बिम्ब की कला हो की भांति प्रभा वाली ने धारण की थी । अर्थात् वह दिनो दिन विशेष सुन्दरी होती चली गयी थी । ५० । वह कालिका बाल भाव को प्राप्त हुई क्रीडा करती हुई सखियों के साथ परम प्रसन्नता को प्राप्त होती थी जिस प्रकार से सरिताओं के समुदायों से कालिन्दी विपुलता को प्राप्त किया करती है । । ५१ । षड गुणो ने स्वय ही उस देवी के पूर्व जन्म के वशीकृतता को प्राप्त कर लिया था : हे द्विज श्रेष्ठो ! वे षड्गुण वर्षा को कालिका के ही समान स्वय ही उसके समीप म आकर उपस्थित हो गये थे ॥५२॥ उस देवी ने अपने गुणो से देवो की कन्याओ का भी अति क्रमण कर दिया था अर्थात् देव कन्याओ मे भी अधिक गुणो वाली हो गयी थी । अपने रूप लावण्य से सब अप्सराओं से भी आग बढी हुई थी और गीत। से वह गन्धर्व कन्याओं से भी अधिक गायन करने वाली थी । ५३। वह बाल्यकाल मे ही निरन्तर बन्धु वर्ग को प्रिय और शुभ थी । उसने अपने सद्गुणो के द्वारा अपने बन्धुओं को—माता और पिता को भी सन्तुष्ट

कर दिया था । ५४ । वह नित्य ही अपनी माता का स्तवन करने वाली थी और अपने पिता के यजन करने में तत्पर रहा करती थी । वह सर्वदा अपने भाइयों के साथ में रहने वाली जगत् की माता हो गई थी। अर्थात् जगत् की माता सदा ही भाइयों के साथ रहा करती थी । ५५ । वह सम्पूर्ण जगतों की माता सर्वदा कन्या के स्वरूप में समुपस्थित हुई थी । जिस तरह से विभावसु के समीप में कालिन्दी निवास किया करती है उसी भाँति वह भी सदा अपने पिता के समीप निवास किया करती है ।।५६।।

अथैकदा ता निकटे निधाय हिमवद्गिरिः ।
तनयैः सह सगम्य स्थितः परमकौतुकात् ॥५७
अथागतस्तत्र मुनिर्नारदो देवलोकतः ।
हिमवन्तं सुखासीनं सुतैः सार्धं ददर्श सः ॥५८
अपश्यन्निकटे काली कालिकामिव सूयतः ।
ज्योत्स्नामिव सुधांशोस्तु सम्यग्वृद्धां शरन्निशि ॥५९
पूजितस्तेन गिरिणा कृतासन-परिग्रहः ।

को देखा था ।५८। उनके ही निकट में उन्होंने सूर्य के बालिका के समान ही काली का भी अवलोकन किया था जैसे चन्द्रमा की चाँदनी हो जो कि शरत्काल की रात्रि में भली भाँति बढ़ी हुई हुआ करती है । ।५६। उस गिरिराज के द्वारा उन नारद मुनि का अभ्यर्चन किया गया था । और उनको आसन उपविष्ट होने के लिये दिया गया था । उस आसन पर बैठे हुए देवर्षि नारदजी ने सबसे प्रथम उस पर्वत राज से कुशल प्रश्न पूछा था और वृत्तान्त भी पूछा था ॥६०॥ बोलने में महान् कुशल देवर्षि नारदजी ने जब सम्पर्ण वृत्तान्त का ज्ञान प्राप्त कर लिया तो फिर वे बहुत ही हर्षित होते हुये मेनका से बोले—यह आपकी पुत्री बहुत सुन्दर है और चन्द्रमा की आद्य कला के ही समान वर्धित होगई है । हे शैलराज ! यह आपकी कन्या समस्त सुलक्षणों से शोभायमान है ॥६१॥६२॥ यह सदा हर की सानुकूल होती हुई भगवान् शम्भु की दयिता होने वाली है । यह तपस्विनी उनके चित्त को अपने वश में कर लेगी ॥६३॥

स चाप्येनामृते जाया नान्यामुद्वाहयिष्यति ।
एतयोर्यादृक् प्रेमा बयोश्चिन्नव तादृश ॥६४
भूतो वा भविता वापि नाधुना च प्रवर्तते ।
अनया सुरकार्याणि कर्तव्यानि बहूनि च ॥६५
अनयैव गिरिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो हर ।
भविष्यति च सौहृदाज्योत्स्नयैवातमात्मन ॥६६
शरीरार्धं हरस्यैषा करिष्यति निजास्पदे ।
स्वर्णगौरी सुवर्णाभा तपसा तोषिते हरे ॥६७
विद्युद्गौरी त्विय काली तव पुत्री भविष्यति ।
गौरीति नाम्ना पश्चात्तु ख्यातिमेषा गमिष्यति ॥६८
नान्यस्मै त्वमिमा दातु मन कर्तुमिहार्हसि ।
इद चोपाशु देवाना न प्रकाश करिष्यसि ॥६९

और व भगवान् शम्भु भी इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी जाया के साथ विवाह नहीं करेंगे। इन दोनों का जैसा प्रेम है वैसा कोई भी दूसरों का नहीं है ॥६४॥ न तो ऐसा प्रेम कभी हुआ है और न इस समय में है तथा भविष्य में भी नहीं होगा। इसके द्वारा बहुत से सुरों के कार्य करने के योग्य होंगे ॥६५॥ हे गिरियों में परम श्रेष्ठ ! इसी के द्वारा भगवान् हर अर्ध नारीश्वर हैं। और इसी की चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के ही तुल्य परम सौहृद होगा ॥६६॥ यह भगवान् शिव के आधे शरीर को अपने आस्पद में करेगी। स्वर्ण गौरी और सुवर्ण के समान आभा वाली तप के द्वारा भगवान् हर के प्रसन्न होने पर यह विद्युत के समान गौरी तुम्हारी पुत्री वाली हो जायगी। इसके पीछे यह गौरी इस नाम से लोक में ख्याति को प्राप्त करेगी ॥६७॥६८॥ शिव के अतिरिक्त अन्य किसी के भी लिये इसके प्रदान करने का आप अपना मन करने के योग्य नहीं होते हैं। और यह उपांशु देवों का प्रकाश नहीं करेंगे ॥६९॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवर्षेर्नारदस्य च ।
उवाच हिमवान् वाक्यं मुनिं प्रति विशारदः ॥७०
श्रूयते त्यक्तसङ्गः स महादेवो यतात्मवान् ।
तपश्चोपांशु तपति देवानामप्यगोचरः ॥७१
स कथं ध्यानमार्गस्थः परब्रह्मार्पितं मनः ।
भ्रंशयिष्यति देवर्षे तत्र मे संशयो महान् ॥७२
अक्षरं परमं ब्रह्म प्रदीपकलिकोपमम् ।
सोऽन्तः पश्यति सर्वत्र न तु बाह्यं निरीक्षते ॥७३
इति स्म श्रूयते नित्यं किन्नराणां मुखाद् द्विज ।
स कथं तादृशं स्वान्तं शक्तो भ्रंशयितुं हरः ॥७४
विशेषतः श्रूयते स्म दाक्षायण्या समं हरः ।
समयं कृतवान् पूर्वं तन्मे निगदतः शृणु ॥७५

त्वामृतऽया न वनिता दाक्षायणि सति प्रिये ।
भार्यार्थे सग्रहोप्यामि सत्यमेनद् ब्रवीमि ते ॥७६
इति सत्या सम तेन पुरैव समय कृन ।
तस्या मृतायां स कथं स्त्रियमन्या ग्रहीप्यति ॥७७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—देवर्षि नारदजी के इस वचन का श्रवण करके विशारद हिमवान् ने मुनि के प्रति यह वाक्य कहा था। ॥७०॥ व महादेवजो सङ्ग को त्याग किये हुए हैं और चल आत्मा वाले हैं। व तो देवो के अगोचर उपाशु तप का समाचरण कर रहे हैं ॥७१॥ हे देवर्षि! व ध्यान के मार्ग मे समास्थित है और उनमे अपना मन परब्रह्म मे अर्पित कर रक्खा है। वे उससे किस प्रकार भ्रष्ट होंगे—इसमे मुझे बडा भारी संशय हो रहा है ॥ ७२ ॥ वह परब्रह्म अक्षर हैं और प्रदीप की कलिका के ही समान है। वे सर्वत्र अन्दर ही देखा करते हैं और बाहिर के पदार्थों को कभी भी नही देखते हैं ॥ ७३ ॥ हे द्विज! यह बात नित्य ही किन्नरो के मुख से सुनी जाती थी। जिनका अन्तःकरण इस प्रकार का है वे हर कैसे ध्यान से भ्रष्ट किये जा सकते हैं ॥७४॥ विशेष रूप से यह सुना गया है कि भगवान् शम्भु ने दाक्षायणी के साथ समय पूर्व मे ही ज्ञात किया था। उसे मैं कहता हूँ मुझसे आप श्रवण कीजिए ॥७५॥ शिव ने दाक्षायणी से कहा था—हे दाक्षायणि! हे प्रिये! हे सति! तुम्हारे बिना मैं अन्य किसी भी वनिता को अपनी भार्या बनाने के लिये ग्रहण नही करूँगा—यह सर्वथा सत्य है जिसे मैं आपका बता रहा हूँ ॥ ७६ ॥ यही सती के साथ उन्होंने पहिले ही समय किया है। अब उस सती के मृत हो जाने पर वे कैसे अन्य स्त्री का ग्रहण करेंगे। ७७॥

नात्र कार्या त्वया चिन्ता गिरिराज भवत्सुता ।
एषा सती समुत्पन्ना हरायैव न संशय ॥७८
इत्युक्त्वा स तु देवर्षिर्नारदस्तु यथा सती ।

मेनकाया समुत्पन्ना सर्वं तत् प्रोक्तवान् गिरौ ॥७६
तत्सर्वं पूर्ववृत्तान्त नारदस्य मुखाद् गिरि. ।
श्रुत्वा सपुत्रदारः स तदा निःसशयोऽभवत् ॥८०
ततः काली कथा श्रुत्वा नारदस्य मुखात् तदा ।
लज्जयाऽधोमुखी भूत्वा स्मितविस्तारितानना ॥८१
करेण तां तु सगृह्य प्रोन्नमय्य मुखं गिरिः ।
मूर्ध्नि सम्यगुपाघ्राय स्वासने सन्यवेशयत् ॥८२
ततस्ता पुनरेवाह नारद शैलपुत्रिकाम् ।
हर्षयन् गिरिराज तु मेनका तनयैः सह ॥८३
सिंहासनेन किं स्वस्या. शैलराज भवेत् तव ।
शम्भोरूरु सदैवास्या आसन तु भविष्यति ॥८४
हरोरुमासन प्राप्य तनया तव सततम् ।
नान्यत्र कुत्रचित्तुष्टिमासने प्राप्यते गिरे ॥८५
इति वचनमुदार नारद शैलराज
त्रिदिवमगमदुक्त्वा तत्क्षणाद् देवयानैः ।
गिरिपतिरपि चिन्ताहर्षसम्मोहयुक्तः
प्रविशदचलयासौ स्वान्तर पद्मगर्भम् ॥८६

देवर्षि नारदजी ने कहा—हे गिरिराज ! इस विषय मे आपको चिन्ता नही करनी चाहिए । यह आपकी पुत्री सती ही उत्पन्न हुई है और यह हर के ही लिये जन्म धारण करने वाली हुई है—इससे लेश मात्र भी संशय नही है ॥ ७८ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इतना कहकर ही देवर्षि नारदजी ने गिरिराज से यह सभी कहकर सुना दिया था जिस तरह से सती मेनका के उदर से समुत्पन्न हुई थी ॥७९॥ गिरिराज ने वह सब पूर्व मे घटित वृत्तान्त नारदजी के मुख से श्रवण किया तो वह अपने पुत्रो और दारा के सहित सशय से हीन हो गये थे ॥८०॥ उस अवसर पर काली ने नारदजी के मुख से यह सब कथा का श्रवण

किया था और वह मन्ता स नीचे की ओर मुख वाली हो गई थी और मन्द मुस्कान स विस्तृत मुख वाली हो गई थी ॥८१॥ गिरि हिमवान् न उस सती को हाथ से पकड कर और मुख को ऊपर की ओर उठा कर उसके मस्तक पर आघ्राण करके उसको अपने ही आसन पर बिठा लिया था ॥८२॥ इसके अनन्तर नारदजी न पुन शैलराज की पुत्री से कहा था जिससे गिरिराज और तनयो के सहित मेनका बडा हर्ष हो रहा था ॥ ८३ ॥ हे शैलराज ! आपके इस सिंहासन से इसको क्या होगा। इसका आसन तो सदा ही भगवान् शम्भु के ऊरु होगा। अर्थात् आपके द्वारा दिया हुआ सिंहासन का आसन इसके लिये कोई महत्त्व की बात नही है क्योंकि यह तो शम्भु के ऊरुओ पर बैठने वाली होगा ॥८४॥ हे गिरे ! आपकी यह पुत्री हर के ऊरुओ का आसन प्राप्त करके इसे अन्य किसी भी आसन पर तुष्टि की प्राप्ति नही हो सकती है ॥८५॥ देवर्षि नारदजी ने यह परम उदार वचन शैलराज स कहा था और देवयाना के द्वारा व उसी क्षण म स्वर्ग को गमन कर गय थे। गिरिपति भी चिन्ता—हर्ष और सम्मोह स सयुत होकर अपनी अचला भार्या के सहित अपन पद्म गभ अन्त पुर म प्रवश कर गये थे ॥८६॥



भगवान शिव का हिमवान मे निवास

एतस्मिन्नतरे शम्भु क्षिप्र त्यक्त्वा तदा सर ।
गगावतारमगमद् हिमवत्-प्रस्थमुत्तमम् ॥१
यत्र गगा निपतिता पुरा ब्रह्मपुरात् सृता ।
औषधीप्रस्थनगरस्यादूरे सानुरुत्तम ॥२
तत्र भर्ग स्वमात्मानमक्षर परमात्परम् ।

चेतो ज्ञानमय नित्यं ज्योतीरूपं निराकुलम् ॥३
जगन्मय प्रदीपाभ द्वैतहीनाविशेषकम् ।
एकाग्र चिन्तयामास भगवान् वृषभध्वजः ॥४
हरे ध्यानपरे तस्मिन् प्रमथा ध्यानतत्परा. ।
अभवन् केचिदपरे नन्दिभृंग्यादयो गणा. ॥५
द्वा स्था भूता महाभागा ये पूर्वद्वारि योजिता: ।
तावन्तोऽपि गणास्तत्र' नैव किंचन कूजितम् ॥६
तेषा सश्रूयते सर्वे नि शब्दा' सस्थितास्तत. ।
अन्ये तु तत्र क्रीडन्ति गणा दूरान्तरस्थिया. ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसी बीच मे भगवान् शम्भु ने उस समय मे सरोवर का त्याग कर दिया था और वे हिमवान् के उत्तम *प्रस्थ गङ्गावतार को चले गये थे ॥ १ ॥ जहाँ पर पहिले ब्रह्मपुर से* सृत होकर गङ्गा निपतित हुई थी। ओषधिप्रस्थ नामक नगर के समीप मे ही एक उत्तम शिखर था ॥ २ ॥ वही पर भर्गदेव परम मे भी पर अक्षर अपने आत्मा को तथा नित्य ही ज्ञानमय चित्त एव निरामय और निराकुल ज्योती रूप—प्रदीप की आभा वाले—जगन्मय—द्वैत से हीन विशेषको एकाग्र होकर वृषभध्वज भगवान चिन्तन करने लगे थे ॥ ३—४ ॥ भगवान् हर के ध्यान मे तत्पर होने पर प्रथम भी ध्यान मे परायण हो गये थे । कुछ दूसरे नन्दी—भृङ्गी आदि जो गण थे वे महाभाग द्वार पर स्थित थे जो पूर्व के द्वार पर नियोजित किये गये थे । वहाँ पर उतने गण थे किन्तु भी ध्वनि नही होती थी ॥५—६॥ उनकी कोई भी ध्वनि नही सुनाई नही देती थी । सभी शब्दहीन होते हुए संस्थित थे । अन्य गण वहाँ से सुदूर अन्तर पर स्थित होकर क्रीडा कर रहे थे ॥७॥

कुसुमैश्च दलैर्भक्तैर्गिरिप्रस्रवणोदकै: ।
रत्नानि च विचिन्वन्तो भूषिता गैरिकैस्तथा ॥८

सगण तु तथा दृष्ट्वा गिरिराजो गत हरम् ।
स्वस्थानमोपधिप्रस्थानि मृत्य महितो गणै ॥६
पूजार्थमुपतस्थे स यथायोग्य तथार्च्चयत् ।
स चापि शम्भुस्तस्यार्चां परया श्रद्धया युत ।
प्रतिजग्राह कूटस्थो गगाशीर्षे यथा पुरा ॥१०
पूजितस्तेन सहसा गिरिराज वृषध्वज ।
उवाच ध्यानयोगस्थ स्मयन्निव जगत्पति ॥११
तव प्रस्थे तपस्तप्तु रहस्यमहमागत ।
न यथा कोऽपि निकट समायाति तथा कुरु ॥१२
त्व महात्मा जगद्धाम मुनीना च सदाश्रय ।
देवाना राक्षसाना च यक्षाणा किन्नरस्य च ॥१३
सदावासो द्विजानीना गगापूतश्च नित्यदा ।
त्वत्पुरस्याम्य निकटे प्रस्थ गगावनारणम् ॥१४

कुसुमा से—दतो से—भक्तों मे और गिरि के प्रस्रवण के जलो से रत्नों को खोजते हुए गौरिको से भूषित वे गण थे ॥ ८ ॥ गिरिराज ने गणो के सहित गये हुए भगवान् हर का विलोकन करके गणो के महित अपने स्थान ओषधि प्रस्थ मे निर्गत होकर वे पूजा के लिये उपस्थित हुए थे और उन्होंने यथोचित रूप से उनका अभ्यर्चन किया था। व भगवान् शम्भु भी परा श्रद्धा से सयुत होकर उसकी अर्चा का ग्रहण करने वाले हुए थे जिस तरह से पहिले गङ्गा शीर्ष म कूट पर सस्थित थे ॥ ६—१० ॥ सहसा उसके द्वारा पूजित हुए वृषध्वज ध्यान योग मे स्थित होते हुए जगत्पति मुस्कराते हुए से उस गिरिराज से बोले ॥ ११ ॥ ईश्वर ने कहा—मैं आपके इस प्रस्थ पर तप का समाचरण करने के लिये ही इस एकान्त स्थल मे समागत हुआ हूँ। मेरे समीप म कोई भी न आये ऐसी व्यवस्था कर दीजिये ॥ १२ ॥ आप महान् आत्मा वाले हैं—आप जगत् के धाम हैं और मुनियो के सदाश्रय हैं देवो के—राक्षसो के—यक्षा के और किन्नरो के तथा द्विजातीयो के

सद आवास है तथा नित्य ही गङ्गा से पूत रहत हैं। आपके इस नगर के निकट मे एक गङ्गावतरण प्रस्थ है ॥१४॥

आश्रितोऽह गिरिश्रेष्ठ तद्योग्य कुरु साम्प्रतम् ।१५
इत्युक्त्वा जगता नायस्तूष्णीमास वृषध्वज ।
गिरिराजस्तदा शम्भु प्रणयादिदमब्रवीत् ।।१६
पूतोऽस्मि जगता नाथ त्वयाऽह परमेश्वर ।
आगतेनाद्य विषयमित कृत्य किमस्ति मे ।।१७
तपसा महता त्व हि देवैर्यत्नपरस्थितं ।
न प्राप्यसे जगन्नाथ स त्व स्वयमुपस्थित ।।१८
मत्तो धन्यतरो नास्ति न मत्तोऽन्योऽस्ति पुण्यवान् ।
यद्भवान हिमवत्-प्रस्थे तपसे समुपस्थित ।।१९
देवेन्द्रादधिक मन्ये आत्मान परमेश्वर ।
सगणेन त्वया प्राप्तो यदाऽह कामचारत ।।२०
इत्युक्त्वा गिरिराजोऽथ स्ववेश्म पुनरागमत् ।
नियमाय परिवारान गणानप्यवदत् स्वकान् ।।२१

हे गिरि श्रेष्ठ ! मैंने यहाँ पर आश्रम ग्रहण किया है सो अब योग्य हो वह आप करिये ॥ १५ ॥ इतना ही कहकर जगतो के स्वामी वृषभध्वज चुप हो गये थे। उसी समय मे गिरिराज ने भगवान् शम्भु से प्रणय की ही भाँति यह कहा था ॥१६॥ हे परमेश्वर ! आप तो जगतो के स्वामी हैं। आपने मुझे पवित्र कर दिया है कि आपने इस मेरे देश मे समागमन किया है। इससे आगे जो भी मेरा कर्त्तव्य हो वह मुझे उपदेश कीजिए कि क्या करना है ॥ १७ ॥ आप तो महान् तप के द्वारा यत्नो म परायण देवो के द्वारा भी प्राप्त नही हुआ करते हैं। हे जगन्नाथ ! मेरा बडा सौभाग्य है कि आप स्वय ही यहाँ पर पदार्पण कर उपस्थित हो गये हैं ॥१८॥ मैं तो यही समझता हूँ कि मुझसे अधिक धन्य कोई भी नही है। और मुझमे अधिक कोई पुण्यशाली ही है कि

आप तपश्चर्या करने के लिये हिमवान् के प्रस्थ पर स्वय ही समुपस्थित हो गये हैं ॥ १९ ॥ हे परमेश्वर ! मैं तो अपने आपको देवेन्द्र से भी अधिक मानता हूँ कि गणो के सहित आपके द्वारा स्वेच्छा से ही जिस समय मे मैं प्राप्त हो गया हूँ इतना कहकर गिरिराज पुन अपने घर मे आ गये थे। और उनने नियम के लिय अपने परिवारो को तथा गणो को कह दिया था ॥२०॥२१॥

अद्य प्रभृति नो गन्ता कोऽपि गगावतारणम् ।
मच्छासन न हि विना यो गन्ता दण्डये ह्यहम् ॥२२
इति स्वान् स नियम्याशु तिलपुष्पकुशान् फलम् ।
समादायाश तनयासहितोऽगाद् हरान्तिकम् ॥२३
अथ गत्वा जगन्नाथ हर ध्यानपर तदा ।
नमयामास तनया काली सर्वगुणान्विताम् ॥२४
तिलपुष्पादिक यद् यत्तत्तदग्रे निधाय स ।
अग्रे कृत्वा सुता शम्भुमिदमाह स शैलराट् ॥२५
भगवस्तनयेयं मे त्वमाराधयितु प्रति ।
समादिष्टा समानीता त्वदाराधनकाक्षिणी ॥२६
सखिभ्या सह नित्य त्वा सेवतामीश शकर ।
अनुजानीहि सेवार्थं मयि ते यद्यनुग्रह ॥२७
अथ ता शकरोऽपश्यन् प्रथमारूढयौवनाम् ।
फुल्लेन्दीवरपत्राभा पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥२८

आज से आरम्भ करके कोई भी गङ्गावतरण पर नहीं जायेगा। मेरे शासन के बिना जो कोई भी वहाँ पर गमन करेगा उसको मैं दण्डित करूँगा। २२। उस गिरिराज हिमवान् ने इस रीति से अपने लोगो को नियमित करके वह तिल—पुष्प—कुशा और फल लेकर शीघ्र ही अपनी पुत्री के साथ भगवान् शम्भु के समीप मे गमन किया था। २३। इसके अनन्तर ध्यान में परायण जगन्नाथ शम्भु के समीप मे उस समय

मे गमन करने वाले गुणों से समन्वित कामी अपनी पुत्री का नमन कराया था अर्थात् उससे प्रणाम करवाया था । २४ । जो तिल पुष्प आदि थे वह सभी उसने उनके आगे रख दिया था। फिर अपनी पुत्री को आगे करके उस शैलों के राजा ने भगवान् शम्भु से यह कहा था। । २५ । हे भगवन् ! यह मेरी पुत्री आपकी आराधना करने के लिये समादिष्ट की गयी है और आपकी आराधना की इच्छा वाली है यह यह पर लाई गई है । २६ । हे ईश ! हे शङ्कर ! यह अपनी सखियों के साथ नित्य ही आपकी सेवा करती है । यदि आपका मेरे ऊपर अनुग्रह है तो आप इसको सेवा करने के लिये अनुज्ञा प्रदान कीजिये । २७। इसके अनन्तर भगवान् शङ्कर ने उसका अवलोकन किया था कि वह प्रथम यौवन में आरूढ़ थी और उसके विकसित कमलों के दलों के तुल्य नेत्र थे तथा उसका चेहरा एक खिले हुये कमल के ही सदृश था एवं उसका मुख पूर्ण चन्द्र के समान था । २८ ।

समग्रनीचकेशौघ-प्राप्तवेश-विजृम्भिकाम् ।
कम्बुग्रीवा विशालाक्षी चारुकर्णयुगोज्ज्वलाम् ॥२६
मृणालायतपर्यन्त-बाहुयुग्ममनोरमाम् ।
राजीवकुण्डलप्रख्य घनपीनोन्नतस्तनौ ॥३०
विभ्रती क्षीणसन्मध्या रक्तपाणितलद्वयाम् ।
स्थलपद्मप्रतीकाश पादयुग्ममनोरमाम् ॥३१
मध्यक्षीणा महासत्त्वा वृत्तस्थूलघनोज्ज्वलाम् ।
भुजघा नागनासोरु निम्ननाभिविभूषिताम् ॥३२
सुवृत्तचारुजघाग्रा त्रिगम्भीरा षडुन्नताम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम् ॥३३
ध्यानपंजरनिर्बन्ध-मुनिमानसमप्यरम् ।
दर्शनाद् भ्रंशितु शक्ता योषिद गणशिरोमणिम् ॥३४
ता दृष्ट्वा तपसे नित्य ध्यानिना च मनोहराम् ।

विघ्नहेतु चानुरागवर्धिनी कामरूपिणीम् ॥३५

अब शिवा के सुन्दर स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वह समग्र केशों के समूह से वेश विजृम्भिका को प्राप्त हुई थी। उस की ग्रीवा कम्बु के ही समान थी। उसके नेत्र विशाल थे और उसके दोनो कानो का जोड़ा परम सुन्दर एवं उज्ज्वल था। २६। मृणाल के सदृश आयत एवं पर्यन्त बाहुओं के युग्म से वह परम मनोहर थी। उसके कुण्डलों के स्थान म कमल थे तथा वह घन और पीन एव उन्नत स्तनो से शोभित थी। ३०। सुन्दर और क्षीण मध्य भाग के धारण करने वाली थी और उसके दोनो के करों के तल भाग रक्त वर्ण के थे। स्थल पद्म के सदृश दोनो पादो मे वह परम मनोरम थी। ३१। मध्य भाग से क्षीण—महान सत्व वाली स्थूल और घन वृत्त मे उज्ज्वल थी। उसकी ज घायें सुन्दर थी—शाप के समान उसकी नासिका थी तथा वह निम्न नाभि मे भूपित थी। ३२। उसकी ज घाओ के अग्रभाग सुवृत्त और सुन्दर थे। तीन स्थानो म गम्भीर और छै स्थानो म समुन्नत थी। सभी सुलक्षणो से सम्पन्न थी तथा वह तीनो लोको मे दुर्लभ थी। ३३। ध्यान के पिंजर मे बँधे हुये मुनियो के मन को भी दर्शन करने ही से भ्रष्ट करने म समर्थ वह योषितो के समूह की शिरोमणि थी। ३४। उस मनोहर को देखकर तपश्चर्या के लिये नित्य ध्यान करने वालो को विघ्नो का हेतु और अनुराग को बढाने वाली तथा कामरूप वाली थी ॥३५।

गिरिराजस्य वचनात्तनया तस्य शकर ।
पर्येषणार्थं जगृहे गौरवादपि गौरव ॥३६
उवाचेद तव सुता सखिभ्या सह शैलराट् ।
नित्य मे सेवया यत्ता निर्भीता ह्यत्र तिष्ठतु ॥३७
एवमुक्त्वा तु ता देवी सेवार्थं जगृहे हर ।
इदमेव महद् धैर्यं यद् विघ्नो न हि विघ्नयेत् ।

निर्विघ्न स्थानमासाद्य यत्तप क्रियते द्विजै ।।३८
सविघ्नो विघ्नहेतु य परिभूय प्रवर्तते ।
तन्महत्त्व च तपसा धीरता च तपस्विनाम् ।।३९
तत स्वपुरमायातो गिरिराट परिचारकै ।
हरश्च ध्यानयोगेन पर चिन्तयितु स्थित ।।४०
काली सखिभ्या सहिता प्रत्यह चन्द्रशेखरम् ।
सेवमाना महादेव गमनागमनै स्थिता ।।४१
कदाचित् सहिता काली सखिभ्या शकराग्रत ।
विस्तन्वती शुभ गीत पचमञ्चातनोत्तदा ।।४२

उन गिरिराज के वचन से उसकी पुत्री को भगवान् शङ्कर ने जो गौरव से भी गौरव से सेवा करने के लिये स्वीकार कर लिया था। ।३६।। भगवान् शम्भु ने कहा था कि हे शैलराज ! यह आपकी पुत्री अपनी सखियो के साथ नित्य ही मेरी सेवा करने के लिये निर्भीक होकर यहाँ पर स्थित रहे ।।३७।। यह इस प्रकार से कहकर भगवान् हर ने उस देवी को सेवा के लिये ग्रहण कर लिया था। यह ही महान् धैर्य है कि विघ्न बाधा न डालें। विघ्न रहित स्थान को प्राप्त करके जो तप द्विजो के द्वारा किया जाता है ।।३८।। विघ्नो के सहित विघ्न के हेतु को पराभूत करके जो प्रवृत्त होता है। यह तपो का महत्त्व है और तपस्वियो की धीरता है ।।३९।। इसके अनन्तर गिरि राजा अपने परिचारको के सहित अपने पुर म आ गया था और भगवान् शम्भु ध्यान के योग से परेश का चिन्तन करने के लिये स्थित हो गये थे ।।४०।। काली अपनी सखियो के साथ प्रति दिन महादेव चन्द्र शेखर की सेवा करती हुई गमन और आगमनो के द्वारा स्थित हो गई थी ।।४१।। किसी समय मे वह काली सखियो के सहित भगवान् शङ्कर के आगे शुभगीत का विस्तार करती हुई पञ्चम स्वर का गान किया करती थी ।।४२।।

कदाचित् कुशपुष्पादिसमिद्वारि हराय सा ।
सखिभ्या स्नानसत्कार कुर्वन्ती न्यवसत्तदा ॥४३
कदाचिदग्रे नियता स्थिता चन्द्रभृतो मुखम ।
वीक्षन्ती चिन्तयामास सकामा चन्द्रशेखरम् ॥४४
यदा कार्येषु सा व्यग्रा तदा तत्कर्म चेष्टते ।
कृत्यहीना यदा सा तु तदैवाचिन्तयद्धरम् ॥४५
कदा मामेष भूतेश कर्ता पाणिगृहीतिकाम् ।
यदा मया मम रन्ता नानासद्भावभावनैः ॥४६
इति चिन्तापरा काली स्वप्नेऽपि परमेश्वरम ।
अर्चयत्येव परम सदाचिन्तनतत्परा ॥४७
अग्र गता यदा काली प्रध्यायति महेश्वरम् ।
तदा तद् वेदभतेशस्ता निसर्गपरिस्थिताम् ॥४८
किन्तु गर्भगतैर्वीजैर्ध्रं तदेहेति ता तदा ।
नाग्रहीदिगरिश काली भार्यार्थे ह्यघृनव्रताम् ॥४६

किसी समय ये वह भगवान् हर के लिये कुश—पुष्प आदि—समिधा और जल का सखियो के सहित स्नान का सत्कार करती हुई उस समय मे वहाँ पर निवास किया करती थी ॥४३॥ किसी समय में नियत रूप से शिव के मुख का वीक्षण करती हुई सकाम होकर चन्द्र शेखर के के विषय म चिन्तन किया करती थी ॥४४॥ जिस समय मे कार्यो मे व्यग्र होती हुई वह उस कर्म की चेष्टा किया करती थी जब वह कृत्य में रहित होती थी तब ही वह हर के मुख का चिन्तन किया करती थी । ॥४५॥ किस समय मे यह भूतेश्वर मेरा पाणि ग्रहण करने वाले होंगे और अनेक सद्भावो की भावनाओ से मेरे साथ रमण करेंगे ॥४६॥ इसी चिन्ता म परायण होती हुई काली स्वप्न मे भी परमेश्वर का अर्चन करती हुई सदा उन्ही परम प्रभु की चिन्ता मे तत्पर रहा करती थी । ॥४७॥ आगे गमन की हुई काली जब महेश्वर का ध्यान करती थी तब

भगवान् भूतेश ने उसको स्वभाव में परिस्थित हुयी जाना था ॥४८॥ किन्तु उस समय म गर्भगत बीजा से धृत देह वाली है—इससे उस समय मे उसको गिरिश ने अधृत व्रत वाली को भार्या बनाने के लिये ग्रहण नहीं किया था ॥४६॥

महादेवोऽपि ता दृष्ट्वा तदैवेदमचिन्तयत् ।
कथमेषा तपश्चर्याव्रत कुर्याद् गिरे सुता ॥५०
कृतव्रता ग्रहीष्यामि गर्भबीजविवर्जिताम् ।
काली भार्या स्वदयिता योनिजामतिदूषिताम् ॥५१
व्रतेन चाथ सस्कारैर्गर्भबीज विमुच्यते ।
तस्माद व्रत यथा काली कुर्यात् तद् युज्यते कथम् ॥५२
इति सचिन्त्य भूतेशस्तदा ध्यानमना स्थित ।
ध्यानासक्तस्य तस्याथ नान्यचिन्ता व्यजायत ॥५३
काली त्वनुदिन शम्भु भक्त्या भृशमसेवत ।
विचिन्वन्ती सतत तस्य रूप महात्मन ॥५४
हरो ध्यानपर काली नित्य प्रत्यक्षत स्थिताम् ।
विस्मृत्य पूर्ववृत्तान्त पश्यन्नपि न पश्यति ॥५५
एतस्मिन्नन्तरे देवास्तारको नाम दैत्यराट् ।
ववाधे सर्वलोकाश्च ब्रह्मणो वरदर्पित ॥५६

महादेवजी ने भी उस समय मे उसको देख कर यही चि तन किया था कि यह गिरि की पुत्री किस प्रकार से तपश्चर्या के व्रत को करेगी ॥५०॥ किय हुये व्रत वाली और गर्भ बीज से वर्जित काली को जो योनिजा और अति दूषिता है अपनी प्यारी भार्या के रूप में ग्रहण करूँगा व्रत से और सस्कारो से गर्भ बीज की विमुक्ति होती है । इस म जैसे भी यह काली व्रत करे—यह कैसे युक्त होवे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—भूतेश प्रभु यह चिन्तन करते हुये उस समय

मे ध्यान म मन लगान वाल होकर सथित हो गय थे । ध्यान म समापत्त उनको अन्य कोई भी चिन्ता न हुई थी ॥५३॥ कालीं प्रतिदिन भक्ति भाव से शम्भु का अत्यधिक सेवा किया करती थी उस महात्मा के स्वरूप का निरन्तर चिन्तन किया करती थी ॥५४॥ ध्यान म परायण हर नित्य ही प्रत्यक्ष म स्थित हुई काली का भूलकर पूव वृत्तान्त को दखन हुए भी नहीं देखते थे । इमी बीच म तारक नाम वाला दैत्यो का राजा ब्रह्माजी के वरदान से बहुत हो घमण्डी होकर देवा को और सभी लोको को बाधा द रहा था ॥५५॥५६ ।

वशाकृत्य स लोकास्त्रीन स्वयमिन्द्रो बभूव ह ।
विद्राव्य सकलान् देवान् दत्यान स्वास्तत् पदेषु च ।
स्वय नियोजयामास देवयोनिषु चाप्यसौ ॥५७
न यम स्वच्छया लोकास्तस्मिन् राज्ञि नियच्छति ।
न स्वच्छया तथा सूया लाकास्तपति तद्भयात् ॥५८
चन्द्रस्तु नमसाचिव्य तस्य कुवन् स रश्मिभि ।
वायुना सह सगम्य तत् सेवा विदधेऽनिशम् ॥५६
सदा सौगन्ध्यमाम्माय श मस्निग्धस्वमधुन ।
न वीजयन् ववौ वायु शासनानस्य भूभृत ॥६०
धनदाऽपि ययासार धनमादाय यत्नत ।
सावधानस्तस्य सेवामकरोत्तारकच्छया ॥६१
अग्निस्तस्याभवत् सूद शासनात्तारकस्य तु ।
व्यजनान्यथ भोज्यानि चक्रे तस्येच्छया तदा ॥६२
निर्ऋतिस्तस्य सतत सहित सर्वराक्षसं ।
अश्वान गजान वाहनानि कारयामाम साध्वसात् ॥६३

उसने तीना लोको को अपने वश म करके वह स्वय ही इन्द्र वन गया था । उसने सब देवो को भगा कर उनके पदा पर अपने दैत्या का स्वय नियोजन कर दिया था । और वह देव मुनिया ने भी नियुक्ति

करने वाला बन गया था ॥५७॥ उसके राज्य में यम अपनी इच्छा से लोकों का नियोजन नहीं किया करता। उसके भय से सूर्य भी लोक को ताप नहीं दिया करता था ॥५८॥ चन्द्रदेव तो अपनी किरणों के द्वारा उसके गम का मंजिष्य किया करता था अर्थात् उसके विहार की लीला में सहायता करता था। वायु के साथ संयुक्त होकर वह रात दिन उसकी सेवा में ही निरत रहता था ॥५६॥ वायु सदा ही सुगन्ध—गम्भीरता और शीतलता से एवं स्निग्धता से समन्वित होकर उस नृप के शासन से उसको वीजित करता हुआ ही वहन किया करता ॥६०॥ कुबेर भी तारककी इच्छा से यथा सार धन यत्न पूर्वक लेकर सावधान होकर उसकी सेवा किया करता था ॥६१॥ तारक के शासन से अग्नि सूद हो गया था उस समय में उसकी इच्छा से ही सदा भोज्य व्यञ्जनों को किया करता था॥६२॥ निर्ऋति समस्त राक्षसों के सहित निरन्तर भय से अश्व—गज और वाहनों को कराता था ॥६३॥

नृत्यन्दभिरप्सरोभिश्च स्तुवद्भिः सूतमागधैः ।
गायमानैश्च गन्धर्वैः सचिक्रीड सुरान द्विषन ॥६४
एवं स सर्वलोकास्तु त्रिष्वप्यथ विलोडयन् ।
लोकेषु सारान् साराश्च देवानामप्यथाग्रहीत् ॥६५
तेनाभियाधिता सर्वे देवा शक्रपुरोगमा ।
ब्रह्माण शरणं जग्मुरनाथा नाथमुत्तमम् ॥६६
ते प्रणम्य सुरा सर्वे पुरुहूतपुरोगमा ।
इदमूचुर्महात्मान सर्वलोक पितामहम् ॥६७
लोकेश तारको दैत्यो वरेण तव दर्पित ।
निरस्यास्मान् हठादस्मद्विषयान् स्वयमग्रहीत् ॥६८
रात्रिंदिव बाधतेऽस्मान् यत्र तत्र स्थिता वयम् ।
पलायिताश्च पश्याम सर्वकाष्ठासु तारकम् ॥६९
अग्निर्यमाथ वरुणो निर्ऋतिर्वायुरेव च ।

तथा मनुष्यधर्मा च सर्वैः परिकरैर्युतः ॥७०

वहतारक सुरो मे द्वेष रखता था और नृत्य करती हुई अप्सराओं के साथ—स्तवन करने वाले सूत और मागधो के साथ तथा गान करने वाले गन्धर्वों के साथ भली भाँति क्रीडा किया करता था ॥६४॥ इस रीति से वह तीनो लोको मे विलोडन करता हुआ लोको मे देवो के जो भी सार-सार थे उनका सब का उसने ग्रहण कर लिया था ॥६५॥ उसने सभी देवो को जिनमे इन्द्र प्रमुख थे अभि वाधित कर दिया था। तब सब देवगण अनाथ होने हुए उत्तम नाथ ब्रह्माजी की शरणा गति मे प्राप्त हुए थे ॥६६॥ उन देवो ने प्रणाम करके जिन सबमे पुरहूत अगुआ थे महान् आत्मा वाले सब लोको के पिता मह से यह बोले ॥ ६७॥ देवो ने कहा—हे लोको के स्वामिन् ! दैत्य तारक आपके दिये हुए वरदान से बहुत ही दर्पित अर्थात् घमण्डी हो गया है। बल पूर्वक उस ने हम सबको निरस्त्र करके हमारे देशों को स्वयं ही ग्रहण कर लिया है। ३८। हम लोग जहाँ तहाँ पर स्थित हैं वह हमको दिन-रात बाधा दिया करता है। हम लोग भागे हुए हैं और सभी दिशाओ मे तारक को ही देखा करते हैं। ६६। अग्नि—यम—वरुण—निॠति—वायु और मनुष्य धर्म वाला सब परिकरो से युक्त है ॥७०॥

एते तेनार्दिता ब्रह्मन् देवास्तस्यैव शासनात्।
अनिच्छाकार्यनिरताः सर्वे तस्यानुजीविनः ॥७१
या देववनिताः स्वर्गे ये चाप्यसरसा गणाः।
तान् सर्वानग्रहीद् दैत्य सारं लोकेपु यच्च यत् ॥७२
न यज्ञाः सप्रवर्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः।
दानधर्मादिकं किंचिद् न लोकेपु प्रवर्तते ॥७३
तस्य सेनापतिः पापः क्रौंची नामास्ति दानवः।
स पातालतलं गत्वा बाधतेऽहर्निशं प्रजाः ॥७४
तस्मात् तु तारकेणेदं सकलं भुवनत्रयम्।

हृत सर्व जगत् त्राहि पापात्तस्मात् पितामह ।।७५
वय च यत्र स्यास्यामस्तत्स्थान विनिदेशय ।
स्वस्थानाच्च्यावितास्तेन लोकनाथ जगद्गुरो ।।७६
त्व नो गतिश्च शास्ता च त्व नस्त्राता पिता प्रभू ।
त्वमेव भुवनाना च स्थापक पालक कृती ।।७७
तस्माद् यावत्तारकाख्ये वह्नौ दग्धा प्रजापते ।
न भवामस्तथा कर्तुं भवता युज्यतेऽधुना ।।७८

हे ब्रह्मन् ! ये सब देव गण उसके द्वारा आदिष्ट हैं और उसके ही शासन से उसके ही अनुजीवी होकर उस के कार्यों मे इच्छा न होने पर भी निरत रहा करते है । ७१ । जो स्वर्ग मे देवो की वनिताये है और जो अप्सराओ के समुदाय है तथा जो भी लोको मे सार पदार्थ है इन सबका तारक दैत्य ने ग्रहण कर लिया है । ७२ । इस समय मे न तो यज्ञ ही प्रवृत्त हो रहे है और न तापसगण तपश्चर्या ही किया करते हैं । तथा दान धर्म आदि कुछ भी लोको मे प्रवृत्त नही हो रहे हैं । । ७३ । उसका सेनापति पापी कौञ्ज नाम वाला दानव है । वह पाताल के तल मे जाकर प्रजा को रात दिन बाधा दिया करता है । । ७४ । हे पितामह ! उस तारक ने यह सम्पूर्ण त्रिभुवन को हृत कर लिया है । वह सम्पूर्ण जगत् उसी के हरण किया हुआ है । इस पापी से आप हमारा परित्राण करिए । ७५ । हम लोग जहाँ पर जाकर स्थित रहेंगे उस स्थान को बतलाइए । हे लोक नाथ ! आप तो जगत् के गुरु हैं उसके द्वारा हम सब लोग च्यावित कर दिये गये है अर्थात् स्थान से भ्रष्ट कर दिये गय है । ७६ । आप ही हम लोगो की गति है—शास्ता है—आपही हमारे रक्षक पिता और प्रभून करने वाले हैं । आप ही भुवनो के स्थापक हैं—पालन करने वाले हैं और कृती हैं । ७७ । हे प्रजापते ! जब तक हम लोग तारक नाम वाली अग्नि मे भस्म होकर दग्ध न होवें अब आपको वैसा ही करना समुचित है । अर्थात् वैसा ही करने के लिय आप योग्य हैं ।।७८ ।

सुगणा वचन श्रुत्वा ब्रह्मलोके पितामह ।
प्रत्युवाच सुरान् सर्वास्तत्कालसदृश वच ॥७६
ममैव वरदानेन तारकाख्य समेधित ।
न मत्तस्तस्य मरण युज्यते त्रिदिवौकस ॥८०
युष्माकञ्च प्रतीकार कर्तव्य प्रतिकर्मणि ।
किन्तु सम्यक न शक्नोमि प्रतिकर्तुं प्रचोदित ॥८१
तस्माद यथा तारकाख्य स्वयमेष्यति सक्षयम् ।
तथा यूय सविदध्वमुपदेशकरस्त्वहम् ॥८२
न मया तारको वध्यो न तथा वनमालिना ।
न हरेण तथा वध्यो नान्यैरपि सुरैर्नरै: ॥८३
एष एव वरो दत्तो मया तस्मै तपस्यते ।
उपायश्चिन्तितश्चास्ति तत्कुर्वन्तु सुरोत्तमा: ॥८४

मार्कण्डेय महर्षि न कहा—ब्रह्मलोक म पितामह ने सुरा के इस वचन का श्रवण करके उसी समय म उन समस्त सुरा से उस काल के समान ही वचन उत्तर मे बोला था ॥ ७६ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—मेर ही वरदान से तारक नाम वाला समृद्ध हुआ है । हे देवगणो ! अब उसका मरण मुझस होना युक्त नही होता है ॥ ८० ॥ आपका भी प्रतीकार करना ही चाहिए क्योकि उसका कम जैसा है वैसा ही प्रतीकार होना भी चाहिए किन्तु मैं आपक द्वारा प्रेरित होकर भी भली भाँति कुछ भी प्रतिकार कर नही सकता हूँ ॥ ८१ ॥ इस कारण से जैसे भी तारक नामधारी स्वय ही मक्षय को प्राप्त हो जावेगा वैसा आप लोग मुझसे समझ लेव मैं तो उपदश ही कर दन वाला हूँ ॥८२॥ मेर द्वारा तारक वध नहीं होगा अथात् मुझस उसका वध नहीं होगा और वनमाली प्रभु के द्वारा भी वह वध के योग्य नही होगा । न हर के द्वारा तथा अन्य सुरो और मनुष्यो के द्वारा वह मारा जा सकता है ॥ ८३ ॥ उसका तपश्चर्या करते हुए यह ही वरदान मैंन दे दिया था । हे

सुरोत्तमो ! इसका एक उपाय सोच लिया गया है उसे ही आप करिए ।।८४।।

सती दाक्षायणी पूर्वं त्यक्तदेहा स्वजन्मने ।
अगच्छन्मेनका देवी शैलराजस्य योषितम् ।।८५
ता समुत्पादयामास मेनकाजठरे गिरि ।
लक्ष्मीमिव पुरा ख्याता भृगु स्वतनयो मम ।।८६
तामवश्य महादेव कुर्यात् पाणिगृहीतिकाम् ।
यथा स नचिरात्तस्यामनुरक्तो भवेत् सुरा ।।८७
तथा विदध्व सुतरा तत्तेज प्रतिकर्तुं व ।
तमूर्ध्वं रेतस शम्भु सैव प्रच्युतरेतसम् ।।८८
कर्तुं समर्था नान्यास्ति काचिदप्यवरापरा ।
तस्य तेजश्च्युत यच्च तस्माद् यो जायते सुत ।।८९
स एव तारकाख्यस्य हन्ता नान्यस्तु विद्यते ।
सा सुता गिरिराजस्य साम्प्रत रूढयौवना ।।९०
तपस्यन्त गिरिप्रस्थे नित्य पर्यपते हरम् ।
वाक्याद हिमवत सा तु काली नाम्ना निषेवते ।
सखिभ्या सह सर्वज्ञ ध्यानस्थ परमेश्वम् ।।९१

पूर्व समय म सती दाक्षायणी ने देह का त्याग कर दिया था और अपने जन्म धारण करने के लिए शैलराज की योषित मेनका देवी के यहाँ गयी थी । ८५ । गिरिराज ने उसको मेनका के उदर म समुत्पादित किया था । यह पहिले साक्षात् लक्ष्मी की ही भाँति प्रसिद्ध हुई थी— भृगु मेरा ही अपना पुत्र था । ८६ । महादेव अवश्य ही उसका पाणिग्रहण कर लेंगे । हे सुरो ! जिस प्रकार से वह शीघ्र ही उसमे अनुराग करने वाले हो जावें । ८७ । उसी भाँति आप करें । उनका तेज ही आप सबका प्रतीकार करने वाला है । वे शम्भु भगवान् ऊर्ध्व रेता हैं उनके वीर्य को प्रच्युत वही करने वाली है । उसी को ऐसी सामर्थ्य है

दूसरी कोई भी अन्य अबला ऐसी शक्ति शालिनी नहीं है। उसका च्युत हुआ जो तेज है उसमें जो भी पुत्र उत्पन्न होगा ॥८८॥८९॥ वह ही इस तारक नामक का हनन करने वाला है अन्य कोई भी नहीं है। वह गिरिराज की पुत्री इस समय में समारूढ़ यौवन वाली अर्थात् पूर्ण युवती है। ९० : गिरि के प्रस्थ पर तपश्चर्या नित्य ही करने वाले उन भगवान् शम्भु की वह सेवा कर रही है। काली नाम वाली वह हिमवान् के वाक्य से ही अपनी सखियों के साथ ध्यान में स्थित परमेश्वर सर्वज्ञ की वह सेवा कर रही है ॥९१॥

तामग्रतो वर्तमाना त्रिलोकवरवर्णिनीम् ।
ध्यानासक्तो महादेवो मनसापि न चेच्छति ॥९२
यथा समीहते भार्यां कालीं च चन्द्रशेखरः ।
तथा कुरुध्वं त्रिदशा नचिरादेव यत्नतः ॥९३
स्वस्थानं भवता स्वर्गस्तस्मात् तारकमप्यहम् ।
निवर्तयिष्ये सगम्य गच्छध्वं विगतज्वराः ॥९४
इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तारकाख्यमुपस्थितः ।
उपसगम्य वचनं समासाद्येदमब्रवीत् ॥९५
भो भो तारक मा स्वर्गराज्यं त्वं परिशाधि भोः ।
तदर्थं न तपस्तप्तं समये भवता पुरा ॥९६
वरो नापि मया दत्तो न मया स्वर्गराजता ।
तस्मात् स्वर्गं परित्यज्य क्षितौ राज्यं समाचर ॥९७
देवयोग्यानि तत्रैव सम्भविष्यन्ति तेऽसुर ।
इत्युक्त्वा सर्वलोकेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥९८

अपने आगे विद्यमान रहने वाली तीनों लोकों में वर वर्णिनी को ध्यान में समासक्त महादेव मन से भी नहीं चाहते हैं ॥ ९२ ॥ चन्द्रशेखर जिस रीति से भी उस काली को अपनी भार्या बनाना चाहें हे देवगणो ! आप लोग वैसा ही यत्नपूर्वक शीघ्र ही करें ॥ ९३ ॥ आप

लोगो का स्वर्ग अपना स्थान है। उससे मैं तारक को भी निवृत्त कर दूँगा। मैं उसके साथ सङ्गत होऊँगा। आप लोभदु खा से रहित होकर ही यहाँ से गमन कीजिए ॥ ६४ ॥ इतना कहकर सब लोकों के स्वामी तारक नामक दैत्य के पास उपस्थित हुए थे। उसके समीप मे आकर यह वचन का सम्भाषण करके उन्होने कहा था ॥६५॥ हे तारक ! आप स्वर्ग के राज्य का शासन न करें। उसके लिये आपने पहिले तपस्या नही की थी ॥ ६६ ॥ मैंने भी ऐसा वरदान नही दिया था कि मेरे द्वारा आप स्वर्ग के राजा होवें। इस कारण से स्वर्ग का परित्याग करके भूमि पर ही राज्य के शासन को करे ॥ ६७ ॥ हे असुर ! देवों के योग्य भोगो का उपभोग करने के लिये आपको यही पर भूमि मे सब पदार्थ प्राप्त होगे। इतना कहकर सब लोकों के स्वामी ब्रह्माजी वही पर अन्तर्धान हो गये थे ॥६८॥

स तारक परित्यज्य स्वर्ग क्षितिमथाभ्ययात् ।
तत्रैव सस्थितो देवान् बाधते स्म स नित्यशः ।
इन्द्र करप्रद चक्रे निदेशस्थ महाबलम् ॥६६
तमिन्द्र. सतत देवभोग्यानि वितरन् मुहु ।
सेवमान. क्षमो नाभूत् सन्तोषयितुमीश्वरम् ॥१००
एव तेनार्दिता देवा मन्युना परिपीडिता. ।
विधातुरुपदेशेन यत्न चक्रु हरान्वये ॥१०१
तत इन्द्रोऽथ गुरुणा सगम्य कृतनिश्चय. ।
कुसुमेषु समाहूय वचन चेदमब्रवीत् ॥१०२
त्वयेद पाल्यते विश्व त्वया विश्व प्रसूयते ।
त्व ब्रह्मविष्णुराणा प्रीतिहेतु पुरा भव. ॥१०३
ब्रह्मा प्रीतया यथा पूर्वमगृह्णाच्चरितव्रताम् ।
सावित्री माधवो लक्ष्मी सती दाक्षायणी हर. ॥१०४

ता प्रीतये पुरा तेषा देवेशाना यथा कृता ।
तथैव कुरु मे प्रीति काम प्राणभृता सदा ॥१०५

वह तारक भी स्वर्ग का परित्याग करके इसके उपरान्त भूमि पर समागत हो गया था। वहाँ पर ही संस्थित होकर वह नित्य ही देवों को बाधित किया करता था। उसने इन्द्र को वर देने वाला बना दिया था और उस महान् बलवान् को अपने निदेश में स्थित कर दिया था ॥ ९९ ॥ इन्द्रदेव उसको निरन्तर देवो के भोगने के योग्य पदार्थों को समर्पित करते हुए भी सेवा करके उस ईश्वर को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं हुआ था ॥ १०० ॥ इस रीति से उसके द्वारा उत्पीडित हुए और क्रोध से परिपीडित होते हुए देवो ने विधाता उपदेश से भगवान् शम्भु के वश मे यत्न किया था। अशम्भु को सुतोत्पत्ति हो जावे—इस कार्य के सम्पादन करने मे प्रयत्नशील देवगण हो गये थे ॥ १०१ ॥ इसके अनन्तर इन्द्रदेव गुरुदेव के साथ सङ्गत होकर ऐसा निश्चय कर लिया था कि शम्भु की सुतोत्पत्ति के लिये उद्यत किया जावे। इन्द्र ने कामदेव को बुला कर उससे यह वचन कहा था ॥१०२॥ इन्द्र देव ने कहा—आपके द्वारा इस विश्व की प्रसूति की जाती है और आपके द्वारा विश्व का पालन किया जाता है। पहिले आपही ब्रह्मा—विष्णु और रुद्र की प्रीति का हेतु हुए थे। १०३। ब्रह्माजी ने पहिले समय में प्रीति से जिस प्रकार से चरित व्रत वाली सावित्री का ग्रहण कर लिया था। भगवान् माधव ने लक्ष्मी का ग्रहण किया था और भगवान हर ने दाक्षायणी का ग्रहण कर लिया था ॥१०४॥ पहिले समय मे देवेशो की प्रीति के लिये जैसे उनको कर दिया था उसी भाँति मेरी भी प्रीति अब करिए। आप तो सदा ही प्राण धारियो की प्रीति के करने वाले रहे हैं ॥१०५॥

न त्व न कस्यचित् स्वर्गे पाताले वाथ भूतले ।
प्रिय प्राणभृता काम मत्तल जयता मत ॥१०६

देवदानवयक्षाणा रक्षसा मानुषस्य च ।
त्व पालकश्च कर्ता च हृदये च प्रवर्तसे ॥१०७
तस्मात् त्व सर्वजगता हिताय कुरु चेष्टितम् ।
देवदानवयक्षाणा मानुषाणा महात्मनाम् ॥१०८
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शक्रस्य मकरध्वज ।
देवराजमुवाचेद सुप्रीतस्तद्वचोऽमृतं ॥१०९
यत्राहमोशिता चक्र तत्कर्म विदित त्वया ।
तस्मान्ममोचित शक्य करिष्ये तन्निदेशय ॥११०
पचैव वाणा मृदवस्ते च पुष्पमया मम ।
चापस्तथा पुष्पमय शिञ्जिनी भ्रमरात्मिका ॥१११
रतिर्मे दयिता जाया वसन्त सचिवो मम ।
यन्ता मलयजो वायुर्मित्र मम सुधानिधि ॥११२

हे काम ! आप स्वर्ग—पाताल और भू मण्डल मे किसके प्रिय नही है । आप जगत् मे प्राण धारियो का सभी का अभिमत हैं ॥१०६॥ देव—दानव—यक्ष—राक्षस और मनुष्यो के आप पालक तथा कर्त्ता है और आप सभी के हृदय मे प्रवृत्त रहा करते है ॥१०७॥ इसी कारण मे आप अब सम्पूर्ण जगती के हित के सम्पादन करने के लिये विशेष चेष्टित कीजिये । इसमे देव—दानव—यक्ष और महात्मा तथा मनुष्यों का हित हो वही करिए ॥१०८॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—मकर ध्वज ने यह इन्द्र का वचन श्रवण करके उसके वचन रूपी अमृतो से बहुत ही प्रसन्न होकर देव राज से यह वचन कहा था ॥१०६॥ जहाँ मेरी ईश्ना है । हे शक्र ! वह कर्म आपको ज्ञात ही है इस कारण से मेरे लायक किये जाने के योग्य जो मैं कर सकता हू उसे मैं करूंगा । आप इसका निदेश कीजिये ॥१००॥ मेरे पाँच ही वाण है जो बहुत ही कोमल पुष्पमय हैं । मेरा चाप भी पुष्पो से ही परिपूर्ण है और उस चाप की डोरी भ्रमरा के स्वरूप वाली ही है ॥१११॥ रति मेरी प्यारी

जाया है। वसन्त मेरा सचिव है। मलय से सम्भूत वायु मन्ता है और मेरा मित्र सुधानिधि चन्द्रमा है ॥११२॥

सेनाधिपो मे श्रृगारो हावा भावाश्च सैनिका ।
सर्वे मे मृदवोऽक्रूरा अहं चापि तथाविध ॥११३
यद् येन यज्यते कार्यं धीमांस्तत्तेन योजयेत् ।
मम योग्य तु यत् कर्म तस्मात्तस्मिन नियोजय ॥११४
यत् कारयितुमिच्छामि भवता तन्मनोभव ।
तत्ते समुचित कर्म तस्मिन् परिवृतो भवान् ॥११५
कृतकर्मापि तत्र त्व कृती चापि मनोभव ।
त्वदन्यै किन्तु दु साध्य तत्त्वा तत्र नितोजये ॥११६
श्रूयते हि तपस्यन्त ध्यानस्थ वृपभध्वजम् ।
गिरेर्हिमव प्रस्थे निराकाक्ष वधूकृतो ॥११६
त पितुर्वचनात् काली तपस्यन्त निषेवते ।
सखिभ्या सहिता नित्य हरस्यानुमतेऽमुना ॥११७
आरूढयौवना ता तु स्त्रीरत्नमपि सुन्दरीम् ।
ध्यानासक्तो महादेवो नेहते मनसापि च ॥११८
सानुरागो यथा तस्या जायते वृपभध्वज ।
तथा विधत्स्व देवाना हिताय जगतामपि ॥११९

मेरी सेना का अधिप शृङ्गार है और हाव तथा भाव मेरे सैनिक हैं। ये सभी मेरे सहयोगी क्रूरता से रहित और कोमल हैं और मैं भी वैसा ही मृदु हूँ।११३। जिसके द्वारा जो भी कार्य युक्त होता है आप तो धी मान् हैं उसी को उसमे योजित कर दीजिये। मेरे करने का जो भी समुचित कार्य हो उसका भी नियोजन कीजिये ॥११४॥ इन्द्र देव ने कहा—जिसके कराने की मैं इच्छा कर रहा हूँ हे मनोभव! आपसे जो भी कराना चाहता हू। वह आपका समुचित कर्म है। उसम आप परिवृत हैं ॥११५॥ आप उसम कृत कर्मा हैं अर्थात् आपको उस

का अनुभव है। हे मनोभव आप कृती हैं। आपको छोड़ कर अन्यों से यह कर्म दुस्साध्य है। इसी से मैं आपका नियोजन करता हूँ।११६। यह सुना जा रहा है कि हिमालय के प्रस्थ में वृषभध्वज तपश्चर्या करने वाले—ध्यान में स्थित हैं और वधू के लिये वे काङ्क्षा से रहित हैं। ।११७। उन शम्भु को पिता के वचन से काली सखियों के सहित नित्य ही हर की अनुमति से होकर अब सेवा किया करती है। वे शम्भु तपश्चर्या कर रहे हैं।११७। यद्यपि वह समारूढ यौवन वाली युवती है—स्त्रियों में रत्न के समान परम दिव्य है और अत्यधिक सुन्दरी भी है किन्तु महादेव ध्यान में ऐसे आसक्त हैं कि उसको मन से भी नहीं चाहते हैं।११८। जिस रीति से भी भगवान् वृषध्वज उसमें अनुराग करने वाले हो जावें वैसा ही आप कार्य करिये। इसमें देवों का और जगतों का परम हित है यही जान कर आप ऐसा करें ॥११९॥

सह सत्या यथा रेमे सानुरागो वृषध्वज ।
तथैतया गिरिजया रमतां तत्कृतेन वै ॥१२०
तस्या कृते तु यत्तेज प्रच्युत यद् हरस्य वै ।
ततो यो जायते सोऽस्मारस्तारकाद्उद्धरिष्यति ॥१२१
तत स देवराजस्य वच श्रुत्वा मनोभव ।
प्राप्तकाल च सस्मार शाप ब्रह्मकृत पुरा ॥१२२
सन्ध्या प्रतिविधातार यदा शस्त्र परीक्षितम् ।
कामोऽहनन् पुष्पबाणैस्तदा तमशपद्विधि ॥१२३
शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्व भविष्यसि द्विजोत्तमा ।
यदा कुर्याद् गिरिसुता हर पाणिगृहीतिकाम् ॥१२४
तदा भवान् शरीरेणागमिष्यति समग्रताम् ।
इति स्मृत्वा विधे शाप भीतोऽपि मकरध्वज ॥१२५
अगीचक्रे शक्रवाक्यान् कारया योजयितु हरम् ।
इद च वचन प्रोचे तत्कालसदृश पुन ॥१२६

वृषभ ध्वज सती के साथ जिस प्रकार से भी उस सती के साथ अनुराग वाले होकर रमण करे। उनके करने में इस गिरिजा के साथ रमण में तत्पर होवें वैसा ही करे ।१२०। उसके रमण करने पर हर का जो तेज प्रच्युत होगा और उससे जो भी पुत्र समुत्पन्न होगा वही हमारा इस तारक से उद्धार करेगा ।१२१। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इसके अनन्तर कामदेव ने देव राज के वचन का श्रवण करके पहिले ब्रह्माजी के दिये हुए शाप का काल प्राप्त हो गया है—यह स्मरण किया था ।१२२। सन्ध्या करने वाले विधाता पर जिस समय में अपने शस्त्र की परीक्षा की थी उस समय में कामदेव ने पुष्प के बाणों से प्रहार किया था और उसी अवसर पर विधाता ने उसको शाप दे दिया था ॥२३॥ हे द्विजोत्तमो विधाता ने कहा कि तू शम्भु के नेत्र की अग्नि से विदग्ध हो जायगा। जिस समय में भगवान् हर गिरि की पुत्री को पाणि प्रणीता भार्या करेंगे उसी समय में आप शरीर के द्वारा सम्पूर्णता को प्राप्त कर लेंगे। इस विधाता के शाप का स्मरण करके भयभीत भी कामदेव ने शक्र के वचन से हर को काली के साथ योजित कर देने के कार्य को स्वीकार कर लिया था। और फिर उस काल के सदृश कामदेव ने यह वचन कहा था ॥१२६॥

करिष्ये तद्वच शक्र हर सगमयाम्यहम् ।
काल्या गिरिजया सार्धं दाक्षायण्या यथा पुरा ॥१२७
किन्त्वेक मम साहाय्य कर्ता त्व हरमोहने ।
यदा सन्मोहनेनाह हर सन्मोहयामि च ॥१२८
तदा कुरु सहाय त्व स्वस्थमाप्याययस्व माम् ।
प्रविश्याह सुरभिणा न चिराच्छकराश्रमम् ॥१२६
विधाय पूर्वं मनसो विकार हर्षणेन तु ।
समोहनेन सुदृढ मोहयिष्ये वृषध्वजम् ॥१३०
स्मरिष्यसि त्व सम्प्राप्ते काले मा मम पालने ।

अहं गच्छामि सहितं तत्कर्तुं बलसूदन ॥१३१
इत्युक्त्वा स जगामाथ मदनः शंकराश्रमम् ।
शक्रोऽपि त्रिदशान् सर्वांनिदमाह वचस्तदा ॥१३२
यूयं कुरुध्वं साहाय्यं यत्र याति मनोभवः ।
तत्र तत्रानुगम्यैव समये मां च बोधत ॥१३३

मदन ने कहा—हे इन्द्र देव ! मैं आपके वचन को पूर्ण करूँगा और गिरिजा काली के साथ भगवान् शम्भु को मङ्गल कर दूँगा जैसा कि पहिले दाक्षायणी के साथ किया था ॥१३७॥ किन्तु इस शम्भु के मोहन करने मे आप मेरी एक सहायता करने वाले होंगे । जिस समय मे मैं सम्मोहन के द्वारा हर का सम्मोहन करूँ उस अवसर पर आप मेरी सहायता करें और स्वस्थ मुझको आप्यायित करें । मैं सुरभि के द्वारा प्रवेश करके अर्थात् शङ्कर के आश्रम में शीघ्र ही प्रविष्ट होकर सर्व प्रथम दर्पण के द्वारा मन में विकार समुत्पन्न करके फिर सम्मोहन के द्वारा दृढ़ता से वृषध्वज को मोहित कर दूँगा ॥१२८—१३०॥ आप काल के प्राप्त होने पर मेरा स्मरण करोगे और मेरा पालन का ध्यान रक्खोगे । हे बल सूदन ! वह कार्य करने के लिये मैं सहित जाता हूँ ॥१३१॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इतना कहकर वह कामदेव शङ्कर के आश्रम मे गमन कर गया था । इन्द्र ने भी उस अवसर पर सब देवों से यह कहा था कि जहाँ पर काम देव जाता है वहाँ पर आप लोग इसकी सहायता करें । वहाँ-वहाँ पर अनुगमन करके समय पर मुझको बताओगे ॥१३३॥

यदा समोहनेनाथ समोहयति शंकरम् ।
तदामपि यास्यामि तत्र बोधत मां सुराः ॥१३४
इत्युक्तास्तेन शक्रेण देवा जग्मुर्मनोभवम् ।
सोऽपि गत्वा यत्र हरो गंगावतरणे गिरेः ।
हिमभाऽरभृतः सानौ सुरांश्च न्ययोजयत् ॥१३५

ततस्तत्र गते सम्यक्सुरभौ तस्य लक्षणम् ।
अभवन्नचिरादेव तरुगुल्मलतासु च ॥१३६
पुष्पिता किंशुकास्तत्र मंजुला केतकास्तथा ।
सरांसि च पद्मानि सविकाराश्च जन्तवः ॥१३७
ववौ वायुश्च गम्भीरो शबलः पुष्परेणुभिः ।
शनैः शनैः सुखकरः कर्पयन् स हि मानसम् ॥१३८
पक्षिणश्च मृगाश्चैव ये चान्ये प्राणधारिणः ।
सिद्धाश्च किन्नराश्चैव द्वन्द्वभावं वितेनिरे ॥१३९
चूता कुसुमितास्तत्र नवस्तवकभूषिता ।
अशोका पाटलाश्चैव नागकेशरकारुणाः ॥१४०

जिस समय में सम्मोहन के द्वारा यह कामदेव भगवान् शंकर का सम्मोहन करता है। हे सुरगणो ! उस समय में मैं भी वहाँ पर जाऊँगा—ऐसा मुझको जान लो ॥१३४॥ इस प्रकार से इन्द्रदेव के द्वारा कहे गये देवगण मनोभव अर्थात् कामदेव के पास चले गये थे। वह कामदेव भी गमन कर गया था जहाँ पर शम्भु गिरि के गङ्गावतरण स्थल में हिमालय के शिखर पर थे उसने सुरभि को नियोजित कर दिया था ॥ १३५ ॥ इसके अनन्तर सुरभि के वहाँ पर पहुँचने पर जिसका कि यह लक्षण था कि शीघ्र ही भली भाँति तरु-लता और गुल्मों में पुष्प खिल गये थे। वहाँ पर किंशुक विकसित थे और मन्जुल केतक भी पुष्पित हो गये थे। सभी सरोवर खिले हुए पद्मों से शोभायमान हो गये थे तथा सभी जन्तुओं को विकार हो गया था ॥ १३६—१३७ ॥ उस समय में सुगन्धित वायु वहन करने लगी थी जिसमें पुष्पों के रेणु सम्मिलित थे। जो धीरे धीरे सुखकर होकर मन को कर्षित कर रहा था ॥१३८॥ सभी पक्षी गण—मृगवर्ग और जो भी प्राण धारी जीव थे और सिद्ध एवं किन्नरगण ने द्वन्द्व भाव को विस्तृत किया था अर्थात् सभी प्राणी अपनी प्रियाओं के साथ रहने लगे

थे ॥१३९॥ आम्रों में बौर आगये थे और वे नूतन बौरों के स्तवकों (गुच्छों) से भूपित हो गये थे। अशोक पाटल और नाग केशर कारण सभी विकार से समन्वित थे ॥१४०॥

सविकारा गणाश्चासन् शंकरस्य तदा द्विजा ।
प्रत्यक्षतो ययुस्तेऽपि विकारं शम्भुसाध्वसात् ॥१४१
भ्रमन्ति स्म तदा तत्र भ्रमरा कुसुमोद्भवम् ।
पिवन्तो बहुशश्च्युत गुञ्जन्त सह जायया ॥१४२
एवं प्रवृत्ते सुरभौ शृंगारोऽपि गणैः सह ।
हावभावयुतस्तत्र प्रविवेश हरान्तिकम् ॥१४३
मदन सगणस्तत्र निवसंश्चिरमेव हि ।
न दृष्टवास्तदा शम्भोश्छिद्रं येन प्रवेक्ष्यति ॥१४४
यदा च प्राप्तविवरस्तदा भयविमोहित ।
नाग्रेसरोऽभवत् तस्य मदनो रतिवारित ॥१४५
एवं यातस्तस्य काल प्रभृतो द्विजसत्तमा ।
निरूपयन न वा चाप छिद्रं तस्य यतेस्तदा ॥१४६
ज्वलत्कालाग्निसंकाशं भानुलक्षसमप्रभम् ।
ध्यानस्थं शंकरं को वा समासादयितुं क्षम ॥१४७

हे द्विजो ! भगवान् शम्भु के गण भी विकार युक्त होकर प्रत्यक्ष में वे भी विकार वाले हो गये थे किन्तु शम्भु के भय से इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे। उस अवसर वहाँ पर भ्रमर कुसुमों से उद्भूत रस का पान करते हुए जो अत्यधिक च्युत हो रहा था अपनी जाया के साथ गुञ्जार करने वाले थे ॥१४१॥१४२॥ इस प्रकार से सुरभि के प्रवृत्त हो जाने पर शृङ्गार भी अपने गणों के साथ हाव—भावों से संयुत होकर उसने भी हर के समीप में प्रवेश किया था ॥१४३॥ वहाँ पर कामदेव तो अपने गणों के सहित चिरकाल तक निवास करने वाला हो गया था। उस समय में उसने कोई भी ऐसा छिद्र शम्भु में नहीं देखा

था जिसके द्वारा वह प्रवेश कर जावे ॥१४४॥ जिस समय म उसने छिद्र प्राप्त किया था उस समय मे वह भय से विमोहित हो गया था मदन आगे गमन करने वाला नही हुआ था क्योकि उस पत्नी रति क द्वारा वह वारित कर दिया गया था ॥१४५॥ हे द्विज सत्तमो ! इस प्रकार से उसको बहुत—सा समय व्यतीत हो गया था। उस समय म उन मति शम्भु का छिद्र का देखते हुए भी उसने कोई भी छिद्र नही प्राप्त किया था ॥१४६॥ प्रज्वलित कालाग्नि सदृश और लाखा सूर्यों के समान प्रभा वाले ध्यान म स्थित भगवान् शङ्कर के पास पहुचन के लिय कौन समथ था। अर्थात् किसी की भी ऐसी शक्ति नही थी ॥१४७॥

अथैकदा गिरिसुता काली नस्याभवत्पुर ।
कृत्वा परीष्टि कर्तव्यां सखिभ्या प्रणता स्थिता ॥१४८
शकरोऽपि तदा ध्यान त्यक्त्वा तत् क्षणमास्थित ।
योजयन् स्वगणान् कृत्ये ज्योतिश्चिन्ताविवर्जित ॥१४९
तच्छिद्र प्राप्य मदन प्रथम हर्षणेन तु ।
वाणेन हर्षयामास पार्श्वस्थ चन्द्रशेखरम् ॥१५०
शृङ्गारश्च तदा भावैर्हावैश्च सहितो हरम् ।
जगाम कामसाहाय्य कुर्वन् सुरभिणा सह ॥१५१
हर्षणेनातिहृष्टिन शृङ्गाराद्यैर्निषेवित ।
शकरो वदन काल्या साकूत सव्यलोकयत् ॥१५२
तत् प्राप्य विवर काम पुष्प चापे न्ययोजयत् ।
समोहन पुष्पवृत पुष्पमालाविवर्धितम् ॥१५३
तदाभूद् दक्षिणे पार्श्वे रति प्रीतिस्तु वामत ।
पृष्ठे वसन्ततूणीर पौष्पमादाय सुन्दर ॥१५४

इसके अनन्तर एक बार गिरि की पुत्री काली उनके सामने हुई थी जो करने के योग्य सेवा थी उस करके वह सखियो के साथ प्रणत

होकर स्थित हो गई थी ॥१४८॥ भगवान् शङ्कर भी उस अवसर पर अपने ध्यान का त्याग करके उसी क्षण मे समास्थित हुए थे। हृदय में अपने गणों को योजित करते हुए वे ज्योतिस्वरूप चिन्ता से रहित थ ॥१४६॥ कामदेव ने वही छिद्र प्राप्त करके सबसे प्रथम हर्षण बाण के द्वारा पार्श्व मे स्थित शम्भु को हर्षित किया था ॥१५०॥ और शृङ्गार भी हाव—भावो के सहित होकर वह शङ्कर के समीप गया था। वह शृङ्गार सुरभि के साथ मे कामदेव की सहायता कर रहा था ॥१५१॥ हर्षण बाण के द्वारा वे अति हर्षित होते हुए शृङ्गार आदि के द्वारा निर्वाणित हुए थे भगवान् शङ्कर ने विशेष अभिप्राय के सहित काली के मुख को अच्छी तरह से अवलोकित किया था ॥ १५२ ॥ कामदेव उसी छिद्र को प्राप्त करके पुष्प को चाप म नियोजित किया था। पुष्प से युत तथा पुष्प माला से रहित सम्मोहन को छोड़ा था ।१५३। उस समय म उसके दक्षिण पार्श्व में रति थी और वाम म प्रीति थी। पीछे की ओर सुन्दर वसन्त सुणीर और पौष्य का समादान करके स्थित था ॥१५४॥

आकर्णपूरितं पुष्पं चापमाकृष्य संयत ।
यदा मनोभवो वायुस्तदा त समुपेयिवान् ॥१५५
सहिते पुष्पवाणं तु गिरिजा चन्द्रशेखर ।
जातेन्द्रियविकार सन् जिघृक्षु सगमेऽभवत् ॥१५६
अमरा शक्रसहितास्तदा सर्वे वियद्गवता ।
मम्य मनोभव मेने सुरकृत्ने निवशितम् ॥१५७
अथ सस्मृत्य सयम्य निगृह्य विकृति तदा ।
इन्द्रियस्य महादेव सहसेद व्यचिन्तयत् ॥१५८
योनिजा गिरिजा काली तपोव्रतविवर्जिताम् ।
मय गममकामोऽद्य धर्तुमिच्छामि वै हठात् ॥१५६
तपोव्रतपविवाणी तपश्चरणसत्वताम् ।
स्वयमेव ग्रहीष्यामि सती दाक्षायणीमिव ॥१६०

कथ विकृतकामोऽहमनिच्छन्निव साम्प्रतम् ।
केनापि चाकृष्ट इव चिकीर्षु - सगमोद्भवम् ॥१६१

जिस समय मे कामदेव ने सयत होकर पुष्प चाप को कानो तक खींच कर प्रभु तथा उसी समय मे उसके समीप म वायु समुपस्थित हो गया था । पुष्प बाण के सहित होने पर चन्द्र शेखर प्रभु ने गिरिजा का अवलोकन किया था और इन्द्रिय के विकार समुत्पन्न होने वाले होकर सगम के लिये ग्रहण करने की इच्छा वाले वे हो गये थे । १५६ । इन्द्र के सहित सब देवगण उस अवसर पर आकाश म स्थित थे । उन्होंने कामदेव का परम सम्य माना था क्योकि वह देवो के कृत्य म निर्वाशित हो रहा था । १५७ । इसके अनन्तर महादेव जी ने सस्मरण करके और उस अवसर पर मानसिक विकार को रोककर जो कि इन्द्रिय का हुआ था उन्होन तुरन्त ही यह चिन्तन किया था । १५८ । गिरिजा यह काली योनिजा है और तपोव्रत से रहित मैं बल पूर्वक इसको पकडने की कैसे इच्छा कर रहा हूँ और क्यो सगम की कामना वाला होगया हूँ । १५९ । तप के व्रत मे पवित्र जगो वाली और तप के समाचरण से संस्कृत सती को दाक्षायणी की ही भाति मैं स्वय ही ग्रहण कर लूँगा । । १६० । मैं इस समय म इच्छा न रखते हुए भी विकार से युक्त काम वासना वाला हो गया हूँ । मैं किसी के द्वारा सगमोद्भव की करने की इच्छा वाले स समाकृष्ट सा हो गया हूँ ॥१६१॥

एव विकारहेतु स निश्चिन्वन्निन्द्रियस्य तु ।
पुरोवलोकयामास सहितेपु मनोभवम् ॥१६२
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा विज्ञातसमय सुरान् ।
दृष्ट्वा स्थानादाजगाम तत्समाजमनुग्रहात् ॥१६३
तत स कुपितो दृष्ट्वा सन्धितेपु मनोभवम् ।
जज्वाल ज्वलनप्रख्यस्त दिग्क्षु प्रसह्य तु ॥१६४
कामोऽय समय ज्ञात्वा मा मोहयितुमिच्छति ।

मनो मे स्ववशं कर्तुं तनयामि यमक्षयम् ॥१६५
एवं विचिन्तमानस्य नेत्रोद्भावितेतेजसा ।
वर्धतो ज्वलनो भूत्वा क्रोधं नेत्रान् ससर्ज ह ॥१६६
स क्रोधाग्नि सरिष्यन्तं जातवेद स्वरूपिणम् ।
ज्ञात्वा कामस्य तान् बाणान् पौष्पचापनिषण्णयान ॥१६७
शक्ति प्राणास्तथाऽत्मानमाकृष्यापालयद्विधिः ।
उत्सारयामास तदा वसन्तं स पितामह ॥१६८

इस प्रकार से इन्द्रिय के विकार के हेतु की खोज करते हुए हुए उन्होंने अपने सामने बाण को सहित किये हुए कामदेव को देखा था ॥ १६२ ॥ इसी बीच में ब्रह्माजी समय को विज्ञात करके सुरों को देखकर अनुग्रह से अपने स्थान से उस समान में समागत हो गये थे ॥१६३॥ इसके अनन्तर कण का स धान किये हुए कामदेव को देखकर वे शम्भु अधिक कुपित हो गये थे । वे अग्नि के समान ही प्रज्वलित हो गये थे और उसको बल पूर्वक दग्ध कर देने की इच्छा वाले हो गये थे ॥१६४॥ यह काम समय का ज्ञान करके मुझको मोहित करने की इच्छा करता है—मेरे मनको अपने वश में करना चाहता है इसलिये इसको यम क्षय को पहुँचाता हूँ ॥ १६५ ॥ इस प्रकार से चिन्तन करते हुए भगवान् शम्भु के नेत्र से उद्भावित तेज से जो कि बढ रहा था अग्नि होकर नेत्र से क्रोध की उत्पत्ति की थी ॥ १६६ ॥ क्रोध से निकलने वाली जात वेदा के स्वरूप वाली का ज्ञान प्राप्त करके कामदेव पुरुषों के भाव को निष्पण कामदेव के बाणों को जान करके शक्ति का, प्राणों को तथा आत्मा का आकर्षण करके विधाता ने पालन किया था और उस पितामह ने उस समय में वसन्त को उत्साहित किया था ॥१६८॥

निजशक्त्या तदा शम्भुर्क्रोधाद्रक्षन्मनोभवम् ।
अथावाशगता देवा क्रुद्धं दृष्ट्वा महेश्वरम् ॥१६९

प्रसीद जगता नाथ कामे क्रोध परित्यज ।
त्वया पुरा सृष्ट शम्भुरूपण कमणा ॥१७०
यन चायोजित कम तत्करोति मनोभव ।
तस्मात् त्व मदन शम्भो क्रोधाग्निमुपसहर ॥१७१
प्रसीद सवभूतेश भक्त्या त्वा प्रणता वयम् ।
इति स्म वदता तेपाममराणा तदानल ॥१७२
ललाटचक्षु सम्भूता भस्माकार्षीन्मनोभवम् ।
दग्ध्वा काम तदा वह्निर्ज्वालामालातिदीपित ॥१७३
सस्तम्भितोऽथ विधिना हर गन्तु शशाक न ।
महादेवोऽपि तदभस्म मनोभवशरीरजम ॥१७४
आदाय सवगात्रेषु भूतिलेप तदाकरोत् ।
लेपशेषाणि भस्मानि समादाय तदा हर ॥१७५

उस समय म अपनी शक्ति क द्वारा कामदव का शम्भु के क्रोध स रक्षित करत हुए महेश्वर का क्रोधित देखकर देवगण जो आकाश म स्थित थ उन्होंने प्रार्थना की थी कि हे जगती के नाथ ! प्रसन्न होइए और कामदेव पर क्रोध का त्याग कर दीजए। जिस प्रकार स पहिल आपन शम्भु रूप कम क द्वारा सृजन किया था और जिसन कम का आयोजित किया था उसी को कामदव कर रहा है। इस कारण स हे शम्भो ! कामदेव पर जो आपका क्रोधाग्नि है उसका उपसहार करिए ॥१६९—१७१॥ हे समस्त भूतो क स्वामिन् ! आप प्रसन्न हो जाइये ! हम लोग दइ हो भक्ति के भाव स आपक चरणो म प्रणत हुए हैं। इस भाँति वे देवगण कह रहे थ कि उनक कहते हुओ क सामने ही शम्भु क ललाट की चक्षु स समुद्भूत अनल न कामदेव को भस्म कर दिया था। ॥१७२॥ ज्वालाओ की मालाओ स अत्यन्त दीप्त उस वह्नि न कामदेव को दग्ध कर दिया था और वह फिर हर के समीप नही जा सका था। महादेव जी ने भी कामदेव के शरीर से समुत्पन्न उस भस्म को लेकर अपने समस्त अङ्गो म उसी समय म भूति का लेप कर लिया था।

॥१७३॥१७४॥ जो लेपन करने से बची हुई भस्म थी उसका हरन आदान कर लिया था ।१७५।

सगणोऽन्तदधे काली विहाय विधिसम्मते ।
ब्रह्मा क्रोधानल शम्भोदहन्त सकलान् सुरान् ॥१७६
वडवारूपिण चक्रे देवाना पुरतस्यदा ।
वडवा ता तदा देवा सौम्या ज्वालामुखी शुभाम् ॥१७७
दृष्ट्वा निर्विघ्नमनसो बभूवु पूर्वपीडिता ।
वडवा ता समादाय तदा ज्वालामुखी विधि ॥१७८
सागर प्रययौ लोक हिताय जगतापति ।
गत्वाथ सागर ब्रह्मा प्रोवाच परिपूजित ॥१७९
यथावत्तेन विप्रेन्द्रा समय च निवेदयन् ।
अय क्रोधो महेशस्य वडवारूपधृक त्वया ॥१८०
ज्वालामुख सदा धार्यो यावन्न विनयाम्यहम ।
यदा त्वामहमागम्य वदामि सरिता पते ॥१८१
तदा त्वया परित्याज्य क्रोधोऽय वडवामुख ।
भोजन भवतस्तोयमेतस्य तु भविष्यति ॥१८२

विधाता के द्वारा सम्मत होने पर शम्भु काली को त्याग कर गणो के सहित अन्तर्धान हो गये थे और ब्रह्माजी ने समस्त देवो को दहन करने वाली शम्भु की क्रोध की अग्नि को वडवा का रूप वाली देवों के आगे ही उस समय मे कर दिया था। उस अवसर पर देवो ने सौम्य—शुभ ज्वालामुखी वडवा को देखकर पूर्व पीडित देवगण निर्विघ्न मन वाले हो गये थे। उसी समय मे विधाता ने उस ज्वालामुखी वडवा को ग्रहण करके जगतो के स्वामी लोको के हित के लिये सागर में चले गये थे। ब्रह्माजी सागर पर गमन करके वहाँ परिपूजित होते हुए बोले थे ॥१७६—१७९॥ हे विप्रेन्द्रो ! यथा रीति उन्होने समय का निवेदन करते हुए कि यह महेश का क्रोध वडवा का स्वरूप धारण करने वाला

होवे और तुमको जब तक मैं विनय न करूँ तब तक ज्वालामुख होकर सदा कार्य करना चाहिए। हे सरिताओं के स्वामिन्। जिस समय में मैं समागत होकर कहूँ उस समय में इस बड़वा मुख क्रोध का आपको परित्याग करना चाहिए। आपका जल ही इसका भोजन होगा अर्थात् यह आपके जल को ही अपना आहार करेगा॥ १८०—१८२॥

यत्नादेवं विधार्योऽय यथा नो याति चान्तरम्।
इत्युक्तो ब्रह्मणा सिन्धुरङ्गीचक्रे तदा क्रुधम् ॥१८३
ग्रहीतुं वडवावक्त्रे शम्भोश्चाशक्यमप्यरम्।
ततः प्रविष्टो जलधौ पावको वडवामुखः ॥१८४
वार्योघान्निदहन् सम्यग् ज्वालामालातिदीपितः।
यदाभवच्छम्भुनेत्राद् ददाह मदनं तदा ॥१८५
अभवत् सुमहाशब्दो येनाकाशः प्रपूरितः।
तेन शब्देन महता कामदाहे क्षणेन च ॥१८६
सखीभ्यां सह भीताभूत् काली शोकयुता तदा।
तेन शब्देन हिमवांश्चकितो विस्मितस्तदा ॥१८७
सुतामेव जगामाशु गता काली हराश्रमम्।
ता तत्र काली तनया भयशोकाकुला शुभाम्।
रुदन्ती शम्भुविरहादाससादाचलेश्वरः ॥१८८

ब्रह्माजी ने कहा था कि इसको यत्नपूर्वक आपके द्वारा धारण करना चाहिए कि यह किसी अन्तर को प्राप्त न होवे। इस तरह से ब्रह्मा के द्वारा कहे हुए सिन्धु ने उस समय में उस क्रोध को अङ्गीकार कर लिया था॥ १८३॥ भगवान् शम्भु का अशक्य भी क्रोध को वडवा के मुख में ग्रहण करने के लिये वडवा का मुख पानक जलधि में प्रविष्ट हो गया था॥१८४॥ ज्वाला की मालाओं से अत्यन्त दीपित उस अग्नि ने जल के समूहों का भली भाँति दाह करते हुए जिस समय में वह शम्भु के नेत्र से उद्भूत हुआ था उसी समय में उसने कामदेव

कर दिया था ॥ १८५ ॥ उस महान् शब्द से काम के दाह क्षण भर में करने वाले से समस्त आकाश पूरित हो गया था। वह ऐसा ही महान् शब्द उस समय में हुआ था ॥ १८६ ॥ उस समय में काली अपनी सखियों के सहित शोक से संयुत होकर बहुत ही अधिक भय से भीत हो गई थी। उस शब्द से हिमवान् भी अतीव विस्मित और चकित हो गया था ॥ १८७ ॥ वह हिमवान् शीघ्र ही भगवान् शम्भु के आश्रम में गई हुई अपनी पुत्री काली के समीप में गया था। वहाँ पर पुत्री काली को भय और शोक से व्याकुल—रुदन करती हुई काली को अचलराज ने देखा था जो शुभा शम्भु के विरह से बहुत ही आकुल हो रही थी ॥१८८॥

आसाद्य पाणिना तस्या मार्जन्नयनद्वयम् ।
मा भैषीः कालि मा रोदीरित्वा तां तदाग्रहीत् ॥१८९
क्रोडीकृत्य सुतां तां तु हिमवानचलेश्वर ।
स्वमालयमथानिन्ये सान्त्वयामास चार्दिताम् ॥१९०
अन्तर्हिते हरे काली विरहात् तस्य सततम् ।
निवसन्ती पितुर्गेहे शुशोच च मुमोह च ॥१९१
शैलाधिराजोऽप्य गेनकापि मैनाकमुख्याऽपि सखीद्वय च ।
तां सान्त्वयाचक्रुरदीनसत्त्वा हर विसस्मार तथापि नोमा ॥१९२

उस शोकाकुल दशा में अपनी पुत्री के समीप में पहुँच कर हिमाचल ने अपने हाथ से उसके दोनों नेत्रों का मार्जन करते हुए कहा था—हे कालि ! डरो मत और रुदन भी मत करो—यह कहकर उसका ग्रहण कर लिया था ॥ १८९ ॥ अचलों के राजा हिमवान् ने उस अपनी पुत्री को अपनी गोद में बिठाकर अपने आलय में उसको ले आये थे और उस पीड़ित हुई को सान्त्वना दी थी ॥ १९० ॥ भगवान् शम्भु के अन्तर्धान हो जाने पर उनके विरह से युक्त होती हुई निरन्तर पिता के घर में निवास करती हुई भी बहुत चिन्तित हुई और मोह को प्राप्त हो

गई थी ॥ १६१ ॥ यद्यपि राजा ने—मेनका ने—मैनाक ने और दोनों सखियों ने उस अदीनसत्व वाली को सान्त्वना दी थी तो भी उस उमा ने भगवान् शम्भु का विस्मरण नहीं किया था ॥१६२॥



॥ गौरी परीक्षा वर्णन ॥

अथ देवमुनिर्यातो हिमवन्मन्दिरं तदा ।
नियोजितो वलभिदा नारदः कामगः परम् ॥१
स गतः पूजितस्तेन धरेशेन महात्मना ।
तं समुत्सृज्य रहसि कालीं तामाससाद ह ॥२
आसाद्य कालीं स मुनिः सम्बोध्य ज्ञानशालिनीम् ।
उवाचेदं वचस्तथ्यं सर्वेषां जगतां हितम् ॥३
शृणु कालि वचो मह्यं सत्यं तदवधारय ।
नेक्षितः स महादेवस्त्वयेह तपसा विना ॥४
अनुरक्तोऽपि तेन त्वां महादेवो विसृष्टवान् ।
त्वामृते शंकरो नान्यां द्वितीयां सम्ग्रहीष्यति ॥५
त्वं चापि नान्यं दयितं ग्रहीष्यसि विनेश्वरम् ।
तस्मात् त्वं तपसा युक्ता चिरमाराधयेश्वरम् ॥६
तपसा संस्कृतां त्वां तु स द्वितीयां वरिष्यति ।
मन्त्रोऽस्य तस्य सुभगे शृणु त्वं येन सोऽचिरात् ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर देवर्षि नारदजी जो अपनी इच्छा से ही परम गमन करने वाले थे इन्द्र के द्वारा नियोजित होते हुए उस अवसर पर हिमवान् के मन्दिर में समागत हुये थे ॥१॥ वे वहाँ पर पर्वतराज के द्वारा पूजित हुये थे जो हिमवान् महान् आत्मा वाले थे । उस हिमवान् को छोड़कर वे देवर्षि एकान्त में उस काली के समीप में प्राप्त हो गये थे ॥२॥ उस मुनिवर ने काली के समीप

पहुचकर उस ज्ञान शालिनी को सम्बोधित करके समस्त जगतो का हित करने वाला यह परम तथ्य वचन कहा था ॥३॥ देवर्षि ने कहा—हे कालि ! मेरे इस वचन का श्रवण करो और उसको परम सत्य समझो। तुमने तपश्चर्या के बिना ही उन भगवान् शम्भु की सेवा की है ॥४॥ वे महादेव उससे अनुराग करने वाले भी हैं किन्तु ने उन महादेव ने तुमको त्याग दिया था। तुम्हारे बिना वे शिव दूसरी अन्य किसी को भी ग्रहण नही करेगे ॥५॥ और तुम भी ईश्वर के बिना अन्य किसी पति को ग्रहण नही करोगी। इस कारण मे आप तपश्चर्या से सयुत होकर चिर काल पर्यन्त महादेवजी की आराधना करो ॥ ६ ॥ जब तुम तप से सस्कार वाली हो जाओगी तो वे तुमको अपनी पत्नी के रूप मे ग्रहण करेगे। हे सुभगे ! उसका यह मन्त्र है आप श्रवण करिये जिसके द्वारा वह शीघ्र ही प्राप्त होग ॥७॥

आराधितस्ते परयक्षो भविष्यति महेश्वर ।
ॐ नम शिवायेति च सर्वदा शकरप्रिय ॥८
चिन्तयन्ती तु तद्रुप नियमस्था षडक्षरम् ।
मन्त्र जप त्व गिरिजे तेन तुष्टो भवेद्धर ॥९
एवमुक्ता तदा काली नारदेन महात्मना ।
कर्तव्यमनुमेने सा हित तथ्यञ्च तद्वच ॥१०
अनुमान्य ततस्तन्तु तदा कालीञ्च नारद ।
स्वर्ग जगाम तस्याश्च निश्चिताभून्मतिर्व्रते ॥११
अथ याते देवमुनो काली सामाद्य मेनकाम् ।
तप श्रद्धा समाचख्ये चात्मनो हरसगमे ॥१२
तपस्तप्तु गमिष्यामि मात प्राप्तु महेश्वरम् ।
अनुजानीहि मा गन्तु तपसेऽद्य तपोवनम् ॥१३
तप करणयत्न मे पितुरावेदय द्रुतम् ।
यावन्न दह्ये जननि भूतेशविरहाग्निना ॥१४

इस प्रकार से आराधना किये हुए वे महेश्वर आपको प्रत्यक्ष होकर दर्शन देंगे। 'ओ नम शिवाय' यह मन्त्र सर्वदा भगवान् शकर का प्रिय है ॥८॥ आप उनके स्वरूप का चिन्तन करती हुई नियम मे स्थित रहकर छै अक्षरो वाला मन्त्र का आप जप करिये। हे गिरिजे ! इससे शिव सन्तुष्ट हो जायेंगे। ६॥ महात्मा नारद जी के द्वारा इस रीति से कही गयी काली उस समय म उसने अपना कर्त्तव्य मान लिया था क्योकि उनका वचन सर्वथा तथ्य और हितकर था ॥१०॥ उस समय मे नारदजी काली को तपश्चर्या का तपन करने को समुद्यत हुई अनुमान करके वे स्वर्ग गमन कर गये थे। और उसकी बुद्धि व्रत करने मे निश्चित हो गई थी ॥११॥ इसके अनन्तर देवर्षि के गमन करने पर काली मेनका के समीप मे पहुँची थी और अपना हर के सङ्गम प्राप्त करने के विषय में मेनका से तप करने करने की श्रद्धा को बतलाया था ॥ १२ ॥ काली ने कहा—हे माता ! मैं महेश्वर प्रभु की प्राप्ति करने के लिये तपश्चर्या करने के लिये गमन करूँगी। आज तप करने के लिये तपोवन को गमन करने के लिये आप मुझे आज्ञा प्रदान करिये। ॥१३॥ मेरे तप करने का यत्न है इसे आप पिताजी से शीघ्र ही निवदन कर दीजिये। हे जननि ! जब तक मैं भूतेश्वर के विरह की अग्नि से दग्ध न होऊँ इसके पूर्व ही मैं तप करना चाहती हू ॥१४॥

इति तस्या वच श्रुत्वा मेनका शोककर्शिता।
आलिग्य स्वसुताभूचे मा तप कुरु वल्लभे ॥१५
मृदुदेहासिपुत्रि त्व मा तपो याहि कर्कशम्।
तप सोढु मुनेर्गात्र शक्त ते न कलेवरम् ॥१६
वनवासश्च ते पुत्रि नेष्ट शत्रुगणैरपि।
तस्मात् त्व सम्परित्यज्य वनवासोद्भव तप।
आत्मनो ह्यनुरूपेण तपस्तत् कुरु यद्धितम् ॥१७
मातु सा वचन श्रुत्वा गिरिजा दीनमानसा।

इत्युक्ते च तदा वाक्य तपोयत्नपरा प्रसूम् ॥१८
मा निषेधय मा यास्ये तपसेऽद्य तपोवनम् ।
प्रच्यन्नमपि यास्यामि नानुज्ञाताप्यह त्वया ॥१९
गृहेषु देवा सतत ब्रह्मविष्णुशिवादय ।
तस्माद् गृहे पुत्रि देवानर्चय त्व यथेप्सितान ॥२०
स्त्रीणा तपोवनगतिर्न श्रुता स्वामिना विना ।
तस्मान्न युज्यते पुत्रि तपोयात्रा वनं प्रति ॥२१

उस काली के इस वचन का श्रवण करके मेनका शोक से कर्षित हो गई थी। उसने अपनी पुत्री का आलिङ्गन करके उससे कहा था—हे वत्सले ! तपस्या मत करो ॥१५॥ हे बेटी ! तुम्हारा शरीर बहुत ही कोमल है तपश्चर्या जैसे कठोर कर्म करने के लिये गमन मत करो। तपस्या के कष्ट को सहन करने के लिये मुनियों का शरीर ही समर्थ होता है तुम्हारा शरीर उस क्लेश को सहन करने मे क्षमता नहीं रखता है ॥ १६ ॥ हे पुत्रि ! आपका वन मे निवास करना तो शत्रुगणों को भी कभी अभीष्ट नहीं है। इसी कारण से तुम वन के निवास से होने वाले तप का विचार का परित्याग करदो। तुम्हारे अपने शरीर के जो अनुरूप हो वही तप करो जो घर में सम्पादन करने वाला होवे ॥१७॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उस गिरिजा ने माता के वचन का श्रवण किया और वह दीन मन वाली होगई थी। और वह तपस्या के यत्न मे परायण होती हुई उस समय में उसने माता से यह वचन कहा था ॥१८॥ मुझे निषेध मत करो। मैं आज तप के लिए तपोवन में गमन करूँगी। यदि आपके द्वारा मुझे आज्ञा नहीं दी गयी तो मैं छिपकर चली जाऊँगी ॥१९॥ मेनका ने कहा—हे पुत्रि ! गृह में ब्रह्मा—विष्णु और शिव आदि देवगण निरन्तर ही निवास किया करते हैं। इस कारण से तुम जो भी देव अभीष्ट हों उनका घर में ही

अभ्यर्चन करो ।।२०।। स्वामी के बिना अर्थात् अपने स्वामी से रहित होकर स्त्रियों की तपोवन में गति का होना कभी भी नहीं सुना गया है। इस कारण से हे पुत्रि ! वन की ओर गमन करके तपश्चर्या की यात्रा करना उचित नहीं प्रतीत होता है ।।२२।।

यतो निरस्ता तपसे वनं गन्तुं च मेनया ।
उमेति तेन सोमेति नाम प्राप तदा सती ।।२२
अवज्ञाय तदा मातुर्वचनं हिमवत्सुता ।
सखीभ्यां ज्ञापयासास पितरं तपसोद्यमम् ।।२३
स तु ज्ञात्वा गिरिपतिस्तपसे चरितोद्यमम् ।
दुहितुश्चानुमेने च नातिहृष्टमना इव ।।२४
सानुज्ञाप्य तदा तातं यत्र दग्धो मनोभवः ।
शम्भुना प्रययौ तत्र गंगावतरणं प्रति ।।२५
गंगावतरणं नाम प्रस्थो हिमवतः स च ।
हरशन्योऽथ ददृशे काल्या तच्चिन्तया तदा ।।२६
यत्र स्थित्वा पुरा शम्भुर्ध्यानवानभवद् भृशम् ।
तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता ।।२७
हा हरेति क्षणं तत्र रोदमाना गिरेः सुता ।
विललापातिदुःखार्ता चिन्ताशोकसमन्विता ।।२८

क्योंकि मेनका के द्वारा तपस्या के लिये वन में जाना निरस्त कर दिया था अर्थात् निषेध कर दिया गया था उस समय में सती उमा ने सोमा—यह नाम प्राप्त कर लिया था ।।२२।। उस अवसर पर हिमाचल की पुत्री ने माता के वचन की अवज्ञा करके सखियों के द्वारा तप करने के उद्यम की पिता को ज्ञापित किया था ।।२३।। उस गिरियों के स्वामी ने तप के लिये समाचरित उद्यम का ज्ञान प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न मन वाला न होते हुए ही अपनी पुत्री को अनुमति दे दी थी। ।।२४।। उसी समय में उस सती ने पिता को अनुज्ञापित करके जहाँ

पर कामदेव शम्भु के द्वारा दग्ध किया गया था वहीं पर गङ्गावतरण की ओर वह चली गयी थी ॥२५॥ गङ्गावतरण नाम वाला एक हिमालय का प्रस्थ है। उसको काली ने भगवान् हर के रहित ही देखा था। उस समय में उनकी चिन्ता से मयुत हो गई थी। २६। पहिले जहाँ पर स्थित होकर शम्भु बहुत ध्यान वाले हुए थे। उस क्षण में वह काली स्थित होकर वहाँ पर विरह से पीडित हो रही थी। २७। गिरि की पुत्री वहाँ पर हाहर'—यह कहती हुई रुदन करने वाली होती हुई चिन्ता और शोक से समन्वित तथा अत्यन्त दुःख से पीडित होती हुई विलाप करने लगी थी ॥ २८ ॥

क्षण विलप्य सा काली स्मृत्वा पूर्वोद्भवं तदा ।
हार्दं हरस्य सा मोहमवाप कमलेक्षणा ॥२६
ततश्चिरेण सा मोह धैर्यात् सस्तभ्य भामिनी ।
नियमायाभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत्-सुता ॥३०
प्रथम नियमस्तस्या बभूव फलभोजनम् ।
चर्या पञ्चातपा चिन्ता शाम्भवी शाम्भवो जप ॥३१
प्रज्ज्वलद्भिर्दारुभि शुष्कैश्चतुर्दिक्षु चतुष्कृतम् ।
वह्निसस्थापन ग्रीष्मे तीव्राशुस्तत्र पचम ॥३२
हस्तान्तरे चतुर्वह्नीन कृत्वा वैश्वानरेष्टिन' ।
तन्मध्यस्था सूर्यबिम्ब वीक्षन्ती वल्कलाशुका ॥३३
ग्रीष्म निन्ये वह्निमध्ये शिशिरे तोयवासिनी ।
प्रथम फलभोगेन द्वितीय तोयभोजनम् ॥३४
तृतीय तु स्वयम्पाति-वृक्षपल्लव-भोजनम् ।
क्रमण तु तदा पूर्ण निरस्य हिमवत् सुता ॥३५

क्षण भर तक उस काली ने विलाप किया था फिर उसी समय में उसको पूर्व उद्भव का स्मरण हो गया था। वह कमलों के समान नेत्रों वाली उसने हरके हार्द को और मोह को प्राप्त किया था ॥२६॥

इसके पश्चात् चिरकाल में उस भामिनी ने धीरता से मोह का संस्तम्भन किया था और वहीं पर नियम के लिये वह हो गई थी और हिमवान् की सुता नियम के लिये दीक्षित होगई थी । ३० । उसका प्रथम नियम फलों का ही भोजन करके रहना था । पञ्च अग्नियों की तपस्या ही उसकी चर्या थी—शम्भवी अर्थात् शम्भु से सम्बन्ध रखने वाली चिन्ता थी तथा सम्बन्धित जप था । ३१ । यज्ञिय अर्थात् यज्ञ में काम आने वाले सूखे हुए काष्ठों से चारों दिशाओं में चार जगह वह्नि की संस्थापना ग्रीष्म में की थी और वहाँ पर पांचवा तीव्रांशु सूर्य थे । ३२ । एक हाथ के अन्तर पर चारों वह्नियों का स्थापन करके जो कि वैश्वानर की दृष्टि के द्वारा की गयी थी । उनके मध्य में स्थित होती हुई वल्कलों के वस्त्रों वाली सूर्य के बिम्ब का वीक्षण करती थी । ३३ । ग्रीष्म ऋतु को अग्नि के मध्य में संस्थित रह कर व्यतीत किया था और शिशिर में वह जल में वास करने वाली हुई थी । प्रथम समय फलों के उपयोग के द्वारा और द्वितीय समय केवल जल के ही भोजन में व्यतीत किया था । तीसरा समय सुतरा गिरे हुए वृक्षों के पत्तों का भोजन करके व्यतीत किया था । उस समय में हिमवान् की पुत्री ने क्रम से पत्रों को भी निरस्त कर दिया था ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

निराहारव्रता भूत्वा तपश्चरणखिन्निका ।
आहारे त्यक्तपर्णाभूद्यस्माद्धिवतः सुता ॥३६
तेन देवैरपर्णेति कथिता पृथिवीतले ।
पंचातपव्रतेनैव तोयानाञ्च प्रवेशनैः ॥३७
एकपादस्थिता सा तु वसन्ते हिमवत्सुता ।
षडक्षरं जपन्ती सा चिरं तेपे तपो महत् ॥३८
चीरवल्कलसंवीता जटासंघातधारिणी ।
कृशांगी चिन्तने शक्ता जिगाय तपसा मुनीन् ॥३९
ता तपश्चरणे शक्ता ररक्ष शंकरः स्वयम् ।

आप्यायति स्म स सदा भयाद्रक्षति हर्षितः ॥४०
एवं तस्यास्तपस्यन्त्याश्चिन्तयन्त्या महेश्वरम् ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जग्मु कास्यास्तपोवने ॥४१
षट्त्रिवर्षसहस्राणि सत्कृता वीक्षणात् स्वयम् ।
दैवेन विधिना देवी हरयोग्या तथाभवत् ॥४२

बिना ही आहार के व्रत वाली होकर वह तपश्चरण में निमग्न हो गई थी क्योंकि हिमवान् की पुत्री ने आहार में पर्णों का भी त्याग कर कर दिया था। ३६। इसी से देवों ने पृथिवी तल में उसको अपर्णा कहा था। पाँच अग्नियों के ताप सेवन से और जल में प्रवेशों के द्वारा—उसने तप किया था। ३७। वह हिमाचल की पुत्री वसन्त में एक ही पाद से स्थित हुई थी। छै अक्षरों वाले मन्त्र का जप करती हुई उसने चिरकाल पर्यन्त महान् तप के तपन का समाचरण किया था। ३८। वह चीरों और वल्कलों से शरीर को ढाँपने वाली थी। वह जटा जूटों के समूह रखने वाली थी। उसके सब अङ्ग कृश हो गये थे और वह चिन्तन करने में शक्त थी उसने ऐसा तप किया था कि तप के द्वारा मुनियों को भी जीत लिया था। ३६। उस तपस्या के समाचरण में उसकी रक्षा स्वयं भगवान् शम्भु ने की थी। वे भगवान् शम्भु उसको सदा ही आप्यायित करते थे और हर्षित होकर उसकी भय से भी रक्षा किया करते थे। ४०। इस प्रकार से काली को जो वह तपस्या कर रही थी और महेश्वर का चिन्तन कर रही थी तपोवन में तीन सहस्र वर्ष व्यतीत होगये थे। ४१। तिरेसठ सहस्र वर्ष हुए तब वह स्वयं वीक्षण से सत्कृत हो गई थी। दैव विधि के द्वारा वह देवी हर के योग्य हो गई थी ॥४२॥

षट्त्रिवर्षसहस्रान्ते यत्र तेपे तपो हरः ।
तत्र क्षणमथोषित्वा चिन्तयामास भामिनी ॥४३
नियमस्था महादेव मां किं जानाति नाधुना ।
येनाहं सुचिरं तेन नानुज्ञाता तपोरता ॥४४

लोके नास्त्यत्र गिरिश कि तत्र मुनिभि- स्तुत. ।
सर्वज्ञ- सर्वगो देवो हरो देवैनिगद्यते ॥४५
स सर्वगस्तु सर्वज्ञ. सर्वात्मा सवहृद्गत: ।
सर्वभूतिप्रदो देव. सर्वभावनभावन. ॥४६
सती च मेनका माता यदि चाह वृषध्वज ।
सानुरवना नचान्यस्मिन् स प्रसादतु शकरः ॥४७
यदि नारदवक्त्रोत्थो मन्त्रोऽय स्यात्षडक्षर. ।
यदि भक्त्या मया जप्त हरस्तेन प्रसोदतु ॥४८
सत्य यदि तपस्तप्त सत्य चाराधिता हर. ।
सत्य भवेद् यदि तपो हरस्तेन प्रसोदतु ॥४६

तिरेपठ सहस्र वर्षो के अन्त मे जहां पर भगवान् शम्भु ने तपस्या की थी। वहीं पर क्षण भर स्थित होकर भावना से चिन्तन किया था ॥४३॥ महादेव क्या इस समय मे नियमो म सास्थत हुई मुझको नही जानते हैं जिस कारण से बहुत अधिक काल पर्यन्त तप म रत हुई मुझ अनुग्रह नही किया है ॥ ४४ ॥ क्या मुनियो के द्वारा स्तवन किये गये गिरिश लोक म यहां पर नहो है। देवो के द्वारा तो हर सब कुछ के ज्ञान रखने वाले—सर्वत्र गमन करने वाले देव कहे जाया करते है। ॥ ४५ ॥ वह सर्वत्र गामी—सर्वज्ञाता—सबकी आत्मा—सबके हृदय म रहने वाले—सबम विभूति प्रदाता और सब भावको के भी भावन देव है—मैं सती और मेरी माता मेनका है यदि मैं वृषभध्वज मे अनुराग से युक्त हूं और अन्त मे मेरा अनुराग नही है तो वे शङ्कर मुझ पर प्रसन्न हो जावें ॥ ४६—४७ ॥ यदि नारद के मुख से निकला हुआ छै अक्षरो वाला मन्त्र है यदि भक्तिभाव से मैंने इसका जप किया है तो इससे हर प्रभु मुझ पर प्रसन्न हो जावे ॥ ४८ ॥ यदि वास्तव मे मैंने सत्य तप किया है और सत्यतापूर्वक मैंने हर की आराधना की है। यदि तप सत्य है तो इससे भगवान् हर मुझ पर प्रसन्न हो जावे ।४६।

एवं विचिन्तयन्ती सा यदातिष्ठद्धराश्रमे ।
अधोमुखी दीनवेशा जटावल्कलमण्डिता ॥५०
तदैव ब्राह्मणः कश्चिद् ब्रह्मचारी धृतव्रतः ।
कृष्णाजिनोत्तरीयेण धृतदण्डकमण्डलुः ॥५१
ब्राह्मया श्रिया दीप्यमानः स्वर्गोश्च सुशोभनः ।
जटाभिः परिवीताभिरुद्रिक्तस्तनुदेहभृत् ॥५२
उपस्थितस्तदा काली शम्भुर्ब्राह्मणरूपधृक् ।
आसाद्य प्रथमं कालीं समाभाष्य तदा द्विजः ॥५३
ज्ञातुं प्रत्यक्षतो रागं श्रोतुमिच्छंश्च तद्वचः ।
वाग्मी विचित्रवाक्येन पप्रच्छ गिरिजां तदा ॥५४
का त्वं कस्यासि कल्याणि किमर्थं विजने वने ।
तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रयतात्मभिः ॥५५
न बाला त्वं नापि वृद्धा तरुणी चातिशोभना ।
कथं पतिं विनाभीक्ष्णं तपश्चरसि साम्प्रतम् ॥५६

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—वह काली इस प्रकार से विशेष चिन्तन करती हुई जब भगवान् के आश्रम में संस्थित हुई थी जिसका मुख नीचे की ओर था—दीन वेश था और वह जटा तथा वल्कलों से मण्डित थी ॥५०॥ उसी समय में व्रतधारी ब्रह्मचारी कोई ब्राह्मण कृष्ण मृग की छाला का उत्तरीय से शोभित—कमण्डलु और दण्ड धारण किये हुए जो ब्राह्मी श्री से देदीप्यमान था—वह स्वर्गो और परम शोभन था। वह परिवीत जटाओं से उद्रिक्त तनु को धारण करने वाला था। वह ब्राह्मण के स्वरूप को धारण करने वाले शम्भु उसी समय में काली के समीप में उपस्थित हो गये थे। काली के पास पहुँच कर उस द्विज ने उससे सम्भाषण किया था ॥ ५१—५२ ॥ उस समय में प्रत्यक्ष रूप से अनुराग का ज्ञान प्राप्त करने के लिये और उसके मुख से वचन का श्रवण करने के लिये इच्छा करते हुए उस वाग्मी ने विचित्र वाक्य के

द्वारा उस समय मे गिरिजा से पूछा था ॥५३—५४॥ ब्राह्मण न कहा—हे कल्याणि ! आप कौन हैं और किसकी पुत्री हैं ? इस विजन वन म किस लिये प्रियतात्मा मुनियो के साथ यह दुर्धर्ष तप कर रही है ? ॥५५॥ आप न तो बाला हैं और न आप वृद्धा ही हैं। आप तो अत्यन्त शोभन तरुणी हैं। बिना पति के निरन्तर क्यो यह इस समय मे तपस्या कर रही हैं ? ॥५६॥

किंवा तपस्विनी भद्रे कस्यचित् सहचारिणी ।
तपस्विन स पुष्पादि समाहर्तुं गतोऽन्यतः ॥५७
एतन्मम समाचक्ष्व यदि गुह्य भवेन्न ते ।
यदि ते हृदये मन्यु: कश्चिद्वसति सम्प्रति ।
तदाचक्ष्व समर्थोऽस्मि तमह चापि वारितुम् ॥५८
इत्युक्ता तेन विप्रेण गिरिजाय निजा सखीम् ।
तस्योत्तरप्रदानाय कटाक्षेण न्ययोजयत् ॥५६
सा सखी विजया तस्या वचनाद् ब्राह्मण तदा ।
प्रोवाचेद यथातथ्य वीक्षन्ती गिरिजामुखम् ॥६०
एतस्य गिरिराजस्य तनयेय द्विजोत्तम ।
ख्याता च पार्वतीनाम्ना कालीति च गुणोमना ॥६१
ऊढे यत्र च केनापि शकर वृषभध्वजम् ।
वाञ्छन्ती दयित तीव्रं तपश्चरति वै पतिम् ॥६२
त्रीणि वर्षसहस्राणि तपन्तपति भामिनी ।
न शकरो गिरिसुतामद्याप्यनुरज्यते ॥६३

लिये समर्थ हूँ ॥५७॥५८॥ उस विप्र के द्वारा इस रीति में कही हुई गिरिजा ने अपनी सखी को उसको उत्तर देने में लिए कटाक्ष के द्वारा नियोजित कर दिया था ॥५९॥ उसकी विजया नाम वाली सखी उस समय मे उसके वचन मे गिरिजा के मुख को देखती हुई ने यथा तथ्य कहा था ॥६०॥ हे द्विजोत्तम ! यह इसी गिरिराज की पुत्री है और यह पार्वती—इस नाम से प्रख्यात है और सुशोभना काली के नाम से भी प्रसिद्ध है ॥६१॥ यह किसी भी द्वारा कही नही गयी है। यह वृषभ-ध्वज शङ्कर को अपना दयित पति चाहती हुई तीव्र तप का समाचरण कर रही है ॥६२॥ तीन सहस्र वर्ष हुए यह भामिनी तपस्या कर रही है किन्तु भगवान् शकर इस गिरिराज की पुत्री को प्राप्त नही हो रहे है ॥६३॥

शकरो गिरिशो देव सर्वग परमेश्वर. ।
इति स्म गद्यते देवैर्मुनिभिश्च तपोधनं. ॥६४
किमेना स न जानाति कि सानो नास्ति वा गिरे. ।
इति चिन्ताविपर्ण्णेयमद्य नो लभते सुखम् ॥६५
अप्रार्थितस्त्वमनया दयसे यदि वा सुखम् ।
तदैना शकरेणाद्य त्व सगमय सुव्रत ॥६६
इति तस्या वच श्रुत्वा ब्रह्मचारी तदा द्विज ।
स्मयमान इद वाक्य हेलयोवाच पार्वतीम् ॥६७
अमोघदर्शनश्चास्मि हर चानयितु क्षम. ।
किन्त्वेक निगदाम्यद्य निश्चित ममन्त शृणु ॥६८
जानाम्यह महादेव त वदामि शृणुष्व मे ।
वृषध्वजो महादेवो भूतिलेपी जटाधर ॥६९
व्याघ्रचर्मांशुकश्चंक: सवीतो गजकृत्तिना ।
कपालधारी सर्पौघं सर्वगात्रेषु वेष्ठित. ॥७०

भगवान् शकर गिरिश देव सर्वत्र गमन करने वाले परमेश्वर

यह देवों—मुनिगणों और तपस्वियों के द्वारा कहे जाया करते हैं ॥६४॥ क्या वे इसको नही जानते हैं क्या वे पर्वत के शिखर पर विद्यमान नही हैं ? यह आज इसी चिन्ता दुःखित है और इसको सुख प्राप्त नहीं हो रहा है ॥६५॥ इसमे आपसे प्रार्थना नही की है । यदि आप दया करते हैं अथवा इसको सुख देने की कृपा करते हैं हे सुव्रत ! आज भगवान् शङ्कर से इसका सङ्गम कर दीजिए ॥ ६६ ॥ उस समय मे द्विज ब्रह्मचारी ने उस समय मे उसके इस वचन का श्रवण करके मुस्कराते हुए ही हेला से उस पार्वती को यह वचन बोला था ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण ने कहा—मैं अमोघ दर्शन वाला हूँ और मैं भगवान् हर को लाने के लिये भी समर्थ हूँ । किन्तु मैं आज एक बात कहता हूं—मेरा निश्चित मत का श्रवण करिए ॥ ६८ ॥ मैं महादेवजी को जानता हूँ, मैं उनको बोल भी दूंगा किन्तु मुझसे सुनलो वृषध्वज महादेव विभूति के वेष वाले हैं और जटाधारी हैं ॥ ६९॥ वे बाघम्बर के वस्त्र धारण करने वाले हैं वे एकाकी है और गज के चर्म से ढके हुए रहते हैं वे कपालों को धारण करने वाले हैं ,तथा सर्पों के समुदायों से वेष्टित रहा करते हैं ॥७०॥

विषदग्धगलस्त्र्यक्षो विरूपाक्षो विभीषणः ।
अव्यक्तजन्मा सततं गृहभोग्यविवर्जितः ॥७१
ज्ञातिभिर्बान्धवैर्हीनो भक्ष्यभोज्यविवर्जितः ।
श्मशानवासी सततं तत्सगपरिवर्जितः ॥७२
गर्जद्भिर्विकटैस्तोदर्णभूतौघैः परिवारितः ।
शृगाररसहीनश्च भार्यापुत्रविवर्जितः ॥७३
केन वा कारणेन त्वं भर्तारं त समीहसे ।
पूर्वं श्रुत मया चैव तस्यापरमिदं कृतम् ॥७४
शृणु ते निगदाम्यद्य यदि ते शृण्ण रोचते ।
दक्षस्य दुहिता साध्वी सती वृषभवाहनम् ॥७५

यत्रे पति पुरा देयात् सम्भोगपरिवर्जितम् ।
कपालिजायेति मती दक्षेण परिवर्जिता ॥७६
यज्ञभागप्रदानाय शम्भुश्चापि विवर्जितः ।
साथ तेनापमानेन भृश शोकाकुला सती ॥७७

उन शम्भु का गला विष से दग्ध हो रहा है उनके तीन नेत्र हैं—वे निरपाक्ष हैं और विभीषण है अर्थात् विशेष रूप से भयङ्कर हैं। उनका जन्म भी अव्यक्त है अर्थात् उनके जन्म के विषय में कुछ भी किसी को ज्ञान नहीं है व निरन्तर गृहस्थाश्रम के भोग्य से रहित हैं ॥ ७१ ॥ शङ्कर ज्ञातिजन तथा बन्धुजनों से हीन हैं और भक्ष्य भोग्य से भी वर्जित हैं। शम्भु निरन्तर श्मशान में निवास करने वाले हैं और सङ्ग से परिवर्जित रहा करते हैं ॥ ७२ ॥ गर्जन करने वाले—विकृत स्वरूपधारी और तीक्ष्ण भूत गणों से सदा घिरे हुए रहा करते हैं। शङ्कर शृङ्गार रस से रहित हैं तथा उनके न कोई भार्या है और न पुत्रादि ही हैं ॥ ७३ ॥ अथवा किस कारण से आप उनको अपना भर्त्ता बनाना चाहती है। मैंने पूर्व में होने वाला भी उनका एक दूसरा वृत्त सुना है ॥ ७४ ॥ आप उसका श्रवण करिये मैं आज आपको बतलाता हूँ। यदि आपको अच्छा लगे तो ग्रहण कीजिए। प्रजापति दक्ष की पुत्री सती परम साध्वी थी उसने पहिले वृषभ वाहन को अपना पति वरण किया था। यह भाग्य की ही बात थी वह पति सम्भोग से रहित थे। यह तो कपाली की जाया है—इसी से वह सती दक्ष के द्वारा परिवर्जित करदी गयी थी ॥ ७५—७६ ॥ यज्ञ में भाग के प्रदान करने के लिये शम्भु को भी वर्जित कर दिया गया था। उसी अपमान के होने से सती अत्यधिक शोक से आकुल हो गई थी ॥७७॥

तत्याज स्वा प्रिया प्राणास्तया त्यक्तश्च शंकर ।
त्व स्त्रीरत्न तव पिता राजा निखिलभूभृताम् ॥७८
तथाविध पति कस्मादुग्रेण तपसेहसे ।

देवेन्द्रो वा धनेशो वा पवनो वाप्यपांपति ॥७६
अग्निर्वाऽन्य सुरो वापि स्वर्वैद्यावश्विनावपि ।
विद्याधरो वा गन्धर्वो नागो वा मानुषोऽथ वा ॥८०
रूपयौवनसम्पन्न समस्तगुणसंयुत ।
स ते योग्य पति श्रीमानुदारकुलसम्भव. ॥८१
येन त्वं बहुरत्नौघ-पूरितेऽनर्घविस्तृते ।
माल्यप्रकरसंयुक्ते धूपचूर्णं सुवासित ॥८२
मृद्वास्तरणसंयुक्ते विस्तृते सुमनोहरे ।
चारुप्रासादगर्भस्थे जाम्बूनदविचित्रिते ॥८३
शय्यातले समासाद्य स योग्यस्ते भवेत् पति ।
एवं ज्ञात्वाऽद्य सुभगे यदि वाञ्छसि शंकरम् ।
नि ते नपाभि सुनरामह त योजय त्वया ॥८४

उस सती ने अपने परम प्रिय प्राणों का परित्याग कर दिया था। भगवान् शङ्कर भी त्याग कर दिये गये थे। आप तो स्त्रियों में रत्न के ही समान अत्युत्तम है। आपका पिता हिमवान् सभी पर्वतों का राजा है ॥ ७८ ॥ फिर किस कारण से उस प्रकार के पति के प्राप्त करने की इस उग्र तप के द्वारा इच्छा कर रही है ? देवों का स्वामी—धनेश—पवन—वरुण—अग्नि अथवा कोई अन्य देव अथवा स्वर्वैद्य अश्विनीकुमार—विद्याधर—गन्धर्व—नाग अथवा मानुष जो भी रूप और यौवन [illegible] सुसम्पन्न हो और समस्त गुण गण से समन्वित हो ऐसा ही उदार कुल में समुत्पन्न होने वाला श्री सम्पन्न आपका पति योग्य है ॥ ७६—८१ ॥ जिसके द्वारा आप बहुत रत्नों के समूह—से पूरित—बहुमूल्यों में विस्तृत—माल्य प्रकरों से संयुत—धूप के चूर्णों से सुवासित—कोमल आस्तरण से समन्वित—सुमनोहर सुविस्तृत—सुरम्य प्रासाद के मध्य में स्थित—सुवर्ण के द्वारा विशेष रूप से चित्रित शय्या के तल में समासादन करके संस्थित रहने वाला ही आपका योग्य पति

होगा। हे सुमखे! इस भाँति ज्ञान प्राप्त करके भी यदि आप शङ्कर को ही अपना पति बनाना चाहती हैं तो फिर आपको इन तपस्याओं से क्या प्रयोजन है मैं अपने आप ही उनके साथ योजित किये देता हूँ ॥८२—८४॥

इति श्रुत्वा तदा काली ब्राह्मणस्योत्तरं तदा।
मितं तथ्यं जगादेनं ब्राह्मणं कोपसंयुक्ता ॥८५
न जानासि हरं देवं त्वं जानामीति भाषसे।
वहिर्यद् दृश्यते तत्तं कथितं द्विजनन्दन ॥८६
यस्य भावं न जानन्ति सेन्द्रा ब्रह्मादयः सुराः।
तस्य त्वं विप्रतनय शिशुर्ज्ञास्यसि किं भवम् ॥८७
यच्छ्रुतं भवता नीचवदनाद् भाषितं लघु।
इतस्ततस्तु श्रुत्वैव भाषसे त्वं न दृष्टवान् ॥८८
तस्मात् त्वत्तो वरं नाहं वाञ्छये नापि वा पतिम्।
अन्यद् वद न च त्वत्तो वाञ्छे हरसंगमम् ॥८९
इत्युक्त्वा गिरिजा विप्रमवलोक्य सखीमुखम्।
इदमाह तदा काली संशयारूढचेतना ॥९०
महता चिन्तनेनेह तपसाराधितो हरः।
तन्ममाग्रे विप्रसुतो निन्दितुं वाक्यमुक्तवान् ॥९१

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उस अवसर यह सुनकर काली क्रोध से संयुक्त होती हुई इस ब्राह्मण को उसने उत्तर के रूप में बहुत ही अल्प और तथ्य कहा था ॥ ८५ ॥ काली ने कहा—तुम देवेश्वर हर को नहीं जानते हो—व्यर्थ ही यह कहते हो कि मैं जानता हूँ। हे द्विज-नन्दन! जो कुछ बाहिर दिखलाई देता है वही आपने कह डाला है। ॥ ८६—८७ ॥ जिन प्रभु के शम्भु के भाव को इन्द्रादि और ब्रह्मा, प्रभृति सुर भी नहीं जानते हैं। उनके भाव को तुम शिशु होते हुए हे विप्रसुत! क्या जान सकोगे ॥ ८७ ॥ आपने जो भी नीचों के मुख से

भाषित कुछ सुना है वह बहुत तुच्छ है। आप इधर-उधर से सुनकर ही ऐसा भाषण कर रहे हैं। आपने उनका कभी भी दर्शन नहीं किया है ॥ ८८ ॥ इस कारण से मैं आपसे वरदान नहीं चाहती हूँ और पति के विषय मे जानना चाहती हू अब आप अन्य कुछ भी नही बोलिए। मैं आपके द्वारा हर का सङ्गम प्राप्त करना नही चाहती हूँ ॥ ८६ ॥ गिरिजा ने उस विप्र को इतना ही कहकर अपनी सखी का मुख देखकर उस अवसर पर संशय मे समारूढ होकर यह कहा था कि बहुत अधिक चिन्तन के द्वारा तपश्चर्या करके भगवान् शम्भु की आराधना की है। यह विप्रसुत मेरे ही आगे उनकी निन्दा करने के लिये वाक्य बोला है ॥ ६०—६१ ॥

तदहं चापनेष्यामि स्तुतिवाक्येन साम्प्रतम् ।
महात्मनां च यो निन्दां शृणोति कुरुतेऽथवा ॥६२
तयोराग.समं पूर्वं मया तातमुखाच्छ्रुतम् ।
तस्मात्तदपनेष्येऽहं तन्निषेध्य विप्रकम् ॥६३
इत्युक्त्वा सा सखी काली शम्भुसंगतमानसा ।
आग:समार्जनाशु हरं स्तोतुमुपाक्रमत् ॥६४
नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर ॥६५
विज्ञानसौभाग्यसुहृद्गताय ते
प्रपञ्चहीनाय हिरण्यबाहवे ।
नमोऽस्तु नारायणपद्मयम्भव
प्रधानबीजाय जगद्विनाय ते ॥६६
इति स्तुवन्ती पुनरेव स द्विज-
स्तदा वच. किञ्चिदुदीरितुं पुनः ।
समीक्ष्य कालीमकरोत् प्रयत्नतः
सुदुःखा ममात्मष्ट्र करी गिरे: सुताः

अथ द्विज किंचन वक्तुमिच्छ-
त्युग्र हर चापि न संविदान ।
निन्दन्नहि प्राणहरी हरस्य
निन्दामह श्रोतुमिह् क्षमामि ॥६८

इसलिये मैं इस समय मे स्तुति वाक्य के द्वारा उसका अनाम करूँगी । जो भी कोई महान् आत्मा वालो की निन्दा का श्रवण करता है अथवा कराई किया करता है उन दोनों का अपराध समान ही होता है—ऐसा मैंने अपने पिताजी के मुख से पूर्व मे श्रवण किया है । इसी कारण से मैं इसको दूर करूँगी सो इस विप्र को निषेध कर दो अर्थात् रोक दो ॥६२॥६३॥ उस काली ने यह सखी से कहकर शम्भु में सङ्गत मन वाली ने अपराध के सम्मार्जन करने के लिये भगवान् शम्भु का स्तवन करने का आरम्भ कर दिया था । ६४॥ काली ने कहा—परम शिव—शान्त और कारण त्रय के हेतु अर्थात् सृष्टि—स्थिति और संहार इन तीनो के कारण स्वरूप के लिये नमस्कार है । हे परमेश्वर ! मैं अपने आपको निवेदन करती हूँ और आप ही मेरी गति हैं ॥६५॥ विज्ञान—सौभाग्य और सुहृद मे गत—प्रपञ्च से रहित—हिरण्य वाहु—नारायण के नाभिस्थ पद्म से समुत्पन्न भी के प्रधान बीज—जगत् के हित रूप आपके लिये नमस्कार होवे ॥६६॥ इस भाँति स्तवन करती हुई उसको यह द्विज पुन उस समय मे कुछ कथन करने के लिये उद्यत होने वाला है—यह समीक्षण करके काली को संयत कर दिया था और गिरिराज की पुत्री ने समझ करके सखी से कहा था ॥ ६७॥ यह द्विज कुछ कहना चाहता है और उग्र हर को नही जानने वाला है। अतएव यह उनकी निन्दा कर रहा है । किन्तु मैं प्राणो के हरण करने वाली शिव की निन्दा का श्रवण करने के लिये समर्थ न्ही हू ॥६८॥

यावद् भूरिवचोऽस्याह न शृणोम्यधुना सखि ।
गच्छामि तावद् दूराय समुत्तिष्ठामि मत्प्रिये ॥६६

इत्युक्त्वा सा तया सख्या सहिता हिमवत्सुता ।
प्रतस्थेऽथ समुत्थाय तमुत्सृज्य द्विज हठात् ॥१००
अथ शम्भुर्निज रूपमास्थाय हिमवत्सुताम् ।
त समुत्सृज्य गच्छन्ती हर स्मेरमुखोऽन्वयात् ॥१०१
अहं हरो महादेवो मा सम्नौपि न चाधुना ।
सम्मुखीभव हे कालि समाश्वासय शाङ्करि ॥१०२
इत्युक्त्वा स महादेवो गच्छन्त्या पुरतो गत ।
प्रसार्य हस्तौ काल्यास्तु गति तस्या विरोधयन् ॥१०३
सा वीक्ष्य शम्भुवदन तत्क्षणादभवद्धठात् ।
अधोमुखी तडिद्वातचकितेव गिरे सुता ॥१०४
मन्दाक्ष प्रीतिलज्जाभि सा जडेव तदाभवत् ।
वक्तु च नाशकत् किञ्चिद्विवक्षुरपि भामिनी ॥१०५

हे सखि ! इस समय में जब तक इनके बहुत वचनों का श्रवण नहीं करूँ तब तक मैं दूर देश को गमन करती हूँ हे सखिये ! वहाँ पर दूर देश में समुपस्थित रहूँ ॥६६॥ इतना कहकर वह काली हिमवान् की पुत्री उसी सखी के सहित प्रस्थान कर गयी थी और उस द्विज को हठात् छोड़कर उठकर चली गई थी ॥१००॥ इसके अनन्तर शम्भु निज रूप में समास्थित होकर हर मुस्कराहट से युक्त मुख वाले होकर उस द्विज रूपी का त्याग कर गमन करती हुई हिमवान् की सुता के पीछे गमन किया था ॥१०१॥ शिव ने कहा—मैं ही महादेव हूँ और हर हूँ। अब आप मेरा स्तवन नहीं करती हैं। हे कालि ! हे शाङ्करि ! मेरे सम्मुख होकर मुझे समाश्वासित करो ॥१०२॥ इतना कहकर वे महादेव प्रभु काली के आगे गमन कर उपस्थित होगये थे। उन्होंने दोनों हाथों को फैलाकर उस काली की गति का विरोध किया था। ॥१०३॥ वह गिरिराज की बेटी शम्भु के मुख का वीक्षण करके उसी क्षण में हठात् अर्थात् बरबस नीचे की ओर मुख वाली होगई थी जिस

तरह से वायु में चलित तड़ित् हो जाया करती है ॥१०४॥ प्रीति की लज्जा से मन्द नेत्रों वाली होते हुए उस समय में वह जड़ की ही भाँति हो गयी थी। वह भामिनी बोलने की इच्छा वाली होती हुई भी कुछ भी बोलने में समर्थ न हो सकी थी ॥१०५॥

मनोरथाना सिद्धया तु सुधाभिरिव पूरितम् ।
शरीरमभवत्तस्या मुदा पूर्णं द्विजोत्तमा ॥१०६
पटत्रिवर्षसहस्रं स्तु तप क्लेशमविन्दत ।
यत्ता क्षणात् समुत्सज्य सम्मोदमुदिताभवत् ॥१०७
ता च वीक्ष्य तथाभूता प्रणयाद् वृषभध्वज ।
कामेन भस्मरूपेण गात्रस्थेन च मोहित ॥१०८
अथ ता विरहोद्रिक्त समेत्य वृषभध्वज ।
सम्बोधयन्निद चाटवचन प्रोक्तवान् मुदा ॥१०९
न तु सुन्दरि भा वक्तु किंचनापि त्वमीहसे ।
तप क्लेश स्मरयन्ती किं मह्य कुप्यसि साम्प्रतम् ॥११०
अह च परितप्यामि त्वामृते सुभगे मम ।
समयाद यत् समारब्ध तपस्तप्तु त्वया समम् ॥१११
सानुरक्तोऽथ सम्कृत्य भविष्यामि त्वया प्रिये ।
अधुना समतीतो मे य कृत समयो मया ॥११२

हे द्विजोत्तमो ! मनोरथों की सिद्धि हो जाने से उसका शरीर सुधा से पूरित के समान हो गया था और आनन्द से परिपूर्ण हो रहा था ॥१०६॥ नौ सहस्र वर्ष तक उस काली ने तपश्चर्या का क्लेश प्राप्त किया था। किन्तु उसी क्षण में उस सम्पूर्ण क्लेश का त्याग करके वह आनन्द से मुदित अर्थात् हर्षित हो गई थी ॥१०७॥ उस प्रकार से आस्थित उसको प्रणय वाली देख कर वृषभध्वज भस्मीभूत कामदेव के द्वारा जो कि गात्र में विद्यमान था मोहित हो गये थे ॥१०८॥ इसके अनन्तर विरह से उद्रिक्त होकर वृषभध्वज साथ में आकर सम्बोधन

करते हुए आनन्द में यह चाटु वचन कहने लगे थे ॥१०८॥ हे सुन्दरि ! क्या मुझसे कुछ भी कहना नहीं चाहती है ? तप का क्लेश का स्मरण करती हुई क्या इस समय में मुझ पर कुपित हो रही हैं ॥११०॥ हे सुभगे ! तुम्हारे बिना मैं परितप्त हो रहा हूँ। मेरे समय में जो आपने तपश्चर्या करने का समारम्भ किया था ॥१११॥ हे प्रिये ! मैं अनुराग से युक्त हूं। मैं सत्कार करके तुम्हारे साथ होऊँगा। मैंने जो समय किया था अब व्यतीत हो गया है ॥११२॥

तपस्वे भवती जापि तपसैव मुसंस्कृता ।
सचिन्तनेन जप्येन तीव्रेण तपसा सदा ।
मूल्येन महता क्रीतो दासोऽहं मा नियोजय ॥११३
त्वदङ्गानां संस्करणे जटानां च प्रसाधने ।
प्रमुच्य वल्कलं गात्राच्चारुवंशुकनिवेशने ॥११४
हारनूपुरकेयूरकाञ्च्यादिपरिधापने ।
द्रुतं नियोजय शुभे यदि स्नेहोऽस्ति मादृशि ॥११५
निर्दग्धो यो मया कामो भस्मरूपेण मतनो ।
स्थितो मां प्रतिकृत्येव त्वदग्रे दग्धुमिच्छति ॥११६
तस्माद्रक्ष मां कामादग्नेरिव मनोहरे ।
त्वदङ्गामृतदानेन प्रसीद दयिते मम ॥११७

आप भी तप के लिये समुद्यत हुई थी और उस तप से ही आप भली भाँति सम्कृत हो गई है। आपने भली भाँति चिन्तन किया—तीव्र तप किया और सदा तप किया था। आपने यह मय करके बड़ी भारी कीमत के द्वारा मुझे खरीद लिया है। अब मैं आपका दास हो गया हूँ मुझे नियोजित कीजिए ॥११३॥ आप अपने अङ्गों संस्कार करने में—जटाओं के प्रसाधन में मेरा नियोजन करें। शरीर से वल्कल को हटा कर सुन्दर वस्त्रों का निवेशन करने में—हारनूपुर और काञ्ची आदि के परिधापन करने में हे शुभे ! शीघ्र ही नियोजन करिए यदि

मुझ जैसे में आपका स्नेह विद्यमान है ॥११५॥ मैंने जो कामदेव को दग्ध कर दिया था वह भस्म रूप से मेरे शरीर में स्थित है। मेरा प्रतीकार करके ही मुझे तुम्हारे ही सामने दग्ध कर देना वह चाहता है। ॥ ११६ ॥ हे मनोहरे! अपने अङ्ग के अमृत के दान के द्वारा उस कामाग्नि से मेरा उद्धार करिये। हे दयिते! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ॥११७॥

— ❀ —

॥ काली हर समागम वर्णन ॥

अथ श्रुत्वा वच शम्भोर्गिरिजातीव हर्षिता ।
मेने प्राप्त तदा शम्भु सुन्दर दयित पतिम् ॥१
अथ प्राह तदा काली सखीवक्त्रेण शङ्करम् ।
यथा स शृणुते वाक्य श्रोतुमिच्छश्च शकर ॥२
न सन्धावतिभेदेन प्रवर्तन्तेऽत्र सज्जना ।
मर्यादया हरस्त्व मे पाणि गृह्णातु शकर ॥३
पितृदत्ता भवेत् कन्या तपोदत्ता भवेन्नहि ।
तपसा चेत् प्रदत्ताह मा तातश्च प्रदास्यति ॥४
तस्मात् सम्प्रार्थ्य पितर हिमवन्त नगेश्वरम् ।
वैवाहिकेन विधिना पाणि गृह्णातु मे हर ॥५
इत्युक्त्वा विरराभाथ काली लज्जासमन्विता ।
हरोऽपि तद्वच सत्य तथ्य योग्य तदाग्रहीत् ॥६
तत स सगण शम्भुस्तत्र वास तदाकरोत् ।
गङ्गावतरणे सानौ यथापूर्वं तथाधुना ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् शम्भु के वचन का श्रवण करके गिरिजा अत्यन्त हर्षित हो गई थी और उसने

उस समय में रुचिर—सुन्दर शम्भु को अपना प्राप्त हुआ पति मान लिया था ।१। इसके उपरान्त काली ने सखी के मुख से भगवान् शङ्कर से कहा था जिस रीति से शम्भु सुनने की इच्छा करते हुए आदर का श्रवण कर रहे हैं ।२। यहाँ पर मनुष्य में कोई भेद से सज्जन प्रवृत्त नहीं होते हैं । शंकर हर मर्यादा से मेरे उस पाणि का ग्रहण करें ।३। कन्या पिता के द्वारा दत्त हुआ करती है वर से दत्त (दी हुई) नहीं होती है । मैं यदि तप से दी हुई हूँ । और मुझको पिता प्रदान करेंगे ।४। इससे नगेश्वर हिमवान् पिता की भली भाँति प्रार्थना करके भगवान् हर वैवाहिक विधि से ही मेरे पाणि का ग्रहण करें ।५। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर काली लज्जा से समन्वित होती हुई विराम को प्राप्त हो गई थी । उस अवसर पर भगवान् शम्भु ने भी उसके वचन को सर्वथा सत्य और तथ्य एवं समुचित ही ग्रहण किया था ।६। इसके उपरान्त भगवान् शम्भु ने अपने गणों के सहित ही वहाँ निवास करने लगे थे । जिस प्रकार से पहिले रहते थे उसी भाँति इस समय में भी उस गङ्गावतरण शिखर पर रहते थे ।।७।।

काली पितुर्गृहं याता सखीभिः परिवारिता ।
नालोकयन्ती सा दीना गुरूणां वदनं सती ॥८
एतस्मिन्नन्तरे सप्त मरीचिप्रमुखान् मुनीन् ।
चिन्तयामास शशिभृत् काली प्रार्थयितुं तदा ॥९
चिन्तिता सप्त मुनयस्तत्क्षणान्मदनारिणा ।
आकृष्टा इव केनापि तत्सकाशमुपागताः ॥१०
तान् मुनीन् ददृशे शम्भुः सप्ताग्नीनिव दीपितान् ।
अरुन्धतीं वसिष्ठस्य सकाशे ददृशे सतीम् ॥११
अरुन्धती ततो दृष्ट्वा वसिष्ठस्य समीपतः ।
मेने योषिद्ग्रहं धर्मं मुनिभिश्चाप्यवर्जितम् ॥१२
ततस्ते मुनयः सर्वे सम्पूज्य वृषभध्वजम् ।

इदमूचु प्रर्पहृण स्मरणार्कापिता प्रियम् ॥१३

वह काली अपनी सखियो के साथ परिवारित अर्थात् घिरी हुई होकर अपने पिता के घर मे चली गयी थी। वह सती हीन होती हुई गुरुजनो के मुख का अवलोकन नही कर रही थी। ८। इसी बीच मे सात मरीचि जिनमे प्रधान थे उन मुनियो का चन्द्र शेखर प्रभु ने उस समय मे काली की प्रार्थना करने के लिये चिन्तन किया था। ९। उसी क्षण मे कामदेव के अरि शम्भु के द्वारा चिन्तित किये हुए मुनिगण सातों किसी के द्वारा आकृष्ट हुए की ही भाँति उनके समीप मे समागत हो गये थे। १०। भगवान् शम्भु ने उन मुनियो को दीपित सात अग्नियो के ही समान देखा था और वसिष्ठ मुनि के समीप मे सती अरुन्धती को भी देखा था। ११। इसके उपरान्त वसिष्ठ मुनि के समीप मे अरुन्धती का विलोकन करके शम्भु ने मुनियो के द्वारा भी न वर्जित किया हुआ योषित का ग्रहण करना धर्म मान लिया था। १२। फिर उन समस्त मुनियो ने वृषभ ध्वज की भली भाँति पूजा करके स्मरण से समार्पित हुए प्रहर्ष मे यह उन्होंने प्रिय बोला था। १३।

यत् प्रत्यक्ष दृश्यते शुद्धरूप
चन्द्रप्रख्य चन्द्रखण्डोपशोभि।
अन्तःप्रज्ञ भावित तन्मुनीना
भाग्य दृष्ट भागधेयेन भुवनै ॥१४

प्रज्ञातन्त्र ध्यानतन्त्र पुरस्ता-
न्नित्य ध्येय ध्यायिना स्वप्रकाशम्।
पुञ्जीभूत वाह्यतत्त्वेन शश्वद्
योग्यप्राप्य धाम शम्भोरुदारम् ॥१५

दृष्ट्वा यस्यैवाग्रभाग स नेत्र
त्राणाय स्याद् दर्शन सूर्यतुल्यम्।
तद्धामेद स्यानलस्य नित्य
भक्त्या स्तुत्य न मम शम्भुदेहम् ॥१६

प्रकाशते य प्रथमादिभागत
स्थित स वामे य इहैव नेता ।
सोऽस्मात्मक प्रथम स्वसिद्धर्यै
हरस्य शक्त्या विधृतो ललाटे ॥१७
य प्रधानात्मक सत्त्वरजोभ्या तमसान्वित ।
पुरुष सर्वजगता स हरो न प्रसीदतु ॥१८
इति सस्तुत्य देवेश मुनयो विनयानता ।
ऊचु किमर्थं भवता स्मृतास्तन्नो निगद्यताम् ॥१९
तेपा तद्वचन श्रुत्वा शकर प्रहसन्निव ।
जगाद तान्मुनीन् सर्वानाभाप्य च पृथक् पृथक् ॥२०

ऋपियो ने कहा—जो प्रत्यक्ष मे शुद्ध रूप दिखलाई देता है वह चन्द्र से प्रसिद्ध और चन्द्र के खण्ड से उपशोभित है। अन्तर मे प्रज्ञ मुनियों का वह भावित स्वरूप है। युक्तो के द्वारा भाग्य के उदय होने से भाग्य देखा गया है। १४। प्रज्ञा के अधीन—आगे ध्यान तन्त्र—नित्य—ध्यान करने वालो का ध्यान करने के योग्य—नित्य और स्व-प्रकाश है अर्थात् अपने ही से प्रकाश वाला है। बाह्य तत्त्व स निरन्तर पुञ्जीभून और समुचित प्राप्त करने के योग्य भगवान् शम्भु का उदार धाम है। १५। नेत्र के सहित जिसके अग्रभाग को देख कर ही सूर्य के समान दर्शन ही परित्राण के लिये होता है। यह स्थान सर्व का नित्य धाम है। स्तुति करने के योग्य शम्भु के उस देह को भक्ति से नमस्कार है। १६। जो प्रथम आदि भाग मे प्रकाश करता है—जो वाम भाग स्थित है वह यहाँ पर ही नेता है—भगवान् हर के ललाट मे विशेष रूप से शक्ति से धारण किया हुआ वह हमारी अपनी सिद्धि के लिये प्रथम होवे। १७। जो प्रधान के स्वरूप वाला सत्त्व—रज और तम से समन्वित है वह पुरुष समस्त जगतो का हर हमारे ऊपर प्रसन्न होवे। १८। इस प्रकार से मुनिगण ने विनय म अवनत होते हुए देवेश्वर की

हर गृहीत्वा मनसा नान्य सापीह वाञ्छति ।
इत्युक्त्वा मेनया सार्धं सुतां दातुं च शम्भवे ॥३४
अंगीकृत्य विसृष्टास्ते ह्यनुप्रापुर्महेश्वरम् ।
ते गत्वा मुनयः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजा ॥३५

तो हे गिरवर ! उन शम्भु प्रभु के लिये अपनी पुत्री काली को दे दो उनके द्वारा इस भाँति कहे हुए अचलराज अपने हृदय में स्थित दुहिता के प्रिय को चिरकाल पर्यन्त समझ कर और सद्मन से आनन्द प्राप्त करके फिर प्रकाश में यह कहा—समागत हुए आप लोगों ने जो मुनियों में शार्दूल के ही समान हैं अर्थात् परमाधिक श्रेष्ठ हैं मुझे पवित्र कर दिया है और आपने मेरा मनोरथ भी परिपूर्ण कर दिया है। आप लोगों ने जब मुझे आदेश दिया है तो मैं अपनी पुत्री को भगवान् शम्भु के लिये अवश्य ही समर्पित कर दूँगा ॥ २६—३१ ॥ इसके पूर्व ही तपस्या का समाचरण करके उसके द्वारा ईश्वर को अपना पति चाहा था। यह तो विधाता का ही नियोजन है। इसको अन्यथा अर्थात् विपरीत करने में कौन समर्थ हो सकता है अर्थात् इसके विरुद्ध करने की शक्ति किसी में भी नहीं है ॥ ३२ ॥ बिना प्रभु शम्भु के अन्य कौन है जो मेरी पुत्री की प्रार्थना करने में समर्थ होवे। जिसका अब ग्रहण हर ने कर लिया है उसका ग्रहण करने का अन्य कौन उत्साह करेगा। अर्थात् कोई भी उत्साहित नहीं होगा ॥ ३३ ॥ और वह काली भी अपने मन से भव को ग्रहण करके अन्य किसी की इच्छा ही नहीं कर रही है। इतना कह कर मेनका के साथ शम्भु के लिये अपनी पुत्री को देने के लिये अङ्गीकार करके उनको विदा किया गया था और फिर वे महेश्वर प्रभु के समीप में प्राप्त हुये थे। उन सब मुनियों ने जिनमें मरीचि प्रधान थे हे द्विजो ! वहाँ से गमन किया था ॥३४॥३५॥

शैलराजो यदाचष्ट तदूचुर्मदनारये ।
हिमवास्तनया दातुं तुभ्यमुत्सहते हर ॥३६

यदिदानी त्वया कर्तुं युज्यते क्रियता तु तत् ।
अस्माश्चाप्यनुजानीहि हर गन्तुं निजाश्रमम् ॥३७
सिद्धं ज्ञात्वा हरः साध्यं मुनिस्तान् विसृष्टवान् ।
यथायोग्यं समाभाष्य क्रमादककशा मुनीन् ॥३८
कालीविवाहावसरं यूयमायात मां प्रति ।
इति ते वं हरणोक्त प्रतिश्रुत्यर्षयो ययु ॥३९
अथान्योन्यप्रियया कृत्वा कृत्वा गतागतम् ।
समयं कारयामास विवाहाय हरो गिरिम् ॥४०
माधवे मासि पञ्चम्यां सित पक्ष गुरादिने ।
चन्द्रे चोत्तरफाल्गुन्या भरण्यादौ स्थिते रवौ ॥४१
आगता मुनयस्तत्र मरीचिप्रमुखा मुहु. ।
हरेण चिन्तिता सर्व तथा ब्रह्मादय. सुरा ॥४२

जो कुछ भी शैलराज ने कहा था उन्होंने भगवान् शङ्कर से कह दिया था। हे हर ! शैलराज तो अपनी कन्या को आपके लिये प्रदान करने को समुत्साहित हो रहा है ॥३६॥ इस समय में जो कुछ आप करना समुचित समझते हैं वही आपको करना चाहिए। हे हर ! अब हम लोगों को अपने आश्रमों में गमन करने के लिये आज्ञा दीजिए। ।३७। भगवान् हर ने साधन करने के योग्य कार्य सिद्ध समझ करके उन सब मुनियों को विदाई दे दी थी। एक-एक मुनि से यथोचित रूप से सम्भाषण करके ही क्रम से विदा किया था। ३८। काली के साथ जब विवाह हो उस अवसर पर आप लोग मेरे समीप में आइये। इस प्रकार से भगवान् हर के कहे हुए वचन की प्रतिज्ञा करके ऋषिगण वहाँ से अपने-अपने आश्रमों को चले गये थे। ३९। इसके अनन्तर परस्पर में प्रेम के साथ गतागत कर कर के अर्थात् आपस में गमन और आगमन करके भगवान् शम्भु ने गिरिराज से विवाह के सम्पन्न होने के लिये समय किया था। ४०। माधव मास में—शुक्ल पक्ष में—पञ्चमी तिथि

और गुरुवार के दिन में—उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में—भरणी आदि में रवि के स्थित होने पर वहा पर मुनिगण जिनमे मरीचि प्रधान थे वहाँ पर समागत हुए और ब्रह्मा आदि देवगण भी आगये थे ।।४१।।४२।।

तथा च सर्वे दिक्पाला मुनयश्च तपोधना ।
शच्या सह तथा शक्रो ब्रह्माण्याद्यास्तु मातर ।।४३
नारदश्च गतस्तत्र देवर्षिब्रह्मण सुत ।
एतै परिचरै सार्धं गणैराप्यायित स्वकै ।।४४
ववाहिकेन विधिना गिरिपुत्री हरोऽग्रहीत् ।
विवाहे गिरिजा शम्भो सर्पा येऽष्टौ तनौ स्थिता ।।४५
ते जाम्बुनदसनद्धा अलकारास्तदाभवत् ।
द्विभुजोऽभून्महादेवो जटा केशत्वमागता ।।४६
शिरस्थितश्चन्द्रखण्ड सोर्ऽचिपा ज्वलितोऽभवत् ।।४७
विचित्रवसन व्याघ्रकृत्तिरासीत्तदा द्विजा ।
विभतिलपो ह्यस्याभून् सुगन्धिमलयोद्भव ।।४८
गौररूपो हरस्तत्र बभूवादभुतदर्शन ।
ततो देवा सगन्धर्वा सिद्धविद्याधरारगा ।।४९

उसी भाँति सब दिक्पाल—तप के ही धन वाले मुनिगण—शची के सहित इन्द्र देव—ब्रह्माणी आदि मातायें—ब्रह्माजी के पुत्र देवर्षि नारदजी भी वहाँ पर गये थे। इन परिचरों के साथ मे और अपने गणों के द्वारा आप्यायित हुए भगवान् शम्भु ने विवाह सम्बन्धी विधि के साथ गिरिवर की पुत्री को ग्रहण किया था। गिरिजा और शम्भु के विवाह में जो आठ सर्प शम्भु के शरीर में स्थित थे वे उस समय में सुवर्ण से सन्नद्ध अलङ्कार हो गये थे। महादेव दो भुजाओं वाले हो गये थे और जटायें सुन्दर केशों के स्वरूप में हो गयी थी ।।४३—४६।। शम्भु के शिर में संस्थित चन्द्रमा का खण्ड जो था वह भी किरणों से प्रज्वलित हो गया था। ४७। हे द्विजो ! उस अवसर पर व्याघ्र का जो चर्म था

वह भी विचित्र वस्त्र के रूप वाला हो गया था। इनका जो भस्म का विलेपन था वह उस समय में परम सुगन्धित मलय चन्दन हो गया था। ।४८। उस समय में भगवान् शम्भु गौर स्वरूप से समन्वित होकर अद्भुत दर्शन वाले बन गये थे। इसके अनन्तर समस्त देवगण—गन्धर्व—सिद्ध—विद्याधर और उरग गण सभी आश्चर्य से संयुत हो गये थे ॥४६॥

विस्मयं परमं जग्मुर्हरं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
हिमवान् मुदितश्चासीत् सहपुत्रैश्च मेनया ॥५०
ज्ञातयश्चास्य मुमुहुर्हरं दृष्ट्वा तथाविधम् ।
इदं ब्रह्मा तत्र जगौ हरं दृष्ट्वा मनोहरम् ॥५१
सर्वं शिवकरं यस्मात् सुवेशमभवत्सुराः ।
तस्माच्छिवोऽय लोकेषु नाम्नाख्यातोऽधिपः शिवः ॥५२
महेश्वरमुमायुक्तमीदृशं यः स्मरेत्सदा ।
सततं तस्य कल्याणं वाञ्छितं च भविष्यति ॥५३
एवं काली महामाया योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
पूर्वं दाक्षायणी भूत्वा पश्चाद् गिरिसुताभवत् ॥५४
स्वयं समर्थापि सती काली सम्मोहितुं क्षमा ।
तथाप्युग्रं तपस्तेपे हिताय जगतां शिवा ।
एवं सम्मोहयामास कालिका शङ्करं तथा ॥५५
इत्येतत् कथितं सर्वं त्यक्तदेहा सती यथा ।

ही मनोहर थे यही कहने लगे थे कि यह तो साक्षात् ब्रह्माजी ही हैं। ॥ ५१ ॥ क्योंकि सब ही वेश शिव अर्थात् कल्याण करने वाला मङ्गल मय है इसी कारण से यह लोकों में यह अधिक शिव है इसलिये शिव— इस नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। ५२ ॥ जो पुरुष महेश्वर को उमा से युक्त इस प्रकार वाले का हृदय से स्मरण किया करता हैं उसका निरन्तर ही कल्याण होता है और जो भी कुछ मनोवाञ्छित होता है वह भी हो जायगा ॥५३॥ इसी प्रकार से महामाया योग निद्रा जगत् को प्रसूत करने वाली काली पूर्व में दाक्षायणी अर्थात् दक्ष प्रजापति की पुत्री होकर पीछे गिरिराज हिमवान् की सुता हुई थी ॥ ५४ ॥ सती काली स्वयं हर को सम्मोहित करने में समर्थ होती हुई भी उसने तथापि जगतो के हित के लिये शिवा ने उग्र तपश्चर्या का समाचरण किया था। इसी रीति से कालिका ने चन्द्रशेखर प्रभु को सम्मोहित किया था ॥५५॥ यह सब कह दिया हैं जिस प्रकार से सती ने अपने देह का त्याग करके हिमवान् की पुत्री होकर पुनः महेश्वर प्रभु की प्राप्ति की थी।५६।

इदं यः कीर्तयेत् पुण्यं कालिकाचरितं द्विजाः ।
नाधयो व्याधयस्तस्य दीर्घायुः स च जायते ॥५७
इदं पवित्रं परममिदं कल्याणवर्धनम् ।
श्रुत्वापि सकृदेवेदं शिवलोकाय गच्छति ॥५८
यः श्राद्धे श्रावयद्विप्रान् कालिकाचारितं महत् ।
पितरस्तस्य कैवल्यमाप्नुवन्ति न संशयः ॥५९
यः श्रावयेद् ब्राह्मणानां सन्निधौ वा समागतः ।
तत्र स्वयं हरो गत्वा शृणोति सह मायया ॥६०
इति वः कथितं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
युष्मभ्यं रोचते चान्यद्यत्तत् पृच्छन्तु सत्तमाः ॥६१

हे द्विजो ! जो कोई इस परम पुण्यमय कालिका देवी के चरित

का कीर्त्तन किया करता है उसको आधियाँ (मानसिक चिन्ताऐं) और व्याधियाँ नहीं होती है और वह दीर्घायु हो जाता है ॥ ५७ ॥ यह परमाधिक पवित्र है और यह कल्याण का बढाने वाला है । इसका एक बार भी श्रवण करके मनुष्य शिव लोक का गमन किया करता है ॥ ५८ ॥ जो श्राद्ध म आमन्त्रित विप्रों को इस महत् कालिका चरित का श्रवण कराता है उसके पितृगण कैवल्य को प्राप्त किया करते हैं— इसम तनिक भी सशय नही है ॥ ५६ ॥ जो ब्राह्मणों की सन्निधि में समागत होकर इसका श्रवण कराता है वहाँ पर शकर माया के सहित गमन करके इसका श्रवण किया करते हैं । आप लोगो के सामने यह परम पुण्यमय और समस्त पापों का विनाशक कह दिया है । हे सत्तमो ! अब आप लोगो को जो भी रुचता हो जो भी कुछ अन्य हो उसका श्रवण करिये ॥६०—६१॥



॥ गौरी शिव विहार वर्णन ॥

विचित्रमिदमाख्यात ब्रह्मन् कालीहरागमम् ।
पुण्यं पापहरं नित्य श्रुतिसौख्यप्रद वरम् ॥१
भूय कथय शर्वस्य कालीतत्त्वर्धमुत्तमम् ।
कथ जहार गौरी वा कथममृताय कालिका ॥२
केन वा कारणेनाशु कृष्णा गौरीत्वमागता ।
तन्न कथय तत्त्वेन मनिश्रेष्ठ द्विजोत्तम ॥३
इद तु महदाख्यान कथयिष्यामि वोऽधुना ।
महर्षयस्तच्छृणुध्वम् तत्त्वेन शुभद परम् ॥४
एतदोर्व पुरा राजा सगर पृष्टवान्मुनिम् ।
स त यथा समाचष्ट तद्वोऽद्य निगदाम्यहम् ॥५

पुराभूत् सोमवंशे च सगरो नाम पार्थिवः ।
स श्रीमान् बलवान् दक्षः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥६
सोऽभूदेकरथेनैव जित्वा सर्वान् महीभुजः ।
सार्वभौमो नरपतिः सर्वराजगुणैर्युतः ॥७

ऋषियों ने कहा--हे ब्रह्मन् ! यह काली और हर का समागम अतीव विचित्र आपने वर्णन किया है जो परम पुण्यमय—पापों का हरण करने वाला—नित्य और श्रेष्ठ तथा श्रवण करने से सुख प्रदान करने वाला है ॥ १ ॥ अब आप पुनः शिव का उत्तम तनु का अर्ध भाग वाली अथवा गौरी ने कैसे हरण किया था । वह कालिका किस प्रकार की है ॥ २ ॥ हे मुनियों मे श्रेष्ठ ! हे द्विजों मे उत्तम ! किस कारण से शीघ्र ही काली गौरीत्व को प्राप्त हो गई थी । हमको यह सब तात्त्विक रूप से कहिए ॥ ३ ॥ मार्कण्डे मुनि ने कहा—इस महान् आख्यान को इस समय मे मैं आपके सामने कहूगा । हे महर्षि गणो ! इस परम शुभ देने वाले का आप लोग सब श्रवण कीजिए ॥ ४ ॥ यही बात पहिले समय मे राजा सगर ने और्व मुनि से पूछी थी । उनने उससे जिस प्रकार से कहा था वही मैं आप लोगों को बतलाता हू ॥ ५ ॥ प्राचीन समय मे सोमवंश मे एक सगर नाम वाला राजा हुआ था । वह बलशाली—श्रीमान--दक्ष और समस्त शास्त्रों के अर्थो का पारगामी भी विद्वान् था ॥ ६ ॥ वह राजा अपने एक ही रथ के द्वारा समस्त नृपों को जीतकर सब राजा के उचित गुणों से समन्वित नृपति सार्वभौम अर्थात् चक्रवर्ती हो गया था ॥७॥

तं प्राप्तराज्यं राजानं सगरं पार्थिवोत्तमम् ।
सभाजयितुमत्यर्थं मुनयः समुपागताः ॥८
प्राच्योदीच्या महात्मानो दाक्षिणात्यास्तथोत्तराः ।
मुनयो ब्राह्मणाश्चैव नृपं द्रष्टुं समागमन् ॥९
आगतेष्वथ सर्वेषु महात्मा ज्वलनोपमः ।

और्वो नाम मुनिः श्रीमानागतो नन्दितुं नृपम् ॥१०
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा ज्वलन्तमिव पावकम् ।
सपर्यया महत्या तु सगरस्तमपूजयत् ॥११
पाद्यमाचमनार्यं च दत्त्वैवार्घपुरोगमम् ।
निवेशयामास च तं मुनिश्रेष्ठं वरासने ॥१२
उवाच च महात्मानमौर्वं स सगरो नृपः ।
प्रणम्य च यथायोग्यं कुशलं त इति द्विजम् ॥१३
स च प्राह मुनिश्रेष्ठो नरराज सदा मम ।
सर्वत्र कुशलं त्वां तु द्रष्टुं कुशलमुत्सहे ॥१४

उस राज्य प्राप्त करने वाले राजाओं में अत्युत्तम राजा सगर को अभिनन्दित करने के लिये मुनिगण समागत हुए थे ॥ ८ ॥ पूर्व दिशा के रहने वाले—उत्तर के निवासी—दक्षिण के वासी तथा उत्तर के मुनिगण और ब्राह्मण नृप के दर्शन करने के लिये समागत हुए थे ॥६॥ सबके समागत होने पर इसके उपरान्त अग्नि के समान महान आत्मा वाले और्व नाम वाले श्रीमान् और्व मुनि नृप का अभिनन्दन करने के लिये आये थे ॥१०॥ आगत उन मुनिवर का दर्शन करके जो जलते हुए अग्नि के सदृश थे राजा सगर ने महती पूजा के द्वारा उनका अभ्यर्चन किया था ॥ ११ ॥ अर्घपूर्वक पाद्य और आचमनीय देकर उन मुनिश्रेष्ठ को राजा ने श्रेष्ठ आसन पर निवेशित किया था ॥ १२ ॥ फिर उस सगर राजा ने महात्मा और्व से कहा था। उसने समुचित रीति से प्रणाम करके द्विज से पूछा था कि आपका कुशल तो है ॥१३॥ और मुनि श्रेष्ठ ने कहा था कि हे नरराज मेरा सदा ही सर्वत्र कुशल है। मैं आपका दर्शन करने के लिए कुशलता के साथ उत्साह करता हूँ ॥१४॥

त्वत्तः कोऽन्योऽस्ति कुशली पृथिव्यां सर्वराजसु ।
य एकः सञ्जिगायाशु भवान् सकलपार्थिवान् ॥१५
कुशलं वर्धतां नित्यं तव राजवरोत्तम ।

यथा नीत्या सदाचारैः पृथिवीं शाधि भूपते ।।१६
तव वृद्धौ जगद्वृद्धिर्वृद्धौ चेष्टा ततः कुरु ।
शुभ्रांशुवृद्धौ सततं सागरस्येव वर्धनम् ।।१७
प्रथमं सद्गुणैरात्मा क्रियतां नृप योजनम् ।
ततः स्वभार्या महिषी क्रियतां तद्गुणैर्युता ।।१८
नित्यं संयोजिता चेत स्याद्वनिता स्वयमेव हि ।
स्वगुणेषु प्रवेक्ष्यन्ती महत्यपि धृतव्रता ।।१९
श्रूयते हिमवत्पुत्री शम्भुसंगतमानसा ।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिः शम्भुना सा प्रयोजिता ।।२०
ततोऽतिमहता प्रेम्णा शंकरस्याथ पार्वती ।
शरीरमर्धमहरत्तस्यैवानुमते सती ।।२१

आपने अधिक पृथिवी में समस्त राजाओं में कुशली है जिस एक ने ही आपने बहुत शीघ्र ही समस्त राजाओं को जीत लिया था ।।१५।। हे राज नरोत्तम ! आपका कुशल नित्य ही बढ़े । हे भूपते ! नीति के अनुसार सद् आचरणों के द्वारा पृथिवी का शासन करिये । ।। १६ ।। आपकी समृद्धि के होने पर जगत् की वृद्धि है अतएव उसी भाँति आप वृद्धि के लिये ही चेष्टा करिए । जैसे चन्द्र की वृद्धि होने पर सागर का निरन्तर वृद्धि हुआ करती है । १७ । हे नृप ! सबसे प्रथम सद्गुणों से अपनी आत्मा को अर्थात् अपने आपको योजित करिए। इसके उपरान्त उसके गुणों से समन्वित भार्या को महिषी बनाइये ।१८। यदि वनिता को नित्य ही संयोजित किया जावे तो वह स्वयं ही अपने गुणों के विषय में प्रवेक्षण करने वाली होती हुई महती और व्रतधारण करने वाली हो जाती है ।। १९ ।। ऐसा सुना जाता है कि शम्भु में सङ्गत मन वाली होती हुई हिमवान् की पुत्री बहुत सी क्रिया और अभ्युपायों के द्वारा वह शम्भु के द्वारा प्रयोजित की गई थी ।। २० ।। इसके अनन्तर शम्भु के अत्यधिक प्रेम से सती पार्वती ने

उनकी ही अनुमति से उनके आधे शरीर का हरण कर लिया था ।२१॥

अर्धनारीश्वरस्तेन तदा प्रभृति शकर ।
अवभन नृपशार्दूल नान्या भार्या गृहीतवान् ॥२२
तस्मात त्वमपि राजेन्द्र स्वजायामात्मनोत्तरे ।
गुणै सयोजय लघु सयोजय तत सुतम् ॥२३
इत्येवमाषित श्रुत्वा सगरोऽपि मुदान्वित ।
इद मुनिमपच्छन् स नृपति स्मितसन्तत ॥२४
कथ सा गिरिजा देवी कायार्धमहरत् सती ।
शकरस्य द्विजश्रेष्ठ तदहं श्रोतुमुत्सहे ॥२५
नीत्या यया वा योक्तव्या स्यात्मा भार्या सुतोऽथवा ।
ता नीति च सदाचारसहिता श्रोतुमुत्सहे ॥२६
राजनीति सना नीतिमन्येषा च कृतात्मनाम् ।
पृथक पृथक श्रोतुमिच्छुरह त्वा नायये द्विज ॥२७
यदि गह्यमिद ब्रह्मन्न तदा श्रोतम् सहे ।
तथा नाज्ञापयामि त्वा श्रोतमिच्छुश्च तत्समम् ॥
कृपया कथनीय चेत्तदा कथय सन्मुने ॥२८

तभी से लेकर भगवान् शङ्कर उसी कारण से अर्धनारीश्वर हो गये थे। हे नृप शार्दूल ! उन्होने फिर अन्य भार्या का ग्रहण नहीं किया था ।२२। इस कारण से हे राजेन्द्र ! आप भी अपनी जाया को उत्तर मे आत्मा से गुणो के द्वारा सयोजित कीजिये उसके उपरान्त लघु सुत को सयोजित करे ।२३। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—राजा सगर भी इस और के द्वारा भाषित का श्रवण करके हर्ष से समन्वित हो गया था और मन्द मुस्कान से सयुत होकर उसने मुनि से यह पूछा था ।२४। सागर ने कहा—उस सती गिरिजा देवी ने शङ्कर भगवान् के शरीर का आधा भाग हरण किया था ? हे द्विज श्रेष्ठ !

श्रवण करना चाहता हू । २५ । इस नीति से अपनी आत्मा का अर्थात् अपने आपका भार्या का अथवा सुत का योजन करना चाहिए उस नीति का और सदाचार संहिता का भी मैं श्रवण करना चाहता हूँ । २६ । हे द्विज ! राजनीति—सत्पुरुषों की नीति और अन्य कृतात्माओं की नीति का मैं पृथक्-पृथक् श्रवण करने का इच्छा वाला हू मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ । २७ । हे ब्रह्मन् ! यदि यह परम गोपनीय हो तो मैं नहीं सुनना चाहता हूँ । मैं उस भाति मे आपको कोई आज्ञा नहीं दे रहा हूँ और उसके ही समान मैं श्रवण करने का इच्छुक हूँ । कृपा करके आपको मुझे बतलाना चाहिए यदि यह बतलाने के योग्य हो तो हे मुनिवर ! आप कहिये ॥२८॥

इत्येवं सगरेणोक्तमर्वोऽपि द्विजसत्तम ।
प्रत्युवाच महात्मान कृपालुस्तत्र भूपती ॥२६
शृणु राजन प्रवक्ष्यामि यद् यत् पृष्टमिह त्वया ।
यथा हरस्य तन्वंग भूभृत्पुत्री पुराहरत् ॥३०
यथा नीतिस्त्वया कार्या यत्र यत्र नृपोत्तम ।
सर्वेषा च सदाचार क्रमाद वक्ष्यामि तच्छृणु ॥३१
यदोढा हिमवत्पुत्री शङ्करेण महात्मना ।
कियन्त स तदा काल तत्र निन्ये सहोमया ॥३२
रममाणस्तया सार्धं सानौ कुञ्जे दरीषु च ।
विजहार चिर तत्र पार्वती मोदयन् हर ॥३३
अथ काले तु सम्प्राप्ते शम्भु कैलासपर्वतम् ।
सगणो भार्यया सार्धमगच्छत्त्रिदिवोपमम् ॥३४
स त्वया क्रीडमानश्च त्यक्तध्यानात्मचिन्तन ।
तद्वक्त्रचन्द्रे नेत्राणि चकोरानिव चाकरोत् ॥३५

हुये उस महान् आत्मा वाले के प्रति कहा। २६। और्व ने कहा—हे राजन्! आप श्रवण कीजिए। आपने यहाँ पर जो-जो भी पूछा है उसे मैं आपको बतलाऊँगा। पहले पुराने समय मे हिमवान् की पुत्री ने जिस रीति से भगवान् हर के शरीर का आधा भाग का हरण किया था। ३०। हे नृपोत्तम! जहाँ-जहाँ पर आपको जैसी नीति करना चाहिये उसे और सबका सदाचार जो भी होना चाहिये इसे क्रम से ही मैं बतलाऊँगा—यह आप श्रवण कीजिए। ३१। जिस समय मे महात्मा शङ्कर ने हिमवान् की पुत्री के साथ विवाह किया था। वह उस समय मे कितने काल पर्यन्त वहा पर उमा के साथ रहे थे अर्थात् कितना समय व्यतीत किया था। ३२। भगवान् शम्भु शिखर पर—कुञ्ज मे और पर्वत की दरियो मे उसके साथ रमण करते हुये भगवान् हर ने पार्वती को प्रसन्न करते हुये वहाँ पर चिरकाल तक विहार किया था ॥३३॥ इसके अनन्तर काल के सम्प्राप्त होने पर भगवान् शम्भु अपने गणो के सहित और अपनी भार्या के साथ स्वर्ग के समान कैलास पर्वत पर चले गये थे। ३४। वे उस उमा के साथ क्रीडा करते हुये ध्यान और आत्मा का चिन्तन उन्होने सब कुछ त्याग दिया था और उनने उस उमा के मुख चन्द्र पर ही अपने नेत्रो को चकोर के ही भाँति बना लिया था अर्थात् वे सर्वदा उसके ही मुख का अवलोकन किया करते थे ॥३५॥

पुष्पाणि क्वचिदाहृत्य गिरिजां प्रति शकर ।
सर्वाङ्गसङ्गिनी माला विदधेऽतिमनोहराम् ॥३६
कदाचिदादर्शतले युगपच्चात्मनो मुखम् ।
मुख तथैवापर्णाया वीक्षाञ्चक्रे वृषध्वजः ॥३७
कदाचिन्मृगनाभीना विलेपैर्गन्धपत्रकम् ।
तस्या घनस्तनयुगे विलिलेख स्मरान्तकः ॥३८
गन्धसारविलेपेन तिलकान्यम्बिकातनौ ।
ललाटे चाकरोच्चारु चन्द्रवद्घनसन्धिपु ॥३९

उमानिर्मासससक्तकेशपाशेषु चित्रकम् ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुंकुमस्य विलेपनैः ॥४०
चकार येन तस्यास्तु केशपाशो व्यराजत ।
नर्तनायावतीर्णस्य शिखिपुच्छस्य साम्यधृक् ॥४१
जाम्बूनदमयाञ्छुद्धान् कुण्डलाद्यान मनोहरान् ।
अलङ्कारानुमा देहे समार्पयद्वृषध्वज ॥४२

किसी समय में गिरिजा के लिये पुष्पों का समाहरण करके भगवान् शङ्कर अत्यन्त सुन्दर उसके लिये माला बनाया करते थे जो कि उसके सर्व अङ्गों में नीचे तक लटकने वाली होवे । ३६ । किसी समय में दर्पण में एक ही साथ अपना मुख और उसी भाँति अपर्णा का अर्थात् उमा देवी का मुख वृषभ ध्वज देखा करते थे । ३७ । किसी अवसर पर कस्तूरिकाओं के द्वारा गन्धपत्रों के विलेपनों से उस उमा के घन दोनों स्तनों पर भगवान् शङ्कर निलेखन किया करते थे । ३८ । भगवान् शम्भु अम्बिका के शरीर पर रत्नसार का विलेपन करते थे और ललाट पर मृगाङ्क उसे सुन्दर किया करते थे । चन्द्र के समान घनी मणियों वाले उमा देवी के निर्यास से संसक्त केश पाशों में चित्रक लिखा करते थे । चन्दन—अगुरु (गूगल)—कस्तूरी और कुङ्कुम के विलेपनों के द्वारा विचित्र कर दिया करते थे जिससे उस देवी का केश पाश अर्थात् मस्तक के केशों का जूट विशेष रूप से शोभायमान हो जाता था । जो केशपाश नृत्य करने के लिये अवतीर्ण मयूर के पुच्छ की समता का धारण करने वाला हो जाया करता था ॥३६—४१॥ वृषभ ध्वज सुवर्ण से परिपूर्ण—शुद्ध—मनोहर कुण्डल आदि अलङ्कारों को उमादेवी के देह में समार्पित किया करते थे ॥४२॥

तैर्जाम्बूनदसम्भूतैर्योजितैर्गिरिजातनु ।
विभाति जलदापूर्णकालिकेव तडिद्गणैः ॥४३
सर्वदिव्यैरलङ्कारैर्नानारत्नैः सदर्शुकैः ।

सपूर्णमण्डिता काली सादृश्य प्रकृतेर्दधौ ॥४४
एवं सदा सानुरागस्तस्यां शम्भुर्जगत्पतिः ।
जगद्धिताय चिक्रीड काल्या दयितया सह ॥४५
काली च जगतां माता महामाया जगन्मयी ।
योगनिद्रा जगद् बुद्धिर्विद्याविद्यात्मिकाखिला ॥४६
प्रकृतिः परमा मूर्तिः सर्गान्तस्थितिकारिणी ।
सम्मोह्य शंकरं यत्नाज्जगतां च हितैषिणी ।
रेमे तेन समं देवी चन्द्रिकेव सुधांशुना ॥४७

उन सुवर्ण से विनिर्मित योजित अलङ्कारों से गिरिजा देवी का शरीर जलदो से आपूर्ण मे तड़ित गणो से कालिका की ही भाँति शोभित हो रहा था । ४३ । सम्पूर्ण दिव्य अलङ्कारों के द्वारा—अनेक प्रकार के रत्नो से तथा सुन्दर वस्त्रो से पूर्ण रूप से मण्डित हुई काली ने प्रकृति देवी की सदृशता को धारण किया था । ४४ । इस प्रकार से जगत् के पति भगवान् शम्भु सर्वदा उस काली मे अनुराग से युक्त होगये थे । उन्होंने जगत् के हित के लिये दयिता काली के साथ क्रीडा की थी । ।४५ । जगतों की माता—महामाया—जगन्म यी काली योग निद्रा, जगत् की बुद्धि—विद्या और अविद्या विद्या के स्वरूप वाली थी । वह परमा मूर्ति—प्रकृति और सर्ग—स्थिति और सहार के करने वाली थी । वह जगतों की हित की इच्छा करने वाली इसी कारण से भगवान् शङ्कर का सम्मोहन करके सुधांशु के साथ चन्द्रिका की ही भाँति उनके साथ उस देवी ने रमण किया था । ४७ ।

— ✿ —

॥ वेताल भैरव उत्पत्ति ॥

अथ कालक्रमेणैव प्रवृद्धास्ते महाबलाः।
शस्त्रास्त्रज्ञानकुशलाः शास्त्रार्थपरिनिष्ठिताः ॥१
सम्प्राप्तयौवना दीप्ता दुर्धर्षाः परिपन्थिभिः।
धर्मार्थज्ञानकुशला ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ॥२
सदा सहचरौ तत्र प्रीत्या वेतालभैरवौ।
अलर्को दमनश्चैव तथोपरिचरस्त्रयः।
सदा सहचरा नित्यं भ्रातरश्चान्द्रशेखराः ॥३
त्रिष्वात्मजेषु नृपतेः सदोपरिचरादिषु।
ममत्वमधिकं नित्यं प्रीतिस्नेहौ तथाधिकौ ॥४
वेताले भैरवे चापि चन्द्रशेखरभूभृत।
नास्त्येव तादृशी प्रीतिर्यादृशी तेषु जायते ॥५
न तौ दृष्ट्वा स नृपतिः कदाचिच्चन्द्रशेखरः।
आत्याह्लादतेऽजस्रं पुत्रबुद्ध्येव्यतेऽथवा ॥६
तौ वीरौ धर्मकुशलौ महाबलपराक्रमौ।
त्रैलोक्यविजये दक्षौ शस्त्रास्त्रग्रामपारगौ ॥७

और्व मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वे काल क्रम से ही वे महान् बल वाले प्रवृद्ध होगये थे। वे शास्त्रों और अस्त्रों के ज्ञान में कुशल थे और शास्त्रों के अर्थों में परिणिष्ठित थे।१। वे यौवन के सम्प्राप्त करने वाले थे तथा परम दीप्त एवं परि पन्थियों के द्वारा दुर्धर्ष थे अर्थात् शत्रु गण उनके तेज को सहन नहीं कर सकते थे। वे धर्म और अर्थ के ज्ञान में परम प्रवीण थे तथा ब्रह्मण्य एवं सत्यवादी थे।२। वहाँ पर प्रीति से वेताल और भैरव सर्वदा सहचर थे। अलर्क—दमन और उपरिचर ये तीन थे। चन्द्रशेखर भाई सदा नित्य साथ में चरण करने वाले थे।३। राजा के तीन पुत्रों में जो उपचर प्रभृति थे उनमें

दोनो पुत्रों को भली भाँति प्रणत भी देखा करता था। ६। इसके अनन्तर राजा ने उपरिचर को यौवराज्य पद पर अभिषिक्त कर दिया था। वह सबसे बड़ा और समस्त राजा के गुणों से संयुत औरस पुत्र था। १०। जो पीछे नीतियों के द्वारा समस्त राजाओं को योजित करेगा। उपरिचर नाम वाला समस्त शास्त्रों में अर्थों में पारङ्गत था। ।११। राजा ने दमन के लिये तथा अलर्क के लिये दाय दिया था जिसमें बहुत धन रत्न थे तथा अधिक आसन और रथ थे। १२। भाग के द्वारा उतना धन रत्न आदि दाय के वित्त उन दोनों के लिये नहीं दिये थे जो कि वेताल भैरव थे इसके अनन्तर उन दोनों में क्रोध ने प्रवेश कर लिया था। वे दोनों ही क्रोध से अभिपरीति हो गये थे और वे दोनों इधर-उधर विचरण करने लग गये थे। उन दोनों वीरों ने भोगों के उपभोग करने की इच्छा ही नहीं की थी और वे तपश्चर्या का समाचरण करने के लिये उद्यत हो गये थे। उन दोनों के किसी भार्या से विवाह नहीं किया था अर्थात् वे दोनों अविवाहित थे तथा निरन्तर सदा ही निर्जन वन में वास किया करते थे ॥१४॥

तथाभूतौ तदा पुत्रौ देवौ वेतालभैरवौ।
तुबुधे चिन्तयाक्रान्ता देवी तारावती तदा ॥१५
राजोपरिचराद् भीता पत्युश्च चन्द्रशेखरात्।
नोवाच किंचित् सुधतीच्छन्नं तौ बोधयत्यपि ॥१६
एतस्मिन्नन्तरे विद्वान् कपोतो मुनिसत्तमः।
चित्रागदासगभोगो सन्तुष्टः सुरतोत्सवे. ॥१७
चित्रागदां परित्यज्य सपुत्रां सहचारिणीम्।
इयेष गन्तु स प्रोचे तदा चित्रागदा वचः ॥१८
चित्रागदे तपस्तप्तु गमिष्यामि तपोवनम्।
किं ते प्रियं करोमीह तं मे वद मनोहरे ॥१९
तुम्बुरुश्च सुवर्चाश्च तनयौ तव सुव्रत।

एतयोस्त्वं मुनिश्रेष्ठ प्रियं कुरु यथोचितम् ॥२०
मां चापि भगिनीगेहे संस्थाप्य द्विजसत्तम ।
तदा तपोवनं गच्छ यदि ते रोचतेऽनघ ॥२१

उस काल में देव वेताल और भैरव पुत्रों को उस प्रकार से रहने वाले हैं—ऐसा ज्ञान किया तो उस समय में देवी तारावती चिन्ता से समाक्रान्त हो गई थी अर्थात् उसे बहुत अधिक चिन्ता समुत्पन्न हो गई थी ॥१५॥ वह उपरिचर राजा से और अपने पति चन्द्रशेखर से भयभीत हो गई थी। वह सुन्दरी गुप्त रूप से उन दोनों का ज्ञान रखती हुई भी कुछ भी नहीं बोली थी ॥१६॥ इसी बीच में मुनियों में परम श्रेष्ठ और विद्वान् कपोत चित्राङ्गदा के साथ सम्भोग करने वाला और सुरतोत्सवों के द्वारा परम सन्तुष्ट होकर उस सहचारिणी एवं पुत्रों से युक्त चित्राङ्गदा का परित्याग करके उसने वहाँ से गमन करने की इच्छा की थी और उस अवसर उसने चित्राङ्गदा से यह वचन कहा था ॥१७—१८॥ मुनि ने कहा—हे चित्राङ्गदे ! मैं तपस्या का समाचरण करने के लिये अब तपोवन में गमन करूँगा। यहाँ पर मैं तेरा क्या प्रिय कार्य करूँ ? हे मनोहरे ! इसी को मुझे तुम बतलाओ ।१९। चित्राङ्गदा ने कहा—हे सुव्रत ! सुन्दर और सुवर्चा ये दो आपके पुत्र हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! आप इन दोनों का जो भी उचित हो वह प्रिय करो ॥२०॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मुझको भी मेरी भगिनी के घर में संस्थापित करके हे अनघ आपको यदि रुचता है तो फिर आप तपोवन में गमन करिए ।२१।

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः कपोतो मुनिसत्तमः ।
हिरण्यार्थं समालोच्य कुबेरसदनं ययौ ॥२२
प्रार्थयित्वा कुबेरं तु सुवर्णानां शतानि षट् ।
निष्काणां तु सहस्राणि स लेभे मुनिसत्तमः ॥२३
सत्र भागञ्च स्नानादानीत स सुवर्णकं ।

पुत्राभ्यां प्रददौ विप्रो भार्यायै च विशेषतः ॥२४
ततस्तां सहपुत्राभ्यां तैर्धनैररि भूरिभिः ।
चित्रांगदामतेनाथ पुत्रयोरपि सम्मते ॥२५
सुवर्चसं तुम्बुरुं च तथा चित्रांगदामपि ।
आमन्त्र्य मुनिशार्दूल करवीर पुरं ययौ ॥२६
तत्र गत्वा स कपोतो राजानं चन्द्रशेखरम् ।
राजोपरिचरं चैव वाक्यमेतदुवाच ह ॥२७
इयं ककुत्स्थजा भूप सर्वेषु विदिता पुरा ।
सद्योजातौ तथैवास्यामेतौ मे तनयौ शुची ॥२८

मुनिश्रेष्ठ कपोत यह उसके वचन का श्रवण करके भली भाँति विचार करके हिरण्य (सुवर्ण) के लिये कुबेर के भवन में गये थे ।२२। उसने कुबेर से छः सौ सहस्र सुवर्ण के निष्का की प्रार्थना की थी और उसने प्राप्त कर लिया था ॥ २३ ॥ वीथियों के सहित सौभार रत्नों के लाकर विप्र ने पुत्रों को दे दिया था और विशेष रूप से भार्या को दिया था ॥२४॥ इसके उपरान्त पुत्रों के सहित तथा बहुत से धनों के भी साथ चित्राङ्गदा के तथा पुत्रों के भी मत से सुवर्चा और तुम्बरु तथा चित्राङ्गदा को भी आमन्त्रित करके वह मुनि शार्दूल करवीरपुर में चला गया था ॥२६॥ वहाँ जाकर वह कपोत राजा चन्द्रशेखर से तथा राजा उपरिचर यह वाक्य बोला था ॥ २७ ॥ हे नृप ! यह ककुत्स्थ की पुत्री है और यह पहिले आपको भी जानी हुई है। उसी भाँति ये परम शुचि—सद्योजात ये दोनों इसके उदर से समुद्भूत मेरे पुत्र हैं ॥ २८ ॥

एभिर्वित्तै सम पुत्रौ मम त्वं प्रतिपालय ।
राजोपरिचरश्चापि पालयत्विह मे सुतौ ॥२९
अपुत्रस्य नृप पुत्रो निर्धनस्य धनं नृप ।
अमातुर्जननी राजा ह्यतातस्य पिता नृप ॥३०
अनाथस्य नृपो नाथो ह्यभर्तुं पार्थिव पतिः ।

अमृत्यस्य नृपो भृत्यो नृप एव नृणा सखा ।
सर्वदेवमयो राजा तस्मात् त्वामर्थये नृप ॥३१
तत. स राजा प्राह मुनिमेव द्विजोत्तमम् ।
करिष्ये त्वद्वचश्चाह राजोपरिचरश्च स. ॥३२
अथ चित्रागदा राजा क्षग्राह मुनिसम्मते ।
सुतौ च तस्य सधनौ ज्यायसे सूनवे ददौ ॥३३
स चोपरिचर प्रादाद्राज्यमर्धं सुवर्चसे ।
तथैव सचिवाध्यक्षमकरोत्तुम्बुरुं तदा ॥३४
कपोतश्चापि सुग्रीन पुत्रार्थं समवेक्ष्य च ।
जगामामन्त्र्य नृपतिं तपसे च तपोवनम् ॥३५

इन धन के साथ आप मेरे दोनों पुत्रों का प्रतिपालन करें । राजो परिचर भी यहा पर मेरे पुत्रों का परिपालन करें । २६। जो पुत्र हीन होता है उसका पुत्र नृप ही होता है और जो धन हीन होता है उसका धन भी नृप ही हुआ करता है। विना माता वाले की जननी नृप है और तात से रहित का पिता भी नृप ही हुआ करता है । ३०। अनाथ का नृप नाथ है और विना भर्त्ता वाले का पति नृप है। जिससे कोई भृत्यु न होवे वे उसका भृत्य राजा ही है और नृप ही मनुष्यों का सखा है। राजा सभी देवो से परिपूर्ण हुआ करता है इसीलिये हे नृप ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ । ३१। और्व ने कहा—इसके अनन्तर उस राजा ने द्विजोत्तम उस मुनि से इस प्रकार से कहा था—मैं आपका वचन पूर्ण करूँगा और राजो परिचर भी करेगा ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त उस राजा ने मुनि की सम्मति से चित्राङ्गदा को ग्रहण कर लिया था। और उसने दोनों सुतों को जो धन के सहित थे बड़े पुत्र के लिये उसने दे दिया था । ३३। उस उपरिचर ने सुवर्चा को राज्य का आधा भाग दे दिया था। और उसी भाँति उस अवसर पर तुम्बरु को उसने सचिवों का अध्यक्ष बना दिया था । ३४। और कपोत भी पुत्र का अर्ध भाग देखकर परम

प्रसन्न हुआ और राजा का आमन्त्रण करके वह तप के लिए तपोवन को चला गया था ॥३५॥

पथि गच्छन् स कपोत. शम्भुपुत्रौ मनोहरौ ।
एकाकिनौ चरतन्तौ तु सूर्यचन्द्रमसाविव ॥३६
तयोर्ददर्श च सदा बदने वानराकृती ।
स्मृत्वा पूर्वकथा दृष्ट्वा तावपृच्छत् तपोधन. ॥३७
कौ युवा देवगर्भाभौ चरन्तौ विजने पथि ।
एकाकिनौ नरश्रेष्ठौ तन्मे वदतमीरितम् ॥३८
अथ तौ प्रणिपत्यैनं सम्भाष्य च समञ्जसम् ।
कपोताख्य मुनिश्रेष्ठमचतुः शंकरात्मजौ ॥३९
चन्द्रशेखरपुत्रौ नौ तारावत्या समुद्गतौ ।
विद्धि त्व मुनिशार्दूल प्रणमावः पद तव ॥४०
अवज्ञा वीक्ष्य नृपतेरावयोः सततं मुने ।
एकाकिनौ निर्जनेषु भ्रभावो मन्युना सदा ॥४१
किमर्थमात्मजौ पुत्रौ प्रणतौ सतत नृपः ।
अवज्ञाय महाभाग दायमात्रं न दित्सति ॥४२

मार्ग मे गमन करते हुए उस कपोत ने अकेले विचरण करते हुए—परम मनोहर और चन्द्र के ही समान हो भगवान् शम्भु के पुत्रों को देखा था। और उन दोनो के मुख मे बन्दर की सी—आकृति देखी थी। पूर्व में घटित कथा का स्मरण करके और उन दोनों को देखकर उस तपोधन ने उन से पूछा था। ३६। ३७। आप दोनो कौन हैं जो कि देव गर्भ के समान आभा वाले हैं और मार्ग मे उस वियावान मे एकाकी विचरण कर रहे हैं। हे नर श्रेष्ठो! यह मेरे कथित का आप उत्तर बतलाइए। ३८। इसके अनन्तर उन दोनों इनको प्रणिपात किया था और समञ्जस सम्भाषण किया था अर्थात् समुचित बातचीत की थी। उन शङ्कर के दोनो पुत्रो ने कपोत नाम वाले मुनि श्रेष्ठ से कहा

था । ३६ । हे मुनि शार्दूल ! हम दोनो चन्द्र शेखर के पुत्र हैं और तारावती के उदर मे समुत्पन्न हुए है । आप हमको जान लीजिए । हम आपके पदो मे प्रणाम करते हैं । ४० । हम दोनो की राजा से निरन्तर अवज्ञा देखकर हे मुने ! क्रोध से संयुत होते हुए हम सदा ही अकेले ही निर्जन वनो मे भ्रमण किया करते हैं । ४१ । सर्वदा प्रणत रहने वाले आत्मज पुत्रों को अब शाल करके नृप किस लिये हे महाभाग ! दान मात्र को भी देने की इच्छा नहीं करता है ।।४२।।

तस्मादावां तपस्तप्तुमिच्छावो द्विजसत्तम ।
उपदेशप्रदानेन चानुगृह्णाति चेद्भवान् ।।४३
ततस्तयोर्वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानसंत्ताविदं मुनिरब्रवीत् ।।४४
न युवां तनयौ तस्य चन्द्रशेखरभूपतेः ।
तारावत्यां समुत्पन्नौ भवन्तौ शंकरात्मजौ ।।४५
सद्यो जातौ महावीर्यौ वेतालत्वे च सम्मतौ ।
भृङ्गिमहाकालसंज्ञौ शापाद् धरणिमागतौ ।।४६
युवयोरत्र तेनैव न दायं दित्सति प्रियम् ।
गच्छतं शरणं तातं शंकरं वृषभध्वजम् ।।४७
स एव युवयोः सर्वं करिष्यति महेश्वरः ।
किं वारयत्रेण तपसा चिरकालफलेन वै ।।४८
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः कपोतः परमात्मधृक् ।
भूतभव्यभवज्ज्ञानन्ताभ्यां सर्वमयोचिवान् ।।४९

हे द्विज श्रेष्ठ ! इसी कारण से हम दोनो तप का समाचरण करने के लिये इच्छा कर रहे हैं यदि आप उपदेश के प्रदान के द्वारा हमारे ऊपर अनुग्रह करते हैं । ४३ । इसके अनन्तर उन दोनों के वचन का श्रवण करके मुनि श्रेष्ठ हँस कर उन दोनो से मुनि यह बोले थे जो कि भूत—भव्य और भवत् के ज्ञान से समन्वित थे । ४४ । मुनि ने

कहा—आप दोनों उस चन्द्रशेखर भूपति के पुत्र नहीं हैं। आप तो तारावती के उदर से समुत्पन्न हुए शङ्कर के ही पुत्र हैं। ४५। आप दोनों महावीर्य सद्योजात हैं और वेतालत्व में सम्मत हैं। आप भृङ्गि और महाकाल नाम वाले हैं। शाप के कारण से ही आप दोनों इस धरणी तल में समागत हुए हैं। ४६। तुम दोनों को यहाँ पर उसी कारण से वह प्रिय दाय नहीं देना चाहता है। आप अपने पिता वृषभध्वज भगवान् शङ्कर की शरणागति में गमन कीजिए। ४७। वे ही शम्भु तुम दोनों का सभी कुछ कर देंगे। इस उग्र तप में क्या लाभ है जिसका फल बहुत ही लम्बे समय में प्राप्त होता है। ४८। परम आत्मा को धारण करने वाले मुनि शार्दूल कपोत इतना कहकर जिनको अतीत वर्त्तमान और भविष्य का पूर्ण ज्ञान था। उन दोनों से उन ने सब कहा था ॥४६॥

यथा भृंगिमहाकालौ शप्तावबनिमागतौ।
यथा हरश्च गौरी च पृथिवीमागतौ नृप ॥५०
तारावती यथा शप्ता तेनैव मुनिना पुरा।
यथा तौ च समुत्पन्नौ तारावत्युदरे पुरा ॥५१
यथा वा नारदेनैव सशयच्छेदन नृपे।
तत्सर्वं कथयामास पुत्राभ्या गिरिशस्य तु ॥५२
तच्छ्रुत्वा तौ महात्मानौ तदा वेतालभैरवौ।
मुदा परमया युक्तौ ब भूवतुरनिन्दितौ ॥५३
मोदपूर्णौ तदा भूत्वा सिक्ताविव सुधारसं।
पुन पप्रच्छ कपोत वेतालो भैरवोऽपि च ॥५४
पितावयोर्महादेवस्त्वया सत्यमितीरितम्।
सोऽर्चनीयो यथावाभ्या सिद्धये मुनिसत्तम ॥५५
आवाभ्या च यथाराध्यो यत्र वाराधितो हर।
प्रसादमेष्यत्यचिरात् तन्नो वद महामते ॥५६

धन्यावनुगृहीतौ नौ यत् त्वया मुनिसत्तम ।
विज्ञापित मिद सर्वं हृच्छल्य चोद्धृत च नौ ॥५७
पुनरप्या दयस्व त्वं कृपामय मुनीश्वर ।
प्राप्स्यावो न चिराद् भर्गं यथा वद तथैव नौ ॥५८

जिस प्रकार से भृङ्गि और महाकाल को शाप प्राप्त हुआ था और वे धरणी पर समागत हुए थे, हे नृप ! जैसे भगवान् शम्भु और गौरी पृथिवी पर आगत हुए थे।५०। पहिले उसी मुनि के द्वारा तारावती को शाप दिया गया था। और पुराने समय में जिस तरह से वे दोनों तारावती के उदर से समुत्पन्न हुए थे।५१। अथवा जिस प्रकार से नारदजी के द्वारा नृप के संशय का छेदन हुआ था। वह सभी कुछ विशिष्ठ के पुत्रों से कह दिया था।५२। उस समय में उन दोनों महात्मा वेताल और भैरव ने यह श्रवण कर के परम हर्ष से संयुत हुए थे।५३। उस अवसर पर मोह में पूर्ण होकर सुधा रस से सिक्त के ही भाँति वे हो गये थे। फिर वेताल और भैरव ने कपोत मुनि से पूछा था।५४। हम दोनों के पिता महादेव हैं—यह आप ने सत्य ही कहा है। हे मुनि श्रेष्ठ ! वे जिस रीति से हम दोनों के द्वारा आराधना करने योग्य होवें अथवा जिस स्थान पर उनकी आराधना की जावे जिससे हम दोनों की सिद्धि होवे। जिसके द्वारा वे शीघ्र ही प्रसन्नता को प्राप्त हो जावें हे महामते ! यह ही हमको आप बतलाने की कृपा करें ॥५५॥५६॥ हम दोनों परम धन्य हैं कि आपने हम दोनों पर परम अनुग्रह किया है। हे मुनि श्रेष्ठ ! आपने यह सब विज्ञापित कर दिया है और हम दोनों के हृदय का शल्य आपने उद्धृत कर दिया है। अर्थात् हमारे हृदय में शल्य की ही भाँति जो दुःख था वह दूर कर दिया है।५७। हे मुनीश्वर ! आप तो कृपा से परिपूर्ण हैं। पुनः हमारे ऊपर दया कीजिये। जिस रीति से हम शीघ्र ही भर्ग को प्राप्त कर लेवें उसी भाँति आप हमको बतलाइये ॥५८॥

शृणु त्वं कथयाम्यद्य यत्र चाराधितो हर ।
नचिरादेव भवतोरायास्यति समक्षताम् ॥५६
नित्यं यत्र महादेवो वसन् भवति तुष्टये ।
युवा तत् सम्प्रवक्ष्यामि स्थानं गुह्यं प्रकाशितम् ॥६०
वाराणसी नाम परी गंगातीरे मनोहरे ।
वरणायास्तथा चासेर्मध्ये चापाकृति सदा ॥६१
स्वयं वृषध्वजस्तत्र नित्यं वसति योगिनाम् ।
सदा प्रीतिकरो योगी स्वयं चाध्यात्मचिन्तकः ॥६२
वियत्स्था सा परी नित्यं भर्गयोगबलाद् धृता ।
दिव्यज्ञानं ददात्येषा तत्र यो म्रियते नरः ॥६३

मुनि ने कहा—आप सुनिये, मैं आज बतलाता हूँ कि जहाँ पर आराधना किये हुए भगवान् हर शीघ्र ही आपके समक्ष में समागत हो जायेंगे । ५६ । जहाँ पर नित्य ही महादेव निवास करते हुये तुष्टि के लिये होते हैं आप दोनों को उस स्थान का बतला दूँगा । वह स्थान गोपनीय प्रकाशित है । ६० । वाराणसी नाम वाली पुरी है जो परम सुन्दर भागीरथी गङ्गा के तट पर बसी हुई है तथा वारणा के वाम में मध्य में सदा चाप की आकृति के समान आकृति वाली है । ६१ । वहाँ पर ही वृषभध्वज स्वयं नित्य ही निवास किया करते हैं । वे योगी सदा ही योगियों की प्रीति के करने वाले हैं । ये स्वयं योगी हैं और अध्यात्म चिन्तन करने वाले हैं । ६१ । वह पुरी आकाश में संस्थिता है और नित्य ही भगवान् भर्ग के योग बल से धारण की हुई है । वहाँ पर जो भी अपने प्राणों का त्याग कर मृत्यु को प्राप्त हुआ करता है तो यह पुरी उसको दिव्य ज्ञान का प्रदान किया करती है ॥६३॥

तस्मै स्वयं महादेव संसार-ग्रन्थिमुक्तये ।
स भूत्वा परमो योगी मृतस्तत्र भवान्तरे ॥६४
सुलभेनैव निर्वाणमप्नोति हरसम्मत ।

योगयक्तो महादेवः पार्वत्या सहितः सदा ॥६५
देवगन्धर्वयक्षाणां मानुषाणां च नित्यशः ।
ज्ञेयो हरः प्रकाशश्च क्षेत्रं तच्च प्रकाशितम् ॥६६
न तत्र कामदो देवो नचिराच्च प्रसीदति ।
आराधितश्चिर प्रीत्या निर्वाणाय प्रसीदति ॥६७
गौर्या विवर्जिता सा तु परी तत्र न गच्छति ।
योगस्थान महाक्षेत्रं कदाचिदपि शांकरी ॥६८
आसन्नं युवयोः क्षेत्रमिदं वाराणसी तु यत् ।
कथितं नातिदूरे च वर्तते नरसत्तमौ ॥६९
अपरं तु प्रवक्ष्यामि गुह्यं पीठं सदार्चितम् ।
हरगौरीसमायुक्त परं धर्मार्थकामदम् ॥७०

उस पुरुप को जो भी वाराणसी पुरी में प्राण त्याग किया करता है महादेव स्वयं ही ससार के आवागमन की ग्रन्थि के बन्धन का छुटकारा पाने के लिये कृपा किया करते हैं। वहां पर मृत होकर पुरुष दूसरे जन्म में उत्पन्न होकर परम योगी हो जाता है । ६४ । भगवान् हर के द्वारा सम्मत होता हुआ वह सुलभ उपाय के द्वारा ही वह पुरुष निर्वाण पद को प्राप्त हो जाता है अर्थात मुक्ति प्राप्त कर लेता है । योग से युक्त महादेव सदा पार्वती के सहित निवास किया करते हैं । ६५ । देव—गन्धर्व—यक्षों को और मनुष्यों को नित्य ही हर ज्ञेय (जानने के योग्य) और प्रकाश हैं और वह क्षेत्र प्रकाशित है । ६६ । वहां पर देव कामनाओं का प्रदान करने वाले नहीं हैं और शीघ्र ही प्रसन्न नहीं होते हैं । चिरकाल पर्यन्त प्रीति से आराधना किये हुए ही निर्वाण के लिये ही प्रसन्न हुआ करते हैं । ६७ । वह पुरी गौरी के द्वारा विवर्जित है । वह योग का स्थान महाक्षेत्र हैं वहाँ किसी समय में शाङ्करी देवी गमन नहीं किया करती है । ६८ । जो यह वाराणसी है वह आप दोनों का आसन्न क्षेत्र है ऐसा कहा गया है और वाराणसी है नर श्रेष्ठो !

समीप म ही विद्यमान है ।६६। दूसरा गोपनीय और सदा ही अर्चित पीठ को मैं बतलाऊँगा जो हर और गौरी से समायुक्त है और परम धर्म—अर्थ तथा काम के प्रदान करने वाला है ।।७०।।

तपसा चाति तीव्रेण चिराद् भवनि मोक्षदम् ।
नचिरात् कामदं पुण्य क्षेत्र पीठ निगद्यते ।।७१
चिरात् तु कामदो देवो न चिराद् यत्र ज्ञानद ।
तत्क्षेत्रमिति लोकेषु गद्यते पूर्ववन्दिभि. ।।७२
कामरूप महापीठ गुह्याद् गुह्यतम परम् ।
सदा सन्निहितस्तत्र पार्वत्या सह शकर ।।७३
न चिरात् पूजितो देवस्तस्मिन् पीठे प्रसीदति ।
पार्वती चानुगृह्णाति भर्गभक्त तु तत्र वै ।।७४
ददाति नचिरात् काम भक्ताय परमेश्वर ।
तत् तु पीठ प्रवक्ष्यामि शृणुत साम्प्रत युवाम् ।।७५
करतोया नदी पूर्व यावद् दिक्करवासिनीम् ।
त्रिशद् योजनविस्तीर्ण योजनैकशतायतम् ।।७६
त्रिकोण कृष्णवर्ण च प्रभूताचलपूरितम् ।
नदीशतसमायुक्त कालरूप प्रकीर्तितम ।।७७

करती है । ७४ । परमेश्वर अपने भक्त के लिये शीघ्र ही कामना को दिया करते हैं उस पीठ के विषय में मैं बतलाऊँगा । अब आप दोनों श्रवण कीजिए । ७५ । पूर्व जहाँ तक दिक्कर नासिनी है वर तोया नहीं है। वह तीस योजन विस्तार वाली है और एक शतयोजन आयत है। । ७६ । वह त्रिकोण—कृष्ण वर्ण से युक्त तथा बहुत से पर्वतों से पूरित है। सौ नदियों से समायुक्त है और काल रूप कीर्तित किया गया है ॥ ७७ ॥

शम्भुनेत्राग्निनिर्दग्धः कामः शम्भोरनुग्रहात् ।
तत्र रूपं यतः प्राप कामरूपं ततोऽभवत् ॥७८
तस्य पीठस्य वायव्यां नैऋ त्यां मध्यभागतः ।
ऐशान्यां च तथाग्नेय्यां मध्ये पार्श्वे च शंकरः ॥७९
स्वमाश्रमपदं कृत्वा षट्सु स्थानेषु शोभनम् ।
नित्यं वसति तत्रापि पार्वत्या सह नर्मभि. ॥८०
मध्ये देवीगृहं तत्र तदधीनं तु शकरः ।
नीलाख्ये पर्वतश्रेष्ठे पार्वती तत्र तिष्ठति ॥८१
ऐशान्या नाटके शैले शंकरस्य महाश्रमः ।
नित्यं वसति तत्रेशस्तदधीना च पार्वती ॥८२
अपरे चाश्रमाः सन्ति हरगौर्योः सदातनाः ।
नैतयोः सदृशः कोऽपि विद्यते शंकराश्रमः ॥८३
यत्राराध्यो महादेवो भवद्भ्यां नरसत्तमौ ।
तत्स्थानं मनसादाय प्रसादय वृषध्वजम् ॥८४

भगवान् शम्भु के नेत्र से भस्मी भूत हुए काम देव ने भगवान् शम्भु के अनुग्रह से वहाँ पर रूप को प्राप्त किया था इसी लिये तभी से वह कामरूप हो गया था । ७८ । उस पीठ के मध्य भाग से वायव्य में—नैर्ऋत्य में—ऐशानी में और आग्नेयी में मध्य में और पार्श्व में शङ्कर हैं । ७९ । इन छै स्थानों में परम शोभन अपना आश्रम का स्थान बना

कर यहाँ पर भी पार्वती के साथ नर्म कार्यों को करते हुए नित्य ही शंकर निवास किया करते हैं । ८० । मध्य में देवी का गृह है । वहाँ पर उसी के अधीन शंकर हैं । वहाँ पर नील नामक श्रेष्ठ पर्वत में पार्वती विराजमान रहती हैं । ८१ । ऐशानी दिशा में नाटक शैल पर भगवान् शङ्कर का महान् आश्रम है । वहाँ पर नित्य ही ईश्वर निवास किया करते हैं और उनके अधीन पार्वती रहती हैं । ८२ । और दूसरे हर तथा गौरी के सनातन आश्रम हैं किन्तु इन दोनों के सदृश कोई भी शंकर का आश्रम नहीं है । हे नरश्रेष्ठो ! जहाँ पर आप दोनों के द्वारा महादेव आराधना करने के योग्य है । उसी स्थान को मन से ग्रहण करके वृषभध्वज को प्रसन्न करिए ॥८३॥८४॥

कामरूप गमिष्यावो रहस्य नाटकाचलम् ।
गौरीहरौ स्थितौ यत्र नित्य सन्निहितौ मुने ॥८५
आराधनीयो भूतेशो ह्यवश्यमिह चावयो ।
यथैवाराधयिष्यावस्तथाचक्ष्व द्विजोत्तम ॥८६
येन मन्त्रेण वा देवो नचिरात् तु प्रसीदति ।
तत् त्व वद महाभागानुग्रहोऽस्त्यावयोर्यदि ॥८७
नाटक पर्वतश्रेष्ठ गच्छत नरसत्तमौ ।
तत्र नित्य महादेवौ रमतेऽपर्णया सह ॥८८
सन्ध्याचले तत्र मुनिराराधयति शकरम् ।
वशिष्ठो ब्रह्मण पुत्रस्त युवामनुगच्छतम् ॥८९
स च मन्त्र सतन्त्र च हराराधनकर्मणि ।
ज्ञापयिष्यति वा पृष्ट किल वेतालभैरवौ ॥९०
तपसे गन्तुमिच्छामि नेदानी कालयापना ।
युज्यते मम तस्मान्मा त्यजत वीरसत्तमौ ॥९१

वेताल और भैरव ने कहा—हे मुनिवर ! हम कामरूप को गमन करेंगे जो रहस्य नाटक पर्वत है । जहाँ पर गौरी और हर नित्य ही

सर्वे हरं चानुजग्मुरनुगच्छन्तमात्मजौ ।
अथ तौ तु नदीं प्राप्य कृष्णाजिनधरौ तदा ॥१००
आदाय तापसं भावं गंगातुल्यां दृषद्वतीम् ।
तपस्विनौ तु देवेन त्र्यम्बकेणाथ पालितौ ॥१०१
देवैः सह तदायातौ कामरूपाह्वयाश्रमम् ।
आसाद्य कामरूपं तु करतोयानदीजले ॥१०२
उपस्पृश्य ततस्तौ तु नन्दिकुण्ड नृपोत्तम ।
तत्र स्नात्वाप्युपस्पृश्य नदीं गत्वा जठोद्भवाम् ॥१०३
उपस्पृश्य च तौ तत्र नन्दिनं तपसा धृतम् ।
प्रणम्य जल्पिशं देवं जग्मतुर्नाटिकाचलम् ॥१०४
नाटकाचलमासाद्य प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
आराधनोपदेशाय कपोतकवच स्मरौ ॥१०५

इसके अनन्तर उन दोनो वेताल और भैरव ने जो उस समय मे कृष्ण हिरन के चर्म को धारण करने वाले थे। एक नदी को प्राप्त किया था अर्थात् उनको आगे एक नदी मिली थी ॥१००॥ वे दोनो ही तापस के भाव को प्राप्त हुए थे। वह नदी दृषद्वती थी जो कि गङ्गा के ही समान परम पावन थी। भगवान् त्र्यम्बक देव के द्वारा वे दोनो तपस्वी पालित हुए थे ॥ १०१ ॥ उस समय मे देवगणो के सहित वे दोनो कामरूप नाम वाले आश्रम मे समापति हुए थे। कामरूप मे पहुँच कर कर तोया नदी का जल मिला था ॥ १०२ ॥ हे नृपोत्तम ! उन दोनो ने नदी के जल मे आचमन किया। फिर नन्दिकुण्ड पर पहुँचे थे। वहाँ पर आचमन तथा स्नपन करके फिर जठोद्भवा नदी पर गमन किया था ॥१०३॥ वहाँ पर दोनो ने उपस्पर्श किया था और वहाँ पर तप के द्वारा धृत नन्दि कुण्ड को प्रणाम किया तथा जल्पिश देव को प्रणिपात किया था और फिर नाटक नामक पर्वत पर गमन किया था ॥ १०४ ॥ नाटक नामक पर्वत पर पहुँच कर वृषभध्वज को

तपसा तु तयो भावौ भाव त्यक्त्वा तु मानुषम् ॥६७
यथाप्नुत सौरभाव विधास्यामि ह्यहं तथा ।
इत्युक्त्वा वामदेवोऽपि पार्वत्या सह पुत्रको ॥
गच्छन्तौ वियता स्नेहात् पश्चादनुययौ शिव ॥६८
शक्राद्यास्त्रिदशा सर्वे दिक्पालाश्च तथापरे ॥६६

इतना इस प्रकार से कहकर वह मुनि श्रेष्ठ कपोत वन म चला गया था। उन दोनो ने उस मुनि को प्रणाम किया था और फिर व दोनो अपने भवन को चले गये थे ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर उस समय म वे दोनो समय करके तपश्चर्या के लिये दीक्षित हुए थे। माता पिता से अनुज्ञा प्राप्त करके भाइयो को और अन्य बान्धवो को भी ज्ञापित करके उन दोनो महा मति वालो ने कामरूप के लिय प्रस्थान कर गये थे। ॥ ६३ ॥ उमा देवी के सहित भगवान् शङ्कर भी उन दोनो को गमन किये हुये जानकर इन्द्र के सहित समस्त देवो को सान्त्वना देते हुए की भाँति यह बोले थे ॥ ६४ ॥ ईश्वर ने कहा—हे सुरेश्वरो ! मेरे पुत्र दोना तप करने के लिए गये हैं। वे दोनो मेरी आराधन म चित्त वाले हैं। हे सुर श्रेष्ठो ! उन पर दया करो ॥ ६५ ॥ इन दोनो पुत्रो का जो कि वे ताल और भैरव नाम वाले है तपस्या से सत्कार करके मैं इनको गाणपत्य मे नियोजित करूँगा। हे निजरो ! आप लोग उन दोनो का सत्कार कर दो ॥ ६६ ॥ तप से उन दोनो के शरीर मानुष भाव को त्याग करके वे दोनो इसी शरीर से गणेशत्व को प्राप्त हो जायँगे ॥ ६७ ॥ जिस रीति से दोनो सौर भाव को प्राप्त हो जावें मैं वैसा ही करूँगा। इतना कहकर वामदेव भी पार्वती के साथ ही आकाश मार्ग से गमन करते हुए पुत्रो के पीछे स्नेह से शिव भी गये थे ॥६८॥ अपने पुत्रो के पीछे अनुगमन करते हुए भगवान् हर पीछे पीछे इन्द्र आदि सब देवगण—दिक्पाल और दूसरे लोग सब पीछे पीछे अनुगमन करने लग गये थे ॥६६॥

सर्वे हरं चानुजग्मुरनुगच्छन्तमात्मजौ ।
अथ तौ तु नदीं प्राप्य कृष्णाजिनधरौ तदा ॥१००
आदाय तापसं भावं गंगातुल्यां दृषद्वतीम् ।
तपस्विनौ तु देवेन त्र्यम्बकेणाथ पालितौ ॥१०१
देवैः सह तदायातौ कामरूपाह्वयाश्रमम् ।
आसाद्य कामरूपं तु करतोयानदीजले ॥१०२
उपस्पृश्य ततस्तौ तु नन्दिकुण्डं नृपोत्तम ।
तत्र स्नात्वाप्युपस्पृश्य नदीं गत्वा जठोद्भवाम् ॥१०३
उपस्पृश्य च तौ तत्र नन्दिनं तपसा धृतम् ।
प्रणम्य जल्पिशं देवं जग्मतुर्नाटकाचलम् ॥१०४
नाटकाचलमासाद्य प्रणम्य वृषभध्वजम् ।
आराधनोपदेशाय　　कपोतकवचस्मरौ ॥१०५

इसके अनन्तर उन दोनों वेताल और भैरव ने जो उस समय में कृष्ण हिरन के चर्म को धारण करने वाले थे। एक नदी को प्राप्त किया था अर्थात् उनको आगे एक नदी मिली थी ॥१००॥ वे दोनों ही तापस के भाव को प्राप्त हुए थे। वह नदी दृषद्वती थी जो कि गङ्गा के ही समान परम पावन थी। भगवान् त्र्यम्बक देव के द्वारा वे दोनों तपस्वी पालित हुए थे ॥ १०१ ॥ उस समय में देवगणों के सहित वे दोनों कामरूप नाम वाले आश्रम में समागत हुए थे। कामरूप में पहुँच कर कर तोया नदी का जल मिला था ॥ १०२ ॥ हे नृपोत्तम ! उन दोनों ने नदी के जल में आचमन किया। फिर नन्दिकुण्ड पर पहुँचे थे। वहाँ पर आचमन तथा स्नपन करके फिर जठोद्भवा नदी पर गमन किया था ॥१०३॥ वहाँ पर दोनों ने उपस्पर्शन किया था और वहाँ पर तप के द्वारा धृत नन्दि कुण्ड को प्रणाम किया तथा जल्पिश देव को प्रणिपात किया था और फिर नाटक नामक पर्वत पर गमन किया था ॥ १०४ ॥ नाटक नामक पर्वत पर पहुँच कर वृषभध्वज को

प्रणाम किया और आराधन के उपदेश के लिये कपोत के वचन का स्मरण किया था ॥१०५॥

जग्मतुर्दक्षिणा काष्ठा यत्र सन्ध्याचल स्थितः ।
कान्ता नाम नदी तत्र वशिष्ठेनादतारिता ॥१०६
तस्यास्तीरे महाशैल. स्निग्धच्छायलतातरुः ।
सन्ध्या वशिष्ठः कृतवास्तत्र यस्माद् विधेः सुत ॥१०७
अत सन्ध्याचल नाम तस्य गायन्ति देवताः ।
तत्रासाद्य वशिष्ठ तु साक्षादिव हुताशनम् ॥१०८
आराधयन्त गिरिश ध्यानसयुतमानसम् ।
तप श्रिया दीप्यमान द्वितीयमिव भास्करम् ॥१०९
प्रणम्य पुरतस्तस्य तदा वेतालभैरवौ ।
प्राजली तस्यतुर्भूप विनयानतकन्धरौ ॥११०
इद चाप्यूचतुस्तौ तु प्रणमन्तौ विधे. सुतम् ।
ताराक्षत्या समुत्पन्नौ चन्द्रशेखरभूभृत ॥१११
क्षेत्रे भर्गस्य तनयावावा जानीहि मानुषौ ।
आराधयितुमिच्छावो हर कार्यस्य सिद्धये ॥११२

फिर दोनो दक्षिण दिशा की ओर गमन कर गये थे जहाँ पर सन्ध्याचल सस्थित था । वहाँ पर कान्ता नाम की नदी थी जो वसिष्ठ मुनि ने अवतारित की थी ॥ १०६॥ उस नदी के तट पर एक महान् शैल था जिस पर घनी छाया वाले वृक्ष और लताऐं थीं । क्योंकि ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ जी ने वहाँ पर सन्ध्या वन्दना की थी ॥१०७॥ इसीलिये देवगण उस पवत का नाम सन्ध्याचल गाया करते हैं । वहाँ पर पहुच कर वसिष्ठ मुनि का दर्शन किया था जो साक्षात् अग्नि के ही तुल्य थे ॥१०८॥ वे वसिष्ठ मुनि भगवान् गिरिश की आराधना कर रहे थे और उनका मन ध्यान मे सयुक्त था । वे तपस्या की श्री से दीप्यमान थे और दूसरे सूर्य के ही समान प्रतीत हो रहे थे । १०९ ।

उस अवसर पर उनके आगे वेताल और भैरव ने प्रणाम किया था। हे भूप ! वे दोनो विनय से अवनत होते हुए हाथो को जोडे हुए स्थित हो गये थे ।११०। उन दोनो ने यह प्रणाम करते हुए विधाता के पुत्र से कहा था कि चन्द्र शेखर भूभृत् मे हम दोनो तारावती से उत्पन्न हुए है ॥१११॥ इस क्षेत्र मे भर्ग के पुत्र हम दोनो को मनुष्य ही जानिए। हम कार्य की सिद्धि की लिये भगवान् शम्भु की आराधना करने की इच्छा रखते है ॥११२॥

वाञ्छितस्य यदि त्व नावनुगृह्णासि सुव्रत ।
तयोस्तद् वचन श्रुत्वा वशिष्ठो मुनिसत्तम. ॥११३
उवाचेति युवा ज्ञातो मया सत्य हरात्मजो ।
हरस्याराधन कार्यं युवयोर्नरसत्तमो ॥११४
नवास्ति मम कृत्य किं तद्भावतमनिन्दितौ ।
पृपध्वजाराधनाय युवयोस्तु प्रयोजनम् ।
विद्यते तन्निमित्तं यत् तत् सिद्धमिति चिन्त्यत्यताम् ॥११५
येन मन्त्रेण नचिरान् सम्यगाराधितो हर. ।
प्रसादमेष्यत्यवनौ तन्नो वद महामुने ॥११६
यथा चाराधयिष्यावस्तत्र यद् यादृश. श्रम. ।
तत्सर्वं मुनिशार्दूल वक्तुमर्हसि चोत्तरम् ॥११७
यथा त्वदुपदेशेन प्राप्स्यावो नचिराद् हरम् ।
यथा वाचा मुनिश्रेष्ठ ह्यनुशाधि न तौ त्वयि ॥११८

हे सुव्रत ! यदि आप हम दोनो के अभीष्ट के विषय मे अनुग्रह करते हैं। उन दोनो के उस वचन का मुनियो मे श्रेष्ठ वसिष्ठजी ने श्रवण किया और उन्होने कहा था कि मैंने आप दोनो का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और सत्य मे आप दोनो ही भगवान् शम्भु के आत्मज है। हे नरश्रेष्ठो ! आप दोनो को भगवान् शम्भु की आराधना करनी चाहिए ॥ ११३—११४ ॥ परम श्रेष्ठ आप दोनो यहाँ पर मेरा क्या

हृदय है यह बोलिए। वृषभध्वज की आराधना के लिए आप दोनों का प्रयोजन है। जो उसका निमित्त है वह सिद्ध हो गया है यही चिन्तन कीजिए ॥ ११५॥ वेताल और भैरव ने कहा—जिस मन्त्र के द्वारा अविलम्ब ही भली भाँति भगवान् शम्भु की आराधना की गई है। हे महामुने ! वह हमारे ऊपर अवनी (पृथ्वी) में प्रसन्नता को प्राप्त होंगे—यही हमको आप बतलाइए ॥ ११६ ॥ हे मुनि शार्दूल ! जिस रीति से हम आराधना करें—जो मन्त्र है और जैसा भी क्रम है—यह सभी आप उत्तर रूप में बताने के लिये योग्य होते हैं ॥ ११७ ॥ जिस रीति से आपके उपदेश से शीघ्र ही हर को प्राप्त कर लेवें। हे मुनिश्रेष्ठ ! आप अनुशासन कीजिए। हम दोनों आपके प्रति प्रणत हैं ॥११८॥

प्रसन्न एव भवतोर्वृषकेतु सहोमया ।
नचिरात् स्वयमेवात्र प्रसाद च समेष्यति ॥११९
सर्वैर्देवगणै सार्धं सभार्यो वृषभध्वज ।
आकाशमार्गेणायात पालयन स्वसुतौ गृहात् । १२०
किन्तु मानुपदेहो वामधिवास्य तपोव्रतं ।
स्वयन्नेष्यति कलास गाणपत्ये नियोज्य वाम् ॥१२१
अह चाप्युपदेक्ष्यामि यथा भर्गं युवा द्रुतम् ।
प्राप्स्यथ पार्वतीपुत्रावेकाग्र शृणुत तु तत् ॥१२२
चिरात् प्रसीदति ध्यानग्नचिराद् ध्यानापूजनात् ।
तस्माद् ध्यान पूजन च कथयाम्यद्य तत्त्वत ॥१२३
तेजोमय सदा शुद्धो ज्ञानामृतविवर्धित ।
जगन्मयश्चिदानन्द शौरिब्रह्मस्वरूपधृक ॥१२४
महादेवो महामूर्तिर्महायोगयुत सदा ।
जगन्ति तस्य रूपाणि तानि को गदितु क्षम ॥१२५
किन्तु यैरिह रूपैस्तु विचरत्येष शकर ।

तेषां यन्मे ज्ञानगम्यं तदभीष्टं निगदामि वाम् ॥१२६

वसिष्ठजी ने कहा—आप दोनों के ऊपर भगवान् वृषकेतु उमा-देवी के सहित प्रसन्न ही हैं। यहां पर स्वयं ही शीघ्र ही प्रसाद को प्राप्त हो जायेंगे ॥११६॥ समस्त देवगणों के साथ अपनी भार्या के साथ वृषध्वज गृह से अपने पुत्रों का पालन करते हुए आकाश के मार्ग के द्वारा समागत हैं ॥१२०॥ किन्तु आपके मनुष्य के देह का अधिवासन करके अर्थात् तपो व्रतों से संस्कार करके स्वयं ही कैलास पर ले जायेंगे। और गाणपत्य पराम्नाय दोनों का नियोजन करेंगे ॥ १२१ ॥ और मैं भी उपदेश कर दूंगा। जिससे आप दोनों ही शीघ्र ही भर्ग को प्राप्त कर लेंगे। हे पार्वती पुत्री ! उसे एकाग्र मन से श्रवण कीजिए ॥१२२॥ ध्यान से चिरकाल में प्रसन्न होते हैं और शीघ्र ध्यान पूजन से प्रसन्न होते हैं। इस कारण से आज तात्त्विक रूप से ध्यान और पूजन बतलाता हूं ॥ १२३ ॥ वे तेज से परिपूर्ण हैं—सदा शुद्ध स्वरूप हैं—ज्ञानामृत से विवर्धित हैं—जगत् से परिपूर्ण हैं—चित् (ज्ञान) और आनन्द रूप हैं—शौरि और ब्रह्मा के स्वरूप को धारण करने वाले हैं ॥ १२४ ॥ महादेव—महामूर्ति और सदा महान् योग से संयुत हैं—ये सम्पूर्ण जगत् उनके ही स्वरूप हैं उनका कथन करने में कौन समर्थ है ॥१२५॥ किन्तु जिन रूपों से ये भगवान् शङ्कर विचरण किया करते हैं उनमें से जो मेरे ज्ञान के द्वारा गम्य है उसमें जो भी अभीष्ट है आप दोनों को मैं कहता हूं ॥१२६॥

प्रथमं शृणुतं मन्त्रं ततोऽनुध्यानगोचरम्।
ततः क्रमं तु पूजाया क्रमाद् वृत्तं नरर्षभौ ॥१२७
समस्तानां स्वराणां तु दीर्घा ज्ञेयाः सबिन्दुकाः।
भ्रलुशून्या सार्धचन्द्रा उपान्तेनाभिसंहिता ॥१२८
एभिः पंचाक्षरैर्मन्त्रं पंचवक्त्रस्य कीर्तितम्।
क्रमात् सम्मदसन्दोह-नादगौरत्र-संज्ञकाः ॥१२९

प्रासादस्तु भवेच्छेषः पंचमन्त्रा. प्रकीर्तिताः ।
एकैकेन तथैकैकं वक्त्र देवं प्रपूजयेत् ॥१३०
एकं समुदितं कृत्वा पचभिर्वा प्रपूजयेत् ।
प्रसादेनाथ वा पंचवक्त्रं देवं प्रपूजयेत् ॥१३१
सम्मदादिषु मन्त्रेषु प्रासादस्तु प्रशस्यते ।
शम्भो. प्रसादनेनैव यस्माद् वृत्तस्तु मन्त्रक. ॥१३२
तेन प्रासादसज्ञोऽयं कथ्यते मुनिसत्तमै. ।
तस्मात् सर्वेषु मन्त्रेषु प्रासादः प्रीतिद. पर ॥१३३

हे नरश्रेष्ठो ! सबसे प्रथम मन्त्र का श्रवण करो उसके पश्चात् अनुध्यान से साक्षात्कार को सुनिए। इसके पश्चात् पूजा का क्रम सुनाइये—क्रम से वृत्त को सुनिये ॥१२७॥ समस्त स्वरो मे दीर्घ शेष बिन्दु से युक्त होवे । ऋतु से शून्य हो तथा अर्ध चन्द्र से सयुत होवें । जमान्त से अभिसहित होवें ॥१२८॥ इन पाँच अक्षरो के द्वारा पञ्च वक्त्र का मन्त्र कहा गया है । क्रम से सम्मद—सन्दोह—नाद—गौरव सज्ञा वाले हैं । प्रासाद शेष होता है—इस रीति से पाँच मन्त्र कीर्तित किये गये हैं । एक-एक से वहाँ पर एक-एक वक्त्र को देव का पूजन करना चाहिए ॥ १२६—१३० ॥ अथवा एक को समुदित करके पाँचो से पूजन करे । इसके अनन्तर प्रसाद के द्वारा पञ्च वक्त्र देव का यजन करना चाहिये । १३१ । सम्पद प्रभृति मन्त्रो मे प्रसाद परम प्रशस्त कहा गया है । क्योकि शम्भु के प्रसादन से ही वृत्त मन्त्र होता है । १३२ । इसी कारण से मुनियो मे श्रेष्ठो के द्वारा यह प्रासाद सज्ञा वाला कहा जाया करता है। इस कारण से समस्त मन्त्रो मे प्रासाद परम प्रीति के प्रदान करने वाला है ।१३३।

आमोदकारक शम्भोर्मन्त्र. सम्मद उच्यते ।
मन प्रपूरणाच्चापि सन्दोह. परिकीर्तित. ॥१३४
आकर्षको भवेन्नादो गुरुत्वाद् गौरवास्त्वयः ।

एतद्व्यस्त समस्त च मन्त्र शम्भो प्रकीर्तितम् ॥१३५
पचाक्षर तु यन्मन्त्र पचवक्त्रस्य कीर्तितम् ।
युवा तेनैव मन्त्रेण आराधयतमीश्वरम् ॥१३६
ध्यान वक्ष्यामि शृणुत सम्यग वेतालभैरवौ ।
पचवक्त्र महाकाय जटाजूटविभूषितम् ॥१३७
चारचन्द्रकलायुक्त मूर्ध्नि वालौघभूषितम् ।
बाहुभिर्दशभिर्युक्त व्याघ्रचर्माम्बराम्बरम् ॥१३८
कालकूटधर कण्ठे नागहारोपशोभितम् ।
किरीटवन्धन बाहुभूषण च भुजगमान् ॥१३९
विभ्रत सर्वगात्रेषु ज्योत्स्नार्पितसुरोविषम् ।
भूतिसलिप्तसर्वांगमेकैकश्च त्रिभिस्त्रिभि ॥१४०
नेत्रैस्तु पचदशभिर्ज्योतिष्मद्भिर्विराजितम ।
वृषभोपरि सस्थ तु गजकृत्तिपरिच्छदम् ॥१४१

सम्मद मन्त्र भगवान् शम्भु के आमोद के करने वाला कहा जाता है । मन को प्रवृत्ति करने ही से सन्दोह कहा गया है ॥ १३४ ॥ नाद आकर्षण करने वाला नाद होता है । गुरुत्व होने से गौरव नाम वाला है । यह व्यस्त और समस्त अर्थात् अलग–अलग और सब पितावर भगवान् शम्भु के मन्त्र कीर्तित किये गये हैं ॥ १३५ ॥ पञ्चाक्षर अर्थात् पाँच अक्षरों वाला जो मन्त्र है वह पञ्च वक्त्र का कहा गया है । आप दोनो उस ही मन्त्र के द्वारा ईश्वर का समाराधन करिए । १३६ । हे वेताल भैरव ! मैं उनका ध्यान बतलाऊँगा उसका भली भाँति आप श्रवण करिए । अब शम्भु के स्वरूप का ध्यान बतलाया जाता है—शम्भु के पाँच मुख हैं—महान् उनका शरीर है—वे जटा जूटों से समलकृत हैं । १३७ । सुन्दर चन्द्रमा की कला से समन्वित हैं—मस्तक में बालों के समूह से विभूषित हैं—दश शम्भु की बाहुएँ हैं और व्याघ्र चर्म ही उनका वस्त्र है । १३८ । कण्ठ में भगवान् शम्भु ने हालाहल कालकूट विष को धारण किये हुए हैं

तथा नागों के हार से उनका वक्षस्थल विभूषित है। भुजङ्ग ही उनके किरीट का बन्धन है तथा नाग ही बाहुओं के भूषण बने हुए हैं।१३६। सम्पूर्ण अङ्गों में चाँदनी से अधिक सुन्दर कान्ति के धारण करने वाले हैं। भस्म से सम्पूर्ण अङ्ग सलिप्त हैं। एक एक मुख में तीन तीन नेत्र हैं। इस प्रकार से पन्द्रह ज्योतियों वाले नेत्रों से समुपशोभित हैं। वृषभ के ऊपर विराजमान हैं और हाथी के चर्म के परिच्छद वाले हैं। ॥ १४०—१४१ ॥

सद्योजातं वामदेवमघोरं च ततः परम् ।
तत्पुरुषं तथेशानं पंचवक्त्रं प्रकीर्तितम् ॥१४२
सद्योजातं भवेच्छुक्लं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
पीतवर्णं तथा सौम्यं वामदेवं मनोहरम् ॥१४३
नीलवर्णमघोरं तु दंष्ट्रं भीतिविवर्धनम् ।
रक्तं तत्पुरुषं देवं दिव्यमूर्तिं मनोहरम् ॥१४४
श्यामलं च तथेशानं सर्वदेवं शिवात्मकम् ।
चिन्तयेत् पश्चिमे त्वाद्यं द्वितीयं तु तयोत्तरे ॥१४५
अघोरं दक्षिणे देवं पूर्वे तत्पुरुषं तथा ।
ईशानं मध्यतो ज्ञेयं चिन्तयेद् भक्तितत्परः ॥१४६
शक्तित्रिशूलखट्वांगवरदाभयदं शिवम् ।
दक्षिणेष्वथ हस्तेषु वामेष्वपि ततः शुभम् ॥१४७
अक्षसूत्रं बीजपूरं भुजगं डमरूत्पलम् ।
अष्टैश्वर्यसमायुक्तं ध्यायेत् तु हृद्गतं शिवम् ॥१४८

अब शम्भु के पाँचों मुखों के नाम बतलाये जाते हैं--सद्यो जात - वामदेव—अघोर—तत्पुरुष—ईशान ये पाँच मुख कीर्तित किये गये हैं। ॥१४२॥ सद्यो जात का वर्ण शुक्ल है और वह स्वच्छ स्फटिक के तुल्य है। वामदेव पीत वर्ण वाला—सौम्य एवं मनोहर है ॥१४३॥ अघोर नीले वर्ण वाला है और उसमें दाढ़ है जो भय के बढ़ाने वाला है।

तत्पुरुष देव रक्त वर्ण से युक्त है जिसकी मूर्ति परम दिव्य है और वे मनोहर हैं ॥१४४॥ ईशान श्यामल हैं और सर्वदा ही शिव स्वरूप हैं। आद्य स्वरूप का पश्चिम दिशा म चिन्तन करना चाहिये। उत्तर दिशा म द्वितीय स्वरूप का चिन्तन करे ॥१४५॥ अघोर देव का दक्षिण मे तथा पूर्व दिशा म तत्पुरुष का चिन्तन करना चाहिए। मध्यभाग म ईशान का भक्ति भाव म तत्पर होकर चिन्तन करना चाहिए ॥१४६॥ दक्षिण भाग के हाथो म शक्ति—त्रिशूल—खट्वाङ्ग—वरदान—अभय दान के दाता शिव का चिन्तन करना चाहिए उसी भाँति वाम भाग के हस्तो म अक्ष सूत्र—बीजपर—भुजङ्ग—डमरू और शुभ उत्पल का ध्यान करे। आठ ऐश्वर्यो से समायुक्त हृदय म विराजमान शिव का ध्यान करना चाहिए ॥१४८॥

एव विचिन्तयेद् ध्याने महादेव जगत्पतिम् ।
चिन्तयित्वा द्वारपालान् गणेशादीन् प्रपूजयेत् ॥१४६
विशुद्धि पचभूताना चिन्तयित्वा ततो मुहु ।
अष्टमूर्तीनम्तत पश्चात् पूजयेदष्टनपभि ॥१५०
आसनानि च तस्याथ पूजयेत सकलानि तु ।
भावादीन्यष्टपुष्पाणि हृदैव विनियोजयेत् ॥१५१
नाराचमुद्रया तस्य ताडन परिकीर्तितम् ।
विसर्जन धेनुमुद्रा दर्शयित्वा विधानत ॥१५२
निर्माल्यधारण कुर्यात् सदा चण्डेश्वर धिया ।
प्रत्येक पचभिर्मन्त्रैरङ्गादीनि प्रमार्जयेत् ॥१५३
सम्मदादिभिरेतस्य पूर्वोक्तैर्नरसत्तमौ ।
वालां ज्येष्ठा तथा रौद्री कालीं च तदनन्तरम् ॥१५४
कलविकरिणी देवी बलप्रमथिनी तथा ।
दमनी सर्वभूताना मनोन्मथिनी तथैव च ॥१५५

इस प्रकार से ध्यान म जगत् के स्वामी महादेवजी का विचिन्तन

करना चाहिए। और द्वारपालों का चिन्तन करके गणेश आदि का पूजन करे ॥१४६॥ इसके अनन्तर पुनः पाँचों भूतों की विशुद्धि का चिन्तन करे। इसके उपरान्त आठ नामों के द्वारा आठ मूर्त्तियों का अभ्यर्चन करे ॥१५०॥ भावादि आठ पुष्पों का हृदय के द्वारा ही विनियोजन करना चाहिए और जो समस्त आसन्न हों उनका भी पूजन करे। ॥१५१॥ नाराच मुद्रा से उसका ताडन परिकीर्त्तित किया गया है। और धेनु मुद्रा दिखलाकर विधान से विसर्जन करे ॥१५२॥ सदा ही वृद्धि से चण्डेश्वर प्रभु को निर्माल्य धारण करना चाहिए। प्रत्येक का पाँच मन्त्रों के द्वारा अङ्गादि का प्रमार्जन करे ॥१५३॥ हे नर श्रेष्ठो ! इन पूर्व में वर्णित सम्मद आदि के द्वारा इसका प्रमर्जन करना चाहिए। फिर आठ देवियों का पूजन करे। उनके नाम हैं—वाला—ज्येष्ठा—रौद्री—काली—कलविकरणी—देवी—बल प्रमथिनी—सब भूतों की दमनी—मनोन्मथिनी ॥१५४।१५५॥

अष्टौ ता. पूजयेद् देवी. क्रमाच्छम्भोश्च प्रीतये ।
एव शिव पूजयित्वा ध्यानतत्परमानसः ॥१५६
जपेन्माला समादाय मन्त्रं ध्यात्वा तथा गरुम् ।
एक पचाक्षर मन्त्रमेक प्रासादमेव वा ॥१५७
तत्सक्तमनसो जप्त्वा शीघ्रं सिद्धिमवाप्स्यथ ।
इति वां कथित मन्त्रं ध्यानपजाक्रमं तथा ।
गच्छतं नाटकं शैलं तत्राराधयतं हरम् ॥१५८
पंचाक्षरस्तु मन्त्रोऽय धृतस्त्वत्सम्मते मुने ।
अनेनैव हरं देव पूजयिष्यावहे मुदा ॥१५६
इत्युक्त्वा तथमस्कृत्य तदा वेतालभैरवौ ।
जग्मतुर्नाटक शैल वशिष्ठानुमते नृप ॥१६०
तत्रास्ति सरसी रम्या सुधापूर्णमनोहरा ।
सर्वदा स्वच्छसलिला प्रफुल्लकमलोत्पला ॥१६१

इन आठ देवियों का यजन क्रम से भगवान् शम्भु की प्रीति के लिये करना चाहिए। इस रीति से शम्भु का पूजन करके ध्यान में परायण मन वाला हो जावे ॥१५६॥ फिर अपने श्री गुरुदेव का और मन्त्र का ध्यान करके माला का आदान कर जप करना चाहिए। एक ही पाँच अक्षरों वाला मन्त्र अथवा एक प्रसाद होवे ॥१५७॥ उसी में समासक्त मन वाले होते हुये जप करके शीघ्र ही सिद्धि की प्राप्ति कर लोगे। यह आप दोनों को मन्त्र बतला दिया है तथा इसका ध्यान और पूजा का क्रम भी कह दिया गया है। अब आप लोग नाटक पर्वत पर जाइये और वहाँ पर भगवान् हर की आराधना करिए ॥१५८॥ वेताल और भैरव इन दोनों ने कहा—हे मुनिवर ! यह पाँच अक्षरों वाला मन्त्र आपकी सम्मति से धारण कर लिया है और इसी मन्त्र के द्वारा देवेश्वर शम्भु का आनन्द के साथ हम यजन करेंगे ॥१५९। हे नृप ! इतना ही यह कहकर तथा वेताल और भैरव दोनों ने प्रणाम किया था और फिर वसिष्ठ मुनि की अनुमति से नाटक पर्वत पर वे दोनों चले गये थे ॥१६०॥ वहाँ पर एक परम सुन्दर सरोवर थी जो पूर्ण सुन्दरता से बहुत ही मनको हरण करने वाली थी। उसमें सर्वदा बहुत ही स्वच्छ जल रहा करता था और सदा विकसित कमल रहते थे ॥१६१॥

तस्यास्तीरे तु विपुल सुमनोज्ञो हराश्रम ।
सर्वदा दानवैर्देवै किन्नरै प्रमथैस्तथा ॥१६२
रक्ष्यते नृपशार्दूल नृत्यवादनतत्परै ।
यस्मिन्नटति तत्रेशो नित्य कौतुकयत्पर ॥१६३
तस्मान्नाटकनाम्नासौ शैलराज प्रगीयते ।
छत्राकार तु त शैल मनोज्ञ शकरप्रियम् ॥१६४
आसाद्य यत्र सरसी तत्र गत्वा तु तौ तदा ।
न चैवापश्यता तत्र हराश्रममनुत्तमम् ॥१६५
गन्तु चैवाश्रमस्थान तौ नैवाशक्तौ नृप ।

ततो हरं प्रणम्याशु तस्यैव सरसस्तटे ॥१६६
निर्माय स्थण्डिलं चारु वशिष्ठोक्तक्रमेण तु ।
हरमाराद्धुमारेभे वेतालो भैरवोऽपि च ॥१६७
आराधयन्तौ भूतेशं तौ तदा शंकरात्मजौ ।
दृष्ट्वा हरो देवगणैः सार्द्धं तस्मिंस्तु पर्वते ।
अधित्यकायां न्यवसत् स्वाश्रमेऽपर्णया सह ॥१६८

उसी सरोवर के तट पर परम विशाल और अत्यधिक सुन्दर भगवान् शम्भु का आश्रम था। वह आश्रम सर्वदा दानवों—देवों—किन्नरों तथा प्रमथों के द्वारा हे नृप शार्दूल ! रक्षा किया जाता है वे रक्षा करने वाले सदा ही नृत्य और वादन में परायण रहा करते हैं। जिस कारण से वहाँ पर ईश कौतुक में तत्पर होकर नित्य नटित हुआ करते हैं ॥१६२॥१६३॥ इसी कारण से यह पर्वत नाटक—इस नाम से प्रगीत किया जाता है। वह शैल छत्र के आकार के तुल्य आकार वाला था—परम मनोज्ञ था और भगवान् शङ्कर का अतीव प्रिय था ॥१६४॥ जहाँ पर सरोवर की प्राप्ति की थी। उस समय में उन दोनों ने वहाँ पर गमन किया था और उन्होंने परमोत्तम भगवान् हर का आश्रम नहीं देखा था ॥१६५॥ हे नृप ! वे दोनों आश्रम के स्थान पर गमन करने में असमर्थ हो गये थे। इसके अनन्तर उन्होंने भगवान् शम्भु को प्रणाम किया था और उसी सरोवर के तट पर स्थित होगये थे ॥१६६॥ वहाँ पर वसिष्ठ मुनि के द्वारा कथित क्रम से एक सुन्दर स्थण्डिल का निर्माण करके वेताल और भैरव दोनों ने भगवान् हर की आराधना करना आरम्भ कर दिया था ॥१६७॥ उस समय में शङ्कर के आत्मज वे दोनों का जो कि भूतेश्वर की आराधना कर रहे थे भगवान् शङ्कर ने उस पर्वत पर देवगणों के साथ देखकर उस पर्वत की अधित्यका में अपर्णा के ही साथ में अपने आश्रम में निवास किया था। पर्वत के नीचे की भूमि को अधित्यका कहा जाता है। उसी अधित्यका में भगवान् ने निवास करना शुरू कर दिया ॥१६८॥

अधोभागे सरस्तीरे तपस्यन्तौ हरात्मजौ ।
स्थितौ दृष्ट्वा देवगणै सहितः शंकरः स्थितः ॥१६९
नृत्यमर्दलशब्दो यो हरस्य सतत भवेत् ।
शृणुतस्तौ तदा शब्दं गन्तुं द्रष्टुं न लभ्यते ॥१७०
हरेणाधिष्ठित. शैलः सर्वदेवगणैः सह ।
राजते स्म तदा भूप सुधर्मा वासवी यथा ॥१७१
ध्यायतोस्तु तदा तत्र भगवान् वृषभध्वज ।
नचिरादेव तस्यामूद् ध्यानमार्गेषु निश्चल. ॥१७२
तौ पूजयन्तौ गच्छन्तौ स्थितौ वा चन्द्रशेखरम् ।
नैव तत्यजतुश्चित्तैः कदाचिदपि भूमिप ॥१७३
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पूजयन्तौ वृषध्वजम् ।
व्यतिचक्रमतुस्तौ त सहस्रं परिवत्सरान् ॥१७४
निराहारौ यताहारौ हरसक्तमानसौ ।
तपसा निन्यतुर्वर्षान सहस्रं चैकवर्षवत् ॥१७५

सरोवर के तट पर नीचे के भाग मे शङ्कर के पुत्र वे दोनो तपश्चर्या कर रहे थे। वहा पर उन दोनो को स्थित हुए देखकर देवगणो के सहित भगवान् शङ्कर भी वही पर संस्थित हो गये थे ॥१६९॥ वहा पर निरन्तर भगवान् हर का जो नृत्य और मर्दल का शब्द हुआ करता था। वे दोनों उस समय मे उनका श्रवण किया करते हैं किन्तु वहाँ पर गमन करना और देखना प्राप्त नही होता था ॥१७०॥ हे भूप ! वह पर्वत देवगणो के सहित भगवान् हर के द्वारा अधिष्ठित था। उस समय मे वे वासवी सुधर्मा की भाँति शोभित हो रहे थे ॥ १७१ ॥ उस समय मे वहाँ पर भगवान् वृषभ ध्वज ध्यान करने वाले उनके ध्यान मार्गों मे अविलम्ब ही निश्चल हो गये थे ॥१७२॥ हे भूमिप ! वे दोनो ही पूजा करते हुए—गमन करते हुए अथवा स्थित होते हुए भगवान् शम्भु का ही ध्यान किया करते थे और किसी समय मे भी चित्ता से

भगवान् चन्द्र शेखर का त्याग नहीं किया था ॥१७३॥ पाँच अक्षरों
वाले मन्त्र के द्वारा वृषभध्वज का पूजन करते हुए उन दोनों ने सहस्र
वर्षों का व्यतिक्रम कर दिया था ॥१७४॥ बिना आहार वाले—स्वल्प
आहार वाले और भगवान हर में ससक्त मन वाले उन दोनों ने तपश्चर्या
के द्वारा सहस्र वर्षों को एक ही वर्ष की भाँति बिताया था ॥१७५॥

गते वर्षसहस्रे तु स्वमेव वृषध्वज ।
प्रसङ्गस्तु तयोर्भूत्वा प्रत्यक्षत्वमुपागत ।१७६ ।
स तु प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा तदा वेतालभैरवौ ।
वृषध्वज तुष्टुवतुर्ध्यानगम्य पुर स्थितम् ॥१७७
हररूप यथाध्यात हृदगत तेजसोज्ज्वलम् ।
तथा दृष्ट्वा ततस्ताभ्या वशिष्ठस्यानुमानत ॥१७८
पञ्चवक्त्र महाकाय सर्वज्ञानमय परम् ।
ससारसागरत्राण प्रणमावो वृषध्वजम् ॥१७९
त्व पर परमात्मा च परेश पुरुषोत्तम ।
त्व कूटस्थो जगद्व्यापी प्रधान परमेश्वर ॥१८०
रूपात्मा त्व महातत्त्व तत्त्वज्ञानालय प्रभु ।
साङ्ख्ययोगालय शुद्धो गुणत्रयविभागवित ॥१८१
त्व नित्यस्त्वमनित्यश्च जगत्कर्ता लय स्मृत ।
एकोऽनेकस्वरूपश्च शान्तचेष्टो जगन्मय ॥१८२

एक सहस्र वर्षों के व्यतीत हो जाने पर वृषभध्वज स्वय ही उन
दोनों के प्रसङ्ग म होकर प्रत्यक्ष रूप मे उपागत हो गये थे ॥१७६॥
उस अवसर पर बेताल और भैरव दोनों ने भगवान शम्भु को प्रत्यक्ष मे
समागत हुए देखकर जो ध्यान [illegible] जानने के योग्य थे उनका सामने मे
विराजमान हुए पाकर उन्होने वृषभध्वज का स्तवन किया था ॥१७७॥
जिस प्रकार से हर्के स्वरूप का ध्यान किया था और जो तेज के द्वारा
उज्ज्वल हृदय म स्थित थे फिर उन दोनो ने उसी भाति वसिष्ठ मुनि के

अनुमान से उनका दर्शन किया था ॥१७८॥ वेताल और भैरव ने कहा—पांच मुखों वाले—महान् विशाल शरीर से समन्वित—सम्पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण—परम—संसार रूपी सागर से परित्राण करने वाले भगवान् वृषभध्वज को हम दोनों प्रणाम करते हैं ॥१७९॥ आप पर परमात्मा हैं और आप परेश पुरुषोत्तम हैं—आप कूटस्थ—जगत् में व्याप्त रहने वाले प्रधान परमेश्वर हैं ॥१८०॥ आप रूपात्मा हैं—आप महातत्त्व हैं—तत्त्व ज्ञान के आलय हैं प्रभु हैं—आप सांख्य योग के आलय हैं—शुद्ध और तीन गुणों (सत्त्व-रज-तम) के विभाग के ज्ञाता हैं ॥१८१॥ आप नित्य और अनित्य हैं—आप जगत् के कर्त्ता और लय कहे गये हैं। आप एक और अनेक रूप वाले हैं—शान्त चेष्टा से समुत और जगन्मय हैं ॥१८२॥

निर्विकारो निराधारो नित्यानन्द. सनातन ।
त्व विष्णुस्त्व महेन्द्रस्त्व ब्रह्मा त्व जगता पति ॥१८३

यो रूपरूपेश्वररत्नमाल
सम्भूतिभृतो निरवग्रहश्च ।
काश्यावतीर्णाविगतप्रमाथी
योगेश्वरो ज्ञानगतिस्त्वगम्यः ॥१८४

प्रमेयरूपात्मधराधराभो
भोगीन्द्रवद्धामृतभोगतन्त्र. ।
सूक्ष्माक्षरस्तत्त्वविदप्रमाथी
त्वं देवदेव. शरण सुराणाम् ॥१८५

विकल्पमानापरिहीनदेह
शुद्धान्तधामानुगतैकविध ।
वर्षिष्णुरुग्र. पुरुप परात्मा
त्वमिन्द्रियौघस्य विचारबुद्धि ॥१८६

त्व नाथनाथ प्रभवः परेषा
गतिर्मुनीना परयोगिगम्य ।

त्वं भूधरो भागधरो ह्यनन्तो
विश्वात्मनस्ते बहव प्रपन्चा ॥१८७
ज्ञानामृतस्यन्दकपूर्णचन्द्रो
मोहान्धकारस्य पर प्रदीप ।
भक्तात्मजाना परम पिता त्व
कामे च पचाननरूपधरो ॥१८८
शास्ताखिलाना प्रथमो विवस्वा-
स्तनूनपात् त्व तनुषे गुणोघान् ।
त्व ब्रह्मरूपेण करोषि सृष्टि
विष्णुस्वरूपं सतत स्थिति च ॥१८६

आप विकारों से रहित—निराधार— नित्य ही आनन्द स्वरूप हैं तथा सनातन हैं। आप विष्णु हैं—आप महेन्द्र हैं और आप ब्रह्मा तथा जगत् के स्वामी है ॥१८३॥ जो रूप और रूपेश्वर रत्नो की माता है—सम्भूति से भूत और निरवग्रह हैं—जो काश्यापवीर्ण अवगत प्रमा भी हैं—योगेश्वर—ज्ञान की गति वाले और अगम्य अर्थात् न जानने के योग्य हैं ॥१८४॥ आप प्रमेय रूप आत्मा के पराधराम है—आप योगीन्द्रा से बद्ध अमृत भोग तन्त्र वाले है। आप सूक्ष्म और अक्षर हैं—तत्त्वों के वेत्ता और अनुगामी हैं। आप देवों के भी देव और गुरुओं के रक्षक हैं ॥१८५॥ आप विकल्प और भाव से परिहीन देह वाले हैं—आप शुद्ध सन्ताधाम और अनुगतो की एक विद्या रूप हैं। आप वर्धिष्णु, उग्र पुरुष और परात्मा हैं—आप इन्द्रियो के समूह की विचार बुद्धि हैं ॥१८६॥ आप नाथो के भी नाथ हैं—परो के प्रभव अर्थात् उत्पत्ति स्थान हैं—आप मुनिगणो की गति है तथा पर योगियो के द्वारा जानने के योग्य हैं। आप भूधर है, भागधर और अनन्त हैं। विश्वात्मा आपके बहुत—से प्रपन्च हैं ॥१८७॥ आप ज्ञान रूपी अमृत के स्पन्दन करने वाले पूर्ण चन्द्रमा हैं और मोह रूपी अन्धकार के परम प्रदीप हैं।

आप भक्तो के पुत्रो के लिये परम पिता हैं और काम मे पञ्चानन के रूप को धारण करने वाले हैं ॥१८८॥ आप समस्तों के शास्ता हैं—आप प्रथम विवस्वान् है—आप तनूनपात् है—आप गुणो के समुदायो का विस्तार किया करते है । आप ब्रह्मा के रूप से सृष्टि किया करते हैं । और आप ही भगवान् विष्णु के रूप के द्वारा स्थिति अर्थात् परिपालन निरन्तर किया करते हैं ॥१८९॥

त्व रुद्ररूपी कुरुपे तथान्त
स्वत्तो न चान्याज्जगतीह वस्तु ।
त्व रात्रिनाथो दिवसेश्वरश्च
त्वमग्निराप पवनो धरित्री ॥१९०
नभस्तथा त्व क्रतुतन्त्रहोता
त्वमष्टमूर्तिर्भवतो न चान्यत् ।
अनन्तमूर्तिस्त्विह मुख्यभावा-
न्निगद्यते चाष्टामयी त्रिमूर्ति ॥१९१
अनन्तमूर्ते कथमन्यथा ते
संख्यास्ति रूपस्य यदष्टमूर्ति ।
त्वं त्र्यम्बकस्त्व त्रिपुरान्तकश्च
त्व शम्भुरीश शमनो विधाता ॥१९२
सहस्रवाहुश्च हिरण्यवाहु
सहस्रमूर्तिस्त्विह पञ्चवक्त्र- ।
प्रभूतनेत्रस्तु षडर्धनेत्र
प्रभूतवाहुर्दशवाहुरीश- ॥१९३
प्रभूतभोगी मितभोगयुक्तो
भोग्यानुसारो निरवग्रहश्च ॥१९४
नित्यानित्यस्वरूपाय नित्यधामस्वरूपिणे ।
परतत्त्वस्वरूपाय नमस्तुभ्य शिवात्मने ॥१९५

नान्त लिंगस्य यस्याप्तं विष्णुना ब्रह्मणा तव ।
तस्यावा किं विधास्याव: स्तुतिवाक्यं वृषध्वज ॥१६६

आप ही रुद्रदेव के रूप से इस जगत् का अन्त किया करते हैं । इस जगत् में आपसे अन्य कुछ भी वस्तु नहीं हैं । आप रात्रिनाथ अर्थात् चन्द्रमा हैं और आप ही दिननेश्वर हैं अर्थात् सूर्य हैं । आप ही अग्नि हैं—जल हैं, पवन हैं और आप ही धरित्री हैं ॥१६०॥ आप ही नभ हैं और आप ही क्रतुके तन्त्र होता है । आप ही अष्ट मूर्त्ति हैं और आपसे अन्य नहीं हैं । यहाँ पर मुख्यभाव से अनन्त मूर्त्ति हैं और अष्ट-मूर्त्ति के हो जाया करते हैं ॥ १६१ ॥ हे अनन्त मूर्तियों वाले ! आपके रूप की अन्य प्रकार से संख्या कैसे हो सकती है क्योंकि आप अष्ट मूर्त्ति हैं। आप त्र्यम्बक है और आप त्रिपुर के अन्त करने वाले हैं । आप शम्भु हैं, ईश हैं, शमन है और विधाता है ॥१६२॥ आप सहस्रबाहु हैं—हिरण्य बाहु है—आप सहस्र मूर्ति है और यह पञ्च वक्त्र अर्थात् पाँच मुखों वाले है । आप बहुत नेत्रों वाले है और तीन नेत्रों से संयुत है । आप प्रभूत (बहुत) बाहुओं से युक्त है और ईश दश बाहुओं वाले है । ॥ १६३ ॥ आप बहुत अधिक भोगों के उपभोग करने वाले हैं और सीमित भोगों वाले है । भोग्यों के अनुसार है और अवग्रह से रहित हैं ॥ १६४ ॥ नित्य और अनित्य स्वरूपों वाले के लिये—नित्य धाम स्वरूपी के लिये—परतत्त्व स्वरूपी वाले शिवात्मा आपके लिये नमस्कार है ॥ १६५ ॥ जिन आपके लिङ्ग का अन्त ब्रह्मा और विष्णु ने भी प्राप्त नहीं किया था । हे वृषध्वज ! उन आपका हम दोनों क्या स्तुति वाक्य करेंगे ॥१६६॥

स्वरूप यस्य जानन्ति न देवा नापि दानवा ।
बालावाभ्यां कथन्तु त्वा स्तोष्याव. परमेश्वर ॥१६७
भक्तिमात्रेण देवेश सदावां वृषभध्वज ।
कुर्वं प्रणाम गौरीश भूयस्तुभ्यं नमो नमः ॥१६८

इति स्तुतो महादेवो वेतालेन महात्मना ।
भैरवेणापि राजेन्द्र प्रसन्न. प्राह तौ तदा ॥१९९
तुष्टोऽस्मि युवयोः पुत्रौ वृणुत वाञ्छितं वरम् ।
दास्यामि युवयोरिष्टं प्रसन्नोऽह्न तपोव्रतं ॥२००
स्तुतिभिस्तु दमैश्चापि तथैकान्तानुचिन्तनैः ।
मुहुर्मुहु. सुप्रसन्न इष्टं दास्यामि वा सुतौ ॥२०१
तुष्टोऽसि यदि सत्य नो सत्यमावां सुतौ यदि ।
वृषध्वज तवैवेह तदेष्टं देहि नौ वरम् ॥२०२
सुतभावेन पितरं भवन्त जगतां पतिम् ।
नित्य यथावगच्छावस्तथा देहि वर तु नौ ॥२०३

जिनके स्वरूप को देवगण और दानवगण भी नहीं जानते हैं । हे परमेश्वर ! हम दोनों बालक किस प्रकार से आपका स्तवन करेंगे । ॥१९७॥ हे वृषभध्वज ! हे देवेश ! हम दोनों केवल भक्ति से ही हे गौरीश ! प्रणाम करते हैं । पुन. आपको वारम्वार नमस्कार है ।१९८॥ और्व ने कहा है—इस प्रकार से महान् आत्मा वाले वेताल के द्वारा महादेवजी की स्तुति की गयी थी । हे राजेन्द्र ! भैरव ने भीस्त वन किया था । उस समय में वे प्रसन्न होकर उन दोनों से बोले ॥१९९॥ भगवान् ने कहा—हे पुत्रो ! मैं आप दोनों पर परम प्रसन्न हूँ अब अपना वाञ्छित वरदान मांगिये मैं तपोव्रतों से परम प्रसन्न हूँ तुम दोनों का अभीष्ट दे दूँगा ॥१००॥ हे सुतो ! आपकी स्तुतियों से—मदों से तथा एकान्त चिन्तनों से बार २ जो किये गए थे मैं बहुत ही प्रसन्न हो गया हूँ—आप दोनों का जो भी अभीष्ट होगा उसे मैं दे दूँगा ॥२०१॥ वेताल—भैरव—दोनों ने कहा—यदि सचमुच ही आप हम दोनों के ऊपर प्रसन्न हैं यदि हम दोनों सचमुच ही आपके सुत हैं । हे वृषध्वज ! यहाँ पर आपका ही जो इष्ट हो वही हम दोनों को वरदान देने की कृपा करो ॥२०२॥ सुतभाव

से जगतो वे पति पिता आपको नित्य ही जैसे हम अवगत कर वैसा ही वरदान हम दोनो को प्रदान कीजिए ॥२०३॥

न राज्यमभिकाक्षावो न धन नान्यदेव वा ।
त्वद्भक्त्या सेवन कर्तु तवेच्छावो वृषध्वज ॥२०४
त्वत्पादपकजद्वन्द्वे नित्य मधुकरात्मताम् ।
त्वयि प्रसन्ने नेत्राणा युगले प्राप्नुता सदा ॥२०५
इतोऽन्यथा त्वच्चिन्ताभिस्त्वद्ध्यानैस्त्वत्प्रपूजनै ।
कल्पकोटिसहस्राणि यान्तु सम्यक्तयावयो ॥२०६
ततस्तद् वचन श्रुत्वा महादेवो हसन्निव ।
सर्वैर्देवगणं सार्धं देवत्वमकरोत्तयो ॥२०७
देवेन्द्रसम्मतेनैव सुधामानीय नाकत ।
वेतालभैरवौ तान्तु पाययामास शकर ॥२०८
पीतेऽमृते ततस्तौ तु मर्त्यता नरसत्तमौ ।
अमर्त्यता परित्यज्य प्रापतु शिवशक्तित ॥२०९
तस्मिन्काले स्वपन्तौ तु दिव्यज्ञानबलान्वितौ ।
दिव्यरूपोपसम्पन्नौ बभूवतुररिन्दमौ ॥२१०

हम लोग राज्य की इच्छा नही रखते है —न धन ही चाहते हैं और अन्य भी कुछ की इच्छा है। हे वृषध्वज ! आपकी भक्ति की भावना से आपकी भावना से आपकी सेवा करना चाहते है ॥२०४॥ आपके चरण कमल के युग्म म नित्य ही मधुकर की स्वरूपता को प्राप्त होवें। आपके प्रसन्न होने पर नेत्रो का जोडा सदा ही सफलता को प्राप्त होगा ॥१०५॥ यहाँ से आगे अन्य प्रकार से आपके चिन्तनो से— आपके ध्यानों से और आपके पूजनो से हम दोनो के करोडों सहस्र कल्प भली भाँति व्यतीत होवें ॥१०६॥ इसके अनन्तर महादेवजी ने हँसते हुए की भाँति ही सब देवगणो के साथ उन दोनो को देवत्व कर दिया था ॥२०७॥ भगवान् शकर ने देवेन्द्र की सम्मति से ही स्वर्ग से

अमृत को लाकर उसको वेताल और भैरव को मिला दिया था ॥२०८॥ हे नरश्रेष्ठो ! भगवान् शिव की भक्ति से अमृत के पी लेने पर उन दोनों ने मर्त्यभाव का परित्याग करके अर्थात् मृत्यु के मुँह में जाने के भाव का त्याग करके वे दोनो ही अमर्त्यता को प्राप्त हो गये थे ॥१०६॥ उस अवसर में स्तवन करते हुये वे दोनों दिव्य ज्ञान और बल से समन्वित हो गये थे। वे दिव्य रूप से सम्पन्न अरियों के दमन करने वाले हो गय ॥२१०॥

अभिन्नेनैव देहेन देवत्व गतयोस्तयो ।
प्राह शम्भुस्तदा तौ तु सुतौ परमहर्षितौ ॥२११
अहं तुष्टस्तु युवयो पार्वती दयिता मम ।
मद्दत्त काममिच्छन्तावाराधयतमीश्वरीम् ॥२१२
तामृते तु न शक्नोमि दातुमिष्ट सनातनम् ।
सेवितु च सुतौ नित्य शरण व्रजत शिवाम् ॥२१३
अचिराद् येन भावेन प्रीति देवी गमिष्यति ।
अत्र वा तत्र वा गत्वा तेन भावेन चार्य्यताम् ॥२१४

इसी अभिन्न देह के द्वारा देवत्व को प्राप्त हुये उन दोनों से भगवान् शम्भु बोले। उस समय में वे दोनों सुत परम हर्षित हुय थे। ॥२११॥ भगवान् ने कहा—मैं तो आप दानों पर परम प्रसन्न हूँ। मेरे दिये हुए काम की इच्छा करते हुए आप दोनों मेरी दयिता पार्वती ईश्वरी की समाराधना करो ॥२१२॥ उनके बिना मैं सनातन अभीष्ट नहीं दे सकता हूँ। उनकी नित्य ही सेवा करने के लिये शिवा पार्वती देवी की शरणागति में गमन कीजिए। जिस भाव से शीघ्र ही वह देवी प्रीति को प्राप्त हो जावें वहाँ पर अथवा यहाँ पर गमन करके उसी भाव से उन का समर्चन करिये ॥२१४॥



।। महामाया कल्पे अष्टादश पटल ।।

एव वदति भूतेशे तदा वेतालभैरवौ ।
प्राहतुर्व्योमकेशं तौ हर्षोत्फुल्लविलोचनौ ।।१
पार्वत्या न हि जानीवो ध्यान मन्त्र विधि तथा ।
कथमाराधयिष्यो भगवन् सम्यगुच्यताम् ।।२
महामायाविधि मन्त्र कल्प च भवतो सुतौ ।
उपदेक्ष्यामि तत्त्वेन येन सर्वं भविष्यति ।।३

इत्युक्त्वा स महामायाध्यान मन्त्र विधि तथा ।
कथयामास गिरिशस्तयो सम्यङ् नृपोत्तम ।।४
यदष्टादशभि पश्चात्पटलैश्च स भैरव ।
स निर्णयविधि कल्प निबवन्ध शिवामृते ।।५
कीदृङ् मन्त्र पुरा शम्भुरवोचदुभयोस्तयो ।
येनाराध्य महामाया तौ गणेशत्वमातु ।।६
सकल्प सरहस्य च साङ्ग तच्छ्रोतुमुत्सहे ।
दशाष्ठपटलैयत् तु निबवन्ध सभैरव ।।७

और्व मुनि ने कहा—इस प्रकार से भूतेश्वर प्रभु के कथन करने पर उस समय म वेताल—भैरव दोनो ही वे हर्ष से उत्फुल्ल लोचनों वाले व्योम केश भगवान् से बोले ।।१।। वेताल—भैरव दोनों ने कहा—हे भगवन् ! हम दोनों देवी पार्वती का ध्यान—मन्त्र और विधि नही जानते है । हम उनकी किस प्रकार से आराधना करे गे—यह आप भली भाँति हमको बतलाइए ।।२।। श्री भगवान् ने कहा—हे सुतो ! मैं महा माया का मन्त्र—और कल्प आप दोनो के उद्देश करूँगा और तात्त्विक रूप से बतला दूँगा जिस से यह सब हो जायगा ।।३।। और्व ने कहा—हे नृपोत्तम ! उन देवेश्वर ने इस प्रकार से कहकर फिर माया माया का ध्यान— मन्त्र और विधि गिरिश प्रभु ने उन दोनों को भली

को सुनिये ॥९॥ श्री भगवान् ने कहा—आप श्रवण कीजिए मैं गुह्य से भी परम गोपनीय को बतलाऊँगा। वैष्णवी का महामाया महोत्सव आठ अक्षरों वाला है ॥१०॥ इस श्री वैष्णवी के मन्त्र का नारद ऋषि हैं और शम्भु देवता हैं। इसका अनुष्टुप छन्द है और इसका सब अर्थों के साधन में विनियोग होता है ॥११॥ ह्रान्तान्त पूर्व और रान्त उसी भाँति नान्त और षान्त है। एका दशाष्टक आदि वाला छटवा णान्त है जिसमें विष्णु आगे हैं ॥१२॥ इन आठ अक्षरों से मन्त्र होता है जो गौण पद्म की प्रभा के समान होता है। ॐकार पूर्व में लगाकर समस्त साधना करने वालों के द्वारा जप करना चाहिए ॥१३॥ यह महा मन्त्र परम गोपनीय है और वैष्णवी मन्त्र की संज्ञा वाला है। मन्त्र वाले वर गत है इसी कारण से अङ्ग कीलित किया गया है ॥१४॥

महादेवस्योर्ध्वमुखं बीजमेतत् प्रकीर्तितम् ।
ॐकाराक्षरबीजं च यकारः शक्तिरुच्यते ॥१५
सबीजं कथितं मन्त्रं कल्पं च शृणु भैरव ।
तीर्थे नद्यां देवखाते गर्तप्रस्रवणादिके ॥१६
परकीयेतरे तोये स्नानं पूर्वं समाचरेत् ।
आचान्तः शुचितां प्राप्त कृतासनपरिग्रह ॥१७
उत्तराभिमुखो भूत्वा स्थण्डिलं मार्जयेत् ततः ।
करेणानेन मन्त्रेण यं सः क्षित्या इति स्वयम् ॥१८
ॐ ह्रीं सः इति मन्त्रेण आशापूरणकेन च ।
तोयैरभ्युक्षयेत् स्थानं भूतानामपसारणे ॥१९
ततः सव्येन हस्तेन गृहीत्वा स्थण्डिलं शुचि ।
मन्त्रं लिखेत् सुवर्णेन याज्ञिकेन कुशेन वा ॥२०
ॐ वैष्णव्यै नमः इति मन्त्रराजमथापि वा ।
ततस्त्रिमण्डलं कुर्यात् तेनैव समरेखया ॥२१

महादेवजी का ऊर्ध्व मुख है। यह बीज कहा गया है। ॐकार

अक्षर बीज है और यकार शक्ति कही जाती है। १५। हे भैरव ! बीज के सहित मन्त्र कह दिया गया है और कल्प का श्रवण करो। किसी तीर्थ मे—नदी म—देवखात मे—गर्त्त प्रस्रवण आदि मे—परकीय से इतर जल म पूर्व म स्नान करे। आचमन करके शुचिता को प्राप्त हुआ होकर आसव का परिग्रह करे ॥ १६—१७ ॥ उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर फिर स्थण्डिल का मार्जन करना चाहिए। जिसको वह द्रव्य क्षति से इस मन्त्र के द्वारा कर मे करे। १८। "ॐ ह्रीं स" इस मन्त्र के द्वारा और अ.आ पुरक में जलो के द्वारा भूतोंके अपमारण करने मे अभ्युक्षण करे।१६। फिर मध्य हाथ से शुचि होकर स्थण्डिल का ग्रहण करके सुवर्ण की लेखनी से अथवा याज्ञिक कुशा से मन्त्र को लिखना चाहिए ॥२०॥ अथवा "ॐ ऐश्वर्यै नम " इस मन्त्रराज को लिखे फिर उसी से समरेखा में त्रिमण्डल करे।२१।

नित्यासु न हि पूजासु रजोभिर्मण्डल लिखेत् ।
पुरश्चरणकार्येषु तत्तान्येषु प्रयोजयेत् ॥२२
रेखामुदीच्या प्रथम पश्चिमे तदनन्तरम् ।
दक्षिते तु तत पश्चात् पूर्वभागे तु शेषत ॥२३
वर्णाना च सहद्वारं रेवमेव क्रमो भवेत् ।
ॐ ह्रीं श्री स इति मन्त्रेण मण्डल पूजयेत् तत ॥२४
हस्तेन मण्डल कृत्वा कुर्याद् दिग्बन्धन तत ।
आशाबन्धनमन्त्रेण पूर्वोक्तेन यथाक्रमम् ॥२५
फडन्तेनात्मनाप्तत्र करेणैव निबन्धयेत् ।
यवाना मण्डलंरेवमङ्गुल चाष्टभिर्भवेत् ॥२६
अदीर्घयोजितंर्हस्तैश्चतुर्विंशतिरङ्गुलं ।
तत्प्रमाणेन हस्तेन हस्तैक तस्य मण्डलम् ॥२७
पद्म वितस्तिमात्र स्यात् कर्णिकार तदर्धकम् ।
दलान्यन्योन्यसक्तानि ह्यायतानि नियोजयेत् ॥२८

न न्यूनाधिकभगानि सबहिर्वेष्टितानि च।
मध्यभागे न्यसेद् द्वारञ्च न्यूने नाधिके तथा।
सुबद्धं मण्डलं तच्च रक्तवर्णं विचिन्तयेत् ॥२९

इतोऽन्यथा मण्डलमुग्रमस्याः
करोति यो लक्षणभागहीनम्।
फलं न चाप्नोति न काममिष्टं
तस्मादिदं मण्डलमत्र लेख्यम् ॥३०

नित्य होने वाली पूजाओं में रज से मण्डल को नहीं लिखना चाहिए। पुरश्चरण कार्यों मे और काम्यो में और इसके अनन्तर पश्चिम मे फिर इसके पीछे दक्षिण में पीछे शेष मे पूर्व भाग मे करे। २३। इसी प्रकार से वर्णों के द्वारों के द्वारों के सहित क्रम होता है "ॐ ह्रीं स" इस मन्त्र के द्वारा फिर मण्डल का पूजन करना चाहिए। २४। हाथ से मण्डल बनाकर फिर दिग्बन्धन करे। यथा क्रम से पूर्व में कथित आशाबन्धन से ही करे॥ २५॥ यहाँ पर भी फट् जिसके अन्त मे है अपने करने से ही निबन्धन करे। यवो के मण्डलो से और आठों मे एक अगुल होवे। २६। अदीर्घ योजित हाथो से चौबीस अगुलों से उस प्रमाण वाले हाथ से एक हाथ उसका मण्डल होता है। २७। एक वितास्त (बालिस्त) मात्र पद्म होता है और उससे आधा कर्णिकार है। उसके दल परस्पर मे सक्त होते हैं और आयत हों—ऐसे ही नियोजित करे। २८। न्यूनाधिक भाग वाले न हो और बाहिर वेष्टित के सहित है। ठीक मध्य भाग में द्वार का न्यास करे न्यून तथा अधिक मे न करे। और सुबद्ध मण्डल रक्त वर्ण वाला विचिन्तन करे। २९। इससे अन्यथा इसका उग्र मण्डल जो लक्षण और भाग रहित किया करता है उसका वह फल नहीं प्राप्त किया करता है और न अभीष्ट काम ही होता है। इससे यह मण्डल यहाँ पर लिखना चाहिए।३०।

— 000 —

॥ महामाया कल्प वर्णन ॥(१)

ततो लमिति मन्त्रेण अर्घपात्रस्य मण्डलम् ।
चतुष्कोण विधायाशु द्वारपद्मविवर्जितम् ॥१
ओं ह्रीं श्रीमितिमन्त्रेण अर्घपात्र तु मण्डले ।
विन्यसेत् प्रथम तत्र पूजयित्वा समिच्यति ॥२
ओं ह्रीं ह्रौमितिमन्त्रेण गन्धपुष्पे तथा जलम् ।
अर्घपात्रे क्षिपेत् तत्र मण्डलं विन्यसेत् ततः ॥३
पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा अर्घपात्रे ततो जले ।
त्रिभागैः पूरयेत् पात्र पुष्प तत्र विनि क्षिपेत् ॥४
ततो ह्रीमिति मन्त्रेण आसन पूजयेत स्वकम् ।
ततः क्षौमितिमन्त्रेण आत्मान पूजयेद बुध ॥५
गन्धैः पुष्पैः शिरोदेशे ततः पूजा समाचरेत् ।
ओं ह्रीं स इति मन्त्रेण पुष्प हस्ततलस्थितम् ॥६
समज्य सव्यहस्तेन घ्रात्वा वामकरेण तु ।
ऐशान्या निक्षिपेदेतत् पूर्वमन्त्रेण कोविद ॥७

श्री भगवान ने कहा—इसके उपरान्त 'लम्' इस मन्त्र से अर्घ-पात्र का चतुष्कोण मण्डल शीघ्र ही बनाकर जो कि द्वार पद्म से वर्जित होवे ॥ १ ॥ फिर " ॐ ह्रीं श्री " इस मन्त्र से मण्डल में अर्घ पात्र का विन्यास करना चाहिए। प्रथम वहाँ पूजा करके समिच्य करे । २ । 'ॐ ह्रीं, ह्रौं' इस मन्त्र से गन्ध और पुष्प तथा जल अर्घ पात्र में क्षिप्त करे फिर वहाँ पर मण्डल का विन्यास करना चाहिए । ३ । पूर्व की ही भाँति मण्डल करके अर्घ पत्र तीन भागों वाले जलों से पात्र को पूरित कर और उसमें पुष्प का क्षेप कर । ४ । फिर 'ह्रीं' इस मन्त्र से आसन का जो कि अपना ही यजन करे। फिर बुध को चाहिए कि "क्षौं"—इस मन्त्र से आत्मा का पूजन करे।

गन्ध—पुष्पों से शिरो देश में पूजा का समाचरण करना चाहिए। "ॐ ह्रीं स"—इस मन्त्र के द्वारा हस्त तल में स्थित पुष्प का समावर्त्तन करके मध्य कर से आघ्राण करके वाम करके द्वारा कोविद पुरुष को ऐशानी दिशा में इसका पूर्व मन्त्र से ही विनिक्षेप करना चाहिये। ॥ ४—७ ॥

रक्तं पुष्पं गृहीत्वा तु कराभ्यां पाणिकच्छकम् ।
बद्ध्वा कुर्यात ततः पश्चाद् दहनप्लवनादिकम् ॥८
वामहस्तस्य तर्जन्या दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम् ।
तथा दक्षिणतर्जन्यां वामाङ्गुष्ठं नियोजयेत् ॥६
उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः ।
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च ॥१०
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा ।
अधोमुखे तु ते कुर्याद् दक्षिणस्य करस्य च ॥११
कूर्मपृष्ठसमं पृष्ठं कुर्याद् दक्षिणहस्ततः ।
एवं बद्धः सर्वसिद्धिं ददाति पाणिकच्छपः ॥१२
कुर्यात् तद्धृदयासन्नं निमील्य नयनद्वयम् ।
समं कायशिरोग्रीवं कृत्वा स्थिरमना बुधः ॥१३
ध्यानं समारभेद् देव्या दाहप्लवतपूर्वकम् ।
अग्निं वायौ विनिक्षिप्य वायुं तोये जलं हृदि ॥१४

रक्त वर्ण के पुष्प का ग्रहण करके दोनों हाथों से पाणि कच्छप बाँध कर इसके पीछे दहन प्लवन आदि करे ॥ ८ ॥ बाँये हाथ की कनिष्ठिका को तथा दक्षिण हाथ की तर्जनी में वाम अंगुष्ठ को नियोजित करे । ९ । दाहिने उन्नत अंगुष्ठ को वाम कर की मध्यमादिक अंगुलियों को पृष्ठ में योजित करे जो कि दक्षिण करके पृष्ठ में करना चाहिए । १० । वाम करके पितृ तीर्थ से मध्यमा और अनामिका को अधोमुख

करे और दाहिने कर को दक्षिण हस्त मे कूर्म के पृष्ठ के समान करे। इस प्रकार से बँधा हुआ पाणि कच्छप सभी सिद्धियों को दे दिया करता है ॥ ११—१२ ॥ स्थिर मन वाले बुध पुरुष को चाहिए कि उसको अपने हृदय के समीप में करे और दोनों नेत्रों को मूँद लेवे। अपनी काया—शिर और ग्रीवा को समान रक्खे ॥ १३ ॥ फिर दाह प्लवन पूर्वक देवी के ध्यान का समारम्भ करना चाहिये। अग्नि को वायु में निक्षिप्त करके वायु को जल म और जल को हृदय म निक्षिप्त करे ॥ १४ ॥

हृदयं निश्चले दत्त्वा आकाशे निक्षिपेत्स्वनम् ।
ॐ हूँ फडिति मन्त्रेण भित्त्वा रन्ध्रं तु मस्तके ॥१५
शब्देन सहित जीवमाकाशे स्थापयेत् तत ।
वाय्वग्नियमशक्राणां बीजेन वरुणस्य च ॥१६
परास्थानपराशर्वतं साधचन्द्रं सविन्दुकं ।
शोष दाह तयोच्छाद पीयूषासेवन परम् ॥१७
यथाक्रमेण कर्तव्य चितामात्र विशुद्धये ।
ततस्तु देवीबीजेन अणु जाम्बूनदाकृतिम् ॥१८
तत्रासाद्य द्विधा कुर्यात् इम ह्रीं श्रोमिति मन्त्रका ।
तदूर्ध्वभागेषु हृदलोक स्वर्गा च ख तथा ॥१९
निष्पाद्य शेषभागेन भुव पातालचारिणि ।
चिन्तयेत्तत्र सर्वाणि सप्तद्वीपा च मेदिनीम ॥२०
तत्तेषु सागरास्तास्तु स्वर्णद्वीप विचिन्तयेत् ।
तन्मध्ये रत्नपर्यंक रत्नमण्डपसस्थितम ॥२१

हृदय को निश्चल आकाश म देकर स्वन का निक्षेप करे। "ॐ हूँ फट्"—इस मन्त्र के द्वारा मस्तक म रन्ध्र का भेदन करके शब्द के सहित जीव को आकाश म स्थापित करे। वायु—अग्नि—यम इन्द्रों का और वरुण का बीज के द्वारा शोषादि करे ॥ १५—१६ ॥

विभ्रती वामहस्ताभ्यामभीति वरदायिनीम् ॥२६
निम्ननाभिक्रमायातां क्षीणमध्यां मनोहराम् ।
आनमन्नागपाशोरू गुप्तगुल्फां सुपार्ष्णिकाम् ॥३०
बद्धपर्यङ्कसंकल्पा निर्वीरासनराजिताम् ।
गात्रेण रत्नसंस्तम्भं सम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ॥३१

आकाश गङ्गा के जल की राशि से सदा ही सेवित वह धाम है। उस पर्यङ्क पर रक्त पद्म है जो प्रसन्न और सर्वदा शिव है ॥२२॥ उसका ऐसा चिन्तन करे कि वह स्वर्ण मालाढ्य है—सात पातालों का नाल वाला है—ब्रह्म लोक से लेकर भुवन का स्पर्श करने वाला है तथा सुवर्णाचल के कर्णिका वाला है ॥२३॥ वहाँ पर स्थित महामाया का एकाग्र मन वाला होकर ध्यान करे। वह महामाया शोण पद्म के सदृश है और उसके केश खुले हुये रहकर लटके हुए हैं ॥२४॥ वह चलत्कांजमा पर समारूढ़ है तथा उज्ज्वल कुण्डलों की शोभा वाली है। सुवर्ण और रत्नों से सम्पन्न दो किरीटों के धारण करने वाली हैं। ॥२५॥ शुक्ल—कृष्ण और अरुण वर्णों वाले तीन नेत्रों के द्वारा बहुत ही सुन्दर विभूषित है। सन्ध्या कालीन चन्द्र के तुल्य कपोलों से सयुत हैं और उन के लोचन चवल हैं ॥२६॥ पक्कूर हित दाडिम के बीजों के समान दाँतों के रखने वाली—सुन्दर भौंहों के योग से उज्ज्वल—बन्धूक दन्त के वसनों वाली-शिरीष की प्रभा से युक्त नासिका से सयुत—कम्बू के सदृश ग्रीवा वाली—विशाल नेत्रों से युक्त—करोड़ों सूर्यों की प्रभा से समन्वित—चार भुजाओं वाली—विवसना और पीन तथा उन्नत पयोधरों से शोभित—निस्त्रिशत्पर ऊर्ध्व दक्षिण कर के द्वारा सिद्ध सूत्र को धारण करने वाली और वाम हाथों से अभयदान तथा वरदान को धारण करने वाली निम्न अर्थात् गम्भीर नाभि क्रम से आयात—क्षीण मध्यभाग वाली—मनोहर—आनमित नाग पाशों के सदृश ऊरुओं से युक्त—गुप्त गुल्फों वाली—सुन्दर पार्ष्णियों से संयुत—बद्ध पर्यङ्क सङ्कल्प

ये परा स्थान पर हैं बिन्दु और अर्ध चन्द्र के सहित इनसे शेप—दाह तथा उच्छद—पर पीयूष का आसेवन यथाक्रम से करना चाहिये। विशुद्धि के लिये चिन्तन मात्र ही है। इसके अनन्तर देवी के बीज के द्वारा आम्बनद की आकृति वाले अण्ड का करे ॥१७॥१८॥ वहाँ पर पहुँचकर ॐ ह्रीं श्रीं मन्त्रों से द्विधा करना चाहिये। उनके ऊर्ध्व भागों में हृद—लोक स्वर्ग को भूमि तथा आकाश का निष्पादन करके शेष भाग से भू को पाताल के जल में चिन्तन करे। वहाँ पर सबका चिन्तन करना चाहिए। सातों द्वीपों का और मेदिनी का चिन्तन करे। उनमें उन सागरों का और रत्न द्वीप का चिन्तन करना चाहिए। उसके मध्य में रत्नों से निर्मित मण्डप में संस्थित रत्न पर्यङ्क का चिन्तन करे ॥१९–२१॥

आकाशगङ्गातोयौघैः सदैव सेवितं शुभम्।
तत्पर्यंके रक्तपद्मं प्रसन्नं सर्वदाशिवम् ॥२२
चिन्तयेत् स्वर्णमानाकं सप्तपातालनालकम्।
ब्रह्मभुवनस्पर्शि सुवर्णाचितकर्णिकम् ॥२३
तत्रस्थितां महामायां ध्यायेदेकाग्रमानसः।
शोणपद्मप्रतीकाशां मुक्तमूर्धजलम्बिनीम् ॥२४
चलत्काञ्चनामरुह्य कुण्डलोज्ज्वलशालिनीम्।
सुवर्णरत्नसम्पन्न किरीटद्वयधारिणीम् ॥२५
शुक्लकृष्णारुणैर्नेत्रैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम्।
सन्ध्याचन्द्रसमप्रख्य-कपोलां लोललोचनाम् ॥२६
विपक्वदाडिमीबीजदन्तात् सुभ्रूयोगोज्ज्वलाम्।
बन्धूकदन्तवसनां शिरीषप्रभनासिकाम् ॥२७
कम्बुग्रीवां विशालाक्षीं सूर्यकोटिसमप्रभाम्।
चतुर्भुजां विवसनां पीनोन्नतपयोधराम् ॥२८
दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिंशत्परेण सिद्धसूत्रकम्।

विभ्रती वामहस्ताभ्यामभीति वरदायिनीम् ॥२९
निम्ननाभिक्रमायातां क्षीणमध्यां मनोहराम् ।
आनमन्नागपाशोरू-गुप्तगुल्फा सुपार्ष्णिकाम् ॥३०
वद्धपर्यङ्कसंकल्पा निवीरासनराजिताम् ।
गात्रेण रत्नसस्तम्भं सम्यगालम्ब्य संस्थिताम् ॥३१

आकाश गङ्गा के जल की राशि से सदा ही सेवित वह धाम है। उस पर्यङ्क पर रक्त पद्म है जो प्रसन्न और सर्वदा शिव है ॥२२॥ उसका ऐसा चिन्तन करे कि वह स्वर्ण मानाङ्क है—सप्त पातालो का नाल वाला है—ब्रह्म लोक से लेकर भुवन का स्पर्श करने वाला है तथा सुवर्णाचल के कर्णिका वाला है ॥२३॥ वहाँ पर स्थित महामाया का एकाग्र मन वाला होकर ध्यान करे। वह महामाया शोण पद्म के सदृश है और उसके केश खुले हुये रहकर लटके हुए हैं ॥२४॥ वह चलत्कांचमा पर समारूढ है तथा उज्ज्वल कुण्डलों की शोभा वाली है। सुवर्ण और रत्नो से सम्पन्न दो किरीटो के धारण करने वाली हैं। ॥२५॥ शुक्ल—कृष्ण और अरुण वर्णो वाले तीन नेत्रों के द्वारा बहुत ही सुन्दर विभूषित है। सन्ध्या वालीन चन्द्र के तुल्य कपोलो से संयुत हैं और उन के लोचन चचल हैं ॥२६॥ पक्कूर हित दाड़िम के बीजों के समान दातों के रखने वाली—सुन्दर भौंहो से योग से उज्ज्वल—वन्धूक दन्त के वसनों वाली-शिरीष की प्रभा से युक्त नासिका से संयुत-कम्बू के सदृश ग्रीवा वाली—विशाल नेत्रो से युक्त—करोडों सूर्यों की प्रभा से समन्वित-चार भुजाओं वाली-विवसना और पीन तथा उन्नत पयोधरो से शोभित—निस्त्रिशत्पर ऊर्ध्व दक्षिण कर के द्वार। सिद्ध सूत्र को धारण करने वाली और वाम हाथो से अभयदान तथा वरदान को धारण करने वाली निम्न अर्थात् गम्भीर नाभि क्रम से आयात—क्षीण मध्यभाग वाली—मनोहर—आनमित नाग पाशो के सदृश ऊरुओं से युक्त—गुप्त गुल्फो वाली—सुन्दर पार्ष्णियों से संयुत—वद्ध पर्यङ्क सङ्कल्प

ये परा स्थान पर हैं विन्दु और अर्ध चन्द्र के सहित इनसे शेष—दाह तथा उच्छद—पर पीयूष का आसेवन यथाक्रम से करना चाहिये। विशुद्धि के लिये चिन्तन मात्र ही है। इसके अनन्तर देवी के वीज के द्वारा जाम्बूनद की आकृति वाले अण्ड का करे ॥१७॥१८॥ वहाँ पर पहुँचकर ॐ ह्रीं श्रीं मन्त्रों से द्विधा करना चाहिये। उनके ऊर्ध्व भागों में हृद—लोक स्वर्ग को भूमि तथा आकाश का निष्पादन करके शेष भाग से भू को पाताल के जल में चिन्तन करे। वहाँ पर सबका चिन्तन करना चाहिए। सातों द्वीपों का और मेदिनी का चिन्तन करे। उनमें उन सागरों का और स्वर्ण द्वीप का चिन्तन करना चाहिए। उसके मध्य में रत्नों से निर्मित मण्डप में संस्थित रत्न पर्यङ्क का चिन्तन करे ॥१९—२१॥

आकाशगङ्गातोयोघैः सदैव सेवित शुभम्।
तत्पर्यंके रक्तपद्म प्रसन्नं सर्वदाशिवम् ॥२२
चिन्तयेत् स्वर्णमानाकं सप्तपातालनालकम्।
आब्रह्मभुवनस्पर्शि सुवर्णाचितवर्णिकम् ॥२३
तत्रस्थिता महामाया ध्यायेदेकाग्रमानस।
शोणपद्मप्रतीकाशा मुक्तमूर्धजलम्बिनी ॥२४
चलत्काञ्चनामरुहृय कुण्डलोज्ज्वलशालिनीम्।
सुवर्णरत्नसम्पन्न किरीटद्वयधारिणीम् ॥२५
शुक्लकृष्णारुणैर्नेत्रैस्त्रिभिश्चारुविभूषिताम्।
सन्ध्याचन्द्रसमप्रख्य-कपोला लोललोचनाम् ॥२६
विपङ्कदाडिमीवीजदान्तात् सुभ्रूयोगोज्ज्वलाम्।
वन्धूकदन्तवसना शिरीषप्रभनासिकाम् ॥२७
कम्बुग्रीवा विशालाक्षी सूर्यकोटिसमप्रभाम्।
चतुर्भुजां विवसना पीनोन्नतपयोधराम् ॥२८
दक्षिणोर्ध्वेन निस्त्रिंशतपरेण सिद्धसूत्रकम्।

विभ्रती वामहस्ताभ्यामभीति वरदायिनीम् ॥२६
निम्ननाभिक्रमायातां क्षीणमध्यां मनोहराम् ।
आनम्रनागपाशोरू-गुप्तगुल्फा सुपार्ष्णिकाम् ॥३०
बद्धपर्यङ्कसंकल्पा निवीरासनराजिताम् ।
गात्रेण रत्नसंस्तम्भं मन्यगालम्ब्य संस्थिताम् ॥३१

आकाश गङ्गा के जल की राशि से सदा ही सेवित वह शुभ है। उस पर्यङ्क पर रक्त पद्म है जो प्रसन्न और सर्वदा शिव है ॥२२॥ उसका ऐसा चिन्तन करे कि वह स्वर्ण मानाङ्क है—सप्त पातालों का नाल वाला है—ब्रह्म लोक से लेकर भुवन का स्पर्श करने वाला है तथा सुवर्णाचल के कर्णिका वाला है ॥२३॥ वहाँ पर स्थित महामाया का एकाग्र मन वाला होकर ध्यान करे। वह महामाया शोण पद्म के सदृश है और उसके केश खुले हुये रहकर लटके हुए हैं ॥२४॥ वह चलत्कांजमा पर समारूढ है तथा उज्ज्वल कुण्डलों की शोभा वाली है। सुवर्ण और रत्नों से सम्पन्न दो किरीटों के धारण करने वाली हैं। ॥२५॥ शुक्ल—कृष्ण और अरुण वर्णों वाले तीन नेत्रों के द्वारा बहुत ही सुन्दर विभूषित है। सन्ध्या कालीन चन्द्र के तुल्य कपोलों से संयुत हैं और उन के लोचन चचल हैं ॥२६॥ पक्कर हित दाडिम के बीजों के समान दातों के रखने वाली—सुन्दर भौंहों के योग से उज्ज्वल—बन्धूक दन्त के वसनों वाली-शिरीष की प्रभा से युक्त नासिका से संयुत—कम्बू के सदृश ग्रीवा वाली—विशाल नेत्रों से युक्त—करोड़ो सूर्यों की प्रभा से समन्वित—चार भुजाओं वाली—विवसना और पीन तथा उन्नत पयोधरों से शोभित—निस्त्रिशत्पर ऊर्ध्व दक्षिण कर के द्वारा सिद्ध सूत्र को धारण करने वाली और वाम हाथों से अभयदान तथा वरदान को धारण करने वाली निम्न अर्थात् गम्भीर नाभि क्रम से आयात—क्षीण मध्यभाग वाली—मनोहर—आनमित नाग पाशों के सदृश ऊरुओं से युक्त—गुप्त गुल्फों वाली—सुन्दर पार्ष्णियों से संयुत—बद्ध पर्यङ्क सङ्कल्प

वाली—नीवीरासन से राजित-गात्र से रत्न सस्तम्भ को भली भाँति आलम्बन करके मस्थिता ॥२७—३१॥

किमिच्छसीति वचनं व्याहरन्ती मुहुर्मुहुः ।
पञ्चाननां पुरःसंस्थं निरीक्षन्तीं सुवाहनाम् ॥३२
मुक्तावली - स्वर्णरत्नहारकङ्कणादिभिः ।
सर्वैरलङ्कारगणैरुज्ज्वलां सस्मिताननाम् ॥३३
सूर्यकोटिप्रतीकाशां सर्वलक्षणसंयुताम् ।
नवयौवनसम्पन्नां तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥३४
ईदृशीमम्बिकां ध्यात्वा नमः फडिति मस्तके ।
स्वकीये प्रथमं दद्यात् सोऽहमेव विचिन्त्य च ॥३५

बारम्बार क्या चाहते हो—इस तरह से बोलती हुई—पाँच आननों वाली—पुरः संस्थित का निरीक्षण करती हुई—सुन्दर वाहन वाली—मुक्तावली, स्वर्ण, रत्न हार और किङ्कणी आदि से समस्त आभूषणों के समूहों से उज्ज्वल—स्मित सहित मुख वाली—करोड़ों सूर्यों के सदृश—समस्त सुलक्षणों से समन्वित—नूतन यौवन से सम्पन्न—तथा सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों से सुन्दरी—ऐसी अम्बिका देवी का ध्यान करके "नम फट्"—इस मन्त्र से स्वकीय मस्तक में मैं वही हूँ—ऐसा चिन्तन करके प्रथम देवे ॥३२—३५॥

अङ्गन्यासकन्यासौ ततः कुर्यात् क्रमेण च ।
एभिर्मन्त्रैः स्वरैः सह सुभीसूर्मै क्रमान्वितैः ॥३६
ओम् क्षौम् चंते सप्रणवा रत्नवर्णा मनोहराम् ।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमग्रतसवेष्टन फट् ॥३७
प्रान्तेन कुर्याद् विन्यासं पूर्वं करतलद्वये ।
हृच्छिरःशिखाकवचनेत्रेषु क्रमतो न्यसेत् ॥३८
ततस्तु मूलमन्त्रस्य वक्त्रे पृष्ठे तथोदरे ।
बाह्वोर्गुह्ये पादयोश्च जंघयोर्जघने क्रमात् ॥३९

धिन्यसेदक्षराण्यष्टौ ओकारं च तथा स्मरन् ।
एभिः प्रकारैरतिशुद्धदेहः पूजा सदैवार्हति नान्यथा हि ।
शरीरशुद्धि मनसो निवेश भूतप्रसारं कुरुते नृणा तत् ॥४०

इसके अनन्तर अङ्गों का न्यास और करो का न्यास क्रम से करना चाहिए। और वह मूमी मूम क्रियाग्विनो के स्वरो के सहित इन मन्त्रों से करना चाहिये। ओम् क्षौम् ये मन्त्र हैं। प्रणव के सहित—रक्त वर्ण से सयुत—मनोहर को अगुष्ठ से आदि लेकर कनिष्ठिका के अन्त तक मन्त्र सवेष्टन फट् प्रान्त से पूर्व मे दोनो करतलो मे विन्यास करना चाहिये। फिर हृदय—शिर—शिखा—कवच—नेत्र—इनमे क्रम से न्यास करे ॥३६—३८॥ इसके अनन्तर मूल मन्त्र का मुख मे—पृष्ठ मे—उदर मे—दोनो बाहुओ मे—गुह्य मे—दोनो पादो मे—दोनो जाँघो मे क्रम से आठ अक्षरो का विन्यास करे। तथा ओङ्कार का स्मरण करता रहे। इन्ही प्रकारों से अत्यन्त शुद्ध देह वाला होकर पूजा सदा ही उचित होती है। अन्य प्रकार से उचित नही होती है। यह शरीर की शुद्धि—मनका निवेश—भूतो का प्रसार मनुष्यों का किया करती हैं ॥३६॥४०॥



॥ महामाया कल्प वर्णन(२) ॥

ततोऽर्घ्यपात्रे सन्मन्त्रमष्टधाकृत्य सजपेत् ।
तेन तोयानि पुष्पाणि स्वं मंडलमथासनम् ॥१
आशोधयेत् ततः पश्चात् पूजोपकरण समम् ।
ॐ ऐं ह्रीं ह्रौमिति मन्त्रेण शब्दप्रांशुविवर्जितम् ॥२
द्वारपालं ततो देव्या आसनानि च पूजयेत् ।
नन्दिभृङ्गिमहाकालगणेशा द्वारपालकाः ।

उत्तरादिक्रमात् पूज्या आसनानि च मध्यतः ॥३
आधारशक्तिप्रभृयि हेमाद्यन्तान् प्रपूजयेत् ।
प्रसिद्धान् सर्वतन्त्रेषु पूजाकल्पेषु भैरव ॥४
दशदिक्पालसहितान् धर्माधर्मादिकांस्तथा ।
मण्डलाग्न्यादिकोणेषु पूजयेत् पार्श्वदेशतः ॥५
सूर्याग्निसोममरुता मण्डलानि च पद्मकम् ।
रजस्तथा तमः सत्तः सत्त्वं योगपीठ गुरो. परम् ॥६
सारादीन् भद्रपीठान्तान् सांगोपांगान् प्रपूजयेत् ।
ब्रह्माण्ड स्वर्णडिम्ब च ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥७

भगवान् ने कहा—इसके उपरान्त अर्धपात्र में उस मन्त्र को आठ भागों में विभक्त करके भली भाँति जप करे। उससे जलको—पुष्पों को—अपने मण्डल को—आसन को आशोधित करे इसके पीछे पूजा के उपकरणों का सम करें। ओं ऐं ह्रीं हौम्—इस मन्त्र के द्वारा शब्द प्राशु विवर्जित द्वारपाल को और फिर देवी के आसनों का पूजन करना चाहिये। नन्दि—भृङ्गि—महा काल गणेश—द्वारपाल का उत्तर आदि क्रम से पूजन करने के योग्य है और मध्य में आसदन प्रपू के योग्य हैं ॥ १—३ ॥ आधार शक्ति आदि हे भैरव ! पूजा कल्पों में समस्त तन्त्रों में प्रसिद्ध हेमाद्र यन्त्रों का पूजन करे ॥४॥ दश दिक्पालों के सहित धर्मा धर्मादिकों को मण्डल के अग्नि आदि कोणों में पार्श्वदेश से यजन करना चाहिए ॥ ५ ॥ सूर्य—अग्नि—सोम—मरुत्—इनके मण्डलों को—पद्मक को—रज—सत्व—तम को—योग पीठ को—गुरुदेव के चरण को नार से आदि लेकर भद्र पीठ के अन्त तक साङ्गोपाङ्गों को पूजित करे—ब्रह्माण्ड—स्वर्ण डिम्ब और ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरों का पूजन करे।६—७।

संसागरान् सप्तद्वीपान् स्वर्णद्वीपं समण्डपम् ।
रत्नपद्मं सपर्यङ्कं रत्नस्तम्भं तथैव च ॥८

पचानन मण्डलस्य मध्येऽवश्य प्रपूजयेत् ।
ह्रीं मन्त्रेण तत कूर्मपृष्ठ पाण्योर्निबध्य च ॥९
ध्यायेच्च पूर्ववद् देवीमासाद्यासनमुत्तमम् ।
हृन्मध्ये चिन्तयेन् स्वर्णद्वीपं पर्यङ्कसभृतम् ॥१०
पश्यन्निव ततो देवीमेकाग्रमनसा स्मरेत् ।
प्रत्यक्षीकृत्य हृदये मानसैरुपचारकैः ॥११
षोडशाना प्रकारैस्तु हृदिस्था पूजयेच्छिवाम् ।
ततस्तु वायुबीजेन दक्षिणे च पुटेन च ॥१२
नासिकाया विनि सार्य क्ली मन्त्रेण च भैरव ।
स्थापयेत् पद्ममध्ये तु तद्धस्त न वियोजयेत् ॥१३
कृते वियोगे हस्तस्य पुष्पात् तस्माच्च भैरव ।
गन्धर्वैः पूज्यते देवी पूजकैर्नाप्यते फलम् ॥१४

सागरो के सहित सातो द्वीपों का—मण्डल के सहित स्वर्ण द्वीप का—रत्नमय—पर्यङ्क के सहित रत्न स्तम्भ मण्डप के पञ्चानन का मध्य में अवश्य पूजन करे। "ह्रीं" मन्त्र स पाणियो को निबद्ध करके कूर्मपृष्ठ का यजन करे और पूर्व की ही भाति उत्तम आसन को प्राप्त करके देवी का ध्यान करना चाहिए। हृदय के मध्य म पर्यङ्क से सभृत स्वर्ण द्वीप का चिन्तन करे ॥ ८—१० ॥ इसक अनन्तर देखते हुए की भाँति एकाग्र मन से देवी का स्मरण करे। हृदय मे प्रत्यक्ष करके मानस उपचारों से अर्थात् मन मे कल्पित उपचारो के द्वारा सोलह प्रकारो से हृदय मे विराजमान देवी शिवा का यजन करना चाहिए। इसके अनन्तर हे भैरव! वायु बीज के द्वारा दक्षिण पुट से क्लीं मन्त्र के द्वारा नासिका से विनि सारण करके पद्म के मध्य म स्थापित करे और हाथ को नियोजित न करे ॥ ११—१३ ॥ हे भैरव! हाथ के वियोग करने पर उस पुष्प से गन्धर्वों के द्वारा देवी का पूजन किया जाता है और पूजको के द्वारा फल की प्राप्ति नहीं की जाती है ॥१४॥

आवाहन ततः कुर्याद् गायत्र्या शिरसा सह ।
महामायायै विद्महे त्वा चण्डिकाख्या धीमहि ॥१५
एतदुक्त्वा ततः पश्चाद् धियो यो न. प्रचोदयात् ।
स्नानीय देवि ते तुभ्य ॐ ह्नी श्री नम इत्यत ॥१६
स्नानीय च ततो देव्यै दद्यादल्लक्षणलक्षितम् ।
ततस्तु मूलमन्त्रेण गन्धपुष्प सदीपकम् ॥१७
धूपादिक प्रदद्यातु मोदक पायस तथा ।
सिता गुड दधि-क्षीर सर्पिर्नानाविधं ॥१८
रक्तपुष्प पुष्पमाला सुवर्णरजादिकम् ।
नैवेद्यमुत्तम देव्या लाङ्गल मोदक सिताम् ॥१९
शाण्डिल्यकरताम्राव्य-कूष्माण्डाना फलानि च ।
हरीतकीफल चापि नागरङ्गकमेलकाम् ॥२०
बालप्रिय च यद् द्रव्य कसेरुकविसादिकम् ।
तोय च नारिकेलस्य देव्यं देय प्रयत्नत ॥२१

इसके उपरान्त शिर के साथ गायत्री मन्त्र के द्वारा आवाहन करना चाहिए। हम महामाया का ज्ञान रखते हैं और चण्डिका नाम वाली का ध्यान करते हैं ॥ १५ ॥ इतना कहकर फिर जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करे। हे देवि ! आपके लिये "ॐ ह्नी श्री नमः" इस मन्त्र से देवी के लिे स्नानीय का समर्पण करे जो लक्षण लक्षित होवे। इसके अनन्तर मूल मन्त्र से दीपक के सहित गन्ध—पुष्प—धूप आदि को अर्पण करे तथा मोदक तथा पायस देवे। मिश्री—गुड—दधि—क्षीर घृत और अनेक फलों से यजन करना चाहिए। अर्थात् इनको अर्पित करना चाहिए ॥ १६—१८ ॥ रक्त पुष्प—पुष्पों की माला—सुवर्ण और रजत (चाँदी) आदिक—उत्तम नैवेद्य—देवी का लाङ्गल—मोदक—सिता (मिश्री) शाण्डिल्य कर ताम्र नामक और कूष्माण्ड के फल—हरीत का फल—नारङ्गी—एलका

(इलायची) और जो द्रव्य वाल प्रिय हो—वसेरू कविसादिक—नारियल फल का जल—ये सब देवी के लिए प्रयत्नपूर्वक समर्पित कर ॥ १६—२१ ॥

रक्त कौशेयवस्त्र च देय नील कदापि न ।
देव्या प्रियाणि पुष्पाणि वकुल केशर तथा ॥२२
माध्य कह्लारवज्राणि करवीरकुरुण्टकान ।
अर्कपुष्प शाल्मलक दूर्वाङ्कुर सुकोमलम् ॥२३
कुशञ्जरिका दर्भा वन्धूककमले तथा ।
मालूरपत्र पुष्प च त्रिसन्ध्यारक्तपर्णके ॥२४
सुमनासि प्रियाण्येतान्यम्बिकायाश्च भैरव ।
वन्धूक वकुल माध्य विल्वपत्राणि सन्ध्यकम् ॥२५
उत्तम सवपुष्पेपु द्रव्य पायसमोदकौ ।
माल्य वन्धूकपुष्पस्य शिवार्य वकुलस्य वा ॥२६
करवीरस्य माध्यस्य सहस्राणा ददाति य ।
स कामान् प्राप्य चाभीष्टान् मम लोके प्रमोदते ॥२७
चन्दन शीतल चैव कालीयकसमन्वितम् ।
अनुलेपनमुख्य तु देव्यै दद्यान् प्रयत्नत ॥२८

लाल वर्ण का कौशेय वस्त्र अर्थात् रेशमी वस्त्र समर्पित करे और नीला वस्त्र कभी भी नहीं दव। देवी के परम प्रिय पुष्प देव। जैसे वकुल पुष्प और केशर देव। माध्य—कल्हार—वज्र— करवीर—कुटकुक—आक के पुष्प—शाल्मलक—सुकोमल दूर्वा के अंकुर कुश मञ्जरिका—दर्भ—वन्धूक—कमल—मालूर पत्र और पुष्प—त्रिसन्ध्या—रक्त पर्णक हे भैरव ! अम्बिका देवी के ये पुष्प परम प्रिय होते हैं। वन्धूक—वकुल—माध्य—विल्व पत्र और सन्ध्यक ये सभी पुष्पों में उत्तम हैं और पायस तथा मोदक द्रव्य हैं। वन्धूक के पुष्पों की अथवा वकुल के पुष्पों की माला—करवीर

और माध्य पुष्पा की एक सहस्र सख्या जो देवी को अर्पित किया करता है। देवी का कथन है कि वह अपने अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति करके मेरे लोक मे आनन्द प्राप्त किया करता है ॥२२—२७॥ शीतल चन्दन जो कालीयक से सयुत होवे मुख्य अनुलेपन प्रयत्नपूर्वक देवी के लिये देना चाहिए ॥ २८ ॥

कर्पूर कुङ्कुम कूर्च मृगनाभि सुगन्धिकम् ।
कालीयक सुगन्धेषु देव्या प्रीतिकर परम् ॥२६
यक्षधूप प्रतीवाह पिण्डधूप सगोलक ।
अगुरु सिन्धुवारश्च धूपा प्रीतिकरा मता ॥३०
अगरागेषु सिन्दूर देव्या प्रीतिकर परम् ।
सुगन्धि शालिजं चान्न मधुमाससमन्वितम् ॥३१
अपूप पायस क्षीरमन्न देव्या प्रशस्यते ।
रत्नोदक सकर्पूर पिण्डीतककुमारको ॥३२
रोचन पुष्पक देव्या स्नानीय परिकीर्तितम् ।
घृतप्रदीपो दीपेषु प्रशस्त परिकीर्तित ॥३३
पुष्पाञ्जलित्रय दद्याद मूलमन्त्रेण शोभनम् ।
दत्त्वोपचारानखिलाञ्जह्ये चैता प्रपूजयेत् ॥३४
कामेश्वरी गुप्तदुर्गा विन्ध्यकन्दरवासिनीम् ।
कोटेश्वरी दीर्घिकाख्या प्रकटी भुवनेश्वरीम् ॥३५

कपूर—कुंकुम—कूर्च—मृगनाभि अर्थात् कस्तूरी—सुगन्धिक कालीयक मे सुगन्धों में देवी को परम प्रीति के करने वाले होते हैं। । २६ । यक्षधूप—प्रतीवाह—पिण्डधूप—सगोलक—अगरु—और सिन्धुवार मे धूप देवी की प्रीति करने वाले माने गये हैं। ३० । अङ्गराग जितने भी हैं उनमे देवी का परमाधिक प्रीति करने वाला सिन्दूर है। मधु और मास से संयुत सुगन्धित शाली से समुत्पन्न अन्न—अपूप—पायस—क्षीर ये पदार्थ देवी के लिये प्रशस्त हुआ करते हैं। कपूर के

सहित रत्नोदक—पिण्डीतक—कुमारक रोचन—पुष्पक—ये ही देवी के स्तानीय कहे गये हैं। दीपों में घृत का दीपक प्रशस्त कहा गया है ॥ ३१—३३ ॥ मूल मन्त्र के द्वारा तीन पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए—यही शोभन है। सब उपचारों को देकर मध्य में इनका पूजन करना चाहिए ।३४। अब उन देवियों के नाम बतलाये जाते हैं—कामेश्वरी—गुप्त दुर्गा—विन्ध्याचल की कन्दरा में निवास करने वाली—कोटेश्वरी दीपिका नाम वाली—प्रकटी—भुवनेश्वरी ।३५।

आकाशगगा कामाख्या यदा दिक्करवासिनीम् ।
मातङ्गी ललिता दुर्गा भैरवी सिद्धिदा तथा ॥३६
वलप्रमथिनी चण्डी चण्डोग्रा चण्डनायिकाम् ।
उग्रा भीमा शिवा शान्ता जयन्ती कालिका तथा ॥३७
मङ्गला भद्रकाली च शिवा धात्री कपालिनीम् ।
स्वाहा स्वधामपर्णा च पचपुष्करिणी तथा ॥३८
दमनी सर्वभूताना मन प्रोत्साहकारिणीम् ।
दमनी सर्वभूताना चतु षष्टि च योगिनी ॥३९
एता सम्पूज्य मध्ये तु मन्त्रेणागानि पूजयेत् ।
हृच्छिरस्तु शिखावर्मनेत्रबाहुपदानि च ॥४०
मूलमन्त्राद्यक्षरैस्तु त्रिभिराद्यङ्गपूजनम् ।
एकैक वर्द्धयेत् पश्चान्मन्त्राण्यगौघपूजने ॥४१

आकाश गङ्गा—कामाख्या—दिक्कदवासिनी मातङ्गी—ललिता दुर्गा—भैरवी—सिद्धिदा—वल प्रमथनी—चण्डी—चण्डोग्रा—चण्डनायिका—उग्रा—भीमा—शिवा—शान्ता—जयन्ती—कालिका—मङ्गला—भद्रकाली—शिवा—धात्री—कपालिनी—स्वाहा—स्वधामपर्णा—पञ्च-पुष्करिणी—सब भूतों की दमनी—मन के प्रोत्साह के करने वाली—सर्वभूताना दमनी—ये चौंसठ योगिनी हैं ॥ ३६—३९ ॥ इन सबका

मध्य में भली भाँति अभ्यर्चन करके मन के द्वारा अङ्गों का यजन करना चाहिए। हृदय—शिर—शिखा—वर्म—नेत्र—बाहु—पद—इन अंगों का यजन करे। तीन मूल मन्त्र के अक्षरों से आदि अंग का पूजन करे। पीछे एक-एक का वर्धन करना चाहिए। अंगों के समूह के पूजन में मन्त्रों का प्रयोग करे ॥४०-४१॥

सिद्धसूत्र च खड्ग च खड्गमन्त्रेण पूजयेत् ।
ततोऽष्टपत्रमध्ये तु पूजयेदष्टयोगिनी ॥४२
शैलपुत्री चण्डघण्टा स्कन्दमातरमेव च ।
कालरात्रि च पूर्वादिचतुर्दिक्षु प्रपूजयेत् ॥४३
चण्डिकामथ कूष्माण्डी तथा कात्यायनी शुभाम् ।
महागौरी चाग्निकोणे नैऋत्योदिषु पूजयेत् ॥४४
महामाया क्षमस्वेति मूलमन्त्रेण चाष्टधा ।
पूजयेत् पद्ममध्ये तु वलिदान तत परम् ॥४५
एव यदा कल्पविधानमानै
सम्पूज्यते भैरव कामदेवी ।
तदा स्वय मण्डलमेत्य देय
गृह्णाति काम च ददाति सम्यक ॥४६

सिद्ध मन्त्र और खड्ग का मूल मन्त्र के द्वारा यजन करे। इसके अनन्तर अष्ट पत्र के मध्य में आठ योगिनियों का पूजन करना चाहिए ॥४२। पूर्व आदि चारों दिशाओं में शैल पुत्री—चन्द्र घण्टा—स्कन्द माता और काल रात्रि का पूजन करना चाहिए ॥४२—४३॥ चण्डिका-कूष्माण्डी—कात्यायनी—शुभा—महागौरी इनका अग्निकोण में और नैऋत्यादिक में पूजन करे ॥४४॥ महामाया—क्षमस्व—इस मूल मन्त्र से आठ प्रकार से पद्म के मध्य में पूजन करे। उसके आगे वलिदान करना चाहिए ॥४५॥ हे भैरव ! इस प्रकार से जब कल्प के विधान के मानों से कामदेवी की पूजा की जाती है उस समय में स्वयं मण्डल

में समागमन करके जो भी कुछ देय होता है उसका ग्रहण किया करती है और कामना को भली भांति प्रदत्त किया करती है ॥४६॥



॥ महामाया कल्प वर्णन ॥(३)

जप समारभेत् पश्चात् पर्ववद्ध्यानमास्थितः ।
हस्तेन स्रजमादाय चिन्तयेन्मनसा शिवाम् ।
चिन्तयित्वा गुरुं मूर्ध्नि यथा वर्णादिकं भवेत् ॥१
मन्त्रं च कण्ठतो ध्यात्वा सितवर्णं हिरण्मयम् ।
महामाया च हृदये आत्मानं गुरुपादयो. ॥२
आचक्षेत ततः पश्चाद् गुरोर्मन्त्रस्य चात्मनः ।
देव्याश्चाप्यैक्यता ध्यात्वा सुषुम्नावर्त्मना ततः ॥३
तत्त्वस्वरूपमेकं तु षट्चक्रं प्रति लम्बयेत् ।
षट्चक्रेऽपि महामाया क्षणं ध्यात्वा प्रयत्नतः ॥४
लम्बयेन्मूलमात्रेण   वादिषोडशचक्रकम् ।
आदिषोडशचक्रस्थां   साधकानन्दकारिणीम् ॥५
चिन्तयन् साधको देवी जपकर्म समारभेत् ।
भ्रुवोरुपरि नाडीना त्रयाणा प्रान्त उच्यते ॥६

इसके अनन्तर पूर्व की ही भाँति ध्यान में समास्थित होकर जप का समारम्भ करना चाहिए । हाथ से माला का ग्रहण करके मन के द्वारा शिवा का चिन्तन करे । गुरुदेव का चिन्तन करके मूर्धा में जैसा भी वर्ण आदि होवे मन्त्र को कण्ठ से ध्यान करके जो सित वर्ण हिरण्मय है । और हृदय में महामाया को और आत्मा को गुरुदेव के चरणों में देखे । इसके अनन्तर गुरु के मन्त्र का—आत्मा का और देवी की एकता का ध्यान करना चाहिये । फिर सुषुम्ना के मार्ग के द्वारा

एक तत्व स्वरूप को षट् चक्र की ओर लम्बित करे। उस षट्चक्र में भी एक क्षण के लिये प्रयत्न पूर्वक महामाया का ध्यान करे ॥१—४॥ आदि सोलह चक्रों में स्थित—साधकों के आनन्द को करने वाली देवी का चिन्तन करता हुआ साधक अपने कर्म का आरम्भ करे। भौंहों के ऊपर तीनों नाडियों का प्रान्त कहा जाता है ॥५—६॥

तत्प्रान्त त्रिपथस्थान षटकोण चतुरङ्गुलम् ।
रक्तवर्णं तु योगज्ञैराज्ञाचक्रमितीर्यते ॥७
कण्ठे त्रयाणां नाडीनां वेष्टनं विद्यते नृणाम् ।
सुषुम्नेडापिङ्गलानां षटकोणं तत्षडङ्गलम् ॥८
तत् षट्चक्रमिति प्रोक्तं शुक्लं कण्ठस्य मध्यगम् ।
त्रयाणामथ नाडीनां हृदये चैकता भवेत् ।९
तत्स्थानं षोडशारं स्यात् सप्तांगुलप्रमाणतः ।
तत्प्रयुक्तं तु योगज्ञैरादिषोडशचक्रकम् ॥१०
ध्यानानामथ मन्त्राणां चिन्तनस्य जपस्य च ।
यस्मादाद्यं तु हृदयं तस्मादादीति गद्यते ॥११
जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः ।
निधाय मण्डलस्यान्तः सव्यहस्तगतां च वा ॥१२
ॐ माले माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ॥१३
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥१४

वह प्रान्त त्रिपथ का स्थान है वह षट् कोण और चार अंगुल प्रमाण वाला है। उसका वर्ण रक्त है और योग के ज्ञाताओं के द्वारा यह आज्ञा चक्र—इस नाम से कहा जाता है ॥७॥ मनुष्यों के कण्ठ में तीन नाडियों का वेष्टन विद्यमान हुआ करता है। सुषुम्ना—इडा और पिङ्गलाओं का षट्कोण है वह छैः अङ्गुल का होता है ॥८॥ वह कण्ठ के मध्य में स्थित शुक्ल वर्ण वाला षट् चक्र—इस नाम से बताया गया है। तीनों नाड़ियों की हृदय में एकता हो जाती है ॥९॥ वही स्थान

सोलह आरों वाला होना है जिसका प्रमाण सात अगुल है। उसको योग के जानन वालो के द्वारा आदि षोडश-चक्र के नाम से प्रयोग *किया गया है ॥१०॥ मन्त्रों के ध्यानो का चिन्तन का और जप का* क्योकि आद्य हृदय होना है इसी कारण से वह आदि इस नाम से कहा जाता है ॥११॥ जप के आदि म यत्न म जल से अभ्युक्षण करके माला का पूजन करना चाहिए मण्डन के अन्दर रखकर अथवा सव्य हस्त म रखकर करे ॥१२॥ हे माल! हे माल! आप महामाया है और सब शक्तियो के स्वरूप वाली हैं। धर्मार्थ काम मोक्ष य चारो का वर्ग आप म ही न्यस्त रहता है। इस कारण स मेरी सिद्धि की प्रदान करन *वाली हो जाओ ॥१३—१४॥*

पजयित्वा ततो माला गृह्णीयाद् दक्षिणे करे।
मध्यमाया मध्यभागे वर्जयित्वाथ तर्जनीम् ॥१५
अनामिकाकनिष्ठाभ्या युताया नम्रभागत ।
स्थापयित्वा तत्र मालामगुष्ठाग्रेण तद्गतम् ॥१६
प्रत्येक बीजमादाय जप्यादर्धेन भैरव।
प्रतिवार पठेन्मन्त्र शनैरोष्ठ च चालयेत् ॥१७
मालाबीज तु जप्तव्य स्पर्शेन्नहि परस्परम् ।
पूर्वजापप्रयुक्तेन नवागुष्ठेन भैरव ॥१८
पूर्वबीज जपन् यस्तु परबीज च सस्पृशेत्।
अगुष्ठन भवेत् तस्य निष्फलस्तस्य तज्जप ॥१९
माला स्वहृदयासन्ने धृत्वा दक्षिणपाणिना।
देवी विचिन्तयन् जप्य कुर्याद् वामेन न स्पृशेत ॥२०
स्फटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षं पुत्रञ्जीवसमुद्‌वं ।
सुवर्णमणिभि सम्यक् प्रवालैरथवाब्जज ॥२१
अक्षमाला तु कर्तव्या देवीप्रीतिकरी परा।
जपेदुपाशु सतत कुशग्रन्थ्याथ पाणिना ॥२२

इसके अनन्तर माला का अभ्यर्चन करके अपने दाहिने हाथ में उसका ग्रहण करना चाहिए। मध्यमा अगुलि के मध्य भाग म उसको रक्खे और तर्जनी अगुलि को वर्जित कर देना चाहिए। जप काल में तर्जनी अगुलि को सर्वथा दूर ही रक्खे। अनामिका और कनिष्ठिका अगुलियों से युत के अग्र भाग से वहाँ पर स्थापित करके अगुष्ठ के अग्र भाग के द्वारा माला को रक्खे और उसमें स्थित प्रत्येक बीज (मनिया) को लेकर हे भैरव! अर्थ से जप करना चाहिए। प्रत्येक बार में मन्त्र को पढे और धीरे २ आष्ठ को चालित करे ॥१५—१७॥ माली के बीज (मनिया) पर जप करना चाहिए। ये मनिया परस्पर में स्पर्श नही करे—ऐसा ध्यान रक्खे! हे भैरव! पूर्व के जाप मे प्रयुक्त अगुष्ठ से स्पर्श नही होना चाहिए ॥१८॥ जो पूर्व बीज का जप करता हुआ पर बीज का सम्पर्श करता है और अगुष्ठ से उसका स्पर्श होता है उसका वह जप सर्वथा निष्फल हो जाया करता है ॥१९॥ दाहिने हाथ से माला को धारण करके अपने हृदय के समीप में रक्खे। देवी का चिन्तन करते हुए ही जप करना चाहिए और बाये हाथ से उसका कभी भी स्पर्श नही करे ॥२०॥ माला की रचना स्फटिक इन्द्राक्ष-रुद्राक्ष पुत्रञ्जीव से समुत्पन्न सुवर्ण और मणियों के तथा प्रवाल के अथवा कमल गट्टो के द्वारा भली भाँति अक्षो की माला की रचना करे। यह देवी की परम प्रीति की करने वाली हुआ करती है। कुश ग्रन्थि से हाथ के द्वारा निरन्तर उपांशु जाप करना चाहिए ॥२१--२२॥

मालाबीजेषु सर्वेषु रुद्राक्षो मत्प्रियाप्रिय।
रुद्रप्रीतिकरी यस्मात् तेन रुद्राक्षरोचनी ॥२३
प्रवालैरथवा कुर्यादष्टाविंशतिबीजकं।
पचपचाशता वापि न न्यूनैरधिकैश्च वा। २४
रुद्राक्षैर्यदि जप्येत इन्द्राक्षे स्फटिकैस्तथा।
नान्य मध्ये प्रयोक्तव्य पुत्रञ्जीवादिक च यत् ॥२५

यद्यन्यत् तु प्रयुज्येत मालाया जपकर्मणि ।
तस्य कामं च मोक्षं च ददाति न प्रियतरा ॥२६
मिश्रीभावं ततो याति चाण्डालैः पापकर्मभिः ।
जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारग ॥२७
एको मेरुस्तत्र देय सर्वेभ्य स्थूलसम्भव ।
आद्य स्थूला ततस्तस्माद् न्यून न्यूनतर तथा ॥२८

माला के समस्त बीजो मे रुद्राक्ष मेरी प्रिया का अप्रिय क्योंकि वह रुद्र देव की प्रीति के करने वाली है इसी से रुद्राक्ष रोचती है ।२३। अथवा प्रवालों से माला की रचना करे जिसमे अट्ठाईस मनिया होवें । अथवा पाँच पाँच सौ से करे । अथवा इससे न्यून हो अथवा अधिक होवें ऐसा नहीं करे ॥२४॥ यदि रुद्राक्षो के द्वारा--इन्द्राक्षो से तथा स्फटिको से जाप करे किन्तु मध्य म पुत्र जीव आदि अन्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए ॥२५॥ यदि जप के कर्म मे माला मे अन्य का प्रयोग करे उसको काम और मोक्ष को प्रियङ्कारी नहीं दिया करती है ॥२६॥ फिर पाप कर्मों के करने वाले चाण्डालो से मिश्री भाव कोप्राप्त हो जाया करता है । वह वेदो और वेदो के अङ्ग शास्त्रो का पारगामी अन्य जन्म म होता है ॥२७॥ सब मनियो के स्थूल बना हुआ एक मेरु माला म देना चाहिए । सबसे आदि म होने वाला मनिया स्थूल होना चाहिए और क्रम से न्यून तथा उससे भी न्यून होना चाहिए ॥२८॥

विन्यसेत् क्रमतस्तस्मात् सर्पाकारा हि मा यत ।
ब्रह्मग्रन्थियुत कुर्यात् प्रतिबीज यथाक्रमम् ॥२९
अथवा ग्रन्थिरहित दृढरज्जुसमन्वितम् ।
द्विरावृत्याथ मध्येन चार्धवृत्यान्तदेशत ॥३०
ग्रन्थि प्रदक्षिणावर्तं म ब्रह्मग्रन्थिसंज्ञक ।
आत्मना योजयेन्माला नामन्त्रो योजनेश्वर ॥३१

इसके अनन्तर माला का अभ्यर्चन करके अपने दाहिने हाथ में उसका ग्रहण करना चाहिए। मध्यमा अंगुलि के मध्य भाग में उसको रक्खे और तर्जनी अंगुलि को वर्जित कर देना चाहिये। जप काल में तर्जनी अंगुलि को सर्वथा दूर ही रक्खे। अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों से युत के अग्र भाग से यहाँ पर स्थापित करके अंगुष्ठ के अग्र भाग के द्वारा माला को रक्खे और उसमें स्थित प्रत्येक बीज (मनिया) को लेकर हे भैरव! अर्थ से जप करना चाहिए। प्रत्येक बार में मन्त्र को पढे और धीरे २ ओष्ठ को चालित करे ॥१५—१७॥ माला के बीज (मनिया) पर जप करना चाहिए। ये मनिया परस्पर में स्पर्श नहीं करे—ऐसा ध्यान रक्खे। हे भैरव! पूर्व के जाप में प्रयुक्त अंगुष्ठ से स्पर्श नहीं होना चाहिए ॥१८॥ जो पूर्व बीज का जप करता हुआ पर बीज का सस्पर्श करता है और अंगुष्ठ में उसका स्पर्श होता है उसका यह जप सर्वथा निष्फल हो जाया करता है ॥१९॥ दाहिने हाथ से माला का धारण करके अपने हृदय के समीप में रक्खे। देवी का चिन्तन करते हुए ही जप करना चाहिये और यदि हाथ से उसका कभी भी स्पर्श नहीं करे ॥२०॥ माला की रचना स्फटिक इन्द्राक्ष-रुद्राक्ष-पुत्रञ्जीव से समुत्पन्न सुवर्ण और मणियों के तथा प्रवाल के अथवा कमल गट्टा के द्वारा भली भाँति अक्षों की माला की रचना करे। यह देवी की परम प्रीति की करने वाली हुआ करती है। कुश ग्रन्थि से हाथ के द्वारा निरन्तर उपांशु जाप करना चाहिए ॥२१--२२॥

मालाबीजेषु सर्वेषु रुद्राक्षो मतिप्रयाप्रिय ।
रुद्रप्रीतिकरी यस्मात् तेन रुद्राक्षरोचनी ॥२३
प्रवालैर्य्यथवा कुर्यादष्टाविंशतियोजनैः ।
पंचपंचाशता वापि न न्यूनैरधिकैश्च वा । २४
रुद्राक्षैर्यदि जप्येत इन्द्राक्षैः स्फटिकैस्तथा ।
मान्य मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रञ्जीवादिकं च यत् ॥२५

यद्यन्यत् तु प्रयुज्येत मालाया जपकर्मणि ।
तस्य कामं च मोक्षं च ददाति न प्रियन्नर ॥२६
मिश्रीभाव ततो याति चाण्डालैं पापकर्मभि ।
जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारग ॥२७
एको मेरुस्तत्र देय सर्वेभ्य स्थूलसम्भव ।
आद्य स्थूल ततस्तस्माद् न्यून न्यूनतर तथा ॥२८

माला के समस्त दानों में रुद्राक्ष मेरी प्रिया का अप्रिय क्योंकि वह रुद्र देव की प्रीति के करने वाली है इसी से रुद्राक्ष रोचनी है ।।२३।। अथवा प्रवालों से माला की रचना करें जिसमें अट्ठाईस मनिया होवें । अथवा पाँच पाँच सौ से करे । अथवा इससे न्यून हो अथवा अधिक होवे ऐसा नहीं करे ।।२४।। यदि रुद्राक्षों के द्वारा--इन्द्राक्षों से तथा स्फटिका से जाप करे किन्तु मध्य में पुत्र जीव आदि अन्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।।२५।। यदि जप के कर्म में माला में अन्य का प्रयोग करे उसको काम और मोक्ष को प्रियङ्कारी नहीं दिया करती है ।।२६।। फिर पाप कर्मों के करने वाले चाण्डालों से मिश्री भाव को प्राप्त हो जाया करती है । वह वेदों और वेदों के अङ्ग शास्त्रों का पारगामी अन्य जन्म में होता है ।।२७।। सब मनियों के स्थूल बना हुआ एक मेरु माला में देना चाहिए । सबसे आदि में होने वाला मनिया स्थूल होना चाहिए और क्रम से न्यून तथा उससे भी न्यून होना चाहिए ।।२८।।

विन्यसेत् क्रमतस्तस्मात् सर्पाकारा हि सा यत ।
ब्रह्मग्रन्थियुत कुर्यात् प्रतिबीज यथास्थितम् ॥२९
अथवा ग्रन्थिरहित दृढरज्जुसमन्वितम् ।
द्विरावृत्याथ मध्येन चार्धवृत्यान्तदेशत ॥३०
ग्रन्थि प्रदक्षिणावर्त स ब्रह्मग्रन्थिसञ्ज्ञक ।
आत्मना योजयेन्माला नान्यो योजनेद्वर ॥३१

दृढ सूत्र नियुञ्जीत जपे त्रुटयति नो यथा ।
यथा हस्तान्न च्यवेत जपत. सक् तमाचरेत् ॥३२
हस्तच्युताया विघ्न स्याच्छिन्नाया भरण भवेत् ।
एव य कुरुते मालां जप च जपकोविद ॥३३
स आप्नोतीप्सित काम हीने स्यात् तु विपर्यय ।
अन्यत्रापि जपेन्माला जप्य देवमनोहरम् ॥३४
तादृश साधक कुर्यान्नान्यथा तु कदाचन ।
यथाशक्ति जप कुर्यात् सच्ययैव प्रयत्नत ॥३५

क्रम से विन्यास करे इसमे वह सर्प के आकार वाली हो जावे। प्रत्येक बीज अथवा मनिया को ब्रह्म ग्रन्थि से युक्त करे और यथा स्थित रक्खे ॥२६॥ अथवा ग्रन्थि से रहित रक्खे और दृढ डोरे से समन्वित बनावें। मध्य से दो आवृत्तियो के द्वारा और अन्य देश से अर्ध वृत्ति से करे ॥३०॥ प्रदक्षिणा वर्त्त ग्रन्थि होवे। वह ब्रह्म ग्रन्थि की संज्ञा वाला हुआ करता है। आत्मा मे माला को योजित करना चाहिए। मनुष्य को बिना मन्त्र के कभी योजित नही करना चाहिए ॥३१॥ सूत मजबूत ही लगावे जिससे जप करने मे त्रुटित न हो जावे। हाथ से जिस तरह वह गिर न जावे अर्थात् छूट न जावे जाप करने मे माला को उसी भाँति रखना चाहिए ॥३२॥ जप के करने के समय मे माला के हाथ से गिर जाने या छूट जाने पर महान् विघ्न हुआ करता है और उसके टूट जाने पर तो मरण ही हो जाता है। इस प्रकार से जो जप करने का पण्डित जाप किया करता है ॥३३॥ वह जाप का अपनी अभीष्ट कामना की प्राप्ति किया करता है और हीन होने पर इसका उलटा ही होता है। देव का मन हरण करने वाला जप अन्यत्र भी माला का जप करे ॥३४॥ वैसा ही साधना करने वाला करे अन्यथा कभी भी नही करना चाहिए। अपनी शक्ति के ही अनुसार जप करे और प्रयत्न के साथ सदा से ही जप करना चाहिए ॥३५॥

असङ्ख्यात च यज्जप्त तस्य तन्निष्फल भवेत् ।
जप्त्वा माला शिरोदेशे प्राशुस्थानेऽथ वा न्यसेत् ॥३६
स्तुतिपाठ तत कुर्यादिष्ट काम निवेद्य च ।
स्तुतिश्चापि महामन्त्र साधन सर्वकर्मणाम् ॥३७
वक्ष्ये युवा महाभागौ सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ॥३८
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।
सप्तधावर्तन कृत्वा स्तुतिमेना च साधक ॥३९
पञ्चप्रणामान कृत्वाथ ऐं ह्रीं श्रोमितिमन्त्रकं ।
अन्येषा पुरतश्चैव अधिक वा यथेच्छया ॥४०
योनिमुद्रा तत पश्चाद दर्शयित्वा विसर्जयेत् ।
द्वौ पाणी प्रसृतीकृत्य कृत्वा चोत्तानमञ्जलिम् ॥४१
अगुष्ठाग्रद्वय न्यस्य कनिष्ठाग्रद्वमास्तत ।
अनामिकाया वामस्य तत्कनिष्ठा पुरो न्यसेत् ॥४२

बिना सख्या से जो भी जप किया जाता है उसका वह किया हुआ जप निष्फल ही होता है। माला से जप करके फिर उस माला को शिरोदेश में अर्थात् मस्तक में अथवा प्राशु स्थान में विन्यस्त करना चाहिए ॥३६॥ इसके अनन्तर स्तुति का पाठ करे और जो भी कामना हो उसका निवेदन करे। स्तुति भी एक महा मन्त्र की ही भांति है जो कि समस्त कर्मों का साधन होता है ॥३७॥ हे महाभागो ! आप दोनों को मैं बतलाऊँगा जो कि सब सिद्धियों का प्रदायक होता है। समस्त मङ्गलों की मङ्गल करने वाली या मङ्गल स्वरूपा है। हे शिवे ! आप सभी अर्थों की साधिका हैं। हे शरण्ये ! अर्थात् शरणागति में आ जाने वाले की रक्षा करने वाली। हे त्र्यम्बके ! हे गौरि ! आपकी सेवा में नमस्कार है। सात बार आवृत्ति करके साधक इस स्तुति को करे। 'ॐ ऐं ह्रीं श्रोम्' इस मन्त्र के द्वारा पाँच प्रणाम करे। अथवा

अन्यों के आगे अधिक वार भी अपनी इच्छा के अनुसार करे। इसके पीछे योनि मुद्रा को दिखा कर विसर्जन करना चाहिए। दोनों हाथों को प्रसृत करके अर्थात् फैलाकर और उत्तान अञ्जलिकरके दोनों अगुष्ठों के अग्रभाग को दोनों कनिष्ठिकाओं के अग्रभाग को दोनों कनिष्ठिकाओं के अग्रभाग को वाम हाथ की अनामिका में उसकी कनिष्ठका का न्यास आगे करे ॥३८—४२॥

दक्षिणस्यानामिकाया कनिष्ठा दक्षिणस्य च ।
अनामिकाया पृष्ठे तु मध्यमे द्वे निवेशयेत् ॥४३
द्वे तर्जन्यौ कनिष्ठाग्रे तदग्रेणैव योजयेत् ।
योनिमुद्रा समाख्याता देव्या प्रीतिकरी मता ॥४४
त्रिवार दर्शयेत् ता तु मूलमन्त्रेण साधक ।
ता मुद्रा शिरसि न्यस्य मण्डल विन्यसेत् तत. ॥४५
ऐशान्यामग्रहस्तेन द्वारपद्मविवर्जितम् ।
तत्र नत्वा रक्तचण्डा ह्री श्री मन्त्रण साधक ॥४६
रक्तचण्डायै नम इति निर्माल्य तत्र निक्षिपेत् ।
उदके तरुमूले वा निर्माल्य तत्र सत्यजेत् ॥४७
एव त पूजयेद् देवी विधानेन शिवा नर ।
सोऽचिरेण लभेत्कामान् सर्वानेव मनोगतान् ॥४८
अर्धलक्षजप जप्त्वा प्रथम चैव साधक ।
पुरश्चरेद् विशेषेण नानानैवेद्यवेदनै ॥४९

दाहिने हाथ की अनामिका मे दक्षिण कर कनिष्ठिका को और अनामिका के पृष्ठ भाग मे दोनो मध्यमाओ का निवेश करना चाहिए ॥४३॥ दोनो तर्जनियो को कनिष्ठा के अग्र भाग मे उसके अग्रभाग से ही योजित करना चाहिये। यह योनि मुद्रा कही गयी है जो कि देवी की प्रीति के करने वाली मानी गयी है ॥४४॥ साधक को तीन वार उस मुद्रा को दिखाना चाहिये और मूल मन्त्र को पढकर ही दिखावे। उस मुद्रा का

शिर मे न्यास करके फिर मण्डल मे विन्यास करना चाहिए ।।४५।। ऐशानी दिशा में अग्रहस्त से जो द्वार पद्म मे निर्वाजित होवे । वहां पर साधक को 'ह्रीं श्रीम्' इस मन्त्र से रक्त चडा को नमस्कार करना चाहिए। ।।४६।। "रक्त चण्डा यै नमः" इस मन्त्र से वहा पर निर्माल्य का क्षेपण करे । जल मे अथवा किसी वृक्ष के मूल में निर्माल्य का भली भांति त्याग करना चाहिए ।।४७।। इस रीति से विधान के साथ जो मनुष्य शिवा देवी का अभ्यर्चन किया करता है वह अविलम्ब ही अपनी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है जो भी कुछ सब उसके मन मे विद्यमान होवें ।।४८।। सबसे प्रथम साधक आधा लाख जप करके विशेष रूप से पुरश्चरण करे जिसमे अनेक प्रकार के नैवेद्य आदि होवें ।।४९।।

कुण्ड मण्डलवत् कृत्वा चाष्टम्यां समुपोषितः ।
नवम्या शुक्लपक्षस्य रजोभिः पञ्चभिर्नरः ।।५०
पूर्ववन्मण्डल कृत्वा गुरुपित्रोश्च सन्निधौ ।
अनेनैव विधानेन पूजयित्वा तु चण्डिकाम् ।।५१
सहितैर्विल्वपत्रैश्च अष्टोत्तरशतत्रयम् ।
तिलैर्होमं चरेत् तस्या सहस्रत्रितयं जपेत् ।।५२
नैवेद्यं गन्धपुष्पे च वस्त्रं दद्याच्च यत्प्रियम् ।
पूर्वोक्तं चान्यदप्यस्यै प्रदद्यात् पायस तथा ।।५३
पूजावसाने देय स्यात् तज्जातीय बलित्रयम् ।
सिन्दूरं स्वर्णरत्नानि यद्यत् स्त्रीणा विभूषणम् ।।५४
निवेदयेद् यथाशक्त्या पुष्पमाल्य च भूरिशः ।
महाशक्तु सशाल्यन्न गव्यव्यञ्जनसयुतम् ।।५५
देव्यं नवम्या सम्पूर्ण बलि दद्याद् घृतादिभिः ।
दक्षिणा गुरवे दद्यात् सुवर्ण गा तथा तिलम् ।।५६

एक कुण्ड की मण्डल की भांति ही रचना करे और अष्टमी तिथि मे उपवास करना चाहिए । नवमी तिथि मे जो कि शुक्ल पक्ष की होवे

मनुष्य पाँच रजो के द्वारा गुरु और पिता की सन्निधि मे पूर्व की ही मडल की रचना करे । इसी विधान से चण्डिका देवी का यजन करना चाहिए । तीन सौ आठ वेत्र पत्रो के सहित तिलो से उसमे होम का समाचरण करे और तीन सहस्र जप करे ।५०-५२। नैवेद्य-पुष्प-गन्ध-वस्त्र अर्पित करे जो भी उनको प्रिय होवें । पूर्व मे वर्जित तथा अन्य भी पायस आदि इसको समर्पित करे ॥५३॥ पूजा के अन्त मे उसके जातीय तीन बलि देनी चाहिए । सिन्दूर स्वर्ण--रत्न और जो-जो स्त्रियो के भूषण होवे अपनी शक्ति के अनुसार निवेदन करे और पुष्प तथा मालायें अधिक निवेदित करना चाहिये । महा शक्तु शाली के अन्न के सहित और गाय के व्यञ्जनो से समन्वित घृतादि के द्वारा नवमी तिथि मे देवी के लिये सम्पूर्ण बलि देनी चाहिए । गुरुदेव को दक्षिणा देवे उसमे स्वर्ण-गौ और तिल देवे ॥५४—५६॥

अभिशप्तमपुत्र च सावद्य कितव तथा ।
क्रियाहीनमकल्पज्ञ वामन गुरुनिन्दकम् ॥५७
सदा मत्सरसयुक्त गुरु मन्त्रेषु वर्जयेत् ।
गुरुर्मन्त्रस्य मूल स्यान्मूलशुद्धौ तदुद्गतम् ॥५८
सफल जायते यस्मान्मन्त्र यत्नात्परीक्षयेत् ।
शाठयात् भोयात्तु मोहाद्वा नासन्मत्या गुरोर्मुखात् ॥५९
कल्पेषु दृष्ट्वा वा मन्त्र गृह्णीयाच्छद्मनाऽथ वा ।
स मन्त्रस्तेय पापेन तामिस्रे नरके नर ॥६०
मन्वन्तरत्रय स्थित्वा पापयोनिषु जायते ।
शठे क्रूरे च मूर्खे च छद्मकारिण्यभक्तिके ॥६१
मन्त्र न दूषिते दद्यात् सुबीज विपिने तथा ।
लक्षेण साधयेत् कामं पुरश्चरणपूर्वकम् ॥६२
पापक्षयो भवेद् यस्मात् पुरश्चरणकर्मणा ।
लक्षद्वयेन मन्त्रस्य जपेन नरसत्तमो ॥६३

अभिशाप प्राप्त किये हुए—पुत्र रहित—अवद्य मे युक्त—चिंतन—क्रिया से हीन—अकल्पज्ञ—वामन (बौना)—गुरुनिन्दक—सदा मत्सरता मे मयुत—ऐसे गुरु का मन्त्रों मे वर्जित कर देना चाहिए। गुरु ही मन्त्र का मूल है और मूल के शुद्ध होने पर ही उससे जो भी उद्भूत है वह सफल होता है। इसी कारण से मन्त्र की यत्न पूर्वक परीक्षा करनी चाहिए। शठता से—क्रोध से—मोह से—असम्मति से—गुरु के मुख से अथवा कल्पों मे मन्त्र को देखकर अथवा छल से मन्त्र का ग्रहण करे वह मनुष्य मन्त्र की चोरी के पाप से तामिस्र नामक नरक मे जाया करता है ॥५७—६०॥ तीन मन्वन्तर तक वह नरक मे रहकर फिर पाप योनियों मे समुत्पन्न हुआ करता है। शठ—क्रूर—मूर्ख—छद्म (छल) करने वाले और भक्ति से हीन मे तथा दोषो से युक्त पुरुष को कभी भी मन्त्र नहीं देना चाहिए जैसे सुन्दर बीज को जङ्गल मे डाल दिया जाता है वैसा ही उपर्युक्त मनुष्यों को मन्त्र देना भी निष्फल ही होता है। एक लाख मे पुरश्चरण पूर्वक कामना की साधना करनी चाहिए ॥६१—६२॥ क्योंकि पुरश्चरण के कर्म के द्वारा पापों का क्षय हुआ करता है। हे श्रेष्ठ नरो! दो लाख मन्त्र जप के द्वारा करे ॥६३॥

त्रिसन्ध्यासु प्रतिदिनं वै जसंघातकेन च।
कविर्वाग्मी पण्डिश्च यशस्वी च प्रजायते ॥६४
साधकः साधकश्रेष्ठ पूजास्या न ततः शृणु।
यत्र यत्र नरः पूजां निर्जने कुरुते च यः ॥६५
नस्यादत्ते स्वयं देवी पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शिला प्रशस्ता पूजायां स्थण्डिलं निर्जनं तथा ॥६६
जपश्चोपांशु सर्वेषामुत्तमः परिकीर्तितः।
अशुचिर्न महामाया पूजयेत् तु कदाचन ॥६७
अवश्य तु स्मरेन्मन्त्रं योऽतिभक्तियुतो नरः।

दन्तरक्ते समुत्पन्ने स्मरणचन विद्यते ॥६८
सर्वेपामेव मन्त्राणा स्मरणान्नरक व्रजेत् ।
जानूर्ध्वे क्षतजे जाते नित्य कर्म न चाचरेत् ॥६६
नैमित्तिक च तदध स्रवद्रक्तो न चाचरेत् ।
सूतके च समुत्पन्ने क्षुरकर्मणि मैथुने ॥७०
धूमोद्गारे तथा वान्ते नित्यकर्माणि सत्यजेत् ।
द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च न वै भुक्त्वा च किञ्चन ॥७१
कर्म कुर्यान्नरो नित्य सूतके मृतके तथा ।
पत्र पुष्प च ताम्बूल भेपजत्वेन कल्पितम् ॥७२

प्रतिदिन तीनो सन्ध्याओ मे और बीज सघात के द्वारा करने से साधक मनुष्य कवि--वाग्मी--पण्डित--और यशस्वी हो जाया करता है ॥६ ॥ हे साधको मे श्रेष्ठ ! इसके उपरात पूजा के स्थान का श्रवण करो । जहाँ--जहाँ पर भी निर्जन मे जो मनुष्य पूजा किया करता है । उसको देवी स्वय ही पत्र—पुष्प और फल का तथा जल का आदान किया करती है । पूजा मे शिला प्रशस्त होती है तथा स्थण्डिल और निर्जन होना चाहिए ॥६५—६६॥ उपांशु जप सभी जपो मे उत्तम कहा गया है । अशुचि की दशा मे कभी भी महामाया का पूजन नही करना चाहिए ।६७॥ जो अत्यन्त भक्ति से युक्त नर हो उसे मन्त्र का स्मरण अवश्य ही करना चाहिये । दांतो मे रक्त किसी भी कारण से समुत्पन्न हो जाने पर स्मरण भी नही कहा जाता है ॥६८॥ मन्त्रो के स्मरण से मनुष्य नरक मे गमन किया करता है । जानु के ऊर्ध्व भाग मे क्षतज उत्पन्न हो जाने पर नित्य कर्म का भी समाचरण नहीं करना चाहिये ॥६६॥ उसके नीचे के भाग मे यदि रक्त का स्नाव हो जावे तो नैमित्तिक कर्म न करे । सूतक मे समुत्पन्न होने पर--क्षुर कर्म मे—मैथुन मे—धूमोद्गार में-वान्ति हो जाने पर नित्य कर्मो का त्याग कर देना चाहिए । द्रव्य के भुक्त होने

पर—अजीर्ण में और कुछ भी न खाकर मनुष्य सूतक में तथा मृतक में नित्य कर्म करे। पत्र—पुष्प—फल और जल—ताम्बूल भोजन के ही रूप में माना गया है ॥७०—७२॥

कणादिपिप्पल्यन्तं च फलं भुक्त्वा न चाचरेत् ।
जलस्यापि नरश्रेष्ठ भोजनाद् भेषजादृते ॥७३
नित्यक्रिया निवर्तेत सह नैमित्तिकैः सदा ।
जलौकां गूढपादं च कृमिगण्डूपदादिकम् ॥७४
कामाद्धस्तेन संस्पृश्य नित्यकर्माणि संत्यजेत् ।
विशेषतः शिवापूजां प्रमीतपितृको नरः ॥७५
यावद् वत्सरपर्यन्तं मनसापि न चाचरेत् ।
महागुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत् ॥७६
आर्त्विज्यं ब्रह्मयज्ञं च श्राद्धं देवयज्ञं च यत् ।
गुरुमाक्षिप्य विप्रं च प्रहृत्यैव च पाणिना ॥७७
न कुर्यान्नित्यकर्माणि रेतःपाते च भैरव ।
आसनं चार्घ्यपात्रं च भग्नमासादयेन्नतु ॥७८

कण से आदि लेकर पिप्पली के अन्त पर्यन्त हे नर श्रेष्ठ ! भेषज के बिना जल के भी भोजन से और फलक खाकर नहीं समाचरण करे। ॥७३॥ सदा नैमित्तिक कर्मों के साथ नित्य क्रिया को निवर्तित करे। जलौका—गूढ पाद—कृमि—गण्ड के पदादिक को काम से हाथ के द्वारा सस्पर्श करके नित्य कर्मों का त्याग कर देना चाहिए। विशेष कर के प्रमीत पितृक मनुष्य को शिवा की पूजा का त्याग कर देना चाहिए। ॥७४—७५॥ जब तक एक वर्ष हो उसके अन्त तक मन से भी आचरण न करे। महा गुरु के निपात हो जाने पर कुछ भी काम्य कर्म का समाचरण नहीं करना चाहिए ॥७६॥ आर्त्विज्य—ब्रह्म यज्ञ—श्राद्ध—देव यज्ञ गुरु का और विप्र का आक्षेप करके और हाथ से प्रहृत करके हे भैरव ! रेत के पात हो जाने पर नित्य कर्मों को नहीं करना

चाहिए। आसन और अर्घ्य पात्र को भग्न हो जाने पर आसादित नहीं करना चाहिए ॥७७—७८॥

ऊपरे कृमिसयुक्ते स्थाने मृष्टेऽपि नार्चयेत् ।
नीचैरासनमासाद्य शुचि प्रयतमानस. ॥७६
अर्चयेच्चण्डिका देवी देवमन्य च भैरव ।
दिग्विभागे तु कौबेरीदिक् छिवा प्रीतिदायिनी ॥८०
तस्मात् तन्मुख आसीन. पूजयेच्चण्डिका सदा ।
पुष्प च कृमिसमिश्र विशीर्णं भग्नमृद्गते ॥८१
सकेश मूषिकोद्धृत यत्नेन परिवर्जयेत् ।
याचित परकीय च तथा पर्युषित च यत् ।
अन्त्यस्पृष्टं पदा स्पृष्ट यत्नेन परिवर्जयेत् ॥८२
इद शिवाया. परम मनोहर
करोति योऽनेन तदीयपूजनम् ।
स वाञ्छितार्थं समवाप्य चण्डिका-
गृह प्रयाता नचिरेण भैरव ॥८३

ऊपर मे कृमियो से सयुक्त होने पर उसको भ्रष्ट करके भी वहाँ पर अर्चन नही करना चाहिए। नीचे स्थान पर आसन को समासादित करके शुचि और प्रयत मान् वाला होकर ही हे भैरव ! चण्डिका देवी का तथा अन्य देव का अर्चन करना चाहिए। दिशाओ के विभाग मे कौबेरी दिशा शिवा की प्रीति के देने वाली हुआ करती है ॥ ७६—८० ॥ इस कारण से उस देवी के सम्मुख मे ही स्थित होकर सदा ही चण्डिका का अभ्यर्चन करना चाहिए। पुष्प भी ऐसा होना चाहिए जो कृमियो से संमिश्रित न होवे—विशीर्ण, भग्न और मिट्टी मे पड़ा हुआ नहीं होवे। जो पुष्प चूहों से उद्भूत हो और केशो से युक्त हो उसका परिवर्जन यत्न पूर्वक कर देना चाहिए। याचना किया हुआ—दूसरे का तथा पर्युषित (बासी)—अन्त्य मृष्ट—पैर से स्पर्श किया हुआ हो ऐसे

पुष्प को वर्जित कर देना चाहिए। अर्थात् पूजा के कर्म में कभी ग्रहण नहीं करे ॥८१—८२॥ यह शिवा का परमाधिक मनोहर विधान है। इसको जो भी साधक उसके पूजन में किया करता है वह अपना अभीष्ट प्राप्त करके हे भैरव! शीघ्र ही चण्डिका देवी के गृह में प्रयाण करने वाला होता है ॥८३॥



॥ महामाया मंत्र का कवच ॥

अस्य मन्त्रस्य कवचं शृणु वेतालभैरव।
वैष्णवीतन्त्रसंज्ञस्य वैष्णव्याश्च विशेषत ॥१
तत्र मन्त्राद्यक्षरं तु वासुदेवस्वरूपधृक्।
वर्णो द्वितीयो ब्रह्मा च तृतीयश्चन्द्रशेखरः ॥२
चतुर्थो गजवक्त्रश्च पञ्चमस्तु दिवाकरः।
शक्तिः स्वयं षकारश्च महामाया जगन्मयी ॥३
यकारस्तु महालक्ष्मीः शेषवर्णः सरस्वती।
योगिनीपूर्ववर्णस्य शैलपुत्री प्रकीर्तिता ॥४
द्वितीयस्य तु वर्णस्य चण्डिका योगिनी मता।
चन्द्रघण्टा तृतीयस्य कुष्माण्डी तत् परस्य च ॥५
स्कन्दमाता तकारस्य षष्ठ कात्यायनी स्वयम्।
कालरात्रिः सप्तमस्य महादेवीति संस्थिता ॥६
प्रथमं वर्णकवचं योगिनीकवचं तथा।
देवीपकवचं पश्चाद् देवींदिक्कवचं तथा ॥७

श्री भगवान् ने कहा—हे वेताल भैरव! अब इस मन्त्र का कवच का श्रवण करो जो कि वैष्णवी तन्त्र संज्ञा वाले का है और विशेष रूप से वैष्णवी देवी का है ॥१॥ वहाँ पर मन्त्रादि अक्षर वासुदेव के स्वरूप का धारण करने वाला है। दूसरा वर्ण ब्रह्म ही है—तीसरा

चन्द्र शेखर है ॥२॥ चतुर्थ गजन कवच है—पाँचवाँ दिवाकर है—स्वयं शक्ति और पकार है जो जगन्मयी महा माया है ॥३॥ यकार महालक्ष्मी है और शेष वर्ण सरस्वती है। पूर्व वर्ण की योगिनी शैल पुत्री कही गयी है ॥४॥ द्वितीय वर्ण की योगिनी चण्डिका मानी गयी है। तीसरे की चन्द्र घण्टा है और चौथे की कूष्माण्डी मानी गयी है। ५॥ तकार की स्कन्द माता है। देखो कात्यायनी स्वयं है। सप्तम की काल रात्रि है जो महा देवी—यह महिमता है ॥ ६ ॥ प्रथम वर्ण कवच है तथा योगिनी कवच है। पीछे देवीय कवच है तथा देवी दिक् कवच है ॥ ७ ॥

ततस्तु पार्श्वकवचं द्वितीयान्ताव्ययस्य च ।
कवचं तु ततः पश्चात् षड्वर्णं कवचं तथा ॥८
अभेद्यकवचं चेति सर्वत्राणपरायणम् ।
इमानि कवचान्यष्टौ यो जानाति नरोत्तम ॥९
सोऽहमेव महादेवी देवीरूपश्च शक्तिमान् ।
अस्य वैष्णवीतन्त्रकवचस्य नारदऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः ॥१०
कात्यायनी देवता सर्वकामार्थसाधने विनियोगः ।
अं पातु पूर्वकाष्ठायामाग्नेय्यां पातु कं सदा ॥११
पातु चो यमकाष्ठायां दो नैऋत्यां च सर्वदा ।
मां पातु तोऽसौ पाश्चात्ये शक्तिर्वायव्यदिग्गता ॥१२
यं पातु मां चोत्तरस्यामैशान्यां यस्तथावतु ।
मूर्ध्नि रक्षतु मां सोऽसौ बाहौ मां दक्षिणे तु कः ॥१३
मां वामबाहौ च पातु हृदि टो मां सदावतु ।
त॰ पातु कण्ठदेशे मां शे कट्यो शक्तिस्तथावतु ॥१४

इसके अनन्तर पार्श्व कवच है और द्वितीयान्ता व्यय का कवच है। इसके पश्चात् षड् वर्ण कवच है ॥८॥ अभेद्य कवच है जो सर्वत्राण परायण हैं। ये आठ कवच हैं इनको जो नरों में उत्तम है जानता है।

॥९॥ वह मैं ही महादेवी हूँ और शक्तिमान् देवी के रूप वाला है। इस वैष्णवी तन्त्र कवच का नापद ऋषि हैं और अनुष्टुप छन्द है। ॥१०॥ कात्यायनी इसका देवता है। इसका सब कामो के अर्थो के साधन मे विनियोग होता है। 'अ' पूर्व दिशा मे रक्षा करे और 'का सदा आग्नेयी मे रक्षा करे ॥११॥ 'य' यम दिशा में रक्षा करे—और 'द' नैऋ॑ति दिशा मे सर्वदा मेरी रक्षा करे। पाश्चात्य दिशा मे 'त' रक्षा करे तथा वायव्य दिशा मे शक्ति रक्षा करे ॥१२॥ 'य' मुझको उत्तर दिशा मे रक्षित करे तथा "य" ऐशानी दिशा मे रक्षा करे। 'स' मेरी मस्तक मे रक्षा करे और 'क' मेरी दाहिने बाहु मे रक्षा करे। ॥१३॥ 'च' मेरी बाँई बाहु मे रक्षा करे और 'ट' सदा मेरे हृदय मे रक्षा करे। कठ देश मे तो रक्षा करे औरमेरी करि मे शक्ति रक्षा करे ॥१४॥

य पातु दक्षिणे पादे पो मां वामपादे तथा।
शैलपुत्री तु पूर्वस्यामाग्नेय्यां पातु चण्डिका ॥१५
चन्द्रघण्टा पातु याम्यां यमभीतिविवर्धिनी।
नैऋ॑त्ये स्वय कूष्माण्डी पातु मा जगता प्रसूः ॥१६
स्कन्दमाता पश्चिमायां मां रक्षतु सदैव हि।
कात्यायनी मां वायव्ये पातु लोकेश्वरी सदा ॥१७
कालरात्री तु कौवेर्यां सदा रक्षतु मा स्वयम्।
महागौरी तथैशान्या सततं पातु पावनी ॥१८
नेत्रयोर्वासुदेवो मा पातु नित्यं सनातनः।
ब्रह्मा मा पातु वदने पद्मयोनिरयोनिजः ॥१९
नासाभागे रक्षतु मां सर्वदा चन्द्रशेखरः।
गजवक्त्रः स्तनयुग्मे पातु नित्यं हरात्मजः ॥२०
वामदक्षिणपाण्योर्मां नित्य पातु दिवाकरः।
महामाया स्वय नाभौ मां पातु परमेश्वरी ॥२१

"य" दाहिने पाद में रक्षा करे तथा 'प' बाम पाद में रक्षा करे। शैल पुत्री पूर्व में और चंडिका आग्नेयी दिशा में मेरी रक्षा करे ॥१५॥ याम्य चन्द्र घटा रक्षा करे जो भय की भीति की विवर्धिनी है। जगतो की जननी कूष्माण्डी मेरे नैऋत्य में रक्षाकरे ।१६। पश्चिम दिशा में स्कन्द माता मेरी सदा ही रक्षा करें। वायव्यदिशा में मेरी कात्यायनी रक्षा करे जो सदा लोकेश्वरी है ।१७। काल रात्रि कौबेरी दिशामें स्वयं सदा मेरी रक्षा करे। तथा ऐशानी दिशा में निरन्तर पावनी मेरी रक्षा करे ।१८। मेरे दोनों नेत्रों को भगवान् वासुदेव रक्षा करें जो नित्य ही सनातन प्रभु हैं। वदन में मेरी ब्रह्मा रक्षा करें जो पद्म योनि और अयोनिज हैं अर्थात् किसी योनि सेस मुत्पन्न नहीं होकर केवल पद्म से ही समुत्पन्न हुए हैं ॥१९॥ मेरे नासिका के भाग में मेरी सर्वदा चन्द्र शेखर प्रभु रक्षा करें। भगवान् शम्भु के पुत्र गज वक्त्र (गणेश) मेरे दोनों स्तनों की नित्य रक्षा करें ॥२०॥ मेरे बाँये और दाहिने हाथों की नित्य ही दिवाकर रक्षा करें। परमेश्वरी माहामाया स्वयं मेरी नाभि में रक्षा करे ॥२१॥

महालक्ष्मीः पातु गुह्ये जानुनोश्च सरस्वती ।
महामाया पर्वभागे नित्यं रक्षतु मां शुभा ॥२२
अग्निज्वाला तथाग्नेय्यां पायान्नित्यं वरासिनी ।
रुद्राणी पातु मां याम्यां नैर्ऋत्यां चन्डनायिका ॥२३
उग्रचण्डा पश्चिमायां पातु नित्यं महेश्वरी ।
प्रचण्डा पातु वायव्ये कौबेर्यां घोररूपिणी ॥२४
ईश्वरी च तथैशान्यां पातु नित्य सनातनी ।
ऊर्ध्वं पातु महामाया पात्वधः परमेश्वरी ॥२५
अग्रतः पातु मामुग्रा पृष्ठतो वैष्णवी तथा ।
ब्रह्माणी दक्षिणे पार्श्वे नित्यं रक्षतु शोभना ॥२६
माहेश्वरी वामपार्श्वे नित्यं पायाद् वृषध्वजा ।

कौमारी पर्वते पातु वाराही सलिले च माम् ॥२७
नारसिंही दंष्ट्रिभये पातु मा विपिनेषु च।
ऐन्द्री मा पातु चाकाशे तथा सर्वजले स्थले ॥२८

महा लक्ष्मी गुह्य की रक्षा करे—जानुओं की रक्षा सरस्वती करे। शुभा महामाया पूर्व भाग में मेरी नित्य ही रक्षा करें ॥२२॥ वराभिनी अग्नि ज्वाला आग्नेयी दिशा में नित्य ही रक्षा करे। रुद्राणी मेरी याम्य दिशा में रक्षा करे और चण्ड नायिका नैर्ऋत्य में रक्षा करे। ॥२३॥ महेश्वरी उग्र चण्डा पश्चिम में नित्य ही रक्षा करें। वायव्य में प्रचण्डा और कौबेरी दिशा में घोर रूपिणी रक्षा करे ॥२४॥ ऐशानी दिशा में ईश्वरी सनातनी नित्य ही मेरी रक्षा करे। महामाया ऊपर की ओर और नीचे की ओर परमेश्वरी रक्षा करे ॥२५॥ उग्रा मुझको आगे की ओर रक्षा करे तथा पृष्ठ भाग में वैष्णवी रक्षा करे। दक्षिण पार्श्व में ब्रह्माणी शोभना नित्य मेरी रक्षा करे। वृषध्वजा माहेश्वरी वाम पार्श्व में नित्य रक्षा करे। पर्वत में कौमारी और जल में वाराही मेरी रक्षा करे ॥२६॥ दाढ़ वालों के भय में नारसिंही रक्षा करे जो कि विपिनों में किया करे। आकाश में ऐन्द्री तथा सर्वत्र जल में और स्थल में मेरी रक्षा करे ॥२८॥

सेतुः सर्वांगुली पातु देवादि पातु कर्णयो।
देवान्तश्चिबुके पातु पार्श्वयो शक्तिपञ्चम ॥२९
हृ पातु मा तयंवोर्मायाया रक्षतु जंघयो.।
सर्वेन्द्रियाणि य. पातु रोमकूपेषु सर्वदा ॥३०
त्वचि मा वै सदा पातु मा शम्भु पातु सर्वदा।
नखदन्तकरोष्ठादौ रां मा पातु सदैव हि ॥३१
देवादि पातु मा वस्तौ देवान्त स्तनकक्षयो.।
एतदादौ तु य सेतुर्वाह्ये मा पातु देहत ॥३२
आज्ञाचक्रे सुषुम्नाया.षट्चक्रे हृदि सन्धिषु।

आदिषोडशचक्रे च ललाटाकाश एव च ॥३३
वैष्णवी तन्त्रमन्त्रो मा नित्य रक्षन्न तिष्ठतु ।
कर्णनाडीषु सर्वासु पार्श्वकक्षशिखासु च ॥३४
रुधिरस्नायुमज्जासु मस्तिष्केषु च पर्वसु ।
द्वितीयाष्टाक्षरो मन्त्र कवच पातु सर्वत ॥३५

समस्त अंगुलियों की रक्षा सेतु करे तथा देवादि वर्णों की रक्षा करे । देवान्त चिबुक में रक्षा करे और दोनों पार्श्वों में शक्ति पञ्चग रक्षा करे ॥२९॥ उसी भाँति ही मेरे ऊरुओं की रक्षा करे और माया मेरी दोनों जांघों की रक्षा करे 'य' सर्वदा समस्त इन्द्रियों की और रोमों के कूपों में रक्षा करे ॥३०॥ मेरी त्वचा में मुझको सर्वदा भगवान् शम्भु रक्षा करे । नाखून—दाँत—कर—और ओष्ठ आदि में सदैव ही 'रां" मेरी रक्षा करे ॥ ३१ ॥ मेरी वस्ती में देवादि रक्षा करे और स्तनों तथा कक्षों में देवान्त रक्षा करे । 'य' हेतु एतदादि में और देह के बाह्य भाग में मेरी रक्षा करे ॥३२॥ आज्ञा चक्र में—सुषुम्ना में—षट् चक्र में—हृदय में सन्धियों में और आद षोडश चक्र में तथा ललाटा कारा में वैष्णवी तन्त्र-मन्त्र मेरी नित्य ही रक्षा करती हुई स्थित रहे । समस्त कानों की नाड़ियों में और पार्श्व कक्ष शिखाओं में—रुधिर, स्नायु, मज्जाओं में—मस्तिष्कों में और पर्वों में द्वितीयाष्टाक्षर मन्त्र कवच सभी ओर रक्षा करे ॥३४॥३५॥

रेतो वायौ नाभिरन्ध्रे पृष्ठसन्धिषु सर्वत ।
षडक्षरस्तृतीयोऽय मन्त्रो मा पातु सर्वदा ॥३६
नासारन्ध्रे महामाया कण्ठरन्ध्रे तु वैष्णवी ।
सर्वसन्धिषु मा पातु दुर्गा दुर्गार्तिहारिणी ॥३७
श्रोत्रयोर्हूं फडित्येव नित्य रक्षतु कालिका ।
नेत्रबीजत्रय नेत्रे सदा तिष्ठतु रक्षितुम् ॥३८
ॐ ऐ ह्रीं ह्रौं नासिकाया रक्षन्ती चास्तु चण्डिका ।

ॐ ह्रीं हूँ मां सदा तारा जिह्वामूले तु तिष्ठतु ॥३६
हृदि तिष्ठतु मे सेतुर्ज्ञानं रक्षितुमुत्तमम् ।
ॐ क्षौं फट् च महामाया पातु मां सर्वतः सदा ॥४०
ॐ मुं स. प्राणान् कौशिकी मां प्राणान् रक्षतु रक्षिका ।
ह्रीं हूँ सौं भर्गदयिता देहशून्येषु पातु माम् ॥४१
ॐ नमः सदा शैलपुत्री सर्वान रोगान् प्रमृज्यताम् ।
ॐ ह्रीं स. स्फें क्षः फडस्त्राय सिंहव्याघ्रभयाद्रणात् ॥४२
शिवदूती पातु नित्यं ह्रीं सर्वास्त्रेषु तिष्ठतु ।
ॐ ह्रां ह्रीं सचण्डघण्टा कर्णच्छिद्रेषु पातु माम् ॥४३

रेत (वीर्य)—वायु में—नाभि के रन्ध्र में—पृष्ठ सन्धियों में सभी ओर षडक्षर यह तीमरा मन्त्र सर्वदा मेरी रक्षा करे ॥३६॥ नासा के रन्ध्र में महामाया और कंठ के रन्ध्र में वैष्णवी रक्षा करे तथा समस्त सन्धियो मे दुर्गार्ति हारिणी दुर्गा मेरी रक्षा करे ॥३७॥ श्रोत्रों मे हूँ फट् यह बालिका नित्य रक्षा करे। नेत्र मे नेत्र त्रय बीज रक्षा करने के लिये सदा स्थित रहे ॥३८॥ ॐ ऐं ह्रीं हैं नासिका मे रक्षा करती हुई चण्डिका रहे। ॐ ह्रीं हूँ तारा सदा मेरे जिह्वा मूल मे स्थित रहे ॥३६॥ मेरे हृदय मे उत्तम ज्ञान की रक्षा करने के लिये सेतु स्थित रहे ॐ क्षौं फट् महामाया सभी ओर मेरी रक्षा करे ॥४०॥ ॐ मुं म. प्रोगान् कौशिकी मेरे प्राणों की रक्षिका रक्षा करें। ह्रीं ह्रीं सौं भर्ग की दयिता देह शून्यो मे मेरी रक्षा करे। ॥४१॥ ॐ नमः शैल पुत्री सदा सब रोगो का प्रमार्जन करे ॐ ह्रीं सः स्फें सः अस्त्राय फट् शिव दूती सिंह—व्याघ्र के भय से और रण से नित्य रक्षा करे ह्रीं सब अस्त्रो से स्थित रहे। ॐ ह्रीं ह्रीं सः चन्द्र घण्टा कर्णों के छिद्रो मे मेरी रक्षा करें ॥४२—४३॥

ॐ श्रीं स॰ कमेश्वरी कामानभितिष्ठतु रक्षतु ।
ॐ आं हूँ फडुग्रचण्डा रिपून् विघ्नान् विमर्दताम् ॥४४
ॐ अं पातु नित्यं वैरण शूलात्वी जगदीश्वरी ।

ॐ क ब्रह्माणी पातु चक्रात च रुद्राणी तु शक्तित ।।४५
ॐ ट कौमारी पातु वज्रान् त वाराही तु काण्डत ।
ॐ प नारसिही मा क्रव्यादेभ्यस्तथास्त्वत ।।४६
शस्त्रास्त्रेभ्य समस्तेभ्यो यन्त्रेभ्योऽनिष्टमन्त्रत ।
चण्डिका मा सदा पातु य स देव्यं नमो नम ।
विश्वासघातकेभ्यो मामैन्द्री रक्षतु मन्मन ।।४७
ॐ नमो महामायायै ओ वैष्णव्यै नमो नम ।
रक्ष मा सर्वभूतेभ्य सर्वत्र परमेश्वरि ।।४८
आधारे वायुमार्गे हृदि कमलदले चन्द्रवत् स्मेरसूर्ये,
वस्तौ वह्नौ समिद्धे विशतु वरदया मन्त्रमष्टाक्षरन्तत् ।
यद्ब्रह्मा मूर्ध्नि धत्ते हरिरवति गले चन्द्रचूडो हृदिस्थ,
त मा पातु प्रधान निखिलमतिशय पगवर्भामवीजम् ।।४९

ॐ क्री म कामेश्वरी कामो मे अभिसियत होवें और रक्षा करे। ॐ आ हूँ फट् प्रचण्डा शत्रुओ को और विघ्नो को निमर्दित करे ।।४४।। ॐ अ शूल से वैष्णवी जगदीश्वरी नित्य ही रक्षा करे। ॐ क ब्रह्माणी चक्र से रक्षा करे और रुद्राणी शक्ति से रक्षा करे ।।४५।। ॐ टं कौमारी वज्र से रक्षा करे और त वाराही काण्ड से रक्षा करे। ॐ म नारसिही क्रव्यादो से और अस्त्र से मेरी रक्षा करे ।। ४६ ।। शस्त्रो से समस्त अस्त्रो से—मन्त्रो से और अनिष्ट मन्त्र से चण्डिका मेरी रक्षा करे। यं म देवी के लिये बारम्बार नमस्कार है। ऐन्द्री विश्वास का घात करने वालो से मेरे मन की रक्षा करे ।। ४७ ।। ॐ महामाया के लिये नमस्कार है—ॐ वैष्णवी के लिये बारम्बार नमस्कार है। हे परमेश्वरि! समस्त भूतो से सर्वत्र मेरी रक्षा करो ।। ४८ ।। आधार मे—वायु मार्ग मे—हृदय मे—कमल दल मे—चन्द्र की भाँति स्मेर सूर्य म—वस्ती में—समिद्ध वह्नि म वरदा के द्वारा वह आठ अक्षरो वाला मन्त्र प्रवेश करे। जो ब्रह्मा मस्तक में धारण करते हैं गले मे हरि रक्षा करते हैं—

हृदय म स्थित को चन्द्र चूड रक्षा करते हैं पद्मगर्भाय बीज निखिल निरतिशय प्रधान त्व मेरी रक्षा करे ॥४९॥

आद्या शेषा स्वरोघैर्भमयवलवरैरस्वरेणापि युक्तै.
सानुस्वाराविसर्गैर्हरिहरविदित यत्सहस्र च साष्टम् ।
मन्त्राणा सेतुवन्ध निवसति सतत वैष्णवीतन्त्रमन्त्रे
तन्मा पायात्पवित्र परमपरमज भूतलव्योमभागे ॥५०
अङ्गान्यष्टौ तथाष्टौ वसव इह तथैवाष्टमूर्तिदलानि
प्रोक्तान्यष्टौ तथाष्टौ मधुमतिरचिता. सिद्धयोऽष्टौ तथैव ।
अष्टावष्टाष्टसख्या जगति रतिकला क्षिप्रकाष्ठागयोगा
मय्यष्टावक्षराणि क्षरतु न हि गणो यद्धृदो यस्त्वमूपाम्॥५१
इयि तत्कवच प्रोक्त धर्मकामार्थसाधनम् ।
इद रहस्य परममिद सर्वार्थसाधकम् ॥५२
य सकृच्छृणुयादेतत् कवच मयकोदितम् ।
स सर्वाल्लभते कामान् परत्र शिवरूपताम् ॥५३
सकृद् यस्तु पठेदेतत् कवच मयकोदितम् ।
स सर्वयज्ञस्य फल लभते नात्र सशय ॥५४
सग्रामेषु जयेच्छत्रु मातङ्गानिव केशरी ।
दहेत् तृण यथा वह्निस्तथा शत्रु दहेत् सदा ॥५५
नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि शरीरे प्रविशन्ति वै ।
न तस्य जायते व्याधिर्न च दु ख कदाचन ॥५६

आद्य शेप स्वरो के समुदायो से भम पवतवरो से विना स्वर से भी युक्त से—अनुस्वार के सहित विना विसर्गों वालो से—हरि हर विदित जो एक सहस्र आठ हैं। वैष्णवी तन्त्र मन्त्रो का सेतुवन्ध निरन्तर निवास करता है वही परम पवित्र पर और अपरज भूतल और व्योम के भाग में मेरी रक्षा करे ॥५०॥ आठ अङ्ग तथा आठ वसुगण तथा अष्टमूर्त्ति दल यहां पर कहे गये हैं तथा आठ मधुमती रचित तथा

आठ सिद्धियाँ आठ आठ की संख्या जगत् में रतिकला और क्षिप्रकाङ्क्षाष्ट योग मुझमें आठ अक्षर धारण करें—और इनका जो यह छृद गण है वह नहीं करे।।'५१॥ यह उसका कवच बतला दिया गया है जो त्रि धर्म—अर्थ और काम का साधन करने वाला है। यह परम रहस्य है और सभी अर्थों का साधक है ॥ ५२ ॥ मेरे द्वारा कथित इस कवच को जो कोई भी एक बार भी श्रवण कर लेता है वह सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है और परलोक में शिव के स्वरूप का लाभ किया करता है ॥ ५३ ॥ मेरे द्वारा कथित इस कवच को जो एक बार भी पढ़ता है वह सभी यज्ञों के फलों का लाभ किया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ५४ ॥ जैसे सिंह हाथियों को परास्त कर देता है उसी भाँति वह संग्रामों में शत्रुओं पर विजयी हो जाता है। जैसे अग्नि तृण को दग्ध कर देता है वैसे ही वह पुरुष सदा ही शत्रु का दाह कर देता है ॥ ५५ ॥ उसके शरीर में शस्त्र और अस्त्र प्रवेश नहीं किया करते हैं। उसको न कभी रोग होता है और न कभी दुःख ही होता है ॥५६॥

गुटिकाञ्जनपातालपादलेपरञ्जनम् ।
उच्चाटनाद्यास्ता सर्वा प्रसीदन्ति च सिद्धय ॥५७
वायोरिव मतिस्तस्य भवेदन्यैरवारिता ।
दीर्घायु कामभोगी च धनवानभिजायते ॥५८
अष्टम्या सयतो भूत्वा नवम्या विधिवच्छिवाम् ।
पूजयित्वा विधानेन विचिन्त्य मनसा शिवाम् ॥५९
यो न्यसेत् कवच देहे तस्य पुण्यफल शृणु ।
जितव्याधि शतायुश्च रूपवान गुणवान् सदा ॥६०
धनरत्नौघसम्पूर्णो विद्यावान स च जायते ।
नाग्निर्दहति तत्काय नाप सक्लेदयन्ति च ॥६१
न शोषयति त वायु क्रव्यात् त न हिनस्ति च ।

धर्मार्थकाममोक्षाश्च तस्य नित्यं करे स्थिताः ।।६५
अन्यस्य वरदः सोऽर्थैर्नित्यं भवति पण्डितः ।
कवित्व सत्यवादित्वं सततं तस्य जायते ।।६६
वदेच्छ्लोकसहस्राणि भवेच्छ्रु तिधरस्तथा ।
लिखित यस्य गेहे तु कवचं भैरव स्थितम् ।।६७
न तस्य दुर्गति. क्वापि जायते तस्य दूषणम् ।
ग्रहाश्च सर्वे तुष्यति वश गच्छन्ति भूमिपाः ।।६८
यद्राज्ये कवचज्ञोऽस्ति जायन्ते तत्र नेतयः ।
सेतुर्देवः शक्तिबीज पचमोहाय ते नमः ।।६९
वायुर्बलेन चैतार्यं द्वितीयाप्टाक्षर द्विवम् ।
सेतुर्देवोऽय वैष्णव्यं षडक्षरमिदं स्मृतम् ।।७०

चारो प्रकार के भूतो के समूह सभी उसके वश मे हो जाया करते हैं। जो मनुष्य नित्य ही भक्ति की भावना से भगवान् हर का बनाया हुआ कवच का पाठ किया करता है ।।६४।। वह मैं ही महादेव हूँ और मातृका महामाया हूँ। उस पुरुष के धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष उसके कर मे ही नित्य स्थित रहा करते है।६५। बहुअर्थों के द्वारा अन्य के लिये वरदान वाला होता है। तथा बड़ा पण्डित हो जाता है। कविता करने की शक्ति और सत्य भाषण करना उसको निरन्तर हो जाया करता है ।।६६।। वह सहस्रो श्लोको को बोला करता है। और वह श्रुति धर हो जाता है। हे भैरवी जिसके घर मे यह कवच लिखा हुआ स्थित रहा करता है ।।६७।। उसको कही पर भी दुर्गति नही हुआ करती है और उसको कोई भी दोष नही लगता है। उस पुरुष के सभी ग्रह सन्तुष्ट हो जाया करते हैं और उसके वश मे राजा हो जाते हैं ।।६८।। जिस राजा के राज्य में इस कवच का ज्ञाता रहता है वहाँ पर ईतियाँ कभी नही हुआ करती है। टिड्डी आदि की वृद्धि वाली छै ईतियाँ होती है। सेतु देव है—शक्ति बीज है—पञ्चमोह तुम्हारे लिये

नमस्कार है ॥६९॥ वायु वल से इस के लिये वह द्वितीय अष्टाक्षर है सेतुदेव है वैष्णवी के लिए यह षडक्षर है ऐसा कहा गया है ॥७०॥

एतद् द्वयं तु जिह्वा ग्रेसतत यस्य वर्तते ।
तस्य देवीं महामाया काये तिष्ठति वै सदा ॥७१
मन्त्राणां प्रणवः सेतुस्तत्सेतुः प्रणवः स्मृतः ।
क्षरत्यनोङ्कृतः पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते ॥७२
नमस्कारो महामन्त्रो देव इत्युच्यते सुरं. ।
द्विजातीनामयं मन्त्र. शूद्राणां सर्वकर्मणि ॥७३
अकार चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः ।
वेदत्रयात्समुद्धृत्य प्रणव निर्ममे पुरा ॥७४
स उदात्तो द्विजातीनां राज्ञां स्यादनुदात्तक. ।
प्रचितश्चोरुजानां मनसापि तथा स्मरेत् ॥७५
चतुर्दशस्वरो योऽसौ शेष औकारसञ्ज्ञकः ।
स चानुस्वारचन्द्राभ्या शूद्राणां सेतुरुच्यते ॥७६
नि सेतु च यथा तोय क्षणान्निम्न प्रसर्पति ।
मन्त्रस्तथैव नि.सेतुः क्षणात् क्षरति यज्वनाम् ॥७७

ये दोनों जिस पुरुष की जिह्वा के अग्रभाग मे होते हैं उसके शरीर मे महामाया देवी निश्चय ही सदा स्थित रहा करती हैं ॥७१॥ मन्त्रो का प्रणव सेतु होता है और उसका सेतु प्रणव कहा गया है। पूर्व मे अनोङ्कृत क्षरित होता है और परस्तात् विशीर्ण हो जाया करता है ॥७२॥ नमस्कार महामन्त्र देव है—यह सुरो के द्वारा कहा जाता है। त्रिजातियों का यही मन्त्र है और शूद्रों के सब कर्म मे होता है।७३। अकार—उकार और मकार को प्रजापति ने तीनो वेदो से उद्धृत करके पहिले प्रणव का निर्माण किया था।७४। वह द्विजातियों का उदात्त है और रजाओ का अनुदात्त है। ऊरुजातो का वैश्यो का प्रचित है। इसका मन से भी स्मरण नहीं करना चाहिए।७५। जो यह चौदह स्वरो वाला है शेष औकार सज्ञा वाला है। और वह

अनुस्वार—चन्द्रो से शद्रो का सेतु कहा जाता है । ७६ । जिस तरह से बिना सेतु वाला जल क्षण भर में ही निम्न स्थल में प्रसर्पित हो जाया करता है ठीक उसी भाँति बिना सेतु वाला मन्त्र यज्वाओं का क्षरित हो जाया करता है ॥७७॥

तस्मात् सर्वत्र मन्त्रेषु चतुर्वर्णा द्विजातयः ।
पार्श्वयोः सेतुमादाय जपकर्मसमारभेत् ॥७८
शूद्राणामादिसेतुर्वा द्वि सेतुर्वा यथेच्छतः ।
द्वि सेतवः समाख्याता सर्वदेव द्विजातयः ॥७६
एतत् ते सर्वमाख्यात कवच त्र्यम्बकोदितम् ।
अभेद्य कवच तत् तु कवचाष्टकमुत्तमम् ॥८०
महामायामन्त्रकल्प कवचा मन्त्रसयुतम् ।
षडक्षरसमायुक्त त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥८१
एतत् त्व नृपशार्दूल नित्यभक्तियुतः पठन् ।
जपन् मन्त्र च वैष्णव्याः सर्वसिद्धिमवाप्स्यसि ॥८२

इस कारण से सर्वत्र मन्त्रों में द्विजातिगण चार वर्णों वाले होते हैं । दोनों पार्श्वों में सेतु का आदान करके जप के कर्म का समारम्भ करे । ७८ । शूद्रों का आदि सेतु अथवा द्विसेतु यथेच्छा से दो सेतु समाख्यात हैं द्विजाति सर्वदा ही हैं । ७६ । और्व ने कहा—यह आपको मैंने त्र्यम्बक के द्वारा कहा हुआ कवच सब कह दिया है । यह कवच अभेद्य है और कवचों के अष्टक में अत्युत्तम है । ८० । महामाया मन्त्र कल्प कवच मन्त्र से सयुत है । यह षडक्षर समायुक्त है और तीनों लोकों में महान् दुर्लभ है । ८१ । हे नृपशार्दूल ! इसको आप नित्य ही भक्ति से युक्त होकर पढ़ते हुए और वैष्णवी के मन्त्र का जप करते हुए सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति कर लेता है ॥८२॥

—०—

॥ मंत्र-साधना के अङ्ग ॥

श्रुत्वेम सगरो राजा सवाद भैरवेण वै ।
वेतालेनापि भर्गस्य पुनरौर्व्वमपृच्छत ॥१
मन्त्र कलेवरगत साङ्ग प्रोक्त त्वया द्विज ।
अङ्गमन्त्राणि मे देव्या कथ्यन्ता भो द्विजोत्तम ॥२
तथा मन्त्राणि सर्वाणि पूजास्थानानि सर्वश ।
तथैवोत्तरमन्त्राणि कवचानि पृथक् पृथक् ॥३
कामाख्यायाश्च माहात्म्य सरहस्य समन्त्रकम् ।
यथा शशस भगवान् महादेव उमापति ॥४
वेतालभैरवाभ्या तत् समाचक्ष्व सविस्तरात् ।
शृण्वतो न हि मे तृप्तिर्जायते महदद्भुतम् ॥५
भवता कथ्यमान हि पर कौतूहल मम ।
शृणु त्व राजशार्दूल यत्पुत्राभ्यामुमापति ॥६
उवाच महदाख्यान तन्मे निगदतोऽधुना ।
एतद्रहस्य परम पवित्र पापनाशनम् ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—भैरव के द्वारा इस सम्वाद को राजा सगर ने श्रवण करके और भर्ग का वेताल के द्वारा भी सुनकर पुन और्व से पूछा था। १। सगर ने कहा—हे द्विज ! आपने कलेवर गत मन्त्र अङ्गो के सहित बतला दिया हैं। हे द्विजोत्तम ! अब देवी के अङ्ग मन्त्र मुझसे कहिए। २। तथा समस्त मन्त्र और सभी ओर पूजा के स्थान है। ठीक उसी भाँति उत्तर मन्त्र और पृथक् २ कवचो को और कामाख्या के माहात्म्य को जो रहस्य और मन्त्रो के सहित होवे। जैसा भगवान् उमापति महादेव ने कहा था और वैताल—भैरव दोनो को बतलाया था उसे विस्तार के सहित आप कहने की कृपा करे। यह महान् अद्भुत है इसका श्रवण करते हुए मुझे तृप्ति नहीं होती है।

जबकि आपको इसे कहते हुए मैं देखता हूँ तो मुझे बहुत ही अधिक कौतूहल होता है। ३—५। और्व ने कहा—हे राज शार्दूल ! जो भी उमापति ने अपने पुत्रो से कहा था और जो एक महान् आख्यान है मैं अब आपको कहता हूँ मुझसे आप श्रवण कीजिए। यह परमाधिक रहस्य है—बहुत ही पवित्र है और पापो के नाश करने वाला है ॥६॥७॥

पर स्वस्त्ययन पुंसा गर्भे पुंसवन स्मृतम्।
कल्याणकारक भद्र चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥८
शठाय चलचित्ताय नास्तिकाय जितात्मने।
देवद्विजगुरूणा च मिथ्यानिबन्धकारिणे ॥९
न पापायाभिशस्ताय खञ्जकाणादिरोगिणे।
न कथ्य न च वा देय श्रद्धाविरहिताय च ॥१०
महामायामन्त्रकल्प प्रोक्त्वा ताभ्यामुमापति।
वेतालभैरवाभ्या तु पुनरेवाभ्यभाषत ॥११
अङ्गमन्त्र प्रवक्ष्यामि प्रोक्तवांस्तन्त्रमुत्तमम्।
तदेव प्रथम विद्धि सर्वपूजासु सङ्गतम् ॥१२
आचान्त शुचिता प्राप्त सुस्नातो देवपूजने।
पूजावेद्या बहिः स्थित्वा चतुर्हस्तान्तरे धिया ॥१३
गृहे या द्वारदेशस्थ प्रणम्य शिरसा गुरुम्।
प्रणमेदिष्टदेव स्व दिक्पालानपि चेतसा ॥१४

यह पुरुषो का परम स्वस्त्ययन अर्थात् कल्याण का आलय है और इसको गर्भ मे पुंसवन कहा गया है—यह कल्याण करने वाला—परम भद्र और चारो वर्गो के फल का प्रदान करने वाला है ॥८॥ इसको ऐसे व्यक्ति को कभी भी भूलकर भी नही देना चाहिए जो शठ होवे—चपल चित्त वाला हो—जो नास्तिक हो—जो अजित आत्मा वाला हो—जो देव, द्विज और गुरुवर्ग का मिथ्या निबंध कारी होवे ॥९॥ जो पापी हो तथा अभिशस्त हो—खञ्ज हो—काणा हो और रोगी हो एस पुरुष से यह

नहीं कहना चाहिए और न देना भी चाहिए। जिसमें श्रद्धा का अभाव हो उसे भी यह न देवे।१०। उमा के पति ने उन दोनों वेताल—भैरवों से कहकर अर्थात् इस महामाया के मन्त्र कल्प का उपदेश देकर वे पुनः यह बोले थे।११। भगवान् ने कहा—उत्तम तन्त्र तो मैंने कह दिया है किन्तु अब मूल मन्त्र को बतलाऊँगा वह ही सर्व प्रथम जान लो। यह मद पूजाओं मे सङ्गत है।१२। आचान्त होकर अर्थात् आचमन करके—शुचिता को प्राप्त हुआ—सुन्दर रीति से स्नान किया हुआ देव पूजन मे स्थित होवे। पूजा की वेदी से बाहिर स्थित होकर बुद्धि से चार हाथो के अन्तर में स्थित रहे। घर में अथवा द्वार देश में स्थित होता हुआ शिर से गुरु को प्रणाम करे। अपने इष्टदेव को इसी भाँति प्रणाम करना चाहिए तथा चित्त के ही द्वारा दिक्पालों को प्रणाम करना चाहिए ॥१३॥१४॥

यत् पूर्वमर्जित पाप तद्दिनेऽन्यदिनेऽपि वा ।
प्रायश्चित्तैर्नापनुन्न तच्च पाप स्मरेद्धिया ॥१५
तत्पापस्यापनोदाय मन्त्रद्वयमुदीरयेत् ।
देवि त्व प्राकृत चित्त पापाक्रान्तमभून्मम ॥१६
तन्नि सारय चित्तान्मे पाप हूँ फट् च ते नम ।
सूर्य सोमो यम कालो महाभूतानि पञ्च वै ॥१७
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिण ।
तत पुनर्हूँ फडिति पार्श्वमूर्ध्वमधस्तथा ॥१८
आत्मान क्रोधदृष्ट्याथ निरीक्ष्य सुमना भवेत् ।
एव कृते प्रथमत पापोत्सारणकर्मणि ॥१९
यत् स्याद् दृढतर पाप तद् दूरे चावतिष्ठते ।
अतीते पूजने स्थान स्व प्रयाति पुनश्च यत् ॥२०
यत् स्यादल्पतर पाप तन्नाशमुपगच्छति ।
ॐ अ फडितिमन्त्रेण पूजावेदी ततो विशेत् ॥२१

जो पाप पूर्व जन्म में अथवा पूर्व काल में अर्जित किया है उस दिन में अथवा अन्य किसी दिन में प्रायश्चितों के द्वारा अपनुन्न नहीं किया गया है उस पापका बुद्धि के द्वारा स्मरण करना चाहिए। १५। उस पाप के अपनोदन करने के लिये दो मन्त्रों का उच्चारण करे—हे देवि ! जो कि एक प्राकृत चित्त है पाप से आक्रान्त हो गया था आप मेरे चित्त से उसको उस पाप को निकाल दो—हूं फट् आपके लिये नमस्कार है। पाप–पुण्य के कुछ देव प्रत्यक्ष देखने वाले हैं उनमें सूर्य—सोम—यम—काल और पाँच महा भूत ये नौ हैं ॥१६॥१७॥ ये शुभ और अशुभ कर्म के नौ देव साक्षी होते हैं। इसके अनन्तर 'हूं फट्'—इसके पार्श्व में—उर्ध्व में और अधो भाग में आत्मा को क्रोध की दृष्टि से निरीक्षण करके सुनना हो जाना चाहिए। ऐसा करने पर प्रथम ही पापों के उत्सारण कर्म के किये जाने पर जो भी इस तर पाप होता है वह दूर में ही अवस्थित रहा करता है। पूजन के अतीत होने पर जो अपने स्थान को पुन प्रमाण करता है। जो भी अल्प तर पाप हो वह नाश को प्राप्त हो जाया करता है। ॐ अ फट्–इस मन्त्र के द्वारा पजा की वेदी में वह प्रवेश करे ॥१८—२१॥

पूजने त्यक्तपापस्य कामविष्ट क्षणाद् भवेत् ।
नाराचमुद्रया दृष्ट्वा समया स प्रलोकयेत् ॥२२
पुष्पनैवेद्यगन्धादि ह्रौ हूँ फडिति मन्त्रकं ।
यदात्मनानवज्ञात सम्यक् पुष्पादिदूषणम् ॥२३
अस्पृश्यस्पर्शन वापि यदन्यायाजित च वा ।
तथा निर्माल्यससृष्ट कीटाद्यारोहण च यत् ॥२४
तत्सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात् ।
ततो रमितिमन्त्रेण शिखा दीपस्य सस्पृशेत् ॥२५
स तस्य सुभगो दीपो भवेत् स्पर्शनमात्रन. ।
पतङ्गकीटकेशादि-दाहात् क्रव्यादसहत ॥२६

वसामज्जास्थिसम्भूतिर्यज्ञादावुपयोजनम् ।
अज्ञातरूपं तत्सर्वं दोष स्पर्शाद् विनाशयेत् ॥२७
नारसिंहेन मन्त्रेण देवतीर्थेन संस्पृशेत् ।
पानीयं घटमध्यस्थं वीक्षन्नभ्युक्ष्य याजक ॥२८

पूजन में पापों के त्याग कर देने वाले का जो अभीष्ट कामना है वह क्षण भर में ही हो जाया करता है। नाराच की मुद्रा से देखकर वह समीप में ही प्रलोकन करे ॥ २२ ॥ पुष्प—नैवेद्य—गन्ध प्रभृति "ह्रीं हूं फट्" मन्त्र से जो अपने द्वारा अवज्ञान न होवें भली भाँति से पुष्प आदि का दूषण—स्पर्श न करने के योग्य का स्पर्श—जो अन्याय से अर्जित होवे तथा निर्माल्य में संसृष्ट जो कीट आदि का आरोहण हो वह सभी नाश को प्राप्त हो जाता है नैवेद्य आदि के अवलोकन से फिर 'रम्'—इस मन्त्र से दीप की शिखा का संस्पर्श करना चाहिए ॥ २३—२५ ॥ उसका वह दीप स्पर्शन मात्र से ही सुभग हो जाता है। पतङ्ग—कीट—केश आदि के दाह से—वन्यादि से मूत्र—वसा—मज्जा—अस्थि सम्भूति जो यज्ञादि में उपयोजन है ऐसे अज्ञात रूप वाला सभी दोष स्पर्श से ही विनाश को प्राप्त हो जाया करता है ॥ २६—२७ ॥ नारसिंह मन्त्र के द्वारा देवतीर्थ से संस्पर्श करे। याजक को चाहिए कि घट के मध्य में स्थित जल को देखते हुए अभ्युक्षण करे ॥२८॥

वामेन पाणिना धृत्वा वामपार्श्वे स्थित तदा ।
पात्रमाधारमन्त्रेण सम्पूर्वन् संस्पृशेज्जलम् ॥२६
यज्ञदानादपेयादि संस्पृष्टिरिह मङ्गना ।
यदन्यद् दूषण पात्रे तोये वा ज्ञानतो भवेत् ॥३०
जलाशय भवस्पर्शाज्जल स्नानाच्च मङ्गनम् ।
दूषणानि विनश्यन्ति तानि वै देवपूजने ॥३१

प्रजापतिसुतो हान्तप्रान्त. स्वरसमन्वित ।
चन्द्रार्धविन्दुसहितो मन्त्रोऽय नारसिहक ॥३२
स्वसज्ञाद्यक्षर बिन्दुचन्द्रार्धपरियोजितम् ।
आधारमन्त्र जानीयात् साधक कार्यसिद्धये ॥३३
तत आधारमन्त्रेण पाणिभ्यामासन स्वकम् ।
आदाय विनिधायाशु पुन सस्पृश्य पाणिना ॥३४
आत्ममन्त्रेणोपविशेत् तदा तस्मिन् वरासने ।
दु शिल्पिरचितत्वादि यदन्यासनभूषणम् ॥३५

बाँये हाथ से पकड कर उस समय मे वाम पार्श्व मे स्थित पात्र को आधार मन्त्र के द्वारा सस्कार करता हुआ जल का सस्पर्श करना चाहिए ॥२६॥ यहाँ पर यज्ञ स्नान से अपेय आदि की सर्सृष्टि सङ्कुता है। जो भी अन्य दूषण पात्र म अथवा जल म ज्ञान पूवक होवे। सब के स्पर्श से जलाशय और स्नान से सङ्कुत जल से दूषण सब देवपूजन म विनष्ट हो जाया करते हैं ॥३०—३१॥ हान्त प्रान्त प्रजापति सुत जो स्वर से समन्वित होवे—चन्द्रार्ध विन्दु से सहित यह नारसिहक मन्त्र है ॥ ३२ ॥ अपनी सज्ञादि का अक्षर जो विन्दु और चन्द्रार्ध से परियोजित होवे। इसको कार्य की सिद्धि के लिये आधार मन्त्र साधक जान लेवे ॥ ३३ ॥ फिर आधार मन्त्र के द्वारा अपने आसन को हाथो से लाकर और रखकर शीघ्र ही पाणि से सस्पर्श करे। उस समय मे उस श्रेष्ठ आसन पर आत्म मन्त्र के द्वारा उपवेशन करे। बुरे शिल्पी के द्वारा निर्मित आदि का जो अन्य आसन के षण होते हैं। वे बिना जाने हुए ही विलय को प्राप्त हो जाता है मन्त्र के सहित उपवेशन से ही विलीन होते हैं ॥३४॥३५॥

अज्ञात विलयं याति उपवेशात् समन्त्रकात् ।
आहूय स्वाक्षर पूर्वं सोमसाभिसमन्वितम् ॥३६
सबिन्दुक विजानीयादारममन्त्र तु साधक ।

ततस्तु मातृकान्यासं नादबिन्दुसमन्वितम् ।।३७
कुर्यात् तु मातृकामन्त्रैः स्वशरीरे विचक्षण ।
कल्पेषु च यदज्ञानं मन्त्रोच्चारणकर्मणि ।।३८
यद् दुष्टं वा तथा स्पृष्टं मात्राभ्रष्टादिदूषणम् ।
तन्न्यस्ता मातृकामन्त्रा नाशयन्ति सदैव हि ।।३९
व्यञ्जनानि च सर्वाणि तथा विष्ण्वादय स्वरा ।
सर्वे ते मातृकामन्त्राश्चन्द्रबिन्दुविभूषणा ।।४०
सर्वे युगान्तवर्णेषु न्यस्तेषु न्यूनपूरणम् ।
मन्त्रे कल्पे च कुर्वन्ति विन्यस्ता मातृका स्वयम् ।।४१
एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
प्लुतस्त्रिमात्रो विज्ञेयो वर्णा एते व्यवस्थिताः ।।४२

पूर्व में सोम साक्षि से समन्वित स्वाक्षर के समाहृत करके साधक को बिन्दु के सहित आत्म मन्त्र जानना चाहिए। इसके अनन्तर नाद बिन्दु से समन्वित मातृका न्यास करे। विचक्षण पुरुष को अपने शरीर में मातृका के मन्त्रों के द्वारा न्यास करना चाहिए। मन्त्रों के उच्चारण कर्म में कल्पों में जो अज्ञान होवे। जो भी दुष्ट हो तथा स्पृष्ट हो और मात्राओं के भ्रष्ट आदि का दोष होवे न्यास किए हुए मातृका के मन्त्र सदा ही उनका नाश कर दिया करते हैं ।।३६—३९।। समस्त व्यञ्जन तथा विष्णु आदि स्वर वे सभी मातृका के मन्त्र हैं जो कि चन्द्र बिन्दु से विभूषण वाले हैं। ४०। सब युगान्त वर्णों के न्यस्त होने पर न्यूनता की पूर्ति है। विन्यास की हुई मातृका स्वयं ही मन्त्र में और कल्प में न्यूनता की पूर्ति कर देती है। ४१। जिसमें एक मात्रा हो वह ह्रस्व होता है मात्रा का अर्थ कम से कम समय होता है। दो मात्राओं वाला स्वर दीर्घ कहा जाता है। तीन मात्राओं वाला या दो से अधिक मात्राओं वाला स्वर प्लुत जानना चाहिए वर्ण इसी प्रकार से व्यवस्थित होते हैं ।।४२।।

सर्वेषामेव वर्णाना मात्रादेव्यस्तु मातृका ।
शिवदतीप्रभृतयस्तन्न्यासास्तत्तनुस्थिता ॥४३
पूरयन्ति च तान् न्यूनाश्चतुर्वर्गं तथाचिरात् ।
ददत्येव सदा रक्षा कुर्वन्ति सुरपूजने ॥४४
चतुर्वर्गप्रदश्चाय सर्वकामफलप्रद ।
सर्वदामातृकान्यासस्तुष्टिपुष्टिप्रदायक ॥४५
य कुर्याद् मातृकान्यास विनापि सुरपूजनात् ।
तस्माद् विभेति सतत भूतग्रामश्चतुर्विध ॥४६
तं द्रष्टुमपि देवाश्च स्पृहयन्ति महौजसम् ।
स सर्वं च वश कुर्याद् न च याति पराभवम् ॥४७

सभी वर्णों की माता देवियाँ ही मातृका हैं। वे शिवदूती प्रभृतियाँ हैं। उनर तनु म स्थित उसके न्यास हैं। ४३। ये उन न्यूनताओ की पूर्ति किया करत हैं तथा शीघ्र ही चतुवर्ग को देती हैं और सुरों के पूजन मे सदा ही रक्षा किया करती हैं। ४४। सर्वदा मातृका का न्यास करना धर्मार्थकाम मोक्ष के चार वर्गों का प्रदान करने वाला होता है और सभी कामनाओ को देने वाला है। तथा यह तुष्टि और पुष्टि का भी दन वाला होता है। ४५। जो मनुष्य सुरो के पूजन के बिना भी मातृका का न्यास किया करता है। उससे चारो प्रकार का भूतों का समूह निरन्तर भयभीत रहा करता है। ४६। उस महान् ओज वाले पुरुष के दर्शन करने के लिये देवगण भी स्पृहा किया करते हैं। उसमें ऐसी विलक्षण शक्ति समुत्पन्न हो जाती है कि वह सबको अपने वश में कर लिया करता है और स्वयं कभी भी पराभव को प्राप्त नहीं होता है। ४७।

कुसुमं विष्णुमन्त्रेण अंगुरयग्रेण माधव ।
विमर्दनार्थं गृह्णीयात् करशोधनकर्मणि ॥४८
उपान्त गामि चन्द्रेण रंजित मृन्यसंयुत ।

म्द्रान्तोपरिसंसृष्टो मन्त्रोऽयं वैष्णवो मतः ॥४९
प्रासादेन तु मन्त्रेण अंगुल्यग्रेण साधकः ।
गृहीत्वा च ततः कुर्यात् कराभ्यां पुष्पमर्दनम् ॥५०
निर्मथेत् कामबीजेन जिघ्रेद् घ्राणेन तत् पुनः ।
प्रासादेन परित्यागो दिश्यंशान्यां विशेषतः ॥५१
एवं कृते तु करयोर्विशुद्धिरतुला भवेत् ।
जलौकागुडपादादिस्पर्शाच्छुद्धिविशोधनात् ॥५२
दुर्गन्ध्युच्छिष्टसंस्पर्शाद् दूषणं करयोस्तु यत् ।
अज्ञानरूपं तत्सर्वं नाशयेत् सुविधानतः ॥५३
अंगुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पाणां ग्रहणाद् भवेत् ।
तलद्वयं मर्दनात् तु विशुद्धमभिजायते ॥५४
निर्मञ्छनात् पाणिपृष्ठं घ्राणान्तामाग्रमुत्तमम् ।
तीर्थानि च समायान्ति नासिकाया करं प्रति ॥५५
तस्माद् यत्नेन कार्याणि कर्माण्येतानि भैरव ।
आम्नायादिवासुदेवेन वर्णनापि च सहितः ॥५६

एवं उच्छिष्ट के संस्पर्श से दूषण होता है। वह सब अज्ञात रूप वाला है उसका सुन्दर विधान से विनाश कर देता है। ५३। पुष्पों के ग्रहण करने से अंगुलियों के अग्र भाग शुद्ध हो जाते हैं और करों के दोनों तले पुष्पों के मर्दन से विशुद्धि को प्राप्त होते हैं। ५४। निर्मञ्छन करने से करों के पृष्ठ भाग और घ्राण करने से नासिका का अग्र भाग उत्तम होता है। सभी तीर्थ नासिका में और कर के प्रति समापात होते हैं। । ५५। हे भैरव ! इस कारण से ये कार्य यत्नों के साथ करने चाहिए। प्रान्तादि वासुदेव के द्वारा और वर्ण से भी संहित होवे ॥५६॥

शम्भुचूडाबिन्दुयुक्तः प्रासादश्च स उच्यते ।
कामबीज तु विज्ञेयं वासुदेवेन्दुबिन्दुभिः ॥५७
व्यञ्जन चाद्यदन्त्यं च प्रान्तदन्त्या तु पूर्वकम् ।
आद्यदन्त्यद्वयं पश्चाद् व्यञ्जनं प्रणवान्तरम् ॥५८
ब्रह्मबीजमिदं प्रोक्त सर्वपापप्रणाशनम् ।
प्रणवं दीर्घमुच्चार्य प्रथमं मुखशुद्धये ॥५९
वासुदेवस्य बीजेन प्राणायाम समाचरेत् ।
यस्य देवस्य यद्रूप तथा भूषणवाहनम् ॥६०
तदेव पूजने तस्य चिन्तयेत् पूरकादिभिः ।
संप्णबीतरन्त्रमन्त्रस्य कण्ठाग्र यत्पुरःसरम् ॥६१
तद् बीज वासुदेवस्य पूर्णचन्द्रनिभ सदा ।
गङ्गावतारबीजेन प्रथमं धेनुमुद्रया ॥६२
अमृतीकरणं कुर्यादर्घपात्राहिते जले ।
मणिखण्डयुतः कण्टपः पञ्चमीवसबीजकः ॥६३

शम्भु चूड़ा और बिन्दु से जो युक्त हो वह प्रासाद कहा जाता है। वासुदेव इन्दु बिन्दुओं से काम बीज जानना चाहिये। ५७। व्यञ्जन और आद्य दन्त्य और प्रान्त दन्त्य पूर्व तथा पीछे आद्य दन्त्यद्वय व्यञ्जन होवे जिसके उत्तर में प्रणव हो—यह ब्रह्मबीज कहा गया है जो सब

पापो का विनाश करने वाला है। मुख की शुद्धि के लिये प्रथम दीर्घ प्रणव का उच्चारण करे। वासुदेव के बीज के द्वारा प्राणायाम का समाचरण करे। जिस देव का जो भी रूप हो वैसा ही भूषण और वाहन होना चाहिए।। ५८—६०।। उसके पूजन मे वह ही पूरक आदि के द्वारा चिन्तन करना चाहिए। वैष्णवी तन्त्र मन्त्र का वायु पुरःसर कण्ठाद्य वह वासुदेव का बीज है जो सदा पूर्ण चन्द्र के सदृश है। प्रथम गङ्गावतार बीज से धेनु मुद्रा के द्वारा अर्घपात्र के सहित जल में अमृतीकरण करना चाहिए। चन्द्र के खण्ड से युत कण्ठ्य पञ्चमी वल बीजक है ।।६१—६३।।

गङ्गावतारमन्त्रोऽयं सर्वपापप्रणाशकः।
मात्राद्वययुतो विष्णुर्बलवीजमुदाहृतम् ।।६४
अमृतीकरणे वृत्ते तोयं यद् दीयतेऽमृतम्।
भूत्वा प्रयाति देवस्य प्रीतये सुरपूजने ।।६५
गङ्गापि स्वयमायाति पूजापात्रजलं प्रति।
अमृतीकरणं कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ।।६६
स्वस्तिकं गोमुखं पद्मर्धस्वस्तिकमेव च।
पर्यङ्कमासन शस्तमभीप्टसुरपूजने ।।६७
पादयन्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम्।
तद् गृह्णीयाद् वराहस्य बीजेन प्रथम बुधः ।।६८
मायादिरग्निबीजस्य चतुर्थः समव्याप्तिकः।
षष्ठस्वरोपरिचरो वाराह बीजमुच्यते ।।६९
वाराहबीजसंशुद्धं मन्त्रपादद्वये कृतम्।
पश्यन्नभीप्टदेवं तु पाददोषं न पश्यति ।।७०

यह गङ्गावतार बीज है जो सब पापो के प्रणाश करने वाला है। दो मात्राओ से युत विष्णु बल बीज उदाहृत किया गया है ।।६४।। अमृतीकरण के होने पर जो जल दिया जाता है—वह अमृत होकर सुर

के पूजन में देवता की प्रीति के लिए जाया करता है। ६५। पूजा के मात्र के जल की ओर गङ्गा भी स्वयं आ जाया करती है। धर्म—काम और अर्थ की सिद्धि के लिये अमृतीकरण करना चाहिए ॥ ६६ ॥ अभीष्ट सुर पूजन में स्वस्तिक—गोमुख—पद्म—अर्धस्वस्तिक—पर्यङ्क—आसन प्रशस्त होते हैं। ६७। यह पाद यन्त्र कहा गया है जो सब मन्त्रों से सर्वोत्तम है। बुध पुरुष को उसे प्रथम वराह के बीज के साथ प्रथम ग्रहण करना चाहिए। ६८। अग्नि बीज काया यदि समन्यासिक चतुर्थ छठवें स्वरोपरिचर वन्राह बाज कहा जाता है। ६६। मन्त्र के दो पादों में किया हुआ वाराह बीज संयुद्ध है। अभीष्ट देव का दर्शन करते हुए पाद रोप को नहीं देखा करता है। ७०।

न युक्तमन्यथा पाददर्शनं सुरपूजने।
मन्त्रेण लभतेऽभीष्टास्तस्मान्मन्त्रपरो भवेत् ॥७१
पाणिकच्छपिका कुर्यात् कूर्ममन्त्रेण साधक ।।
तत्र सत्कृतपुष्पेण पूजयेदात्मनो वपु ॥७२
पूजिते तेन पुष्पेण देवत्वं स्वस्य जायते।
द्वितीय वैष्णवीतन्त्र बीज विन्द्विन्दुसयुतम् ॥७३
षष्ठस्वरोपरिचरं कूर्मबीज प्रकीर्तितम्।
दहनप्लवनस्यादौ रन्ध्रस्य दशमस्य तु ॥७४
भेदनं साधक कुर्यान्मन्त्रेण प्रणवेन तु।
बीजेन वासेदेवस्य आकाशे विनिधापयेत् ॥७५
प्राणेन सहित बीज ततपूर्वं प्रतिपादितम्।
अज्ञाता प्रयताना तु मण्डलस्थानमार्जनात् ॥७६
द्रव्याणां विप्रकार स्यात् ससर्गाणा तथैव च।
मधुकैटभयोर्मेद साधातैर्दृढता गता ॥७७

अन्य प्रकार से सुरों के पूजन में पाद दर्शन युक्त नहीं होता है। मन्त्र के द्वारा ही अभीष्टों का लाभ किया करता है। इस कारण से मन्त्र

में ही तत्पर होना चाहिए।७१। साधना करने वाले पुरुष को कर्म मन्त्र के द्वारा कर की कच्छलिका बनावे। वहाँ पर संस्कार किये हुए पुष्प से अपने शरीर का पूजन करे।७२। उस पुष्प के द्वारा पूजित होने पर उसके आत्मा को देवत्व हो जाता है। दूसरा वैष्णवी मन्त्र बीज है जो बिन्दु-चन्द्र से संयुत है।७३। षष्ठ स्वर के ऊपरि स्थित कूर्म बीज कीर्तित किया गया है। दहन और प्लवन के आदि में दमन चन्द्र का भेदन साधक को प्रणव मन्त्र के द्वारा भेदन करना चाहिए। वासुदेव के बीज के द्वारा आकाश में विनिक्षालित करे।७४।७५। प्रणव के सहित बीज है वह सब प्रतिपादित कर दिया है। प्रणवों का अमात्रा मण्डल के ध्यान के मार्जन से द्रव्यों का तथा मंडलों का विस्तार होता है। मधु कैटभ का भेद मधावों को प्राप्त हुई ॥७६॥७७॥

मेदिनी सर्वदा शुद्धा सुरपूज्यासु सर्वतः।
तथापि सर्वे त्रिदशा न स्पृशन्ति यदा क्षितिम् ॥७८
न च स्त्रीगतपुष्ट्यायां योजयन्ति च भूतले।
तस्य दोषस्य मोक्षार्थं मन्त्रराजं लिखेत् क्षितौ ॥७९
प्रोक्षणाद् वीक्षणाद् वापि शुद्धा भवति मेदिनि।
वीक्षणं धर्मबीजेन स्थण्डिलस्य समाचरेत् ॥८०
दान्तो वह्निना वायुकश्चटाबिन्दुसमन्वितः।
धर्मबीजमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ॥८१
आदानं धारणं चैव तथा तस्यानुमज्जने।
पूरणं सलिलेनैव निक्षेपो गन्धपुष्पयोः ॥८२
मण्डलस्याथ विन्यासः पुनः पुष्पस्य संश्रयः।
अमृतीकरणं पात्रविपत्तिरियं नरः ॥८३
आनिरुद्धेन चादाय कन्थकन्येन धारणम्।
पात्रे तु मण्डलन्यासं वाग्बीजाद्येन योजयेत् ॥८४

सुरों की पूजाओं में सब ओर सर्वदा मेदिनी शुद्धा होती है।

के पूजन में देवता की प्रीति के लिये जाया करता है। ६५। पूजा के माश्र के जल की ओर गङ्गा भी स्वय आ जाया करती है। धर्म—काम और अर्थ की सिद्धि के लिये अमृतीकरण करना चाहिए ॥ ६६ ॥ अभीष्ट सुर पूजन मे स्वस्तिक—गोमुख—पद्म—अर्धस्वस्तिक—पर्यङ्क—आसन प्रशस्त होते हैं। ६७। यह पाद यन्त्र कहा गया है जो सब मन्त्रो से स्वत्युत्तम है। बुध पुरुष को उसे प्रथम वराह के बीज के साथ प्रथम ग्रहण करना चाहिए। ६८। अग्नि बीज काया यादि समव्याप्तिक चतुर्थ छठवें स्वरोपरिचर वन्राह बाज कहा जाता है। ६६। मन्त्र के दो पादो में किया हुआ वाराह बीज संयुद्ध है। अभीष्ट देव का दर्शन करते हुए पाद रोप को नही देखा करता है। ७०।

न युक्यमन्यथा पाददर्शन सुरपूजने।
मन्त्रेण लभतेऽभीष्टास्तस्मान्मन्त्रपरो भवेत् ॥७१
पाणिकच्छमिका कुर्यात् कूर्ममन्त्रेण साधक ।
तत्र सस्कृतपुष्पेण पूजयेदात्मनो वपु ॥७२
पूजिते तेन पुष्पेण देवत्व स्वस्य जायते।
द्वितीय वैष्णवीतन्त्र बीज विन्द्विन्दुसयुतम् ॥७३
षष्ठस्वरोपरिचर कूर्मबीज प्रकीर्तितम्।
दहनप्लवनस्यादौ रन्ध्रस्य दशमस्य तु ॥७४
भेदन साधक कुर्यान्मन्त्रेण प्रणवेन तु।
बीजेन वासुदेवस्य आकाशे विनिधापयेत् ॥७५
प्राणेन सहित बीज ततपूर्व प्रतिपादितम्।
अज्ञाता प्रयताना तु मण्डलस्थानमार्जनात् ॥७६
द्रव्याणा विप्रवार स्यान् ससर्गाणा तथैव च।
मधुकैटभयोर्मेद सघातर्हढता गता ॥७७

अन्य प्रकार से सुरो के पूजन मे पाद दर्शन युक्त नही होता है। मन्त्र के द्वारा ही अभीष्टो का लाभ किया करता है। इस कारण से मन्त्र

मे ही तत्पर होना चाहिए । ७१ । साधना करने वाले पुरुष को कर्म मन्त्र के द्वारा कर की कच्छपिका बनावे । वहाँ पर सस्कार किये हुए पुष्प मे अपने शरीर का पूजन करे । ७२ । उस पुष्प के द्वारा पूजित होने पर अपने आपको देवत्व हो जाता है । दूसरा वैष्णवी तन्त्र बीज है जो बिन्दु-इन्दु से संयुत है । ७३ । षष्ठ स्वर के उपरिचर कूर्म बीज कीर्त्तित किया गया है । दहन और प्लवन के आदि मे दशम रघु का भेदन साधक को प्रणव मन्त्र के द्वारा भेदन करना चाहिए । वासुदेव के बीज के द्वारा आकाश मे विनिधापित करे । ७४ । ७५ । प्रणव के सहित बीज है वह सब प्रतिपादित कर दिया है । प्रयतो का अशाश्वा मण्डल के स्थान के मार्जन से द्रव्यो का तथा, ससर्गों का विप्रकार होता है । मधु कैटभ का भेद सघातो को प्राप्त हुई ॥७६॥७७॥ -

मेदिनी सर्वदा शुद्धा सुरपूजासु सर्वतः ।
अद्यापि सर्वे त्रिदशा न स्पृशन्ति पदा क्षितिम् ॥७८
न च स्वीयतनुच्छायां योजयन्ति च भूतले ।
तस्य दोषस्य मोक्षार्थं मन्त्रराजं लिखेत् क्षितौ ॥७९
प्रोक्षणाद् वीक्षणाद् वापि शुद्धा भवति मेदिन ।
वीक्षणं धर्मबीजेन स्थण्डिलस्य समाचरेत् ॥८०
दान्तो वलेन संयुक्तश्चडाबिन्दुसमन्वितः ।
धर्मबीजमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ॥८१
आदानं धारणं चैव तथा सस्थानपूजने ।
पूरणं सलिलेनैव निःक्षेपो गन्धपुष्पयोः ॥८२
मण्डलस्याय विन्यासः पुनः पूष्पस्य सश्रयः ।
अमृतीकरणं पात्रप्रतिपत्तिरियं नरः ॥८३
आनिरुद्धेन चादाय अस्त्रमन्त्रेण धारणम् ।
पात्रे तु मण्डलन्यासं वाग्बीजाग्रेण योजयेत् ॥८४

सुरो की पूजाओ मे सब ओर सर्वदा मेदिनी शुद्धा होती है ।

आज भी समस्त देवगण क्षिति को पद से स्पर्श नहीं किया करते हैं। ।७८। और अपने शरीर की छाया को भूतल में योजित नहीं किया करते हैं। उस दोष के मोक्ष के लिये क्षिति पर मन्त्र राज को लिखना चाहिए ।७९। प्रोक्षण करने से अथवा वीक्षण से भी मेदिनी— शुद्ध हो जाया करती है। स्थण्डिल का वीक्षण धर्म बीज के द्वारा समाचरण करना चाहिए ।८०। क्षान्त बल से संयुक्त और चूड़ा बिन्दु से समन्वित धर्म बीज कहा गया है जो धर्म—काम और अर्थ का साधन होता है। ।८१। आदान—धारण तथा सस्थान—पूजन सलिल से ही पूण—गन्ध और पुष्प का नि.क्षेप—मण्डल का विन्यास और पुनः पुष्प का सौधय- अमृतीकरण यह पात्र प्रति पत्ति है। मनुष्य आति रुद्ध के द्वारा आदान करके अस्त्र मन्त्र से धारण करे और पात्र में वाग्बीजाख्य से मंडल न्यास योजित करे ।।८२—८४।।

आनिरुद्धं भवेद्बीजमाद्यं विन्दुद्वयोत्तरम् ।
फडन्तेनानिरुद्धं तु अस्त्रमन्त्रं प्रकीर्तितम् ।।८५
शम्भुराद्यवलः प्रान्तः सम्पूर्णा सहिता इमे ।
परतः परतः पूर्वं समाप्त्यन्ताः सविन्दुकाः ।।८६
तृतीयं वाग्भवं बीजं सकलं निष्कलाह्वयम् ।
स्वरश्चतुर्थः सकलः संसृष्टो बिन्दुनेन्दुना ।।८७
वर्गाद्याद्द्वितीयं तु वाग्भवं बीजमुच्यते ।
कामराजाह्वयं चैतद् धर्मकामार्थसाधनम् ।।८८
मनोभवस्य बीजं तु कुण्डलीशक्तिसंयुतम् ।
वासुदेवेन सम्पृक्तमाद्यं वाग्भवमुच्यते ।।८९
इदं सारस्वतं नाम यदाद्यं वाग्भवं स्मृतम् ।
एकैकं कामबीजादि त्रिभिस्तु त्रिपुरामहः ।।९०
आद्यं तृतीयं सामेन्दुविन्दुभ्य. समलंकृतम् ।
मदनस्य तु मन्त्रोऽयं कामभोगफलप्रदः ।।९१

आद्य विन्दु दो के उत्तर अनिरुद्ध बीज होता है। वह आनिरुद्ध जब फट् अन्त में होता है तो अस्त्र मन्त्र कहा गया है।८५। शम्भु आद्यबल प्रान्त. सपूर्व ये सहिता है। पर से पर मे पूव समाप्ति के अन्त वाले बिन्दु के सहित तीसरा वाग्भव बीज है यह सकल निष्कल नाम वाला है। चतुर्थ स्वर सकल्प ससृष्टि मे बिन्दु से और इन्दु से वर्गादि का आदि द्वितीय तो वाग्भव बीज कहा जाता है। और यह कामराज नाम वाला है जो धर्म—अर्थ और काम का साधन होता है ॥८६॥ ॥८७॥८८॥ मनोभव का बीज कुण्डली शक्ति से सयुत होता है। वह वासुदेव से सम्पृक्त होता है। आद्य वाग्भव कहा जाया करता है।८६। यह सारस्वत नाम का है जो आद्य वाग्भव कहा गया है। एक एक काम बीज आदि तीनो स ता त्रिपुरात्मद है। आद्य—तृतीय सामीन्दु बिन्दुओं से समलकृत है—यह मदन का मन्त्र है जो काम के भोग का फल प्रदान करने वाला है ॥९०॥९१॥

औदेतोरूपविन्यस्त यन्त्र भास्करसन्निभम्।
तद् वक्ष्ये कुण्डलीशक्तिभेदात् तु निगद्यते ॥९२
भूतापसारण कुर्यान्मिन्त्रेणानेन याजक ।
यस्मिन् कृते स्यानभूता दूर यान्ति सुरार्चने ॥९३
स्थितेषु तत्र भूतेषु नवेद्यमण्डल तथा।
विलुम्पन्ति सदा लुब्धा न गृह्णन्ति च देवता ॥९४
तस्माद् यत्नेन कर्तव्य भूतानामपसारणम्।
अस्त्रमन्त्रेण सहित तस्य मन्त्रमिद स्मृतम् ॥९५
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालका ।
भूतानामविरोधेन पूजाकर्म करोम्यहम् ॥९६
अनेन स्थण्डिलाद् भूतानपसार्याथ साधक.।
ततो दिग्बन्धन कृत्वा दिग्भ्यस्तानपसारयेत् ॥९७
विष्णुबीज फडन्त तु मन्त्र दिग्बन्धने स्थितम्।

करेण छोटिकापूर्व वष्टन वन्धन दिश ॥६८

ओह्--ऐत के रूप स विन्यस्त यन्त्र भास्कार के सदृश है। उसको मैं बतलाऊँगा जो कि कुण्डली की शक्ति है। अभेद से कही जाती है ॥६२॥ माजक इस मन्त्र के द्वारा भूतो का अपसारण करे। इसके करने पर स्थान भूत जो हैं वे सुगर्चन के समय मे दूर चले आया करते हैं। ६३। भूतों के वहाँ पर स्थित रहने पर सदा ही वे लुब्धक नैवेद्य मण्डल को विशेष रूप से लुप्त कर दिया करते हैं और देवता उस का ग्रहण नहीं किया करते हैं। ६४। इस कारण से यत्न पूर्वक भूतों का अपसारण करना ही चाहिये। वह अपसारण अस्त्र मन्त्र के सहित ही करे। उसका मन्त्र यह कहा गया है ॥६५॥ वे भूत इस भूमि के पालक होवें। मैं भूतो के अविरोध के द्वारा ही पूजा कर्म कर रहा हूँ। ।६६। साधक इसके द्वारा स्थण्डिल से भूता को अपसारित करके इसके पश्चात दिग्बन्धन करके उनको दिशाओ भी अवसारित कर देवे। ।६७। जिसके अन्त मे फट् हो ऐसा विष्णु बीज दिग्बन्धन मे मन्त्र स्थित होता है। करके द्वारा स्फोटिका युक्त ही है ॥६८॥

आत्मन पूजनेनाथ कर्मारम्भाधिकारिता।
पूजित चासन योगपीठस्य सदृश भवेत् ॥६६
स्वभावत सदा शुद्ध पञ्चभूतात्मक वपु ।
मलपूतिसमायुक्त श्लेष्मविण्मूत्रपिच्छिलम् ॥१०
दैतोनिष्ठीवलालाभि स्रवद्भिरपरिष्कृतम्।
वीजभूतानि चैतस्य महाभूतानि पञ्च वै ॥१०१
तेषा तु सर्वभूताना बीजाना देहसञ्ज्ञिनाम्।
वायुतेज पृथिव्यम्भोवियता शुद्धये क्रमात् ॥१०२
शोषण दहन भस्मप्रोत्सादोऽमृतवर्षणम्।
आप्लावन च कर्तव्य चिन्तामात्रविशुद्धये ॥१०३
अण्डस्य चिन्तनाद् भेदात्तन्मध्ये देवचिन्तनात्।

स्वकीयस्येष्टदेवस्य चिन्ता सर्वात्मना भवेत् ॥१०४
सोऽहमित्यस्य मन्त चिन्तनाद् देवरूपता ।
आत्मनो जायते सम्यक् सस्कृति पुष्पदानत ॥१०५

अपनी आत्मा के पूजन के द्वारा ही कर्म के आरम्भ करने की अधिकारिता प्राप्त हुआ करती है। और पूजित आसन योग पीठ के सदृश हो जाया करता है। ९९। यह पाँचों भूतों के स्वरूप वाल वपु स्वाभाविक वाल वपु स्वाभाविक रूप से सदा ही अशुद्ध होता है। यह मल की पूर्ति से समायुक्त है और श्लेष्मा—विट्—मूत्र—इनसे पिच्छल रहा करता है।१००। वीर्य—थूक—लार जो स्राव करती रहा करती है यह शरीर अपरिष्कृत रहा करता है। इस शरीर के बीज भूत ये पाँच महा भूत होते हैं।१०१। उन समस्त भूतों का जो देह की सञ्ज्ञा हैं और बीज हैं। जो वायु—तेज—पृथ्वी—जल और आकाश है इनकी शुद्धि के लिये क्रम से शोषण—दहन—भस्म—प्रोत्साद—अमृत वर्षण और आप्लवन करना चाहिए जो कि चिता मोन की विशुद्धि के लिये है।१०२।१०३। अण्ड के चिन्तन स—भेद स उसके मध्य में देव का चिन्तन से—स्वकीय इष्टदेव की चिन्ता सर्वात्म रूप से होती है।१०४। मैं वही हूँ—इसका निरन्तर चिन्तन करने स दव रूपता होती है। जो कि आत्मा की हो जाती है। भली भाँति पुष्पा के दान से सस्कृति होती है ॥१०५॥

अह देवोऽस्य नैवेद्य पुष्पगन्धादिक च यत् ।
पूजोपकरणार्थं च देवत्वमिह जायते ॥१०६
देवाधारो ह्यह देवो देव देवाय योजयेत् ।
सर्वेषा देवतासृष्ट्या जायते शुद्धतापि च ॥१०७
मनोजीवात्मनो शुद्धि प्राणायामेन जायते ।
अन्तर्गत यच्च मल तच्च शुद्ध प्रजायते ॥१०८
गृहे चेन् पूजयेद् देव तदा तस्य विलोकनम् ।

कुर्यादादित्यबीजेन चतु पार्श्वेष्वपि क्रमात् ॥१०६
हान्त समाप्तिसहितो वह्निबीजेन सहित.।
उपान्त सचतुर्थस्तु स तथा सकलोऽग्रव ॥११०
आदित्यबीज कथित सर्वरोगविनाशनम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणा कारण तोपदायकम् ॥१११
अशुद्धपक्षिसयोग-पक्षिविष्ठाप्रसेचने ।
मूषिकाणा तथा स्पर्श कृमिकीटादिसगम ॥११२
एवमादीनि नश्यन्ति लोकनाद् गृहदूषणम्।
ततस्तु योगपीठस्य ध्यान प्रथमतश्चरत् ॥११३

मैं देव हूँ—ऐसा सस्कार हो जाता है। इसके अनन्तर जो नैवेद्य और पुष्प गन्ध आदिक हैं और जो भी पूजा के उपकरण के लिये हैं यहाँ पर देवत्व हो जाता है ।१०६। देव आधार है मैं देव हूँ। देव देव के लिये योजित करे। सबको देवता की सृष्टि से शुद्धता भी समुत्पन्न हो जाया करती है ।१०७। मन और जीवात्मा की शुद्धि प्राणायाम से हुआ करती है। अन्तगत जो भी मल है वह भी शुद्ध हो जाता है ।१०८। गृह मे य द देव का यजन करे तो उस समय मे उसका विलोकन करना चाहिये। और आदित्य बीज के द्वारा क्रम से चारो पार्श्वों म करे ।१०६। हान्त समाप्ति से सहित और वह्निबीज से सहित होवे। चतुर्थ के सहित उपान्त वह सकल आगे हो—यही आदित्य बीज कहा गया है जो कि समस्त रोगो का विनाश करने वाला है। धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष का कारण है और सन्तोष देने वाला है ॥११०॥१११॥ किसी अशुद्ध पक्षी का सयोग—पक्षी की विष्ठा का प्रसेचन तथा मूषकाओ का स्पश एव कृमि और कीट आदि का सङ्गम एवमादि दोष नष्ट हो जाया करते हैं लोकन करने मात्र से ही इनका विनाश होता है और गृह दूषण नष्ट हो जाया करता है। इसके अनन्तर प्रथम योग पीठ का ध्यान का समाचरण करना चाहिए ॥११२॥११३॥

ध्यानमात्र योगपीठ प्रविशत्येव मण्डलम् ।
योगपीठे स्मृते सर्व योगपीठमय समम् ॥११४
न योगपीठादधिक विद्यते परमासनम् ।
यस्य ध्यानाज्जगद् व्याप्त सचराचरमानुषम् ॥११५
तच्चिन्तनस्य माहात्म्य को वा वक्तु समुत्सहेत् ।
चिन्तामात्रेण मानुष्य पश्य शोकविनाशनम् ॥११६
धारणाद् योगपीठ तु चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
शुद्धस्फटिकसकाश चतुष्कोण चतुर्वृतिम् ॥११७
आधारशक्त्या विहित प्रग्रह सूर्यसन्निभम् ।
आग्नेयादिषु कोणेषु चतुर्षु क्रमत स्थितम् ॥११८
धर्मो ज्ञान तथैश्वर्य वैराग्य क्रमत सदा ।
पूर्वादिदिक्षु चैतानि स्थितानि क्रमतो यथा ॥११९

योग पीठ का ध्यान मात्र ही पर्याप्त है । इसी से योग पीठ मण्डल मे प्रवेश किया करता है । योगपीठ के स्मरण करने पर सब कुछ योग पीठ मे परिपूर्ण सम हो जाता है ॥११४॥ योग पीठ से परमोत्तम अन्य कोई भी आसन नही हुआ करता है । जिसके ध्यान से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है जिसमे जड चेतन मनुष्य सभी हैं । उसके चिन्तन का बड़ा भारी माहात्म्य है जिसके कहने का उत्साह कौन कर सकता है । उसके चिन्तन भर से ही देखो मनुष्यो के शोक विनाश हो जाया करता है । ११६ । योग पीठ के धारण करने से तो चतुर्वर्ग के फल का वह प्रदायक होता है । अब उसके ध्यान एव चिन्तन का प्रकार बतलाया जाता है—वह विशुद्ध स्फटिक मणि के सदृश है—चतुष्कोण है और चार वृत्तियों वाला है । आधार शक्ति से विहित प्रग्रह वाला है तथा सूर्य के समान है । आग्नेय आदि चारों कोनो मे क्रम से सदा ही धर्म- ज्ञान--ऐश्वर्य और वैराग्य स्थित रहा करते हैं । पूर्व आदि दिशाओ मे ये निम्नलिखित क्रम से स्थित रहा करते हैं ॥ ११७--११९ ॥

अधर्मश्च तथाज्ञानमनैश्वर्यं तत परम् ।
अवैराग्य पर तस्माद्धारणार्थं व्यवस्थितम् ॥१२०
तस्योपरि जलौघस्तु तस्मिन ब्रह्माण्डमास्थितम् ।
ब्रह्माण्ड भ्यन्तरे तोय कूमस्तस्योपरि स्थित ॥१२१
कूर्मोपरि तथानन्त पृथ्वी तस्योपरि स्थिता ।
अनन्तगात्रसयुक्त नाल पातालगोचरम् ॥१२२
पृथ्वीमध्ये स्थित पद्म दिक्पत्र गिरिकेशरम ।
तस्याष्टदिक्षु दिक्पाला स्वर्गो मध्य व्यवस्थित ॥१२३
कर्णिकाया ब्रह्मलोको महर्लोकादयो ह्यध ।
स्वर्गे ज्योतीषि देवाश्च चतुर्वेदास्तदन्तरे ॥१२४
सत्त्व रजस्तम इति गुणा प्रकृतिसम्भवा ।
सदा स्थिता पद्ममध्ये पर तत्त्व तथैव च ॥१२५
आत्मतत्त्व तत्र सस्थमूर्ध्वच्छदनमूर्धत ।
अधोऽधश्छदन तत्र केशराग्रे स्थित पुन ॥१२६

अधर्म—अज्ञान—अनैश्वर्य—अवैराग्य हैं इससे धारणार्थ व्यवस्थित हैं ॥ १२० ॥ उसके ऊपर जल का समुदाय है । उसम ब्रह्माण्ड आस्थित है उस ब्रह्माण्ड के भीतर जल है । उसके ऊपर कूम स्थित है ॥ १२१ ॥ उस कूम के ऊपर अनन्त है और उसके ऊपर यह पृथ्वी स्थित है । अनन्त के शरीर से सयुक्त एक नाल है । जो पाताल तक गोचर होता है ॥ १२२ ॥ पृथ्वी के मध्य मे एक पद्म स्थित है जिसके दल , दिशाएँ हैं और गिरि उसका केशर है । उसके आठ दिशाओ म दिक्पाल हैं और मध्यभाग मे स्वग अवस्थित है ॥ १२३ ॥ उस पद्म की कर्णिका मे ब्रह्मलोक है । उसके नीचे भाग मे महर्लोक आदि है । स्वर्ग मे ज्योतिर्गण हैं और देवगण हैं । उनके अन्तर म चारो वेद हैं ॥ १२४ ॥ रज—सत्व—तम ये तीन गुण है जो प्रकृति से समुद्गत हैं। ये सदा ही पद्म के मध्य मे स्थित हैं और तथा परतत्त्व है ॥ १२५ ॥

वहाँ पर आत्म तत्त्व हैं मन्त्रिश है जो ऊर्ध्वछदन है जो ऊपर की ओर है। अधःछदन है जो नीचे की ओर है वहाँ पर केशर के अग्र भाग में पुनः स्थित है ॥१२६॥

सूर्याग्निचन्द्रमरुता मण्डलानि क्रमात् ततः।
शावासन योगपीठे सुखासनमतः परे ॥१२७
आराध्यासनमस्माच्च तत्रश्च विमलासनम्।
मध्ये विचिन्तयेत् सर्वं जगद्वै सचराचरम् ॥१२८
ब्रह्मविष्णुशिवाञ्चैव भागत्रयविनिश्रितान्।
आत्मानं चिन्तयेत् तत्र पूजने समुपस्थितम् ॥१२९
मण्डलं योगपीठं तु पद्मं पद्मं तु चिन्तयेत्।
शावादीन्यासनानीह चत्वार्यपि विचिन्तयेत् ॥१३०
योगपीठ पृथग्ध्यात्वा मण्डलेन सहैकताम्।
पुनर्ध्यात्वा ततः पश्चात् पूजयेदासन ततः ॥१३१
ध्यानेन योगपीठस्य यथा यद्दीयते जलम्।
नैवेद्यपुष्पधूपादि तत् स्वयं चोपनिष्टते ॥१३२
सर्वे देवाः सगन्धर्वा सचराचरगुह्यका।
चिन्तिता. पूजिताश्च स्युर्योगपीठस्य पूजने ॥१३३

इसके अनन्तर सूर्य—अग्नि—चन्द्र और मरुत के मण्डल क्रम से हैं। योग पीठ में शव का आसन है और इसके आगे में सुखासन है फिर आराध्य आसन है और इससे पर में विमलासन है। मध्य में सम्पूर्ण इस चराचर जगत् का विशेष चिन्तन करना चाहिए ॥ १२७—१२८॥ वहाँ पर तीन भागों में विनिश्रित हुए ब्रह्मा—विष्णु और शिव का चिन्तन करना चाहिए। वहाँ पर अभ्यर्चन करने में समुपस्थित अपने आपका चिन्तन करे ॥ १२९॥ मण्डल—योगपीठ और पद्म का चिन्तन करना चाहिए। शव आदि के चारों आसनों का भी यहाँ पर चिन्तन करे ॥ १३०॥ इसके उपरान्त योग पीठ का ध्यान करके मण्डल

के साथ एकता का पुन ध्यान करे। इसके पीछे आसन का यजन करे ॥ १३१ ॥ योगपीठ के ध्यान के द्वारा जो जिस प्रकार म जन दिया जाता है और नैवेद्य—पुष्प—धूप आदि स्वय ही वहाँ पर उपस्थित हो जाया करते हैं ॥ १३२ ॥ योग पीठ के पूजन म गन्धर्वों के सहित सब देवगण और चर—अचर—मुहूयक सभी चिन्तित और पूजित हो जाया करते है ॥ १३३ ॥

अभीष्टदेवतापूजा विना यस्य विचिन्तनात् ।
लभते व चतुर्वर्गं तुष्टि पुष्टिश्च जायते ॥१३४
आवाहनानन्तरत पाणिभ्यामवतारयेत् ।
प्रागुत्तानौ करौ कृत्वा ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य सान्तरौ ॥१३५
निरन्तरावध कुर्यान्नामयन् पूजकस्तथा ।
हेरम्बस्य तु बीजेन तस्मादवतरेति च ॥१३६
आम्रेडितेन चाभीष्टदेवाना लम्बनाय वै ।
नासिकावायु नि सारादियस्था देवता भवेत् ॥१३७
एव कृते मण्डले तु स्थितिस्तस्य प्रजायते ।
स्वान्त शुद्धाशुविन्दुभ्या हैरम्ब बीजमुच्यते ॥१३८
नाशन विघ्नबीजाना धर्मकामार्थसाधनम् ।
गन्धपुष्पे तथा धूपदीपौ नैवेद्यमेव च ॥१३९
यदन्यद दीयते वस्त्रमलकारादिक च यत् ।
तेषा दैवतमुच्चार्य कृत्वा प्रोक्षणपूजने ॥१४०

अपने अभीष्ट देवता के पूजन के बिना जिसके विचिन्तन से चतुर्वर्ग का लाभ उपासक किया करता है और उसकी तुष्टि एव पुष्टि हो जाती है। १३४। आवाहन के अनन्तर ही दोनो करो के द्वारा अवतारित करना चाहिए। पहिले दोनो करो को ऊँच करे और ऊपर की ओर उत्क्षिप्त करके अन्तर सहित निरन्तर नीचे की ओर नामित करते हुए पूजक को करना चाहिए। हे रम्ब के बीज से उससे अवतरित

होओ—यह कहे ॥ १३५—१३६ ॥ अभीष्ट देवों के सम्वन के लिये आग्नेदिन के द्वारा करे अर्थात् दो बार उच्चारण पूर्वक करे । नासिका की वायु के निःसारण से देवता आकाश में स्थित हो जाते हैं ॥ १३७ ॥ इस प्रकार से करने पर उसकी स्थिति मण्डल में हो जाया करती है । स्वान्त शुद्ध अंशु और बिन्दु से हे रम्य बीज कहा जाया करता है।१३८। यह विघ्नों के बीजों का विनाश करने वाला है और धर्म—अर्थ—काम का साधने वाला है । गन्ध—पुष्प—धूप—दीप—नैवेद्य और जो भी अन्य वस्तु दी जाती है तथ. वस्त्र और अलङ्कार आदि उनका देवन उच्चारण करके प्रोक्षण तथा पूजन करे ॥ १३९—१४० ॥

उत्सृज्य मूलमन्त्रेण प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ।
वरुणम्य तु बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ॥१४१
इष्टेन मूलमन्त्रेण तयोरुत्सर्गनिवेदने ।
लपरञ्चन्द्रबिन्दुभ्या वीज वारुणमुच्यते ॥१४२
विलोचन पूजन च तथा दान पृथक् पृथक् ।
जपकर्मणि मालाया. प्रतिपत्तिरिद त्रयम ॥१४३
इष्टमन्त्रेण मालाया: प्रोक्षण परिकीर्तितम् ।
बीजं गाणपत पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम् ॥१४४
अविघ्न कुरु माले त्व गृह्णीयादित्यनेन च ।
जपान्ते शिरसि न्यासो मालाया. परिकीर्तितः ॥१४५
स्रजमादाय पाणिभ्यां श्रीबीजेन तथार्चयेत् ।
अन्त्यदन्त्यान्त्यमात्राभ्यां पादिवर्गतृतीयको ॥१४६
परत: परत पूर्व श्रीबीज बिन्दुनेन्दुना ।
मालाया अवतारस्तु शिरस. क्रियते यदा ॥१४७

वारुण वीज कहा जाता है । १४२। विलोकन—पूरव तथा पृथक २ दान—जप कर्म माला की प्रति पत्ति यह तीन हैं । १४३। अपने इष्ट मन्त्र के द्वारा माला का का प्रोक्षण कीर्तित किया गया है। पहिले—गाठा पत वीज का उच्चारण करके इसके अनन्तर ही करना चाहिए। । १४४। हे माला ! आप अविघ्न करे—इसी मन्त्र के द्वारा माला का ग्रहण करे। जप के अन्त मे माला का न्यास शिर पर करे—ऐसा कहा गया है । १४५। हाथो से माला लेकर श्री बीज के द्वारा उसी भाँति अर्चन करना चाहिए। अन्त्य दन्त्यान्त मात्राओ आदि वर्ग और तृतीय पर से पर के पूर्व मे श्री बीज बिन्दु से इन्दु से माला का अवतार शिर से सदा किया जाता ॥१ ६—१४७।

ता समादाय पाणिभ्या कुर्यात् सारस्वतेन वै ।
श्रीवीजानामाद्यमाद्यं विन्दुचन्द्रार्धसयुतम् ॥१४८
एतच्चतुष्टय वीज सारस्वतमुदीरितम् ।
पौराणिकैर्वैदिकैश्च मूलमन्त्रेण चैव हि ॥१४९
प्रदक्षिणा प्रणाम च कुर्याद्धर्मार्थसाधकम् ।
भूमि वीक्ष्य तथाभ्युक्ष्य क्षितिर्वाजेन पूर्ववत ॥१५०
स्पृशस्ता शिरसा भूमि प्रणमेदिष्टदेवता ।
समाप्तिहीन वाराह वीज विन्द्विन्दुसयुतम् ॥१५१
क्षितिवीज विजानीयाच्चतुर्वर्गप्रदायकम् ।
दर्पण व्यजन घण्टा चामर प्रोक्षयेत् पुन ॥१५२
नैवेद्यालोकमन्त्रेण पूर्वप्रोक्तेन भैरव ।
नामाक्षराणि चाद्यानि चैतेषा विन्दुनेन्दुना ॥१५३
तस्मै नम इति प्रान्ते ग्रहणे मन्त्र उच्यते ।
निवेदनमथैतेषामिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ॥१५४

उसको हाथो से आदान करके सारस्वत से श्री बीजो का आद्य-आद्य विन्दु चन्द्रार्ध से सयुत—यह चार बीज सारस्वत कहे जाते हैं।

हे भैरव ! वाग्भव के द्वितीय काम बीज से मुद्रा का व धन करना चाहिये । और मूल मन्त्र से दर्शन करे । १५५ । मुद्रा का परित्याग तारा बीज के द्वारा समाचरण करे । च द्र बिन्दुओं से प्रान्तादि षष्ठ स्वर से संयुत जो है वह तारा बीज कहा गया है जो धर्म—अर्थ और काम का साधन होता है । क्योंकि यह मुद अर्थात् आनन्द को दिया करती है इसी लिये यह मुद्रा—इस नाम से कीर्तित की गयी है । । १५६ । १५७ । मुद्रा के दर्शित किये जाने पर पूजा का समापन हुआ करता है । वह स्वय काम—मोक्ष— धर्म—अर्थ और मोद से समन्वित होती है । १५८ । गमन करने के लिये समुत्सुक देवता साधक के लिये शीघ्र ही देता है । मुद्रा के अन्त मे इन छै महा मन्त्रो का उच्चारण करना चाहिये । १५९ । जो भक्ति मात्र के द्वारा पत्र—पुष्प— फल— जल दिया गया है और जो नैवेद्य आवेदित किया है उसे कृपा करके ग्रहण करिए । १६० । मैं आवाहन कैसे किया जाता है—यह नहीं जानता हूँ और मुझे विसर्जन करने का भी ज्ञान नहीं है । मैं यजन के भाव को भी नही समझता हूँ अतएव हे परमेश्वरि ! मेरी आप ही गति हैं ॥१६१ ।

कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्य गतिर्मम ।
अन्तश्चरेण भूताना त्व गति परमेश्वरि ॥१६२
मातर्योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतेऽस्तु सदा त्वयि ॥१६३
देवी दात्री च भोक्त्री च देवी सर्वमिद जगत् ।
देवी जयति सर्वत्र या देवी सोऽहमेव च ॥१६४
यदक्षरपरिभ्रष्ट मात्राहीन च यद् भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यता देवि कस्य न स्खलित मन ॥१६५
मन्त्रेषु पठितेष्वेषु स्वयमेव प्रसीदति ।
दातु देवी चतुर्वर्गं न चिरादेव भैरव ॥१६६

ऐशान्या मण्डल कुर्याद् द्वारपद्मविवर्जितम् ।
विसर्जनार्थं निर्माल्यधारिण्या पूजनाय वै ॥१६७
पाद्यादिभि पूजयित्वा ध्यात्वा निर्माल्यधारिणीम् ।
नि क्षिप्य तस्मिन् निर्माल्य मन्त्रेण तु विसर्जयेत् ॥१६८

कर्म से—मन से और वचन से आपसे अन्य मेरी कोई भी गति नही है। हे परमेश्वरि ! भूतो के अन्दर से सञ्चरण करने से आप ही गति हैं। १६२। हे माता ! जिन जिन सहस्रा योनियो म मैं गमन करूं हे अच्युते ! उन-उन ही योनियो मे सदा आपके प्रति मेरी भक्ति होवे जो कभी भी च्युत न होवे ॥१६३॥ देवी—दात्री—भोक्त्री यह सम्पूर्ण जगत् देवी ही है। देवी सर्वत्र जप प्राप्त करती है। जो देवी है वह मैं ही हू। १६४। जो अक्षर परिभ्रष्ट हो और जो मात्रा से हीन हो, हे देवि ! वह सभी आप क्षमा कर देवें। कौन ऐसा है जिसका मन स्खलित न होता हो। १६५। हे भैरव ! इन मन्त्रो के पढे जाने पर देवी स्वय ही प्रसन्न हो जाया करती हैं और रूह उह अविलम्व ही चतुर्वर्ग को प्रदान कर दिया करती हैं। १६६। ऐशानी दिशा मे मण्डल की रचना करे जो द्वार और पद्म से वर्जित होवे। विसर्जन के लिये निर्माल्य धारिणी के पूजन के लिये मण्डल रचना करे। १६७। निर्माल्य धारिणी का ध्यान पाद्य आदि से पूजन करे। उसम निर्माल्य का निक्षेपण करके मन्त्र से विसर्जन करे ॥१६८॥

गच्छ गच्छ पर स्थान स्वस्थान परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदु परम पदम् ॥१६९
विसृज्य मन्त्रेणानेन तत पूरकवायुना ।
ध्यायस्तु मन्त्रेणानेन नत्वा ता स्थापयेद्धृदि ॥१७०
तिष्ठ देवि परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि ।
यत्र ब्रह्मादय सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥१७१
तत एकजटाबीजैरिष्टदेवी धिया स्मरन् ।

निर्माल्य मूर्ध्नि गृह्णीयाद् धर्मकामार्थसाधनम् ।।१७२
मण्डलप्रतिपत्तिं तु तत कुर्याद् विभूतये ।
सर्वांगुलीनामग्रोघ पद्ममष्टदलान्वितम् ।।१७३
निर्मन्थेत् क्षितिवीजेन मण्डल चापि भैरव ।
ततस्तु मूलमन्त्रेण सववश्येन वा पुन ।।१७४
अनामिकानामग्रेण ललाटमपि सस्पृशेत् ।
समाप्तिसहित प्रान्तस्ताराबीज तत परम् ।।१७५
स्मरबीज विसर्गेण परत परत परम् ।
भवेदेकजटाबीजा धमकामार्थसाधनम् ।।१७६

हे परमेश्वरि ! अपने परम स्थान को गमन कीजिये जाइये। जहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण परम पद को नहीं जानते हैं। १६६। इस मन्त्र के द्वारा विसर्जन करके इसके अनन्तर पूरक वायु के द्वारा ध्यान करते हुए इस मन्त्र से नमस्कार करके उसको हृदय मे स्थापित करे। ।१७०। हे परमेश्वरि ! हे देवि ! परमोत्तम स्थान पर अपने आसन पर विराजमान होइए। जहाँ पर मेरे हृदय मे ब्रह्मादिक सब देवता स्थित होते हैं। १७१। इसके उपरान्त एक जटा बीजी से इष्ट देवी का बुद्धि से स्मरण करता हुआ निर्माल्य को मूर्धा मे ग्रहण करे जो कि धर्म—काम और अर्थ का साधन होता है। १७२। इसके अनन्तर विभूति के लिय मण्डल की प्रतिपत्ति करे। समस्त अगुलियो के समूहो से आठ दलों से युक्त पद्म को क्षिति बीज के द्वारा निर्मन्थन करे। हे भैरव ! मण्डल का भी निर्मन्थन करना चाहिए। इसके पश्चात् मूल मन्त्र के द्वारा अथवा पुन सर्ववश्य के द्वारा अनामिकाओ के अग्रभाग से ललाट का सस्पर्श करे। समाप्ति के सहित प्रान्त उसके आगे ताराबीज-- स्मर बीज विसर्ग के सहित पर सभी पद परम एक जटा बीज होता है जो धर्म काम और अर्थ का साधन है ।।१७३—१७६।।

ततो भास्करवीजेन सहितेनात्मना पुन ।

मन्त्रेण भास्करायार्घमच्छिद्रार्थं निवेदयेत् ॥१७७
नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।
जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥१७८
ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम् ।
एकाग्रमनसा वाग्भिरच्छिद्रवमधारयेत् ॥१७९
यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम ।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः ॥१८०
ततस्तु पुष्प नैवेद्य-तोयपात्रादिकं च यत् ।
देवीबीजेन तत्सर्वं पुनरेव विलोकयेत् ॥१८१
हस्तेन चक्षुषा वापि यत्र यत्र कृतः पुरा ।
मन्त्रन्यासस्तत्र तत्र विसृष्टिरमुना भवेत् ॥१८२

इसके अनन्तर पुनः आरमा के सहित भास्कर बीज से मन्त्र के द्वारा भास्कर के लिये अच्छिद्रार्थ अर्घ का निवेदन करना चाहिए।१७७। हे ब्रह्मन् ! भास्वान्—विवस्वान्—विष्णु तेज वाले—जगत् के सविता—शुचि—सविता—कर्मदायी के लिये नमस्कार है। १७८। इसके बाद दोनों हाथों को जोड़े हुए होकर कथित मन्त्र को पढ़कर एकाग्र मन से वाणियों द्वारा अच्छिद्र का अवधारण करे। १७९। यज्ञ का छिद्र—तपश्चर्या का छिद्र—जो छिद्र मेरे पूजन में हो वह सब अच्छिद्र हो जावे भास्कर भगवान् के प्रसाद से ही अच्छिद्रता हो जावे। १८०। इसके पश्चात् पुष्प—नैवेद्य—जल पात्र आदि जो भी हैं उन सबको देवी बीज के द्वारा पुनः विलोकन करना चाहिये ॥ १८१॥ हाथ से अथवा चक्षु से जहाँ-जहाँ पहिले मन्त्र न्यास किया है वहाँ-वहाँ ही इससे विसृष्टि होती है।१८२।

प्रान्तादिपञ्चमो वह्निबीजपष्ठस्वराहितः ।
तयोपान्त वाग्भवाद्यं दुर्गाबीजं प्रचक्षते ॥१८३
स्थण्डिले ज्वलदग्नौ च तोये सूर्यमरीचिषु ।

प्रतिमासु च शुद्धासु शालग्रामशिलासु च ॥१८४
शिवलिंगे शिलायां तु पूजा कार्या विभूतये ।
सर्वत्र मण्डलन्यासं कुर्यादेकाग्रमानसः ॥१८५
योगपीठस्य बीजेन स्थण्डिलादिषु साधकः ।
वासुदेवस्य रुद्रस्य ब्रह्मणो मिहिरस्य च ॥१८६
कुर्यात् सर्वत्र पूजासु प्रतिपत्तिमिमां बुधः ।
एव यः पूजयेद् विष्णुममोभिः प्रतिपत्तियिः ॥१८७
चतुर्वर्गप्रदस्तस्य न चिराज्जायते हरिः ।
शिवो वा मिहिरो वापि येऽन्ये लम्बोदरादयः ॥१८८
प्रसीदन्ति सुराः सर्वे पूजाया विधिनामुना ।
विशेषतो महादेवी महामाया जगन्मयी ॥१८९

प्रान्तादि पञ्चम वह्नि बीज षष्ठ स्वर से आदिल तथा उपातु वाम वाद दुर्गा बीज कहा जाता है ।१८३। स्थाण्डिल मे—जलती हुई अग्नि में—जल मे सूर्य की किरणो मे—और शुद्ध प्रतिमाओ मे तथा शाल ग्राम की शिलाओ मे—शिव लिङ्ग मे—शिला मे विभूति के लिये पूजा करनी चाहिए। एकाग्र मन वाला होकर सभी जगह मण्डल का न्यास करे ।१८५। योग पीठ के बीज से स्थण्डिल आदि मे साधक वासुदेव भगवान् की—रुद्र देव की—ब्रह्माजी की—सूर्य की पूजाओ में सर्वत्र बुध पुरुष को यह प्रतिपत्ति करनी चाहिए। इस प्रकार से इन युक्ति पत्तियों से जो विष्णु भगवान् की पूजा करे तो उसको भगवान् की पूजा करे तो उसको भगवान हरि अविलम्ब ही चार वर्गों के प्रदाता हो जाया करते हैं। शिव हो या मिहिर हो जो भी अन्य लम्बोदर प्रभृति होवें सभी सुर गण इस विधि से प्रसन्न हो जाया करते हैं विशेष रूप से जगन्मयी महामाया महादेवी प्रसन्न होती हैं ॥१८६॥ ॥१८७॥१८८॥१८९॥

प्रतिपत्तिमिमां नित्यं स्पृहयत्येव पूजने ।

एवं यः कुरुते पूजां सम्यक् स फलभाग्भवेत् ॥१६०
एतैर्विहीना या पूजा ततोऽल्पाल्पं फलं भवेत् ।
अंगहीनस्तु पुरुषो न सम्यग्याज्ञिको यथा ॥१६१
अंगहीना तथा पजा न सम्यक् फलभाग्भवेत् ।
इदं रहस्यं परममिदं स्वस्त्ययन परम् ।
मन्त्रवेदमयं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१६२
यः श्रावयेद् ब्राह्मणसन्निधाने
श्राद्धेषु यज्ञे सुरपूजनेषु ।
सम्यक् फल तस्य लभेत् स कर्मणो
पूर्विनापि जा तदनन्तमश्नुते ॥१६३

॥ देवी तन्त्र कथन ॥

देव्यास्तन्त्र विशेपेण शृणुत साम्प्रतं सुवाम् ।
येन सारांधिता देवी नचिराद्वरदा भवेत् ॥१
पूर्वतन्त्राद्विशेषेण तथा वै तन्त्रमुत्तरम् ।
विशेपेण च सामान्यात् कथित भवतो. पुरा ॥२
पुनर्देव्या विशेपेण पूजाया भक्तिकर्मणि ।
यानि तन्त्राणि शेपाणि तानि वक्ष्याम्यह पुनः ॥३
य कुर्यात् तु महामायाभक्तिमेकाग्रमानस ।
अङ्गिना वाङ्गमन्त्रेण तेन कार्यमिद शुभम् ॥४
फल पुष्प च ताम्बूलमन्नपानादिक च यत् ।
अदत्त्वा तु महादेव्यै न भोक्तव्य कदाचन ॥५
पथि वा पर्वताग्रे वा सभायामपि साधकः ।
यथा तथा निवेद्यैव स्वमर्थमुपकल्पयेत् ॥६
दृष्ट्वैव मदिराभाण्ड रक्तवर्णास्तथा स्त्रिय. ।
सिंह शव रक्तपद्म व्याघ्रवारणसङ्गमम् ॥७
गुरु राजानमथवा महामाया ततो नमेत् ।
पतिव्रताया भार्याया सदैव ऋतुसगम. ॥८

श्री भगवान् ने कहा—आप दोनो ही भली भाँति देवी के तन्त्र का श्रवण अब करिए । जिस तन्त्र के द्वारा आराधना की हुई देवी शीघ्र ही वरदा हो जाया करती है ॥१॥ पूर्व मे दिये हुए तन्त्र से विशेष रूप मे उसी भाँति यह निश्चय ही उत्तम तन्त्र हैं विशेषता से सामान्यता से यह पहिले आपके आगे कहा गया है ॥२॥ फिर देवी की पूजा मे भक्ति कर्म मे विशेष रूप से जो तन्त्र शेष हैं उनको मैं पुन. बतलाऊँगा ॥३॥ जो पुरुष महामाया की भक्ति को एकाग्र मन वाला होकर किया करता है । अङ्गो मे अथवा अङ्गी के मन्त्र के द्वारा करता है । इससे यह शुभ कार्य है ॥४॥ फल—पुष्प—ताम्बूल और जो

अन्न पान आदिक है वह सब महा देवी को समर्पित न करके कभी भी नहीं खाना चाहिए ।।५।। मार्ग में अथवा पर्वत के शिखर पर और सभा में साधक जैसे-तैसे निवेदन करके ही अपने अर्थ को जप कल्पित करना चाहिए ।।६।। मदिरा के पात्र को—रक्त वर्ण वाली स्त्रियों को—सिंह को—शव को—रक्त पद्म को—व्याघ्र और वारण (गज) के सगम को देखकर ही गुरु के लिये राजा के लिये और फिर महामाया के के लिये नमन अर्थात् नमस्कार करे। जो भार्या पतिव्रता हो उसके साथ सदा ही ऋतुकाल में सङ्गम करना चाहिए ।।७।।८।।

क्रियते चण्डिका ध्यात्वा तदा कार्यो विभूतये ।
शान्तिक पौष्टिक वापि तथेष्टापूर्तकर्मणा ।।६
यदा कुर्यात् तदा नत्वा देव्यायाः समाचरेत् ।
तौर्य्यत्रिक यदा पश्येत् केवल गीतमेव वा ।।१०
तच्च देव्यै निवेद्यव कर्तव्य स्वोपयोजनम् ।
यदेव भूषण वासो मलयाद्भवमेव वा ।।११
स्वकाये परियुञ्जीत तत्र मन्त्र धिया न्यसत् ।
व्यायामे च विधाने च सभायां वा जल स्थल ।।१२
यत्र यत्र स्वय गच्छेत् तत्र देवीं सदा स्मरेत् ।
यद् यत् कर्म तु पूजाग ततन्मन्त्रेण चाचरेत् ।।१३
मन्त्रहीन पूजनाङ्ग कर्म यत् तत्तु निष्फलम् ।
यस्मिन् कर्मणि योद्दिष्टो मन्त्रपूजासु भैरव ।।१४
नैवेद्यालोकमन्त्रेण तत् तत् कर्म समाचरेत् ।
देव्यास्तु मण्डलन्यासमिष्टमन्त्रेण चाचरेत् ।।१५

चण्डिका देवी का ध्यान करके जो क्रिया जाता है तब वह कार्य विभूति के लिये होता है। चाहे शान्तिक कर्म हो अथवा पौष्टिक कर्म्म हो तथा इष्टा पूर्त कर्म हो जब भी करे तब नमस्कार करके देवी मन्त्र का समाचरण करना चाहिए। जिस समय में तौर्यत्रिक(नृत्यगान)अथवा

केवल गीत को ही देखे और वह देवी के लिये निवेदन करके ही अपना उपयोजन करना चाहिए। जो भी कोई भूषण हो अथवा वस्त्र हो या मलय से समुत्पन्न चन्दन हो।६-११। अपने शरीर में यदि उपभोग करे तो वहाँ पर धी अर्थात् बुद्धि से मन्त्र का न्यास करना चाहिए। चाहे वह व्यायाम में हो और वह विधान में हो—सभा में हो—जल में हो या स्थल में हो—यही पर भी हो मन्त्र का बुद्धि से न्यास करे।१२। जहाँ-जहाँ पर भी स्वयं गमन करे वहाँ पर ही सदा देवी का स्मरण करना चाहिए। जो जो भी कर्म पूजन का अङ्ग स्वरूप हो उसका समाचरण मन्त्र के द्वारा ही करना चाहिए।१३। मन्त्र से हीन पूजन का जो भी कोई अङ्ग होता है वह तो सब निष्फल होता है। जिस कर्म में जो भी उद्दिष्ट हो हे भैरव ! जो मन्त्र पूजाओं में होवे। वह-वह कर्म नैवेद्य के आलोक मन्त्र के द्वारा उस-उस कर्म को समाचरित करे। देवी का मण्डल न्यास इष्ट मन्त्र के द्वारा करना चाहिए।।१४।।१५।।

पूजान्ते मण्डलं लिखित्वा तिलकं तेन कारयेत् ।
सर्ववश्येन मन्त्रेण धर्मकामार्थदायिना ।।१६
बलिदाने बलिं छित्वा खड्गस्थं रुधिरं स्वकं ।
सर्ववश्येन मन्त्रेण ललाटे तिलकं न्यसेत् ।।१७
जगद्वशे भवेत् तस्य चतुर्थ. कस्य वह्निना ।
षष्ठस्वरेण संयुक्तः कलाबिन्दुसमन्वितः ।।१८
अथोपान्तस्थकारान्तः सपरोऽपि तथा पुन ।
द्विर्मोहोति हकारास्य तुर्यो द्विस्वरसंयुत ।।१९
तृतीयवर्ग-प्रान्तेन तृतीयस्वरसंज्ञिना ।
पूरितान्तो द्विधा वर्णस्तथा वादिचतुर्थक. ।।२०
स्वरो द्वितीयश्च तथा क्षोभशब्द. पुर सर. ।
पुरेति सहित. सोऽपि मित्र शत्रुश्च राक्षस. ।।२१

पूजा के अन्त में मण्डल को लीपकर उसके द्वारा तिलक कराना चाहिये। और उसको सर्व वश्य मन्त्र के द्वारा ललाट में तिलक का न्यास करे जो कि धर्म—काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है। ११६-१७। इसके वश में सम्पूर्ण जगत् हो जाता है। वह्नि के साथ वकार या चतुर्थ छठें स्वर से संयुक्त और कला विन्दु से संयुत हो। इसके अनन्तर उपान्त में स्थित वागन्त तथा पुनः सपर भी—ह्रिमोंह्री—इति अर्थात् दो बार मोही—यह—हकार का—चौथा दो स्वरों से समन्वित हो। तीसरे वर्ण प्रान्त से—तृतीय स्वर सज्ञा वाला से पूरित अन्त वाला दो प्रकार का वर्ण हो तथा यदि चतुर्थक होवे। और द्वितीय स्वर तथा सोम शब्द आगे हो वह भी पुर—इससे सहित होवे। वह भी मित्र—मन्त्र और राक्षस होता है ॥१८—२१॥

दक्ष प्रजा तथा राजा सर्वशास्त्र इति श्रुत ।
विनापि पूजन कुर्याद् यो रहस्तिलक नर ॥२२
मन्त्रेणानेन सतत सर्वं तस्य वशे भवेत् ।
राजा वा राजपुत्रो वा स्त्रियो वा यक्षराक्षसा ॥२३
सर्वे तस्य वश यान्ति भूतग्रामाश्चतुर्विधा ।
प्रवासे पथि वा दुर्गे स्यानाप्राप्तो जनेऽपि वा ॥२४
कारागारे निबद्धो वा प्रायोवेशगतोऽपि वा ।
कुर्यात तत्र महामायापूजा वै मानसी बुध ॥२५
मनोभये समुत्पन्ने सिंहव्याघ्रसमाकुले ।
पञ्चत्रागमे वापि कुर्यान्मानसपूजनम् ॥२६
मनसा हृदयस्यान्तर्ध्यात्वा योगाख्यपीठकम् ।
तत्रैव पृथिवीमध्ये पूजा तत्र समाचरेत् ॥२७
सेश प्रसाधन स्नान दन्तधावनकर्म वै ।
अन्यच्च सर्व मनसा कृत्वा कुर्याच्च पूजनम् ॥२८

दक्ष प्रजा तथा राजा सर्व शास्त्र है—यह श्रुत है। पूजन के

विना भी जो कोई नर रहस्तितत्व करे। इस मन्त्र के द्वारा निरन्तर करे उसके सब वश मे हो जाते हैं चाहे वह राजा हो—राजा का पुत्र हो—स्त्रियाँ हो अथवा यज्ञ तथा राक्षस हों ।२२।२३। चारों प्रकार के भूत ग्राम सब उसके वश मे हो जाया करते हैं। प्रवास मे अर्थात् अपने घर से दूर देश मे हो—अथवा मार्ग मे हो—दुर्ग मे हो—स्थान के न प्राप्त होने पर कहीं भी हो—अथवा जल में हो। अथवा कारागार में घिरा हुआ हो अथवा प्रायोम वेश में हो अर्थात् निरन्तर भूखा हो वहीं पर महामाया की पूजा करके ओ वि वृद्ध पुरुष को मानसी ही करनी चाहिए।२४।२५। मन मे भय के समुत्पन्न हो जाने पर तथा सिंह और व्याघ्र आदि के द्वारा समाकुल होने पर—दूसरे के चक्र में समागम होने पर मानसिक पूजन ही इन स्थितियों में रहने पर करना चाहिए क्योंकि ऐसी दशा मे अन्य कोई भी चारा नहीं होता है।२६। मन के द्वारा हृदय के अन्दर योग नामक पीठ का ध्यान करके वहीं पर पृथिवी के मध्य में पूजन का समाचरण करना चाहिए।२७। मौन—प्रसाधन स्नान—दन्तधावन कर्म और अन्य सभी मनके द्वारा ही करके पूजा करना चाहिए ॥२८॥

पश्चात् पुष्पादिभि पूजा वहिर्देशे विधीयते ।
तथा हृद्यपि कर्तव्या सर्वाश्च प्रतिपत्तय ॥२६
अष्टम्या सतत देवीयाजक स्यात् सश व्रती ।
नवम्या तु तथा पूजा कर्तव्या निजशोणितैः ॥३०
लिंगस्था पूजयेद् देवीं पस्तकस्था तथैव च ।
स्थण्डिलस्था महामाया पादुकाप्रतिमासु च ॥३१
चित्रे च त्रिशिखे खड्ग जलस्था वापि पूजयेत् ।
पञ्चाशदगुल खड्ग त्रिशिख च त्रिशूलकम् ॥३२
शिलाया पर्वतस्याग्रे तथा पर्वतगह्वरे ।
देवी सम्पूजयेन्नित्य भक्तिश्रद्धासमन्वित ॥३३

तत्र सिद्धेश्वरीयोनौ ततोऽपि द्विगुणा स्मृता ।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदपाथसि ॥३६
तत्समा कामरूपे तु सर्वत्रैव जले स्थले ।
सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मी सर्वोत्तमा यथा ॥४०
देवीपूजा तथा शस्ता कामरूपे सुरालये ।
देवीक्षेत्र कामरूप विद्यतेऽन्यत्र तत्समम् ॥४१
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ।
तत शतगुणा प्रोक्ता नीलकूटस्य मस्तके ॥४२

विन्ध्याचल मे की हुई पूजा सौगुनी फल दायिका होती है—ऐसा कहा गया है और गङ्गा में भी की गई पूजा उसी के समान होती है। आर्यावर्त्त में—मध्यदेश मे—ब्रह्मावर्त्त मे तथा पुष्कर में करतोया नाम की नदी के जल में उससे भी चौगुनी फल देने वाली कही गयी है। ।३६।३७। हे भैरव ! उससे भी चौगुने फल देने वाली पूजा नन्दि कुण्ड होती है। उसमे भी चौगुनी जाल्पियेश्वर की सन्निधि में की हुई बतलायी गयी है। ३८। वहाँ पर सिद्धेश्वरी की योनि में की गयी पूजा उससे भी दुगुनी बतायी गयी है। उससे भी चौगुने फल को देने वाली लौहित्य नद के जल मे कही गयी है। ३६। उसी के समान काम रूप देश मे सभी जगह जल और स्थल में मानी गयी है। जैसे सबसे श्रेष्ठ भगवान् विष्णु हैं तथा लक्ष्मी सबसे उत्तम है। ४०। काम रूप में सुरालय में देवी की पूजा प्रशस्त होती है। देवी का क्षेत्र काम रूप देश है और अन्यत्र उसके समान है अन्य स्थल मे देवी विरला ही हुआ करती है और काम रूप में तो घर-घर में ही विद्यमान रहती हैं। इससे भी सौ गुने महत्त्व वाली पूजा नील कूट पर्वत के शिखर पर होती है ॥४२॥

ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता हेरुके शिवलिङ्गके ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता शैलपुत्र्यादियोनिषु ॥४३

ततः शतगुणा प्रोक्ता कामाख्यायोनिमण्डले ।
कामाख्याया महामायापूजां यः कृतवान् सकृत् ॥४४
स चेह लभते कामान् परत्र शिवरूपताम् ।
न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति कृत्यं तस्य न विद्यते ॥४५
वाञ्छितार्थमवाप्येह चिरायुरभिजायते ।
वायोरिव गतिस्तस्य भवेदन्यैरबाधिता ॥४६
संग्रामे शास्त्रवादे वा दुर्जयः स च जायते ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण कामाख्यायोनिमण्डले ।
सकृत् तु पूजनं कृत्वा फलं शतगुणं लभेत् ॥४७
मूलमूर्तिर्महामाया योगनिद्रा जगन्मयी ।
तस्यास्तु वैष्णवीतन्त्रं मन्त्रं प्राक् प्रतिपादितम् ॥४८
अन्या या मूर्तयः प्रोक्ताः शैलपुत्र्यादयोऽपराः ।
तस्या एव विभागास्तास्तत्तद्रूपविनिर्गताः ॥४९

इससे भी दुगुनी देवी शिवलिङ्ग में की गई पूजा फलदायिनी होती है। इससे भी दुगुनी फलदायिनी शैलपुत्र्यादि की योनियों में कही गई है। ४३। इससे भी सौगुनी अधिक महत्त्व वाली पूजा कामाख्या-देवी के योनि मण्डल में बताई गई है। कामाख्या में महामाया की पूजा जो एक बार कर चुका है वह इस लोक में कामनाओं को प्राप्त करता है और परलोक में भगवान् शिव की स्वरूपता का लाभ किया करता है। उस पुरुष के समान अन्य कोई भी भाग्यशाली नहीं है और फिर उसका कोई भी कृत्य शेष नहीं रह जाता है ॥ ४४—४५ ॥ वह पुरुष अपना मनोवाञ्छित अर्थ इस लोक में प्राप्त करके चिरायु होजाता है। उसकी गति वायु के ही समान हो जाती है जो अन्यों के द्वारा कभी भी बाधित नहीं हुआ करती है। ४६। वह पुरुष संग्राम में अथवा शास्त्रवाद में दुर्जय हो जाता है। वैष्णवी तन्त्र मन्त्र के द्वारा कामाख्या के योनि मण्डल में एक बार अभ्यर्चन करके उसका सौगुना फल पा

लाभ किया करता है। ४७। मूलमूर्ति महामाया योगनिद्रा जगन्मयी है उसका वैष्णवी तन्त्र मन्त्र पहिले ही प्रतिपादित कर दिया गया है। ४८। अन्य जो मूर्त्तियाँ कही गई हैं जो शैल पुत्री आदि दूसरी है वे सब उसी के विभाग हैं और उसके ही शरीर से निर्गत हुई हैं। ४६।

निःसरन्ति यथा नित्यं सूर्यविम्बान्मरीचयः।
देव्यास्तथोग्रचण्डाद्या महामायाशरीरतः ॥५०
तासामेवाङ्गरूपाणि वक्तव्यानि मया तव।
एकैव तु महामाया कार्यार्थं भिन्नतां गता ॥५१
कामाख्या तु महामाया मूलमूर्तिः प्रगीयते।
पीठभिन्नाह्वया सा तु महामाया प्रगीयते ॥५२
एक एव यथा विष्णुर्नित्यत्वाद् हि सनातनः।
जनानामर्दनात् सोऽपि जनार्दन इति श्रुतः ॥५३
तथैव सा महामाया कामार्थं सङ्गता गिरौ।
कामाख्येति सदा देवैर्गद्यते सततं नरैः ॥५४
यथा हि पुरुषः कोऽपि च्छत्री च्छत्रग्रहाद् भवेत्।
स्नापकः स्नानकाले वै कामाख्यापि तथाह्वया ॥५५
महामायाशरीरं तु कामार्थं समुपस्थितम्।
लोहितं कुङ्कुमं पीतं कामार्थमुपयोजितं ॥५६
खड्गं त्यक्त्वा कामकाले सा गृह्णाति स्रजं स्वयम्।
यदा तु त्यक्तकामा सा तदा स्यादसिधारिणी ॥५७

जिस रीति से नित्य ही सूर्य के बिम्ब से किरणें निःसरण किया करती है ठीक उसी भाँति देवी महामाया के शरीर से उग्र चण्डाद्य निकला करती है। ५०। मेरे द्वारा आपको उन्हीं के अङ्गरूप कहने चाहिये। महामाया का स्वरूप तो एक ही है और कार्यों के सम्पादन करने के लिये वही भिन्नता को प्राप्त हुई है ॥ ५१ ॥ कामाख्या तो महामाया है और मूलमूर्ति गान की जाया करती है। वह पीठों के द्वारा विभिन्न

नामों वाली होकर महामाया गायी जाया करती है ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार से एक ही भगवान् विष्णु नित्य होने से सनातन हैं। जनों के पीड़ा का दूर करने से वही प्रभु जनार्दन—इस नाम से कहे गये हैं। ५३। ठीक उसी भाँति महामाया कामार्थ गिरि में सङ्गत हुई थी उसी समय में यह सदा देवों के द्वारा और नरों के द्वारा निरन्तर कामाख्या कही जाती है। ५४। जैसे कोई पुरुष छत्र के ग्रहण करने से छत्री हो जाया करता है और स्नान काल में स्नापक कहा जाता है ठीक उसी रीति से नाम से यह कामाख्या हो गई हैं। ५५। महामाया का शरीर काम के लिये समुपस्थित हुआ था। लोहित—कुसुमों से पीन जो कामार्थ उपयोजित किये गये हैं। काम काल में काम का परित्याग करके वह स्वयं ही सद् को ग्रहण किया करती है। जिस समय में वह काम को त्याग कर देने वाली होती है उस समय में वह अभिचारिणी होती है ॥५६—५७॥

कामकाले शिवप्रेते न्यस्तलोहितपङ्कज।
रमते त्यक्तकामा तु सितप्रेतोपरि स्थिता ॥५८
सर्वैतस्मात्ततो गत्वा सिंहस्था कमदा भवेत्।
कदाचित् सा सितप्रेते कदाचिद्रक्तपङ्कजे ॥५९
कदाचित् केशरीपृष्ठे रमते कामरूपिणी।
यदा लोहितपद्मस्था तदाग्रे केशरी चरः ॥६०
यदा प्रेतगता देवी तदाग्रेन्य निरीक्षते।
महामायाम्बररूपेण तदा सा वरदा भवेत् ॥६१
पूजाकाले तदा प्रेतपदमसिंहोपरि स्थिता।
रक्तपद्मे यदा ध्यायेत् तदाग्रे चिन्तयेद्धरिम् ॥६२
यदा ध्यायेद्धरो चान्यद्वयमग्रे विचिन्तयेत्।
त्रिषु ध्यातेषु युगपत् प्रेतपद्महरौ क्रमात् ॥६३

लोहित पङ्कज का न्यस्त करने वाले शिव प्रेत काम काल में सित प्रेत के ऊपर संस्थित काम का परित्यक्त कर देने वाली रमण

करती है। ५८। उसी भाँति इधर उधर गमन करके सिंह के ऊपर विराजमाना होती हुई कामदा हो जाती है। किसी समय में तो वह सित प्रेत पर होती है और किसी समय में रक्त पङ्कज पर स्थित होती है। ५६। किसी अवसर पर वह केशरी के पीठ पर सस्थित होती हुई कामरूप दायी रमण किया करती है। जिस अवसर पर वह लोहित पद्म पर संस्थित हुआ करती है तो उस समय में उसके आगे केशरी चरण किया करता है। ६०। जिस समय में प्रेत पर स्थित देवी होती है उस समय में आगे अन्य का निरीक्षण किया करती है। जिस समय में वह महामाया के स्वरूप से वह वरदा होती है। ६१। उस समय में पूजा के काल में प्रेत—पद्म और सिंह के ऊपर स्थित होती है। जिस अवसर में रक्त पद्म में ध्यान करे तब आगे हरि का चिन्तन करना चाहिए। ६२। जब हरि में ध्यान करे तब अन्य दो का आगे चिन्तन करे। एक ही साथ तीनों के ध्यान करने पर प्रेत पद्म हरि में क्रम से करना चाहिए। ६३।

स्थितेषु कामदा देवी तेषु ध्यायेत कामदाम्।
एकैकस्मिन्नपि तथा यथावच्चिन्तयेच्छिवाम् ॥६४
एका समस्ता जगता प्रकृति सा यतस्तत।
विष्णुब्रह्मशिवैर्देवैर्ध्रियते स जगन्मयी ॥६५
सितप्रेता महादेवो ब्रह्मा लोहितपङ्कजम्।
हरिर्हरिस्तु विज्ञेयो वाहनानि महौजस ॥६६
स्वमूर्त्या वाहनत्व तु तेषा यस्मान्न युज्यते।
तस्मान्मूर्त्यन्तर कृत्वा वाहनत्व गतास्त्रय ॥६७
यस्मिन् यस्मिन् महामाया प्रीणाति सतत शिवा।
तेन तेनैव रूपेण आसनान्यभवस्त्रय ॥६८
सिंहोपरि स्थितं पद्म रक्त तस्योर्ध्वग शिव।
तस्योपरि महामाया वरदाभयदायिनी ॥६६

एवं रूपेण यो ध्यात्वा पूजयेन् सततं शिवाम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवास्तेन पजिताः स्युरसंशयम् ।।७०
एवं सदा महामाया कामाख्या चैकरूपिणी ।
ध्यानतो रूपतो भिन्ना तस्मात्ता तत्र पूजयेत् ।।७१
एव विशेषतन्त्राणि दुर्गायाः कथितानि वाम् ।
अङ्गमन्त्राणि तस्यास्तु श्रूयतां नरसत्तमौ ।।७२

उन पर कामदा देवी के स्थित होने पर कामदा का ध्यान करना चाहिए। एक—एक पर भी जैसे भी हो उसी भाँति शिवा का चिन्तन करे। ६४। वह एक समस्तों जगतो की प्रकृति जहाँ—तहा ब्रह्मा—विष्णु—शिव देवो के द्वारा वह जगन्मयी धारण की जाया करती है। । ६५। सित प्रेत महादेव हैं—ब्रह्मा लोहित पद्म है—हार हरि है ऐसे ही महान् ओज वाले के वाहन जानने चाहिए। ६६। क्योंकि अपनी मूर्त्ति से उनका वाहन होना युक्त नही होता है। इसी कारण से अन्य मूर्ति करके तीनो वाहनता को प्राप्त हुए हैं। ६७। जिस—जिसमें महामाया शिवा निरन्तर प्रसन्न होती है। उसी—उसी रूप से तीनो ही आसन हुए थे। ६८। सिंह के ऊपर रक्त पद्म स्थित है। उसके ऊर्ध्व में गत शिव हैं। उनके ऊपर वह देने वाली अभय दायिनी महामाया है। ६९। इस प्रकार के स्वरूप से जो ध्यान करके निरन्तर शिवा का पूजन करना चाहिए। उससे ब्रह्मा—विष्णु और शिव बिना ही सशय के पूजित हो जाते हैं। ७०। इस प्रकार से सदा कामरूपा—एक रूप वाली महामाया ध्यान से और रूप से भिन्न है इससे वहाँ पर उसका पूजन करना चाहिए। ७१। इस प्रकार से दुर्गा के विशेप तन्त्रों को आप दोनों से कह दिये हैं। हे नरश्रेष्ठो ! अब उसके अङ्गमन्त्रो का आप श्रवण करिये। ७२।

— ✻ —

।। चण्डिका मन्त्र वर्णन ।।

अङ्गमन्त्राण्यहं वक्ष्ये चण्डिकाया विशेषतः ।
यं समाराधिता देवी चतुर्वर्गप्रदा भवेत् ।।१
तालव्यान्तो युतः षष्ठस्वरबिन्द्विन्दुवह्निभिः ।
तथोपान्तः स्वरस्त्वेते वाह्यं वाग्भवमेव च ।।२
नेत्रबीजं चण्डिकायास्त्रयमेतत् प्रकीर्तितम् ।
वामललाटदाक्षिण्यनेत्रेषु त्रितयं क्रमात् ।।३
धर्मार्थकाममोक्षाणां सर्वदा कारणं परम् ।
मन्त्रमेतन्महागुह्यं दुर्गाबीजमिति स्मृतम् ।।४
यदा कात्यायनमुनेराश्रमेषु दिवौकसाम् ।
तेजोभिर्घृ तमायाभूद् देवी देवौघसंस्तुता ।।५
तदा नेत्रत्रयाद् देव्या मूलमूर्तिविनिःसृता ।
तेजोमयी जगद्धात्री महिषासुरघातिनी ।।६
तेजोभिः सर्वदेवानां सा धृत्वा वपुरुत्तमम् ।
अस्त्राण्यनेकान्यादाय देवैर्दत्तानि भागशः ।।७

श्री भगवान् ने कहा—विशेष रूप से चण्डिका के अङ्ग मन्त्रों को मैं बतलाऊँगा । जिनके द्वारा समाराधन की गयी देवी चारों वर्गों के फल को प्रदान करने वाली होती है ।। १ ।। तालव्यन्त षष्ठ स्वर बिन्दु-इन्दु वह्नि से युत तथा स्वरस्य (स्वर का) उपान्त ये बाह्य वाग्भव ह्रीं ये तीनों चण्डिका के नत्र बीज कीर्तित किये गये हैं । वाम ललाट दक्षिण्य नेत्रों में क्रम से ये तीनों हैं । २ — ३ । ये धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष के सर्वदा परम कारण हैं । यह मन्त्र दुर्गा का परम गोपनीय है—यह कहा गया है ।। ४ ।। जिस समय में देवों के आश्रमों में कात्यायन मुनि के तेजों से देवों के समुदाय से संयुत देवी काया को धारण करने वाली हुई थी ।। ५ ।। उसी समय में तीनों नेत्रों से देवी की मूल मूर्ति विनि:सृत हुई थी । जो तेजों से परिपूर्ण थी और महिषा-

सुर के घात रग्न वाली जगत् के धात्री अर्थात् पालन करन वाली थी । ६ । समस्त देवो के तजा से उनन अपना—उत्तम शरीर धारण किया था और भागा द्वारा दवा क दिए हुए अनक अस्त्रा का समादान किया था । ७ ।

सगण सानुवन्ध च सामात्यवलवाहनम् ।
ब्रह्माद्यै सस्तुता देवी जघान महिपासुरम् ॥८
हते तु महिपे देवी पूजिता त्रिदर्शैस्तत ।
अनेनैव तु मन्त्रेण लोके ख्याति च सा गता ॥९
तत प्रभृति सा मूर्ति सर्वे सर्वत्र पूज्यते ।
मलमूर्ति सुगुप्ताभून् स्वमूर्त्या ख्यातिमागता ॥१०
देवाना वरदानेन ब्रह्माद्यैरुपयोजनात् ।
यन्मूर्ति पूज्यते सर्वैस्ता मूर्ति शृणु भैरव ॥११
जटाजूटसमायुक्तामर्द्धेन्दुकृतशेखराम् ।
लोचनत्रयसयुक्ता पूर्णेन्दुसदृशाननाम् ॥१२
तप्तकाचनवर्णाभा सुप्रतिष्ठा सुलोचनाम् ।
नवयौवनसम्पन्ना सर्वाभरणभूपिताम् ॥१३
सुचारुदशना तीक्ष्णा पीनोन्नतपयोधराम् ।
त्रिभङ्गस्थानसस्थाना महिपासुरमर्दिनीम् ॥१४

वह गणो और अनुबन्ध के सहित तथा अमात्य वल और वाहनो से सयुत वह देवी ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा भली भाँति सस्तवन की हुई थी और फिर उस देवी न महिषासुर का वध किया था । ८ । महिष असुर के निहत हो जाने पर देवी देवो के द्वारा पूजित हुई थी । और इसी मन्त्र के द्वारा वह लोक म प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी । ९ । तभी स लेकर वह मूर्त्ति सबके द्वारा सर्वत्र पूजी जाया करती है । मूल मूर्त्ति तो सुगुप्त हो गइ थी और अपनी मूर्त्ति स ही ख्याति को प्राप्त हो गई थी । १० । दवो के वरदान स ब्रह्मा आदि क द्वारा उपयोजन स जो

मूर्त्ति सबके द्वारा पूजी जाती है हे भैरव ! उसका अब तुम श्रवण करो । ११ । उस मूर्ति का स्वरूप वर्णन किया जाता है—वह जटा जूटों से समायुक्त है और अर्द्ध चन्द्र उसके मस्तक में विराजमान है। तीन नेत्रों से उपशोभित हैं और पूर्ण चन्द्र के समान उसका मुख है। तपाये हुए सुवर्ण के समान वर्ण की आभा वाली है—वह सुन्दर प्रतिष्ठा से युक्त और परम मनोहर लोचनों वाली है। उसका स्वरूप नूतन यौवन से युक्त है तथा सभी प्रकार के आभूषणों से वह विभूषित है। । २२ । उसकी परम सुन्दर दन्त पंक्ति हैं—तीक्ष्ण और वह पीन तथा उन्नत स्तनों से समन्वित है। त्रिभङ्ग स्थानों के संस्थान वाली और वह महिष असुर के घात करने वाली है ॥१४॥

मृणालायतसस्पर्शदशबाहुसमन्विताम् ।
त्रिशूल दक्षिण देय खड्ग चक्र क्रमादधः ॥१५
तीक्ष्णबाण तथा शक्ति बाहुसंघेषु सङ्गताम् ।
खेटक पूर्णचाप च पाशं चाकुशमूर्धतः ॥१६
घण्टा च परशुं चापि वामेऽधः प्रतियोजयेत् ।
अधस्तान्महिष तद्वद्विशिरस्क प्रदर्शयेत् ॥१७
शिरश्छेदोद्भव तद्वद्दानव खड्गपाणिनम् ।
हृदि शूलेन निर्भिन्न निर्यदन्त्रविभूषितम् ॥१८
रक्तरक्तीकृताग च रक्तविस्फुरितेक्षणम् ।
वेष्टित नागपाशेन भ्रुकुटीकुटिलाननम् ॥१९
सपाशवामहस्तेन धृतकेश च दुर्गया ।
वमद्रुधिरवक्त्र च देव्या- सिंह प्रदर्शयेत् ॥२०
देव्यास्तु दक्षिण पाद सम सिंहोपरि स्थितम् ।
किंचिदूर्ध्वं तथा वाममगुष्ठ महिषोपरि ॥२१

मृणाल के सदृश आयत और भले स्पर्श वाली दश बाहुओं से युक्त है। दाहिने हाथ में त्रिशूल—देव—खड्ग—चक्र क्रम से नीचे की

ओर हैं ।१५। बाहुओं के सर्गों में तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति से सङ्गत है। ऊपर की ओर खेटक—पूर्ण चाप—पाश और अङ्कुश धारण किये हुए हैं ।१६। घण्टा—परशु को नीचे वाम भाग में प्रतियोजित करना चाहिये। नीचे की ओर बिना शिर वाले महिष असुर को प्रदर्शित करना चाहिए ।१७। जिसका शिर छिन्न हो गया है और जो दानव अपने हाथ में खड्ग लिए हुए हैं। जो हृदय में बल से विद्ध हो रहा है और जिसकी अँतड़ियाँ बाहिर निकल रही है ।१८। शमित होते हुए रक्त से जिसके अङ्ग रुधिर प्लावित हो रहे हैं और जो रक्त से विस्फुरित नेत्रों वाला हो रहा है। जो नाग पाश से वद्धित है और जो क्रोधावेश के कारण कुटिल भौंहों से समन्वित मुख वाला है ।१९। जो पाश के सहित बाँये हाथ से दुर्गा के द्वारा मस्तक के केश पकड़ा हुआ है। जिसके मुख से रुधिर प्रवाहित हो रहा है ऐसा देवी के सिंह का भी प्रदर्शन करना चाहिए ।२०। देवी का दाहिना चरण सिंह के ऊपर संस्थित है तथा कुछ ऊपर की ओर वाम चरण का अङ्गुष्ठ महिषा सुर के ऊपर स्थित है ॥२१॥

उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती चैव चामुण्डा चण्डिका तथा ॥२२
आभि. शक्तिभिरष्टाभि. सततं परिवेष्टिताम् ।
चिन्तयेत् सततं देवी धर्मकामार्थमोक्षदाम् ॥२३
एतस्याश्चागमन्त्र तु दुर्गातन्त्रमिति श्रुतम् ।
शृणुष्वैकमना भूत्वा धर्मकामार्थसाधनम् ॥२४
वह्निमायां स्वर. षष्ठो ह्यन्तः प्रान्तोऽग्निरेव च ।
दुर्गादिरिति सोद्धारं दुर्गामन्त्र मिति श्रुतम् ॥२५
रवौ मकरराशिस्थे या भवेत् सितपञ्चमी ।
तस्यामनेन मन्त्रेण सम्पूज्य विधिवच्छिवाम् ॥२६
भुवनाष्टम्या पुनर्देवी पूजयित्वा यथाविधि ।

नवम्या वलिदानानि प्रभूतानि समाचरेत् ॥२७
सन्ध्यायां च वलिं कुर्यान्निजगात्रासृगुक्षितम् ।
एवं कृते तु कल्याणंयुक्तो नित्यं प्रमोदते ॥२८

इस प्रकार से ध्यान भी करते हुए फिर देवी का ध्यान करे जो उग्र चण्डा—प्रचण्डा—चण्डोग्रा—चण्ड नायिका—चण्डा—चण्डवती—चामुण्डा—चण्डिका है। इन आठ शक्तियों से निरन्तर परिवेष्टित है। इसी रीति से धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष प्रदान करने वाली देवी का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए। २२। २३। इसका एक मन होकर श्रवण करो। यह धर्म काम और अर्थ का साधन है। २३। वह्नि भार्या छटवां स्वर हान्त प्रान्त और अग्नि दूर्मादि इति सोद्धार दुर्गा मन्त्र—यह श्रुत है। इसका अङ्ग मन्त्र दुर्गा तन्त्र—यह श्रुत किया गया है। २४। २५। सूर्य को मकर राशि पर स्थित होने पर जो शुक्ल पक्ष की पञ्चमी होती है। उसमें इस मन्त्र के द्वारा विधि विधान साथ शिवा का भली भाँति पूजन करके फिर शुक्ल पक्ष की अष्टमी में यथा विधि देवी का पूजन करके नवमी तिथि में बहुत बलिदानों का समाचरण करना चाहिए। २६। २७। और सन्ध्या के समय में अपने शरीर से उक्षित रुधिर की बलि करनी चाहिए। उस प्रकार से करने पर कल्याणों से युक्त होता हुआ पुरुष नित्य ही प्रमुदित होता है ॥२८॥

पुत्रपौत्रसमृद्धस्तु धनधान्यसमृद्धिभिः ।
दीर्घायुः सर्वसुभगो लोकेऽस्मिन् स च जायते ॥२९
सिताष्टम्यां तु चैत्रस्य पुष्पैस्तत्कालसम्भवैः ।
अशोकैरपि यः कुर्यान्मन्त्रेणानेन पूजनम् ॥३०
न तस्य जायते शोको रोगो वाप्यथ दुर्गतिः ।
ज्यैष्ठे तु शुक्लपक्षस्य अष्टम्यां समुपोषितः ॥३१
नवम्यां सतिलैरन्नैर्यावकैस्य मोदकैः ।

वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गाबीजेन भैरव ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण पवित्रारोपण चरेत ।
विशेषाच्छ्रावण प्राप्य देव्या कुर्यात् पवित्रकम् ॥३७
सर्वेषामेव देवाना पवित्रारोपण चरेत् ।
आषाढे श्रावणे वापि सवत्सरफलप्रदम् ॥३८
प्रतिपद्धनदस्योक्ता पवित्रारोपणे तिथि ।
द्वितीया तु श्रियो देव्यास्तिथीनामुत्तमा स्मृता ॥३९
तृतीया भवभाविन्याश्चतुर्थी तत्सुतस्य च ।
पचमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुहस्य च ॥४०
सप्तमीभास्करस्योक्ता दुर्गायाश्च तथाष्टमी ।
मातृणा नवमी प्रोक्ता वासुकेर्दशमी मता ॥४१
एकादशी ऋषीणा च द्वादशी चक्रपाणिन ।
त्रयोदशी त्वनङ्गस्य मम चैव चतुर्दशी ॥४२

पवित्राओं का आरोपण देवी का परमाधिक प्रीति करने वाला होता है। हे भैरव! दुर्गा तन्त्र के मन्त्र से—दुर्गा बीज के द्वारा पवित्रा रोपण करे। ३६। वैष्णवी तन्त्र के मन्त्र के द्वारा और दुर्गा बीज से हे भैरव! पवित्रारोपण का समाचरण करे। विशेष रूप से श्रावण को प्राप्त करके देवी का पवित्रारोपण करना चाहिए। ३७। समस्त देवो का पवित्रारोपण करना चाहिए। आषाढ़ में अथवा श्रावण में सम्वत्सर के फल का प्रदायक होता है। ३८। धनद की प्रतिपत् तिथि पवित्रारोपण में कही गयी है। द्वितीया तो देवी श्री की है जो अन्य सब तिथियों में उत्तम है—ऐसा कहा है। ३९। तृतीया तिथि भव भाविनी की है और चतुर्थी उनके पुत्र की है पंचमी सोमराज की है और षष्ठी गुह की बतायी गयी है। ४०। सप्तमी तिथि भगवान् भुवन भास्कर की कही गयी है। तथा अष्टमी तिथि दुर्गा देवी की है। मातृगणा की नवमी तिथि कही है तथा दशमी तिथि वासुकि की होती है।

। ४१। एकादशी ऋषियो की है और द्वादशी भगवान् चक्र पाणि की होती है। त्रयोदशी कामदेव की है और मेरी चतुर्दशी तिथि है ॥४१॥४२॥

ब्रह्मणो दिक्पतीना च पौर्णमासी तिथिर्मता ।
पवित्रारोपण यो वं देवाना न समाचरेत् ॥४३
तस्य सावत्सरीपूजाफल हरति केशव ।
तस्माद् यत्नेन कर्तव्य पवित्रारोपण परम् ॥४४
कृते वहुफलप्राप्तिस्तत्पूजा सफला भवेत् ।
पवित्र येन सूत्रेण यथा कार्यं विजानता ॥४५
तच्छृणुष्व प्रमाण तु वचनान्मम भैरव ।
प्रथम दर्भसूत्र च पद्मसूत्र ततः परम् ॥४६
तत क्षौम सुपुण्य स्यात् कार्पासकमत परम् ।
पट्टसूत्र तथान्येन पवित्राणि न कारयेत् ॥४७
विचित्राणि पवित्राणि कर्तव्यानि तु यत्नत ।
गन्धमाल्यं सुरभिभि रचितानि यथोदितम् ॥४८
कन्या च कर्तयेत् सूत्र प्रमदा च पतिव्रता ।
विधवा साधुशीला वा दु खशीला न कर्तयेत् ॥४६

ब्रह्माजी की और दिक्पालो की पौर्णमासी तिथि मानी गयी है। जो पुरुष देवों को पवित्राओ का आरोपण नही करता है। उसकी साम्वत्सरी पूजा के फल को भगवान् केशव हरण कर लिया करते हैं। इसी लिये प्रयत्न पूर्वक पवित्रारोपण अवश्य करना चाहिए । ४३ । ४४ । ऐसा करने पर बहुत फल की प्राप्ति होती है और पूजा से फल होती है। पवित्रा जिस सूत्र से और जैसे भी करना चाहिए उसका ज्ञान होना चाहिए तभी उसे पवित्रारोपण करना चाहिए । ४४ । हे भैरव ! मेरे वचन से उसका प्रमाण आप अब श्रवण करिये । सर्व प्रथम तो दर्भ सूत्र है उससे परपद्म सूत्र होता है । ४५। इसके पश्चात् क्षौम सुपुण्य होना

है और इससे पर कपास का सूत्र हुआ करता है फिर यह सूत्र है तथा अन्य के द्वारा पवित्रों का करावे । ४६ । ४७ । यत्न पूर्व का पवित्र विचित्र करने चाहिए । अर्थात् कई रङ्गों से समन्वित होने चाहिए। गन्धमाल्य सुरभियो मे जैसा कहा गया है विरचित होने चाहिये । ४८। उस सूत को करा कर ले अथवा पति व्रता प्रमदा उसको करले । जो विधवा हो और साधु शीला हो वह उसको करले किन्तु दु शील या दुष्ट शील कभी भी इसको न करे ॥४६॥

यत्सूचिभिन्न दग्ध च भस्मधूमाभिगुण्ठितम् ।
तद्वर्जनीय यत्नेन सूत्रमस्मिन पवित्रके ॥५०
उपयुक्त चाखुजग्ध मद्यरक्तादिदूषितम् ।
मलिन नीलरक्त च प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥५१
सूत्रै पवित्र कुर्वीत कनिष्ठोत्तममध्यमम् ।
कनिष्ठ यत् पवित्र तु सप्तविंशतितन्तुभि ॥५२
मर्त्यलोके यश प्रीति सुखसौभाग्यवर्धनम् ।
चतु पञ्चाशता प्रोक्त तन्तूना मध्यम परम् ॥५३
दिव्यभोगावह पुण्य स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ।
उत्तम चैव तन्तूनामष्टोत्तरशतेन वै ॥५४
तद्दत्वा तु महादेव्यै शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।
उत्तम वासुदेवाय दद्याद् यदि पवित्रकम ॥५५
तदा याति हरेर्लोक साधको नात्र सशय ।
अष्टोत्तरसहस्र तु रत्नमालेति गीयते ॥५६

इस पवित्रा की रचना मे ऐसे सूत्र का वर्णन कर देवे जो सुई से भिन्न हो—दग्ध हो—भस्म और धूम से अभिगुण्ठित हो । ५०। जिसका उपयोग किया गया हो—जो चूहो के द्वारा कुतरा हुआ हो—मद्य एव रक्त से दूषित हो—मलिन—नील रक्त हो—ऐसे सूत्र का यत्नपूर्वक परिवर्जन कर देना चाहिए ॥ ५१ ॥ सूत्रो से कनिष्ठ—

और उत्तम पवित्रा की रचना करे। कनिष्ठ जो पवित्रा है वह सत्ताईस तन्तुओं से होता है। ५२। यह पवित्रा मर्त्यलोक में यश—कीर्ति—सुख और सौभाग्य का बढ़ाने वाला होता है। चौअन तन्तुओं का पवित्रा मध्यम कहा गया है। ५३। परम दिव्य भोगों का आवहन करने वाला पुण्य—स्वर्ग और मोक्ष का प्रदान करने वाला उत्तम होता है जो एक सौ आठ तन्तुओं के द्वारा निर्मित होता है। ५४। उसको महादेवी के लिये अर्पित करके मनुष्य भगवान् शिव की सामुज्यता की प्राप्ति किया करता है। यदि भगवान् वासुदेव के लिये उत्तम पवित्रा को समर्पित करे तो वेद पुरुष सीधा हरि के लोक में गमन किया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है। एक हजार आठ तो रत्नमाला मानी जाती है ॥५५—५६॥

पवित्रं तु महादेव्या भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
रत्नमालां तु यो यच्छेन्महादेव्यै पवित्रकम् ॥५७
कल्पकोटिसहस्राणि स्वर्गे स्थित्वा शिवो भवेत्।
एतत् तु नागहाराख्य शंकरस्य पवित्रकम् ॥५८
अष्टोत्तरसहस्रेण तन्तुना सुमनोहरम्।
य प्रयच्छति भद्रा तु स यावास्तन्तुसंचम ॥५९
तावत्कल्पसहस्राणि मम लोके प्रमोदते।
अष्टोत्तरसहस्रेण वनमाला हरेः स्मृता ॥६०
तन्तूना तस्य दानेन विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्।
यत् कनिष्ठ पवित्र तु नाभिमात्र भवेत् तु तत् ॥६१
द्वादशग्रन्थिसयुक्तमात्ममानेन योजयत्।
ऊरुप्रमाण मध्य स्याद् ग्रन्थीना तत्र योजयेत् ॥६२
चतुर्विंशतिमप्यस्य मानमात्मन एव च।
पवित्रमुत्तम प्रोक्त जानुमात्र च भैरव ॥६३

महा देवी को अर्पित पवित्रा तो मुक्ति और मुक्ति के प्रदान

करने वाला होता है। जो पुरुष रत्न माला से महादेवी की सेवा में पवित्रा का समर्पण किया करता है ॥ ५७ ॥ वह सहस्र करोड़ कल्पों तक स्वर्ग में निवास करके शिव ही हो जाया करता है। यह तो नागहार नाम वाला भगवान् शङ्कर का पवित्रा होता है। ५८। एक सहस्र आठ तन्तुओं के द्वारा परम मनोहर पवित्रा बनाकर जो मेरे लिये अर्पित किया करता है वह उसमें जितने ही तन्तुओं का सञ्चय होता है उतने ही सहस्र कल्पों तक मेरे ही लोक में आनन्द का उपभोग किया करता है। एक हजार आठ से भगवान् हरि की वनमाला कही गई है ॥ ५९—६० ॥ उसके तन्तुओं के मान से भगवान् विष्णु के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है। जो कनिष्ठ पवित्रा होता है वह नाभि पर्यन्त रहने वाला होता है। ६१। बारह ग्रन्थियों से समन्वित आत्ममान के द्वारा उसे योजित करे। ऊरुओं तक आने वाला मध्यम पवित्रा होता है। वहाँ पर ग्रन्थियों को योजित कर लेना चाहिए। ६२। इसका चौबीस का मान आत्मा का है वह उत्तम कोटि का पवित्रा होता है। हे भैरव! वह जानु पर्यन्त कहा गया है। ६३।

षट्त्रिंशत्तन्तुग्रन्थीनां योजयेदात्ममानतः ।
शतमष्टोत्तरं कार्यं ग्रन्थीनां सुविधानतः ॥६४
नागहाराह्वयं तद्वदन्येषु च विधानतः ।
पवित्रं क्रियते येन सूत्रेण ग्रन्थयः पुनः ॥६५
तदन्यवर्णसूत्रेण कर्तव्या लक्षणान्विता ।
ग्रन्थिं तु सप्तभिः कुर्याद् वेष्टनैस्तु कनिष्ठके ॥६६
द्विगुणैर्मध्यमे कुर्यात्त्रिगुणैरुत्तमे तथा ।
अधिवास्य पवित्राणि पूर्वस्मिन् दिवसे सतः ॥६७
मन्त्रन्यासं पवित्रे तु कुर्यात् तत्रापरेऽहनि ।
दुर्गाबीजेन मन्त्रेण मन्त्रन्यासं द्विजश्चरेत् ॥६८
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण कुर्युरन्ये च भैरव ।

प्रतिग्रन्थि स्वयं कुर्यान्मन्त्रन्यासं विचक्षण ॥६६
अंगुष्ठाग्रेण जपनं मालायामिह भैरव ।
यावन्तो ग्रन्थयश्चात्र तावन्त्येव च सन्न्यसेत् ॥७०

आरम्भ के अर्थात् अपने मान से छत्तीस ग्रन्थियों का योजित करे। एक सौ आठ ग्रन्थियों का सुविधान से करना चाहिए। ६४। नागहार नामक जो है उसी के समान अन्यों में विधान से पवित्र किया जाता है जिस सूत्र के द्वारा पुन ग्रन्थियाँ होती है॥ ६५॥ उनमें अन्य वर्ण वाले सूत्र से लक्षण से समन्वित पवित्रा की रचना करनी चाहिए। कनिष्ठक मे शत वेष्टनो के द्वारा ग्रन्थि करे। मध्यम म दुगुनी करे और उत्तम मे तिगुनी करे। पूर्व दिन में पवित्राओं का अधि-वासन करना चाहिए। फिर वहाँ दूसरे दिन मे पवित्रा मे मन्त्र न्यास करे। ६६—६७। दुर्गा बीज मन्त्र से द्विज को मन्त्र का न्यास करना चाहिए। ६८। हे भैरव ! अन्य लोग वैष्णवी तन्त्र के मन्त्र के द्वारा करे। विचक्षण पुरुष को प्रत्येक ग्रन्थि मे स्वयं मन्त्र का न्यास करना चाहिए। ६९। हे भैरव ! यहाँ पर माला म अंगुष्ठ के अग्र भाग से जप है। यहाँ पर जितनी भी ग्रन्थियाँ हो उतनी ही भली भाँति न्यास करे। ७०।

मन्त्राणि तस्य तेन स्यादेवांगोपनियोजनम् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्त्वन्यासं तु कारयेत् ॥७१
एकत्र न्यस्य सकलं यज्ञपात्रे पवित्रकम् ।
तस्मिन् निधाय गन्धादि पुष्पाणि च सुशोभनम् ॥७२
तत्त्वन्यासं ततः कुर्यादगुल्यग्रेण भैरव ।
विष्णोस्तु मूलमन्त्रेण तत्त्वन्यासं तु कारयेत् ॥७३
इदं विष्णुरिति प्रोक्तं मन्त्रन्यासं द्विजस्य हि ।
शूद्राणां मन्त्रविन्यासे मन्त्रो वै द्वादशाक्षर ॥७४
प्रासादेन तु मन्त्रेण तत्त्वन्यासो मम स्मृत ।
अनेन मन्त्रन्यासं च दानं चानेन कारयेत् ॥७५

कुकुमोशीरकपूरै श्चन्दनादिविलेपनै ।
पवित्राणि विलिप्याथ तत्वन्यास तु योजयेत् ॥७६
सम्पूज्य मण्डले देवी विधिवत् प्रयतो नर ।
वैष्णवीतन्त्रमन्त्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ॥७७

उसके मन्त्र उससे अङ्गोपयोजन होवे। दुर्गा तन्त्र के मन्त्र के द्वारा तत्त्व न्यास कराना चाहिए ॥ ७१ ॥ एक स्थान में एक पात्र में से समस्त पवित्राओं को रखकर उसमें गन्ध आदि और पुष्पों को रखकर परम शोभन है भैरव ! अंगुली के अग्रभाग में फिर तत्त्व न्यास करना चाहिए। भगवान् विष्णु के मूल मन्त्र के द्वारा तत्त्व न्यास करावे ॥७२—७३॥ द्विज का मन्त्र न्यास ' इदंविष्णु "—यह कहा गया है। शूद्रों के मन्त्र विन्यास में मन्त्र बारह अक्षरों का होता है ॥ ७४ ॥ प्रासार मन्त्र से मेरा तत्त्व न्यास कहा गया है। इसके द्वारा मन्त्र न्यास और इसमें ही दान करावे। ७५। कुंकुम—उशीर—कर्पूर और चन्दन आदि विलेपनों से पवित्राओं का विलेपन करके तत्त्व न्यास की योजना करना चाहिए। ७६। प्रयत होते हुए मनुष्य को विधिपूर्वक मण्डल में देवी का भले प्रकार से अभ्यर्चन करके हे भैरव ! जो वैष्णवी तन्त्र से मन्त्र के द्वारा दुर्गा तन्त्र से करे। ७७।

दुर्गाबीजेन दद्यात् तु देव्या मूर्ध्नि पवित्रकम ।
यस्य देवस्य य प्रोक्तस्तस्य तेनैव मण्डलम् ॥७८
यस्य यस्य तु यो मन्त्रो यथा ध्यानादि पूजनम् ।
तत तत तेनैव मन्त्रेण पूजयित्वा प्रयत्नत ॥७९
तस्यैव बीजमन्त्राख्या मूर्ध्नि दद्यात पवित्रकम् ।
पवित्र मम यो दद्याद् देवेभ्यश्च पवित्रकम् ॥८०
सर्वेषामेव देवाना सम्पूर्णार्थश्च भैरव ।
अग्निर्ब्रह्मा भवानी च गजवक्त्रो महोरग ॥८१
स्कन्दो भानुर्मातृगणो दिक्पालाश्च नवग्रहा ।

एतान् घटेषु प्रत्येक पूजयित्वा यथाविधि ॥८२
पवित्र मूर्ध्नि चैकैक दद्यादेभ्य समाहित ।
पचगव्यचरु कृत्वा देव्यं दत्त्वाहुतित्रयम् ॥८३
तेनैव विष्णवे दत्त्वा शम्भवे च यथाविधि ।
आज्यैरष्टोत्तरशत तिलैराज्यैस्तथैव च ॥८४

दुर्गा बीज के द्वारा देवी के मस्तक में पवित्रा का समर्पण करना चाहिए। जिस देव का जो कहा गया है उसका उसी से ही मण्डल होना है। ७६। जिस-जिसका जो मन्त्र है, जैसा भी ध्यान आदि पूजन है वह-वह उसी मन्त्र से ही यत्नपूर्वक पूजन करके उसके ही बीज और मन्त्र से मस्तक में पवित्रा का अर्पण करे। जो भी मुझको पवित्रा का समर्पण करता है और देवों के लिये देता है ॥ ७६—८० ॥ हे भैरव ! सभी देवों का सम्पूर्ण अर्थ होता है। अग्नि —ब्रह्मा—भवानी—गजवक्त्र—महोरग—स्कन्द—भानु—मातृगण—दिक्पाल—नवग्रह—इन सबको घटों में यथा विधि—प्रत्येक का पूजन करके परम सावधान होते हुए इनके लिये एक एक पवित्रा मस्तक में समर्पित करे पञ्चगव्य चरु को बना करके देवी के लिये तीन आहुतियाँ देवे। उसी से भगवान् विष्णु और शम्भु के लिय यथा विधि देवें। आज्य (घृत) से तथा तिल संयुत घृत से अष्टोत्तर शत आहुतियाँ देनी चाहिये। ॥ ८१—८४ ॥

अष्टोत्तरशत दद्यान्महादेव्यै च साधक ।
एवमेव विधानेन विष्ण्वादीना च साधक ॥८५
पवित्रारोपण कुर्याद् धर्मकामार्थसिद्धये ।
नैवेद्यैर्विविधै पेयैर्वटपिष्टकमादकै ॥८६
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्जुरै पनसैस्तथा ।
आम्रदाडिमकर्कारुद्राक्षादिविविधै फलै ॥८७
भक्ष्यभोज्यादिभि सर्वैर्मत्स्यैर्मांसैस्तथौदनै ।

गन्धं पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैश्च सुमनोहरैः ॥८८
वासोभिर्भूषणैश्चैव भवानीसाधको यजेत् ।
नटनर्तकसंघैश्च वेश्याभिश्चैव भैरव ॥८९
नृत्यगीतैः समुदितो जागरं कारयेन्निशि ।
भोजयेद् ब्राह्मणांश्चापि ज्ञातीनपि द्विजातिभिः ॥९०
पवित्रारोपणे वृत्ते दक्षिणामुपदापयेत् ।
हिरण्यं गां तिलघृतं वासो वा शाकमेव वा ॥९१

साधना करने वाले को महादेवी के लिये एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिए । इसी विधान से भगवान् विष्णु आदि को भी साधक द्वारा आहुतियाँ देनी चाहिए । ८५ । धर्म—काम और अर्थ की सिद्धि के लिये पवित्रारोपण करना चाहिए । परमावश्यक कृत्य है । अनेक प्रकार के नैवेद्य—पेय—पिष्टक—मोदकों से—कूष्माण्ड—नारिकेल—खर्जूर—पनस—आम्र—दाड़िम—कर्क—रुद्राक्ष—आदि विविध भाँति के फलों के द्वारा—समस्त भक्ष्य भोज्य आदि से—मत्स्य—मांस ओदन से—गन्ध—पुष्प—धूप—दीप—सुम मोह वस्त्र—भूषण से भवानी का साधक यजन करे । हे भैरव ! नट और नर्तकों के समुदाय तथा वेश्याओं के द्वारा देवी का मनो विनोद करे ॥ ८६—८९ ॥ नृत्य और गीतों से समुदित होकर रात्रि में जागरण करे । द्विजातियों के साथ और ज्ञातियों को तथा ब्राह्मणों को भोजन करावे । पवित्रा रोपण के हो जाने पर दक्षिणा का उपदान न करे । दक्षिणा में सुवर्ण—गौ—तिल—घृत—वस्त्र अथवा शाक ही देवे ॥९०॥९१॥

इमं मन्त्रं ततः पश्चात् साधकः समुदीरयेत् ।
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ॥९२
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु परमेश्वरि ।
ततो विसर्जयेद् देवीं पूजाभिः प्रतिपत्तिभिः ॥९३
एवं कृते पवित्राणां दाने देव्या यथाविधि ।

संवत्सरस्य या पूजा सम्पूर्णा वत्सराद् भवेत् ॥६४
कल्पकोटिशत यावद् देवीगेहे वसेन्नरः ।
तत्रापि सुखसौभाग्यसमृद्धिरतुला भवेत् ॥६५

इसके अनन्तर साधक इस मन्त्र का उच्चारण करे—हे परमेश्वरि ! मणि—विद्रुम की मालाओं से और मन्धर के कुसुम आदि के द्वारा आपकी यह साम्वत्सरी पूजा सम्पन्न होवे । इसके उपरान्त पूजाओं से और प्रति पत्तियों के द्वारा देवी का विसर्जन करना चाहिए ॥६२॥ ॥६३॥ इस रीति से देवी को यथा विधि पवित्राओं के दान के हो जाने पर सम्वत्सर की जो पूजा है वह वत्सर से सम्पूर्ण हो जाया करती है । । ६४ । वह मनुष्य सैकड़ों करोड़ कल्पों तक देवी के ही घर में निवास किया करता है और वहाँ पर भी उसको सुख—सौभाग्य की अतुला समृद्धि होती है ॥६५॥



॥ महिषासुरो पाख्यान ॥

दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण कुर्याद् दुर्गामहोत्सवम् ।
महानवम्यां शरदि बलिदानं नृपादयः ॥१
आश्विनस्य तु शुक्लस्य भवेद् या अष्टमी तिथिः ।
महाष्टमीति सा प्रोक्ता देव्याः प्रीतिकरी परा ॥२
ततोऽनु नवमी या स्यात् सा महानवमी स्मृता ।
सा तिथि: सर्वलोकानां पूजनीया शिवाप्रिया ॥३
अनयोर्वत्स पूजायां विशेषं शृणु भैरव ।
सम्पूज्य मण्डले देवीं विधिवत् प्रयतो नरः ॥४
वैष्णवीतन्त्रमंत्रेण दुर्गातन्त्रेण भैरव ।
मूर्तिभेदे यथा देवी पूजां गृह्णाति भूतये ॥५

कन्यासंस्थे रवौ वत्स शुक्लामारभ्य नन्दिकाम् ।
अयाचिताशी नक्ताशी एकाशी त्वथ चापद ।।६
प्रातःस्नायी जितद्वन्द्वस्त्रिकालं शिवपूजकः ।
जपहोमसमायुक्तो भोजयेच्च कुमारिका ।।७

श्री भगवान् ने कहा—दुर्गा तन्त्र मे मन्त्र के द्वारा दुर्गा का महोत्सव करना चाहिये । शरद् काल मे महा नवमी राजा आदि को बलिदान करना चाहिए ।१। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष मे जो अष्टमी तिथि होती है । वह महाष्टमी कही गयी है जो देवी की परम प्रीति करने वाली हुआ करती है ।२। इसके पश्चात् जो नवमी तिथि होती है वह महा नवमी कही गयी है । वह तिथि समस्त लोकों की पूजनीय और शिव की प्रिय होती है ।३। हे भैरव ! हे वत्स ! इन दोनो मे जो पूजा होती है उसमे जो भी कुछ विशेषता है उसका आप श्रवण करिए । मण्डल मे विधि के साथ देवी का प्रयत होकर मनुष्य भली भांति पूजा करे ।४। हे भैरव ! वैष्णवी तन्त्र से मन्त्र के द्वारा और दुर्गा के मन्त्र से मूर्ति भेद मे जब देवी मूर्ति के लिये पूजा का ग्रहण किया करती है ।५। कन्या राशि पर सूर्य के आ जाने पर हे वत्स ! शुक्ल पक्ष की नन्दिका अर्थात् प्रति पद तिथि से आरम्भ करके रहे । अयाचित का अशन करने वाला—रात्रि मे एक बार भोजन करने वाला —अमद रहने वाला—प्रातः काल मे स्नान करने वाला—शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों का सहन करने वाला और तीनो वक्त मे शिव का पूजन करने वाला—जप और होम मे समायुक्त होता हुआ कुमारिकाओं को भोजन कराना चाहिए ।। ६ ।। ७ ।।

बोधयेद् बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीफलेषु च ।
सप्तम्यां बिल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ।।८
पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरत् ।
जागरं च स्वयं कुर्याद् बलिदानं महानिशि ।।९

प्रभूतवलिदान तु नवम्या विधिवच्चरेत् ।
ध्यायेद् दशभुजा देवी दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ॥१०
विसर्जन दशम्या तु कुर्याद् वै साधकोत्तम ।
कृत्वा विसजन तस्या तिथौ नक्त समाचरेत् ॥११
यदा तु षोडशभुजा महामाया प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण विशेष तत्र वै शृणु ॥१२
कन्यायां कृष्णपक्षस्य एकादश्यामुपोषित ।
द्वादश्यामेकभक्त तु नक्त कुर्यात् परेऽहनि ॥१३
चतुर्दश्या महामाया वोधयित्वा विधानत ।
गीतवादित्रनिर्घोषैर्नानानैवेद्यवेदनं　　॥१४

विल्व वृक्ष की शाखाओ मे वोध न करे और यही तिथि मे देवी फलो मे करे । सप्तमी तिथि मे उस विल्व की शाखा का आहरण करके प्रति पूजन करना चाहिए । ८ । फिर अष्टमी मे विशेष रूप से पूजा का समाचरण करना चाहिए । स्वयं जागरण करे तथा महा निशा मे बलिदान करे । ६ । अधिक वलिदान तो विधि के सहित नवमी मे करना चाहिए । दश भुजाओ वाली देवी का ध्यान करे और दुर्गा तन्त्र से पूजा करनी चाहिए । १० । उत्तम साधक को दशमी तिथि मे विसर्जन करना चाहिए । उस तिथि मे रात्री मे विसजन करके समाचरण करे ।११। जिस समय मे सोलह भुजाओ वाली महामाया का पूजन करे । दुर्गा तन्त्र के मन्त्र से करे । उसकी विशेषता के विषय मे अब श्रवण करो । कन्या की सक्रान्ति मे कृष्ण पक्ष की एकादशी मे उपवास किए हुए द्वादशी मे एकवार दूसरे दिन मे रात्री मे करे ।१३। चतुर्दशी मे विधान से महामाया का वोधन करे जो गीत वादित्र और निर्घोष के द्वारा और अनेक नैवेद्यो के वेदनो के द्वारा वोधन करना चाहिये ॥१४॥

अयाचित त्रुध. कुर्यादुपवास परेऽहनि ।
एवमेव व्रत कुर्याद् यावद्धि नवमी भवेत् ॥१५

ज्येष्ठाया च समभ्यर्च्य मूलेन प्रतिपूजयेत् ।
उत्तरेणार्चनं कृत्वा श्रवणान्ते विसर्जयेत् ॥१६
यदा त्वष्टादशभुजा महामाया प्रपूजयेत् ।
दुर्गातन्त्रेण मन्त्रेण तत्रापि शृणु भैरव ॥१७
कन्याया कृष्णपक्षस्य पूजयित्वार्द्रभे दिवा ।
नवम्या बोधयेद् देवी गीतवादित्रनिस्वनं ॥१८
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोचनम् ।
प्रातरेव तु पञ्चम्या स्नापयेत् तु शुभैर्जलै. ॥१६
सप्तम्या पत्रिकापूजा अष्टम्या चाप्युपोषणम् ।
पूजाजागरणं चैव नवम्या विधिवद्वलि ॥२०
सम्प्रेषण दशम्या तु क्रीडाकौतुकमगलै ।
नीराजन दशम्या तु बलवृद्धिकर महत् ॥२१

बुद्ध पुरुष को दूसरे दिन म प्रायश्चित उपवास करे । सी प्रकार ही जब तक नवमी हो व्रत करे ॥ १५ ॥ ज्येष्ठा मे ली भाँति अभ्यर्चन करना चाहिए और मूल म प्रतिपूजन करे । त्तरा से अर्चन करके श्रवण के अन्त मे विसर्जन करना चाहिए । १६ ॥ जिस समय मे अठारह भुजाओं वाली महामाया का पूजन रे । हे भैरव ! दुर्गा तन्त्र से मन्त्र के द्वारा वहाँ पर भी करे । भैरव ! उसका आप श्रवण कीजिए ॥ १७ ॥ कन्या मे कृष्ण क्ष की आर्द्रा नक्षत्र मे दिन मे पूजन करे । नवमी तिथि मे गीत वादित्र र्घोषो के द्वारा देवी का बोधन करे । १८ । शुक्ल पक्ष मे चतुर्थी तिथि । देवी के केशो का विमोचन करे । पञ्चमी मे प्रात. काल ही मे शुभ ल से स्नपन करावे । १६ । सप्तमी मे पत्रिका की पूजा करे और ष्टमी मे भी उपोषण करे । नवमी मे विधि के साथ पूजा जागरण और बलि करे । २० । दशमी मे क्रीडा—कौतुक मङ्गलो के द्वारा सम्प्रेषण करे । दशमी मे नीराजन करे जो महान् बल और वृद्धि का करने वाला होता है ॥२१॥

यदा वै वैष्णवी देवी महामाया जगन्मयीम् ।
पूजयेत् तत्र च यदा विशेष शृणु भैरव ॥२२
कन्यासंस्थे रवौ पूजा या शुक्ला तिथिरष्टमी ।
तस्यां रात्रौ पूजितव्या महाविभवविस्तरैः ॥२३
नवम्यां बलिदान तु कर्तव्य वै यथाविधि ।
जपं होमं च विधिवत् कुर्यात् तत्र विभूतये ॥२४
सम्पूजयेन्महादेवीमष्टपुष्पिकया नरः ।
रामस्यानुग्रहार्थाय रावणस्य वधाय च ॥२५
रात्रावेव महादेवी ब्रह्मणा बोधिता पुरा ।
ततस्तु व्यक्तनिद्रा सा नन्दायामाश्विने सिते ॥२६
जगाम नगरी लङ्का यत्रासीद्राघव पुरा ।
तत्र गत्वा महादेवी तदा तौ रामरावणौ ॥२७
युद्ध नियोजयामास स्वयमन्तर्हिताम्बिका ।
रक्षसां वानराणा च जग्ध्वा सा मांसशोणिते ॥२८

जिस समय मे जगन्मयी वैष्णवी देवी महामाया का पूजन करे वहाँ पर उस अवसर पर जो विशेषता है उसका हे भैरव ! अब आप श्रवण करिए । २२ । सूर्य के कन्या राशि पर सस्थित होने पर जो पूजा है वह शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि है उस तिथि मे रात्रि मे महान वैभव के विस्तारो से पूजा करनी चाहिए । २३ । नवमी मे यथा विधि बलिदान करना चाहिए। वहाँ पर विशेष भूति के लिए जप—होम विधि के साथ ही करना चाहिए । २४ । मनुष्य को महादेवी का अष्ट पुष्पिका से भली भांति करना चाहिए। पहिले समय मे श्री राम के ऊपर अनुग्रह करने के लिये और रावण के वध के लिये ब्रह्माजी के द्वारा महादेवी रात्रि मे ही बोधित की गयी थी। इसके अनन्तर वह निद्रा का त्याग करके नन्दा मे आश्विन मास के शुक्ल पक्ष मे नन्दा तिथि मे गमन करने वाली हुई थी । २५ । २६ । जहाँ पर पहिले श्री

देवी दशमी तिथि में देवी सम्प्रोषित की गयी थी ॥ ३२ ॥ इन्द्रदेव ने देव सेना का नीराजन किया था और वह नीराजन देव सेना में शान्ति के लिये और देवों के राज्य की वृद्धि के लिये ही किया था । ३३ । राम और रावण के बाण से जो युद्ध हुआ था वह देखकर भय देने वाला हुआ था । तृतीयों म लङ्का के पूर्वोत्तर दिशा में स्थित स्वाती नक्षत्र से युक्त में सुरों का वल वहुत अधिक भयभीत हो गया था । देवेन्द्र ने हरि के वचन से शान्ति के लिये धारण किया था ॥३४॥३५॥

ततस्तु श्रवणेनाथ दशम्यां चण्डिकां शुभाम् ।
विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं वलनीराजनं हरिः ॥३६
नीराजिवलः शक्रस्तत्र राम च राघवम् ।
सम्प्राप्य प्रययौ स्वर्गं सह देवैः शचीपतिः ॥३७
इतिवृत्त पुराकल्पे मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
प्रादुर्भूता दशभुजा देवी देवहिताय वै ॥३८
नृणा त्रेतायुगस्यादौ जगतां हितकाम्यया ।
पुराकल्पे यथावृत्त प्रतिकल्प तथा तथा ॥३९
प्रवर्तते स्वयं देवी दैत्यानां नाशनाय वै ।
प्रतिकल्पं भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षसः ॥४०
तथैव जायते युद्ध तथा त्रिदशसगमः ।
एवं रामसहस्राणि रावणानां सहस्रशः ॥४१
भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते ।
पूजयन्ति सुराः सर्वे वल नीराजयन्त्यपि ॥४२

इसके अनन्तर श्रवण नक्षत्र से संयुत दशमी में शुभ चण्डिका को विदा करके हरि ने शान्ति स्थाय करने के लिये वल का नीराजन (आरती) किया था । ३६ । जिसके वल का नीराजन किया था वह इन्द्रदेव वहाँ पर श्रीराम और रावण को संस्थापित करके वह शची का

राघवेन्द्र थे वहाँ लंका में गये थे। वहाँ पर महादेवजी ने गमन करके उस समय मे राम और रावण को युद्ध करने के लिये नियोजित कर दिया था और अम्बिका देवी स्वयं अन्तर्धान हो गई थी। वहा वानरों और राक्षसों के मांस और रुधिर का भक्षण किया था ॥२७॥२८॥

रामरावणयोर्युद्धं सप्ताहं सा न्ययोजयत् ।
व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्यां रावणं ततः ॥२६
रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी ।
यावत्तयोः स्वयं देवी युद्धकेलिमुदैक्षत ॥३०
तावत् तु सप्तरात्राणि सर्वं देवैः सुपूजिता ।
निहते रावणे वीरे नवम्यां सकलैः सुरैः ॥३१
विशेषपूजा दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामहः ।
ततः सम्प्रेषिता देवी दशम्यां शार्वरोत्सवे ॥३२
क्रपोऽपि देवसेनाया नीराजनमथाकरोत् ।
शान्त्यर्थं सुरसैन्यानां देवराज्यस्य वृद्धये ॥३३
रामरावणबाणेन युद्धं चावेक्ष्य भीतिदम् ।
तृतीया तु लंकायां पूर्वोत्तरदिशि स्थितम् ॥३४
स्वातीनक्षत्रयुक्तायां भीतं सुरबलं महत् ।
शान्त्यर्थं वरयामास देवेन्द्रो वचनाद् हरे ॥३५

देवी दशमी तिथि में देवी सम्प्रोषित की गयी थी ॥ ३२ ॥ इन्द्रदेव ने देव सेना का नीराजन किया था। और वह नीराजन देव सेना में शान्ति के लिये और देवों के राज्य की वृद्धि के लिये ही किया था। ३३। राम और रावण के बाण से जो युद्ध हुआ था वह देखकर भय देने वाला हुआ था। तृतीया में लङ्का के पूर्वोत्तर दिशा में स्थित स्वाती नक्षत्र स युक्त में सुरों का बल बहुत अधिक भयभीत हो गया था। देवेन्द्र न हरि के वचन से शान्ति के लिये आरम्भ किया था ॥३४॥३५॥

ततस्तु श्रवणेनाथ दशम्यां चण्डिका शुभाम् ।
विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं बलनीराजनं हरि. ॥३६
नीराजिबल. शक्रस्तत्र रामं च राघवम् ।
सम्प्राप्य प्रययौ स्वर्गं सह देवै. शचीपतिः ॥३७
इतिवृत्तं पुराकल्पे मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
प्रादुर्भूता दशभुजा देवी देवहिताय वै ॥३८
नृणां त्रेतायुगस्यार्द्धे जगतां हितकाम्यया ।
पुराकल्पे यथावृत्तं प्रतिकल्पं तथा तथा ॥३९
प्रवर्तते स्वयं देवी दैत्यानां नाशनाय वै ।
प्रतिकल्पं भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षस. ॥४०
तथैव जायते युद्ध तथा त्रिदशसगम ।
एवं रामसहस्राणि रावणानां सहस्रशः
भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते ।
पूजयन्ति सुरा. सर्वे बलं नीराजयन्त्यपि

इसके अनन्तर श्रवण नक्षत्र से सयुत दशमी
विदा करके हरिने शान्ति स्थाय करने के लिये
(आरती) किया था। ३६। जिसके बल का
इन्द्रदेव वहाँ पर श्रीराम और रावण को

राघवेन्द्र थे वहाँ लंका में गये थे। वहाँ पर महादेवजी ने गमन करके उस समय में राम और रावण को युद्ध करने के लिये नियोजित कर दिया था और अम्बिका देवी स्वयं अन्तर्धान हो गई थी। वहा वानरों और राक्षसों के मांस और रुधिर का भक्षण किया था ॥२७॥२८॥

रामरावणयोर्युद्धं सप्ताहं सा न्ययोजयत्।
व्यतीते सप्तमे रात्रौ नवम्यां रावणं तत ॥२६
रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी।
यावत्तयोः स्वयं देवी युद्धकेलिमुदैक्षत ॥३०
तावत् तु सप्तरात्राणि सर्व देवैः सुपूजिता।
निहते रावणे वीरे नवम्यां सकलं सुरैः ॥३१
विशेषपूजा दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामहः।
तत सम्प्रेषिता देवी दशम्यां शार्बरोत्सवे ॥३२
शक्रोऽपि देवसेनाया नीराजनमथाकरोत्।
शान्त्यर्थं सुरसैन्यानां देवराज्यस्य वृद्धये ॥३३
रामरावणबाणेन युद्धं चावेक्ष्य भीतिदम्।
तृतीया तु लंकायां पूर्वोत्तरदिशि स्थितम् ॥३४
स्वातीनक्षत्रयुक्तायां भीतं सुरबलं महत्।
शान्त्यर्थं वरयामास देवेन्द्रो वचनाद् हरे ॥३५

उस देवी ने श्रीराम और रावण का युद्ध एक सप्ताह तक नियोजित किया था। सातवीं रात्रि के समाप्त होने पर फिर नवमी में रावण को श्रीराम ने मार दिया था। यह जगन्मयी महामाया देवी ने उन दोनों की जब तक युद्ध की केलि हुई थी उसको स्वयं देखा था। २६। । ३०। तब तक सात रात्रियों में वह हो देवों के द्वारा सुपूजित हुई थी। वीर रावण के निहत हो जाने पर नवमी तिथि में समस्त देवगणों के द्वारा पूजा की गयी थी। ३१। लोकों के पितामह श्री ब्रह्माजी ने दुर्गा देवी की विशेष पूजा की थी। इसके अनन्तर शार्बरोत्सवों के द्वारा

देवी दशमी तिथि में देवी सम्प्रोषित की गयी थी ॥ ३२ ॥ इन्द्रदेव ने देव सेना का नीराजन किया था। और वह नीराजन देव सेना में शान्ति के लिये और देवों के राज्य की वृद्धि के लिये ही किया था। ३३। राम और रावण के गण में जो युद्ध हुआ था वह देखकर भय देने वाला हुआ था। तृतीयाँ में लङ्का के पूर्वोत्तर दिशा में स्थित स्वाती नक्षत्र से युक्त में सुरों का दल बहुत अधिक भयभीत हो गया था। देवेन्द्र ने हरि के वचन से शान्ति के लिए धारण किया था ॥३४॥३५॥

ततस्तु श्रवणेनाथ दशम्या चण्डिका शुभाम् ।
विसृज्य चक्रे शान्त्यर्थं वलनीराजन हरि. ॥३६
नीराजितवल. शक्रस्तत्र राम च राघवम् ।
सम्प्राप्य प्रययौ स्वर्गं सह देवै. शचीपतिः ॥३७
इतिवृत्त पुराकल्पे मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
प्रादुर्भूता दशभुजा देवी देवहिताय वै ॥३८
नृणा त्रेतायुगस्यादौ जगता हितकाम्यया ।
पुराकल्पे यथावृत्त प्रतिकल्प तथा तथा ॥३९
प्रवर्तते स्वय देवी दैत्यानां नाशनाय वै ।
प्रतिकल्प भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षस. ॥४०
तथैव जायते युद्ध तथा त्रिदशसगम ।
एव रामसहस्राणि रावणाना सहस्रश. ॥४१
भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते ।
पूजयन्ति सुरा. सर्वे वल नीराजयन्त्यपि ॥४२

इसके अनन्तर श्रवण नक्षत्र से संयुत दशमी में शुभ चण्डिका को विदा करके हरि ने शान्ति स्थाय करने के लिये बल का नीराजन (आरती) किया था। ३६। जिसके बल का नीराजन किया था वह इन्द्रदेव वहाँ पर श्रीराम और रावण को संस्थापित करके वह शची का

पति देवो के सहित अपने स्वर्ग लोक को चला गया था । ३७ । पहिले कल्प मे यह इति वृत्त है जो कि स्वायम्भुव मन्वन्तर मे था । उस समय मे दश भुजाओ वाली देवी देवो के हित का सम्पादन करने के लिये प्रादुर्भूत हुई थी । ३८ । त्रेता युग के आदि काल मे मनुष्यो के जगतो की जनता के हित की कामना से पहिले काल मे जो हुआ था वैसा ही वैसा प्रत्येक कल्प में हुआ था । ३६ । देवी स्वयं दैत्यो के विनाश करने के लिये प्रवृत्त होती है । प्रत्येक कल्प मे श्रीराम होते हैं और राक्षस राज रावण भी हुआ करता है । ४० । उसी प्रकार से युद्ध होता है और उसी भाँति देवो का सङ्गम भी होता है । इस प्रकार स सहस्रो ही श्रीराम के अवतार हुआ करते है और रावण भी सहस्रों की संख्या मे होते हैं । ४१ । प्राणी भी जो होने वाले हैं वे होते हैं और वैसे ही देवी भी प्रवृत्त हुआ करती है । सभी सुरगण उसी देवी का पूजन किया करते हैं तथा नीराजनी करते है । ४२ ।

तथैव च नरा सर्वे कुर्युः पूजा यथाविधि ।
बलनीराजन राजा कुर्याद् बलविवृद्धये ॥४३
दिव्यालङ्कारयुवनाभिर्वारुणीभि प्रवर्तनम् ।
कर्तव्य नृत्यगीतानि क्रीडाकौतुकमगल ॥४४
मोदकै पिष्टकै पेयभक्ष्यभोज्यैरनेकश ।
कूष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्जूरै पनसैस्तथा ॥४५
द्राक्षामलकशाण्डिल्यै प्लीहैश्च करुणैस्तथा ।
कशेरुक्रमुकैर्मूलै सजम्बूतिन्दुकादिभि ॥४६
गव्यैर्गुडैस्तथा मासैर्मद्यैर्मधुभिरव च ।
बालप्रियैश्च नैवेद्यैर्लाजाक्षतफलादिभि ॥४७
इक्षुदण्डै सितामिश्र सवलीनागरङ्गकै ।
अजाभिमहिषैर्मेषैरात्मशोणितसञ्चयै ॥४८
पक्षयादिबलिजातीयैस्तथा नानाविधैर्मृगै ।

पूजयेच्च जगद्धात्री मांसशोणितकर्दमैः ॥४६

उसी भांति जैसा कि पूर्व कल्प में करते थे सभी मनुष्य विधि विधान के साथ पूजा किया करते हैं। राजा बल का नीराजन बल की वृद्धि के लिये किया करता है।४३। दिव्य अलङ्कारों से युक्त वारुणी में प्रवर्त्तन होता है। उस समय में क्रीडा कौतुकों के द्वारा मङ्गलमय नृत्य और गीत करने चाहिए।४४। मोदकों से—पिष्टों से पेयों से और अनेक प्रकार के भक्ष्यों तथा भोज्यों से—कूष्माण्ड—नारिकेल—खर्जूर—पनस—हाम—आँवला—दाडिम—प्लीह—करुण—कशेर—क्रमुक—मूल—जम्बू—तिन्दूक तथा भव्य—गुड—माम—मद्य—मधु—ताल प्रिय नैवेद्य लाजा (खील)—अक्षत—दक्षु दण्ड—सिता (मिश्री) लवली नागरङ्कक—अजा—महिष—मेष—अपने शोणित के सञ्चय—पक्षी आदि बलि के जाति वाले तथा अनेक प्रकार के पशुगण के द्वारा तथा माम और रुधिर के कर्दम के द्वारा जगत् की धात्री का पूजन करना चाहिये ॥४५—४६॥

रात्री स्कन्दविशाखस्य कृत्वा विष्टकपुत्रिकाम् ।
पूजयेच्छत्रुनाशाय दुर्गायाः प्रीतये तथा ॥५०
होमं च सतिलैराज्यैर्मांसैरपि तथा चरेत् ।
उग्रचण्डादिकाः पूज्यास्तथाष्टौ योगिनीः शुभाः ॥५१
योगिन्यश्च चतुःषष्टिस्तथा वै कोटियोगिनीः ।
नवदुर्गास्तथा पूज्या देव्याः सन्निहिताः शुभाः ॥५२
जयन्त्यादिर्गन्धपुष्पैस्ता देव्या मूर्तयो यतः ।
देव्यः सर्वाणि चास्त्राणि भूषणानि तथैव च ॥५३
अङ्गप्रत्यङ्गयुक्तानि वाहनं सिंहमेव च ।
महिषासुरमर्दिन्या पूजयेद् भूतये सदा ॥५४
पुराकल्पे महादेवी मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
नृणां कृतयुगस्यादौ सर्वदेवैः स्तुता सदा ॥५५

महिषासुरनाशाय जगतां हितकाम्यया ।
योगनिद्रा महामाया जगद्धात्री जगन्मयी ॥५६

रात्रि में स्कन्द विशाख की पिष्ठ पुत्तिका बना कर शत्रुओं के विनाश के लिये दुर्गा की प्रीति के सम्पादन के वास्ते पूजन करे । ५०। और तिलों के सहित घृत से तथा मांस से भी होम करना चाहिए। उग्र चण्डादिक की पूजा करनी चाहिये तथा आठ शुभ योगिनियों की अर्चना करे। ५१। योगिनियाँ चौंसठ हैं तथा करोड योगिनियाँ हैं। देवी के सन्निहित परम शुभ नव दुर्गाओं का यजन करे। ५२। जयन्ती आदि का गन्ध पुष्पों से पूजन करे क्योंकि वे देवी की मूर्त्तियाँ हैं और देवियाँ हैं। देवी के समस्त अस्त्र तथा सब भूषण जो देवी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में युक्त हैं और देवी का वाहन सिंह का पूजन करना चाहिए। महिषासुर के मर्दन करने वाली के सब का सदा भूति—वैभव के लिये यजन करे। ५३। ५४। पहिले कल्प में स्वायम्भुव मनु के अन्तर में मनुष्यों के कृतयुग के आदि काल में महादेवी सदा देवगणों के द्वारा सस्तवन की गई थी। ५५। महिषासुर के विनाश के लिये तथा जगतों के हित की कामना से योगनिद्रा—जगद्धात्री—जगन्मयी महामाया प्रसिद्ध थी ॥५६॥

भर्जो षोडशभिर्युक्ता भद्रकालीति विश्रुता ।
क्षीरोदस्योत्तरे तीरे बिभ्रती विपुलां तनुम् ॥५७
अतसीपुष्पवर्णाभा ज्वलत्काञ्चनकुण्डला ।
जटाजूटसखण्डेन्दुमुकुटत्रयभूषिता ॥५८
नागहारेण सहिता स्वर्णहारविभूषिता ।
शूलं चक्रं च खड्गं च शंखं बाणं तथैव च ॥५९
शक्तिं वज्रं च दण्डं च नित्यं दक्षिणबाहुभिः ।
बिभ्रती सततं देवी विकाशिदशनोज्ज्वला ॥६०
खेटकं चर्म चापं च पाशं चाङ्कुशमेव च ।

घण्टां पर्शुं च मुषलं बिभ्रती वामपाणिभिः ॥६१
सिंहस्था नयनै रक्तवर्णैस्त्रिभिरतिज्वला ।
शूलेन महिषं भित्वा तिष्ठन्ती परमेश्वरी ॥६२
वामपदेन चाक्रम्य तत्र देवी जगन्मयी ।
तां दृष्ट्वा सकला देवाः प्रणम्य परमेश्वरीम् ॥६३
नोचुः किञ्चन तं दृष्ट्वा निहतं महिषासुरम् ।
ततः प्रोवाच देवांस्तान् ब्रह्मादीन् परमेश्वरी ॥६४

वह महामाया सोलह भुजाओं से समुत थी और भद्र काली—इस नाम से लोकों में विश्रुत थी । क्षीर सागर के उत्तर वर्ती तट पर अपने विपुल तनु का धारण करती हुई थी । ५७ । उनका वर्ण अलसी के पुष्प की आभा के ही समान था और उनके कुण्डल तपे हुए सुवर्ण के समान देदीप्यमान थे । खण्ड चन्द्र से युक्त उनके मस्तक पर जटाजूट थे तथा तीन मुकुटों से वह शोभायमान थी । ५८ । उनके कण्ठ में नागों का हार विराजमान तथा सुवर्ण का भी हार पड़ा हुआ था जिससे वे विभूषित हो रही थी । दाहिनी ओर की बाहुओं के द्वारा वे शूल—चक्र—खड्ग—शंख—बाण शक्ति—वज्र—दण्ड नित्य ही निरंतर धारण कर रही थी । देवी विकाश संयुत दशनों की पंक्तियों से परम समुज्ज्वल थी । ५९ । ६० । बाँई ओर वाली बाहुओं के द्वारा वे खेटक—चर्म—चाप—पाश—अंकुश—घण्टा—परशु—मुशल को धारण कर रही थी । । ६१ । सिंह वाहन पर विराजमान थी और लाल वर्ण वाले तीन नेत्रों में अतीव उज्ज्वल थीं । परमेश्वरी अपने शूल के द्वारा महिष असुर का भेदन करके संस्थित थी । ६२ । वहाँ पर अपने बाँये चरण से आक्रमण करके जगन्मयी देवी विराजमान थी । उन देवी का दर्शन करके समस्त देवगण उनको प्रणाम कर रहे थे ॥ ६३ ॥ उस महिषासुर को निहत विलोकन करके वे देव कुछ भी नहीं बोले थे । इसके अनन्तर वह परमेश्वरी उन ब्रह्मादिक देवों से बोली ।६४।

स्मितप्रभिन्नवदना विकाशिवदोज्ज्वला ।
गच्छन्तु भो सुरगणा जम्बुद्वीपान्तरं प्रति ॥६५
हिमवत् - पर्वतासन्ने वर कात्यायनाश्रमम् ।
तत्रैव भवतां साध्यं भविष्यति न संशयः ॥६६
इत्युक्त्वा सा महादेवी तत्रैवान्तरधीयत ।
देवा अपि तदा जग्मुः कात्यायनमुनेः पुरम् ॥६७
आश्रम प्रति ते गत्वा विस्मयाविष्टमानसाः ।
निहता महिषो देव्या दिष्टोऽस्माभिर्यदर्थतः ॥६८
स्तुता चैव महादेवी जगद्धात्री जगन्मयी ।
किमर्थमाह सा देवी गन्तुं कात्यानाश्रमम् ॥६९
किमन्यद् वाञ्छित कार्यमस्माकं वा भविष्यति ।
इति ब्रुवन्तस्ते सर्वे गच्छन्ति स्म परस्परम् ॥७०

देवी के मुख में मन्द हास था और परम प्रसन्न थीं—उनकी शुभ्रदन्त पंक्ति से वे उज्जवल थीं। उन्होंने देवों से कहा—हे सुरगणो! आप लोग अब अन्य जम्बूद्वीप की ओर गमन कर जाओ।६५। हिमवान् पर्वत के समीप में परम श्रेष्ठ कात्यायन का आश्रम है। वहाँ पर ही आपका साध्य होगा—इसमें संशय नहीं है ॥ ६६ ॥ इतना ही कहकर वह महादेवी वहीं पर ही अन्तर्धान हो गई थीं। उस अवसर में देवगण भी कात्यायन मुनि के पुर को चले गये थे। ६७। आश्रम की ओर वे गमन करके विस्मय से समाविष्ट मन वाले हो गये थे। देवी के द्वारा महिषासुर निहत हो गया था जो कि अर्थ से हम सबने देखा था।६८। और महा जगतों की धात्री—जगतों से परिपूर्ण देवी का स्तवन किया गया था उस महादेवी ने हमको यहाँ कात्यायन के आश्रम में गमन करने को किस प्रयोजन के लिये कहा है। ६९। क्या कोई अन्य कार्य हमारा वाञ्छित होगा ? वे सब यही परस्पर में बोलते हुए चले गये थे। ७०।

हिमवत्-पर्वतासन्न मुनि-कात्यायनाश्रमम् ।
ततः सेन्द्राः सदिक्पाला ब्रह्मविष्णुशिवास्तथा ॥७१
निषेदुः सुचिरं प्रीता दुर्गादर्शनलालसाः ।
ततो रुद्रगणा सर्वे महिषासुरचेष्टितम् ॥७२
आगत्य कथयामासुर्देवलोकपराभवम् ।
ततस्तत्र महाकोपं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥७३
चक्रुः कोऽन्योऽस्ति महिषो हतो देव्या स दानवः ।
पुनर्येनेह क्रियते जगदविध्वंसनं भृशम् ॥७४
इति प्रकुप्यतां तेषां शरीरेभ्य पृथक् पृथक ।
निश्चक्रमुश्च तेजांसि शक्तिरूपाणि तत्क्षणात् ॥७५
तत्तेजोभिर्घृतवपुर्देवी कात्यायनेन वै ।
सन्धक्षिता पूजिता च तेन कात्यायनी स्मृता ॥७६
ततस्तेनैव मन्त्रेण दशबाहुयुतेन वै ।
पश्चाज्जघान महिषं जगद्धात्री जगन्मयी ॥७७

हिमवान् पर्वत राज के समीप में ही कात्यायन मुनि का आश्रम है। फिर इन्द्र के सहित तथा दिक्पालों के समेत ब्रह्मा—विष्णु—शिव वहाँ गये थे ॥७१॥ वहाँ पर बहुत लम्बे समय तक वे बैठ गये थे और सभी दुर्गा देवी के दर्शन की लालसा वाले हो रहे थे। इसके अनन्तर समस्त रुद्रगणों ने महिषासुर के चेष्टित को आकर कहा था।७२। उन्होंने देवलोक के पराभव का कथन वहाँ आकर किया था। इसके अनन्तर वहा पर ब्रह्मा—विष्णु—शिव प्रभृति ने महान कोप किया था।७३। क्या कोई अन्य महिष है। वह महिषासुर तो देवी के द्वारा हत कर दिया गया। वह कौन है जिसके द्वारा पुन. यहाँ पर जगतो का अत्यन्त विध्वंस किया जा रहा है।७४। इस प्रकार से प्रकोप करते हुए उन देवों के शरीरो से पृथक-पृथक् तेज निर्गत हुए जो उसी क्षण में शक्ति के स्वरूप वाले थे।७५। उन देवों के शरीरो से नि सृत तेजो

ने देवी ने वपु धारण किया था और निश्चय ही कात्यायन के द्वारा सन्धुक्षित एवं पूजित हुई थी। इसी से वह कात्यायनी—इस नाम से कही गयी है।७६। इसके अनन्तर उसी मन्त्र के द्वारा जो दश बाहुओं से समन्वित है उस जगतो की धात्री और जगन्मयी देवी ने पश्चात् महिषासुर का वध कर दिया था ॥७७॥

यदा स्तुता महादेवी बोधिता चाश्विनस्य च ।
चतुर्दशो कृष्णपक्षे पादुर्भूता जगन्मयी ॥७८
देवाना तेजसा मूर्ति शुक्लपक्षे सुशोभने ।
सप्तम्या साऽकरोद् देवी अष्टम्या तैरलङ्कृता ॥७६
नवम्यामुपहारैस्तु पूजिता महिषासुरम् ।
निजघान दशम्या तु विसृष्टान्तर्हिता शिवा ॥८०
श्रुत्वेमा सगरो राजा देव्या सङ्गतिमुत्तमाम् ।
सशयालुश्च तद्रूपे पुनरौर्व्वमपृच्छत् ॥८१
यदि पश्चान्महादेवी जघान महिषासुरम् ।
कथ पूर्वं भद्रकाली-रूपाभून्महिषासुरम् ॥८२
तथाहि दर्शन तस्या पादाक्रान्तश्चकार च ।
हृदि शूलेन निर्भिन्न ददृशु सकला सुरा ।
एव तु सशय छिन्धि मुनिश्रे मयाधुना ॥८३

जिस अवसर पर महादेवी का सस्तवन किया गया था और बोधित की गई थी तो आश्विन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि में वह जगन्मयी प्रादुर्भूत हुई थी अर्थात् प्रत्यक्ष रूप म प्रकट हुई थी।७८। वह देवों के तेजो की मूर्ति परम शोभन शुक्लपक्ष मे सप्तमी तिथि मे उसन किया था और वह देवी अष्टमी म उन्ही के द्वारा समलङ्कृत हुई थी।७६। नवमी तिथि म वह उपहारो के द्वारा पूजित थी और उसने महिषासुर का हनन किया था। दशमी मे विदा की गई और वह शिव अन्तर्धान हो गई थी।८०। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—राजा सगर ने इस परमोत्तम देवी की सङ्गति का श्रवण करके वह

उसके स्वरूप में संशयालु होकर पुनः उसने और्व से पूछा था । ८१ । राजा सगर ने कहा—यदि महादेवी ने पीछे महिषासुर का हनन किया था तो पूर्व में कैसे महिषासुर के लिये वह भद्रकाली रूप वाली हुई थी? । ८२ । उसी भाँति उसका दर्शन है कि वह उसके चरणों से समाक्रान्त किया गया था । सभी सुरगणों ने यह देखा था कि उस असुर के हृदय में शूल गड़ा हुआ है और हृदय निर्भिन्न हो रहा है । हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझे यह बड़ा संशय हो रहा है इसका छेदन कृपाकर करिए ।८३।

शृणु त्वं नृपशार्दूल भद्रकाली यथा पुरा ।
प्रादुर्भूता महामाया महिषेण सहैव तु ॥८४
महिषासुर एवासौ निद्राया निशि पर्वते ।
स्वप्नं प्रददर्शे घोरो दारुणं घोरदर्शनम् ॥८५
महामाया भद्रकाली छित्त्वा खड्गेन मे शिरः ।
पपौ तस्य च रक्तानि व्यादितास्यातिभीषणा ॥८६
ततः प्रातर्भयतः स दैत्यो महिषासुरः ।
तामेव पूजयामास सुचिरं सानुगस्तदा ॥८७
आराधिता तदा देवी महिषेणासुरेण वै ।
प्रादुर्भूता भद्रकाली भुजैः षोडशभिर्युता ॥८८
ततः प्रणम्य महिषो महामायां जगन्मयीम् ।
उवाचेदं वचो नम्रमूर्तिर्भक्तियुतोऽसुरः ॥८९
देवि खड्गेन सञ्छिद्य शोणितानि शिरो मम ।
त्वया भुक्तानि दृष्टानि मया स्वप्नेन निश्चितम् ॥९०
अवश्यं तु त्वया कार्यं मया ज्ञातं प्रमाणतः ।
एतद्रुधिरपानं मे तत्रैकं देहि मे वरम् ॥९१

और्व मुनि ने कहा—हे नृप शार्दूल ! आप श्रवण करिए—जिस तरह पहिले भद्रकाली प्रादुर्भूत हुई थी । वह महामाया महिषासुर के साथ ही थी । ८४ । यह महिषासुर ही है जो पर्वत में निद्रा में

से देवी ने वपु धारण किया था और निश्चय ही कात्यायन के द्वारा सन्धुक्षित एवं पूजित हुई थी। इसी से वह कात्यायनी—इस नाम से कही गयी है। ७६। इसके अनन्तर उसी मन्त्र के द्वारा जो दस बाहुओं से समन्वित है उस जगती की धात्री और जगन्मयी देवी ने पश्चात् महिषासुर का वध कर दिया था ॥७७॥

यदा स्तुता महादेवी बोधिता चाश्विनस्य च।
चतुर्दशी कृष्णपक्षे प्रादुर्भूता जगन्मयी ॥७८
देवाना तेजसा मूर्ति शुक्लपक्षे सुशोभने।
सप्तम्या साऽकरोद् देवी अष्टम्या तैरलङ्कृता ॥७९
नवम्यामुपहारैस्तु पूजिता महिषासुरम्।
निजघान दशम्या तु विसृष्टान्तर्हिता शिवा ॥८०
श्रुत्वेमा सगरो राजा देव्या सङ्कृतिमुत्तमाम्।
सशयालुश्च तद्रूपे पुनरौर्वमपृच्छत् ॥८१
यदि पश्चान्महादेवी जघान महिषासुरम्।
कथ पूर्व भद्रकाली-रूपाभून्महिषासुरम् ॥८२
तथाहि दर्शन तस्या पादाक्रान्तश्चकार च।
हृदि शूलेन निर्भिन्न ददृशु सकला सुरा।
एव तु सशय छिन्धि मुनिश्रेष्ठ ममाधुना ॥८३

जिस अवसर पर महादेवी का संस्तवन किया गया था और बोधित की गई थी तो आश्विन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि में वह जगन्मयी प्रादुर्भूत हुई थी अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हुई थी।७८। वह देवों के तेजों की मूर्ति परम शोभन शुक्लपक्ष में सप्तमी तिथि में उसने किया था और वह देवी अष्टमी में उन्हीं के द्वारा समलङ्कृत हुई थी। ७९। नवमी तिथि में वह उपहारों के द्वारा पूजित थी और उसने महिषासुर का हनन किया था। दशमी में बिदा की गई और वह शिव अन्तर्धान हो गई थी। ८०। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—राजा सगर ने इस परमोत्तम देवी की सङ्कृति का श्रवण करके वह

उसके स्वरूप में भयालु होकर पुन उसने औवं से पूछा था । ८१ । राजा सगर ने कहा—यदि महादेवी ने पीछे महिषासुर का हनन किया था तो पूर्व में वे महिषासुर के लिये वह भद्रकाली रूप वाली हुई थी? । ८२ । उसी भाँति उसका दर्शन है कि वह उसके चरणों से समाक्रान्त किया गया था । सभी सुरगणों ने यह देखा था कि उस असुर के हृदय में शूल गड़ा हुआ है और हृदय निर्भिन्न हो रहा है । हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझे यह बड़ा संशय हो रहा है इसका छेदन कृपाकर करिए ।८३।

शृणु त्वं नृपशार्दूल भद्रकाली यथा पुरा ।
प्रादुर्भूता महामाया महिषेण सहैव तु ॥८४
महिषासुर एवासौ निद्राया निशि पर्वते ।
स्वप्नं प्रददृशे घोरो दारुणं घोरदर्शनम् ॥८५
महामाया भद्रकाली छित्वा खड्गेन मे शिरः ।
पपौ तस्य च रक्तानि व्यादितास्यातिभीषणा ॥८६
ततः प्रातर्भयेन स दैत्यो महिषासुरः ।
तामेव पूजयामास सुचिरं सानुगस्तदा ॥८७
आराधिता तदा देवी महिषेणासुरेण वै ।
प्रादुर्भूता भद्रकाली भुजैः षोडशभिर्युता ॥८८
सतः प्रणम्य महिषो महामाया जगन्मयीम् ।
उवाचेदं वचो नम्रमूर्तिर्सविनयतोऽसुरः ॥८९
देवि खड्गेन सञ्छिद्य शोणितानि शिरो मम ।
त्वया भुक्तानि दृष्टानि मया स्वप्नेन निश्चितम् ॥९०
अवश्यं तु त्वया कार्यं मया ज्ञातं प्रमाणतः ।
एतद्रुधिरपानं मे तत्रैन देहि मे वरम् ॥९१

औवं मुनि ने कहा—हे नृप शार्दूल ! आप श्रवण करिए—जिस तरह पहिले भद्रकाली प्रादुर्भूत हुई थी । वह महामाया महिषासुर के साथ ही थी । ८४ । यह महिषासुर ही है जो पर्वत में निद्रा में

से देवी ने वपु धारण किया था और निद्रा से कात्यायन के द्वारा गन्धोक्षित एवं पूजित हुई थी। इसी से वह कात्यायनी—इस नाम से कही गयी है।७६। इसके अनन्तर उसी मन्त्र के द्वारा जो दश बाहुओं से समन्वित है उस जगतों की धात्री और जगन्मयी देवी ने प्रभात महिषासुर का वध कर दिया था ॥७७॥

यदा स्तुता महादेवी बोधिता चाश्विनस्य च।
चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे प्रादुर्भूता जगन्मयी ॥७८
देवानां तेजसा मूर्ति शुक्लपक्षे सुशोभने।
सप्तम्यां साऽकरोद् देवी अष्टम्यां तैरलङ्कृता ॥७९
नवम्यामुपहारैस्तु पूजिता महिषासुरम्।
निजघान दशम्यां तु विसृष्टान्तर्हिता शिवा ॥८०
श्रुत्वेमां सगरो राजा देव्या सङ्गतिमुत्तमाम्।
संशयालुश्च तद्रूपं पुनरौर्वमपृच्छत् ॥८१
यदि पश्चान्महादेवी जघान महिषासुरम्।
कथं पूर्वं भद्रकाली-रूपाभून्महिषासुरम् ॥८२
तथाहि दर्शनं तस्या पादाक्रान्तश्चकार च।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं ददृशुः सवलाः सुराः।
एवं तु संशयं छिन्धि मुनिश्रेष्ठ ममाधुना ॥८३

जिस अवसर पर महादेवी का संस्तवन किया गया था और बोधित की गई थी तो आश्विन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि में वह जगन्मयी प्रादुर्भूत हुई थी अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई थी।७८। वह देवों के तेजों की मूर्ति परम शोभन शुक्लपक्ष में सप्तमी तिथि में उसने किया था और वह देवी अष्टमी में उन्हीं के द्वारा समलङ्कृत हुई थी।७९। नवमी तिथि में वह उपहारों के द्वारा पूजित थी और उसने महिषासुर का हनन किया था। दशमी में विदा की गई और वह शिव अन्तर्धान हो गई थी।८०। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—राजा सगर ने इस परमोत्तम देवी की सङ्गति का श्रवण करके वह

उसके स्वरूप में सशयालु होकर पुन उसने और्व से पूछा था । ८१ । राजा सगर ने कहा—यदि महादेवी ने पीछे महिषासुर का हनन किया था तो पूर्व म कैसे महिषासुर के लिये वह भद्रकाली रूप वाली हुई थी? । ८२ । उसी भाँति उसका दर्शन है कि वह उसके चरणों से समाक्रान्त किया गया था । सभी मुनगणो ने यह देखा था कि उस असुर के हृदय में शूल गड़ा हुआ है और हृदय विभिन्न हो रहा है । हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझे यह बड़ा सशय हो रहा है इसका छेदन कृपाकर करिए ।८३।

शृणु त्व नृपशार्दूल भद्रकाली यथा पुरा ।
प्रादुर्भूता महामाया महिषेण सहैव तु ।।८४
महिषासुर एवासौ निद्राया निशि पर्वते ।
स्वप्न प्रददृशे घोरो दारुण घोरदर्शनम् ।।८५
महामाया भद्रकाली छित्वा खड्गेन मे शिर ।
पपौ तस्य च रक्तानि व्यादितास्यातिभीषणा ।।८६
तत प्रातर्भयुत स दैत्यो महिषासुर ।
तामेव पूजयामास सुचिर मानुगस्तदा ।।८७
आराधिता तदा देवी महिषेणासुरेण वै ।
प्रादुर्भूता भद्रकाली भुजै षोडशभिर्युता ।।८८
तत प्रणम्य महिषो महामाया जगन्मयीम् ।
उवाचेद वचो नम्रमूतिभक्तियुतोऽसुर ।।८९
देवि खड्गेन सञ्छिद्य शोणितानि शिरो मम ।
त्वया भुक्तानि दृष्टानि मया स्वप्नेन निश्चितम् ।।९०
अवश्य तु त्वया कार्यं मया ज्ञान प्रमाणत ।
एतद्रुधिरपान मे तत्रैव देहि मे वरम् ।।९१

और्व मुनि ने कहा—हे नृप शार्दूल ! आप श्रवण करिए—जिस तरह पहिले भद्रकाली प्रादुर्भूत हुई थी । वह महामाया महिषासुर के साथ ही थी । ८४ । यह महिषासुर ही है जो पर्वत म निद्रा म

वर्त्तमान था। उस वीर ने एक महान् दारुण घोर दर्शन वाला स्वप्न देखा था। ८५। उसने यह स्वप्न देखा था कि मुँह फैलाये हुए अत्यन्त भीषण महामाया भद्रकाली ने खड्ग से मेरे शिर का छेदन करके उसके रुधिर का पान कर रही थी। ८६। इसके अनन्तर प्रातःकाल में वह दैत्य महिषासुर भय से युक्त होकर उसी का अपने अनुगामियों के साथ बहुत काल पर्यन्त पूजन किया करता था। ८७। उस समय में महिषासुर के द्वारा भली भाँति आराधना की हुई देवी भद्रकाली सोलह—भुजाओं से युक्त होकर प्रादुर्भूत हुई थी अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हुई थी। ८८। इसके अनन्तर महिषासुर ने जगन्मयी महामाया को प्रणाम किया और अत्यन्त विनम्र मूर्त्ति वाला होकर भक्ति की भावना से परिपूर्ण होते हुए उस असुर ने यह वचन कहा॥ ८९॥ महिष बोला—हे देवि! आपने खड्ग से मेरे मस्तक को काटकर मेरे रुधिर को आपने पीया था और मैंने यह देखा है। स्वप्न के द्वारा निश्चित रूप से मैंने अवलोकन किया है। ९०। आपके द्वारा यह अवश्य ही करना ही है—यह मैंने प्रमाण से ज्ञान प्राप्त कर लिया है यह मेरे रुधिर का पान आप अवश्य ही करेंगी। अब उसमें मुझे एक वरदान दीजिए।९१।

वध्यस्त्वयाहं नाश्रास्ति संशयः परमेश्वरि ।
ममापि तत्र नो दुःखं नियतिः केन लध्यते ॥९२
किन्तु त्वयैव सहितः शम्भुराराधितः पुरा ।
मम पित्रा मदर्थेन जातः पश्चादहं ततः ॥९३
मयाप्याराधितः शम्भुः प्राप्ताश्चेष्टास्तथाविधाः ।
मन्वन्तरत्रयं यावदासुरं राज्यमुत्तमम् ॥९४
अकण्टकं मया भुक्तमनुतापो न विद्यते ।
कात्यायनेन मुनिना शप्तोऽहं शिष्यकारणात् ॥९५
सीमन्तिनी विनाशं ते करिष्यति न संशयः ।
पुरा मुनिः तपस्तस्त रौद्राश्वं नाम सत्तमम् ॥९६

मुने कात्यायनाख्यस्य शिष्यं हिमवदन्तिके ।
दिव्यस्त्रीरूपमतुलं कृत्वाहं कौतुकात् तदा ॥९७
मया सम्मोहितो विप्रोऽत्यजत् सद्यस्तदा तपः ।
नदूरात् सुस्थितेनाहं मुनिना कात्यसूनुना ॥९८

हे परमेश्वरि ! मैं तुम्हारे द्वारा ही वध्य करने के योग्य हूँ। इसमें कुछ भी संशय नही है। मुझे भी इस विषय में कोई भी दुःख नही है क्योंकि जो नियति है अर्थात् जो होने वाला नियत ही है वह किसी के भी द्वारा लंघित नही हुआ करता है अर्थात् उसे कोई भी टाल नही सकता है। ९२। किन्तु पहिले समय में आपके ही साथ मैंने भगवान् शम्भु की आराधना की थी। सदर्थ से ही मेरे पिता के द्वारा जन्म ग्रहण किया था उनके पश्चात् मैं समुत्पन्न हुआ था। ९३। मैंने भी शम्भु का समाराधन किया था और उसी भाँति की चेष्टाऐं प्राप्त हुई थी। जब तक तीन मन्वन्तर हैं उत्तम असुर राज्य है॥ ९४॥ मैंने उस राज्य को अकण्टक रूप से भोग किया है। मुझे इसका कुछ भी अनुताप नही है। शिष्य के कारण से कात्यायन मुनि के द्वारा मुझे शाप दिया गया था। ९५। एक सीमान्तिनी तेरा विनाश करेगी—इसमें संशय नही है। पुराने समय मे तपश्चर्या करते हुए परम श्रेष्ठ रौद्राश्व नामक जो कात्यायन नाम वाले मुनि के शिष्य को हिमवान् के समीप में एक अनुपम स्त्री का रूप धारण करके मैंने कौतुक से उस समय मे मेरे द्वारा मोहित किया गया था। विप्र ने उस अवसर में तप करने का त्याग कर दिया था। पास मे ही संस्थित कात्यायन के पुत्र ने मुझे शाप दिया था ॥९६—९८॥

ज्ञात्वा मायां तदा शप्तः शिष्यार्थे क्रोधवह्निना ।
यस्मात् त्वया मे शिष्योऽयं मोहितस्तपसश्च्युतः ॥९९
कृतस्त्वया स्त्रीरूपेण तत् त्वां स्त्री निहनिष्यति ।
इति मां शप्तवान् पूर्वं मुनिः कात्यायनः स्वयम् ॥१००

तस्य शापस्य कालोऽयमागत्य समुपस्थित ।
देवेन्द्रत्व मया प्राप्त भुक्त त्रिभुवन समम् ॥१०१
किञ्चिन्न धोच्य मेऽत्रास्ति वाञ्छनीय हि यन्मया ।
तस्मात् त्वा वै प्रपन्नोऽह प्रार्थ्यं शेप हि यन्मया ।
यद् देवि देवि दुर्गे त्व भूयस्तुभ्य नमो नम ॥१०२
प्रार्थनीयो वरो यस्ते त वृणुष्व महासुर ।
दास्यामि ते वर प्राप्य सशयो नात्र विद्यते ॥१०३
यज्ञभागमह भोक्तुमिच्छामि त्वत् प्रसादत ।
यथा मखेषु सर्वेषु पूज्योऽह स्या तथा कुरु ॥१०४
त्वत् पादसेवा न त्यदये यावत्भूय प्रवतते ।
एव वरद्वय देहि यदि देयो वरो मम ॥१०५

उस समय मे माया का ज्ञान प्राप्त करके शिष्य के लिये क्रोध की अग्नि के द्वारा मुझे शाप दिया गया था क्योंकि तुमने यह मेरा शिष्य मोहित किया है जो तप से च्युत हो गया है ।६६। तूने स्त्री के स्वरूप के द्वारा ऐसा किया है इसमे तुझको स्त्री ही मारेगी । इस रीति से पूव मे कात्य यना मुनि ने स्वय मुझको शाप दिया था । उस शाप का काल अब आकर उपस्थित हो गया है । मैंने देवो के इन्द्र का पद प्राप्त किया था और तीनो भुवनो का समान उपभोग किया था ॥१००॥१०१॥ मुझे कुछ भी सोचने अर्थात् शोच और चिन्ता करने के योग्य नही है और न मुझ कुछ भी वाञ्छनीय ही है । इस कारण से मैं आपकी शरणागति म प्राप्त हुआ हूँ । मुझ शेप जो भी प्रार्थना करने के योग्य है जो देवि ! हे दुर्गे ! मुझ दीजए । आपकी सेवा म मेरा बारम्बार नमस्कार है ।१०२। देवी न कहा—हे महासुर ! जो तुझ वरदान प्रार्थना करने के लायक है उसके विषय म तुम अब श्रवण करो । तुम्हारा प्रार्थनीय जो वर है उसको दे दूँगी—इसमे लेश मात्र भी सशय नही है । १०३। महिष न कहा—मैं आपकी प्रसन्नता से यज्ञ के भाग का उपभोग करना

वर प्राप्त करके परम प्रसन्न हुआ और उसका मुख प्रसन्नता से संयुत हो गया था ।१०६। उसने कहा—हे उग्र चण्डे ! हे भद्र कालि ! हे दुर्गे ! हे देवि ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है । हे देवि ! आपकी बहुत सी मूर्तियाँ है और आपके द्वारा समस्त परिपूर्ण हैं । हे परमेश्वरि ! मैं यज्ञ में किन मूर्तियों के द्वारा पूज्य होऊँगा । यही आप मुझे बतलाइये यदि आपके द्वारा मेरे ऊपर यहाँ पर कृपा की गई है । ।। ११०—१११ ।।

यानि नामानि प्रोक्तानि त्वयेह महिषासुर ।
तासु मूर्तिषु संपृष्ट पूज्यो लोके भविष्यसि ।।११२
उग्रचण्डेति या मूर्तिभद्रकाली ह्यह पुन ।
यया मूर्त्या त्वा हनिष्ये सा दुर्गेति प्रकीर्तिता ।।११३
एतासु मूर्तिषु सदा पादलग्नो नृणां भवान् ।
पूज्यो भविष्यति स्वर्गे देवानामपि रक्षसाम् ।।११४
आदिसृष्टावुग्रचण्डामूर्त्या त्व निहत पुरा ।
द्वितीयसृष्टौ तु भवान् भद्रकाल्या मया हत ।।११५
दुर्गारूपेणाधुना त्वा हनिष्यामि महानुगम् ।
किन्तु पूर्वं न गृहीतस्त्वं मया पादयोस्तले ।।११६
अधुना प्रार्थितवरो गृहीतः पूर्वकामयोः ।
ग्रहातव्यश्च पश्चात् त्व यज्ञभागोपभुक्तये ।।११७
इत्युक्त्वा सा महामाया उग्रचण्डाह्वया तनुम् ।
दर्शयामास च तदा महिषायासुराय वै ।।११८
या मूर्ति षोडशभुजा भद्रकालीति विश्रुता ।
तथैव मूर्तिं बाहुभ्यामपराभ्यां तु बिभ्रती ।।११९

देवी ने कहा—हे महिषासुर ! यहाँ पर आप ने जो भी नाम कहे हैं उन मूर्तियों में संपृष्ट होता हुआ लोक में तुम पूज्य होओगे । ।११२। जो उग्र चण्डा मूर्ति है फिर मैं भद्र काली हूँ । जिस मूर्ति के

द्वारा मैं तेरा हनन करूँगी वह दुर्गा कीर्तित की गयी है ।११३। इन मूर्तियों में सदा ही तुम मेरे चरणों में सलग्न रहोगे और आप मनुष्यों के— स्वर्ग में देवों के भी और राक्षसों के पूज्य होजाओगे ।११४। प्राचीन काल में जब सृष्टि का आदि काल था उस समय म उग्र चण्डा मूर्त्ति के द्वारा तुम्हारा हनन किया गया था । दूसरी सृष्टि के समय में आपको भद्र काली मेरे द्वारा निहत किया गया था ।११५। और इस समय में दुर्गा के स्वरूप के द्वारा तुमको तुम्हारे अनुगामियों के सहित हनन करूँगी किन्तु पूर्व में मेरे द्वारा चरण के तल में तुमको ग्रहण नहीं किया गया था ।११६। इस समय में तो तुम वरदान को ग्रहण करने वाले हो गये हो अतएव पूर्व कालों में ग्रहण किये गये हो । और पीछे भी यज्ञ भाग की मुक्ति के लिये ग्रहण करने के योग्य हो गये हो ।११७। औवं मुनि ने कहा—इतना कहकर उस महामाया ने उग्र चण्डा नाम वाले तनु को उस समय में महिषासुर को दिखला दिया था ।११८। जो मूर्त्ति सोलह भुजाओं वाली थी और भद्र काली—इस नाम से विश्रुत थी उसी भाँति मूर्ति को अमर बाहुओं से धारण करने वाली थी ।।११९।।

दक्षिणाद्यो गदां वामपाणिना पानपात्रकम् ।
सुरापूर्णं च शिरसा मुण्डमाला विशेषयम् ।।१२०
भिन्नाञ्जनचयप्रख्या प्रचण्डा सिंहवाहिनी ।
रक्तनेत्रा महाकाया युक्ताऽष्टादशबाहुभि. ।।१२१
उग्रचण्डा भद्रकाली देव्या मूर्तिद्वयं तथा ।
महिषः प्रणनामाशु दृष्ट्वा विस्मयमागत. ।।१२२
ततो यथा पदाक्रम्य निहतो महिषासुरः ।
तथैव जगृहे पादतले देवोद्वय [illegible] तम् ।।१२३
हृदि शूलेन निर्भिन्नं माहिषं विशिरस्ककम् ।
गृहीतकेशं देव्या तु निर्यदन्त्रविभूषितम् ।।१२४
यमद्रवत्तं महाकायं दृष्ट्वा पूर्वतनुं स्वकम् ।

भय प्राप्यासुरः सोऽथ शुशोच च मुमोह च ॥१२५
ततस्तु क्षणमात्मानं सस्तभ्य स तु दानवः ।
प्रणम्य वचन देवीमिदमाह स गद्‌गदम् ॥१२६

दक्षिण की ओर नीचे गदा रखे हुए—बाँये हाथ से पान पात्र को रखे हुए थी जो सुरा से भरा हुआ था। शिर मे नर मुण्डो की माला धारण करने वाली थी। भिन्न हुए अजन के समान थी—प्रचण्ड स्वरूप वाली और सिंह के वाहन वाली थी। लाल वर्ण वाले नेत्र थे—महती काया थी और अठारह बाहुओ से युक्त थी।१२०।१२१। उग्र चण्डा और भद्रकाली ये दो मूर्त्तियाँ थी। ऐसे स्वरूप का दर्शन करके शीघ्र ही महिषासुर ने उनको प्रणिपात किया था और वह बहुत ही विस्मय को प्राप्त हो गया था।१२२। इसके अनन्तर जिस रीति से आक्रान्त करके महिषासुर को निहत किया था ठीक उसी भाँति दोनों देवियों ने उसको चरण के तल के नीचे ग्रहण कर लिया था।१२३। उसका हृदय शूल मे विदीर्ण किया हुआ और महिषासुर बिना शिरवाला था। देवी के द्वारा उसके केश ग्रहण किये हुए थे और निकलती अँतडियो से भूषित हो रहा था।१२४। जिसके मुँह से रुधिर निकल रहा था--महान् जिसका शरीर था ऐसे अपने पूर्व शरीर को उसने देखा था। वह असुर भय को प्राप्त करके बहुत चिन्ता एव शोक करने लगा था तथा मोह को प्राप्त हो गया था॥१२५॥ इसके अनन्तर एक ही क्षण में दानव ने अपने आपको संस्तम्भित किया था और उसने देवी को प्रणाम किया था तथा गद्‌गद् होकर देवी से उसने यह वचन कहा—।१२६।

यदि देवि प्रसन्नासि यज्ञभागाश्च कल्पिता. ।
तदा ममान्यदा नाश एवमेतद् भवेन्न हि ॥१२७
यथाहं न गुरुः सार्धं करिष्ये वैरमद्‌भुतम् ।
तथा मा कुरु भो देवि न जन्म प्रसभे यथा ॥१२८

आराधिताऽहं भवता वरो दत्तो मया तव ।
वध्यश्च त्वं ममैवेह नात्र कार्या विचारणा ॥१२६
यत् त्वया प्रार्थितं चापि सर्वैः सुरगणैः सह ।
विरोधो मे सदा मा भूदिति चापि भविष्यति ॥१३०
मत्पादतलसंस्पर्शाच्छरीरं तव दानव ।
यज्ञभागोपभोगाय विशीर्णं न भविष्यति ॥१३१
तव जीवात्मभिः प्राणाः सर्व एव महासुर ।
हरस्य पादसंयोगाच्चिरं स्थास्यति केवलम् ॥१३२
कल्पकोटिसहस्राणि त्रिंशत् त्वं महिषासुर ।
शतानि चाष्टावन्यानि जन्म ते न भविष्यति ॥१३३

महिष ने कहा—हे देवि ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और आपने यज्ञ के भागों को मेरे लिये कल्पित किया है तब मेरा अन्य प्रकार से नाश ही है—इस प्रकार से नहीं होना चाहिए । १२७ । जिस प्रकार से मैं देवगणों के साथ अद्भुत वैर न करूँगा हे देवि ! मुझे आप ऐसा ही कर देवें जिससे मैं अन्य जन्म न प्राप्त करूँ । १२८ । देवी ने कहा—आपने मेरी आराधना की है अतएव मैंने आपको वर दे दिया है । यहाँ पर तुम मेरे ही द्वारा वध्य होगे इस विषय मे कुछ भी विचार तुमको नही करना चाहिए । १२६ । जो भी तुमने प्रार्थना की है कि मेरा विरोध सुरों के साथ न होवे—यह भी सब हो जायगा । १३० । हे दानव ! मेरे चरण के तल के संस्पर्श से तेरा शरीर यज्ञ भागों के उपभोग करने के लिये विशीर्ण नहीं होगा । १३१ । हे महासुर ! तेरे जीवात्माओं के साथ प्राण सब ही भगवान् हर के पाद के संयोग से केवल चिरकाल पर्यन्त स्थित रहेंगे ।१३२। हे महिषासुर ! सहस्रों करोड़ कल्प तक और अन्य आठ तीस सौ तक चिरकाल पर्यन्त तेरे जन्म न होंगे । १३३ ।

इति देवी वरं दत्वा महिषायासुराय वै ।

प्रणता तेन शिरसा तत्रैवान्तरधीयत ॥१३४
महिषोऽपि निजस्थान ययौ समोहित पुन ।
मायया चासुर भावमादाय नृप पूर्ववत् ॥१३५
अनेके निहता दैत्या मायया लोकभूतये।
न ते पुन प्रगृहीतास्तेभ्यो दत्त्वा वरान् शुभान्।
केन वा कारणेनाय प्रगृहीतो वरा कथम्।
दत्तास्तस्मै समाचक्ष्व मम सम्यग् द्विजोत्तम ॥१३६
आराधितो महादवो रम्भेण सुरवैरिणा।
चिरेण स च सुप्रीतस्तपसा तस्य शकर ॥१३७
अथ तुष्टो महादेव प्रत्यक्ष रम्भमूचिवान्।
प्रीतोऽस्मि ते वर रम्भ वरयस्व यथेप्सितम् ॥१३८
एवमुक्त प्रत्युवाच रम्भस्त चन्द्रशेखरम्।
अपुत्रोऽह महादव यदि ते मय्यनुग्रह ॥१३९
मम जन्मत्रये पुत्रो भवान् भवतु शकर।
अवध्य सर्वभूताना जेता च त्रिदिवौकसाम् ॥१४०

इस प्रकार से यह वर देवी ने उस महिषासुर को देकर उस असुर के द्वारा शिर से प्रणत होती हुई वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गई थी।१३४। वह महिष भी हे नृप! पुन माया के द्वारा सम्मोहित होता हुआ पूर्व की भाँति आसुर भाव का आदान करके अपने स्थान को चला गया था।१३५। राजा सगर ने कहा—माया के द्वारा अनेक दैत्य निहत किये गये थे जिनका विहनन लोकों की विभूति के ही लिये ही हुआ था। उनको शुभ वरदान देकर वे पुन प्रगृहीत नहीं हुए थे। यह किस कारण से वर देकर कैसे पुन प्रगृहीत हुआ था? हे द्विजोत्तम! मुझे यह बतलाने की कृपा करें।१३६। और्व मुनि ने कहा—सुरों के वैरी रम्भ के द्वारा महादेवजी की आराधना की गयी थी। उसके चिरकाल पर्यन्त किये हुए तप से वे भगवान् शङ्कर परम प्रसन्न

हो गये थे। १३७। इसके अनन्तर परम प्रसन्न महादेवजी प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित होकर उस रम्भ से बोले थे। मैं तुम पर परम प्रसन्न हो गया हूँ अब जो भी तेरा इच्छित हो मुझसे वरदान का वरण करलो। १३८। इस रीति से कहा हुआ रम्भ भगवान् चन्द्रशेखर से बोला था। हे महादेवजी !, मैं बिना पुत्र वाला हूँ। यदि आपका मुझ पर अनुग्रह हो तो हे शङ्कर ! मेरे तीन जन्मों में आप ही मेरे पुत्र होकर जन्म ग्रहण करें। ऐसा ही पुत्र हो जो समस्त प्राणियों के द्वारा अवध्य हो और देवगणों का नेता होवे ॥१३९—१४०॥

चिरायुश्च यशस्वी च लक्ष्मीवान् स च शंकर।
एवमुक्तस्तु दैत्येन प्रत्युवाच वृषध्वजः ॥१४१
भवत्वेतद्वाञ्छितं ते भविष्यामि सुतस्तव।
इत्युक्त्वा स महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१४२
रम्भोऽपि याति स्वस्थानं हर्षोत्फुल्लविलोचनः।
पथि गच्छन् स रम्भोऽथ ददर्श महिषीं शुभाम् ॥१४३
त्रिहायणीं चित्रवर्णां सुन्दरीमृतुशालिनीम्।
स तां दृष्ट्वाथ महिषीं रम्भः कामेन मोहितः ॥१४४
दोर्भ्यां गृहीत्वा च तदा चकार सुरतोत्सवम्।
तयोः प्रवृत्ते सुरते तदा सा तस्य तेजसा ॥१४५
दधार महिषी गर्भं तदाऽभून्महिषासुरः।
तस्याः स्वाभेन गिरिशस्तत्पुत्रत्वमवाप्तवान् ॥१४६
ववृधे स तदा शाम्भः शुक्लपक्षशशांकवत्।
तं च कात्यायनमुनिः शप्तवान्महिषासुरम् ॥१४७
दुर्नय वीक्ष्य शिष्यार्थे शिष्यानुग्रहकारकः।
कात्यायनेन शप्तं तं विज्ञाय महिषासुरम्।
प्राह प्रणामपूर्वं तु चण्डिका चन्द्रशेखरः ॥१४८

हे शङ्कर ! वह मेरा पुत्र ऐसा हो जिसकी आयु चिरकाल तक—

की होवे—वह यशस्वी और लक्ष्मीमान् होवे। इस प्रकार से जब उस दैत्य के द्वारा प्रार्थना की गयी तो भगवान् वृषभध्वज ने कहा—।१४१। यह तेरा वाञ्छित हो जावे और मैं तेरा पुत्र हो जाऊंगा। इतना ही कहकर भगवान् वृषभध्वज वहाँ पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥ १४२ ॥ रम्भ भी हर्ष से विकसित लोचनों वाला होता हुआ अपने निवास स्थान को चला गया था। मार्ग में गमन करते हुए उस रम्भ ने शुभ महिषी को देखा था। १४३। वह महिषी चित्रवर्णी—चित्र वर्ण वाली—परम सुन्दरी और ऋतुशालिनी थी। उस रम्भ ने उस महिषी को देखा था और कामदेव से मोहित हो गया था अर्थात् महिषी को देखकर ही उसके हृदय में काम का विकार हो गया था ॥ १४४ ॥ उसी अवसर पर रम्भ ने अपने दोनों बाहुओं से उस महिषी को ग्रहण करके उसके साथ सुरतोत्सव किया था। अर्थात् उससे सङ्गम किया। फिर रति क्रीडा में प्रवृत्त हो जाने पर उसी समय में वह महिषी उसके तेज से युक्त होकर वह गर्भवती हो गयी थी। १४५। महिषी ने गर्भ धारण कर लिया था तभी उसके उदर से महिषासुर समुत्पन्न हुआ था। उस महिषी में अपने ही अंश से भगवान् शङ्कर ने उसके पुत्र हो जाने की प्राप्ति की थी। १४६। वह रम्भ का पुत्र राम्भि शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की ही भाँति बड़ा हो गया था। कात्यायन मुनि ने उस महिषासुर के लिये शाप दे दिया था। १४७। शिष्य के अर्थ में उसको दुर्नय अवलोकन करके शिष्य पर अनुग्रह करने वाले चन्द्रशेखर ने कात्यायन के द्वारा शाप दिये हुए उस महिषासुर का ज्ञान प्राप्त करके चण्डिका से प्रणाम पूर्वक कहा—।१४८।

देवी कात्यायनेनायं शप्तोऽद्य महिषासुरः।
योषिद्विनाशकर्त्रीति भवितेति जगन्मये ॥१४९
निःसंशयमृषेर्वाक्यं भविष्यति न संशयः।
मदीयो माहिषः कायो देवि कार्यस्त्वया त्वयि ॥१५०

हन्तव्यः सतत योगयुक्तः पूर्वे परेऽपि च ।
हरिर्हरिस्वरूपेण न त्वां वोढुं क्षमोऽधुना ॥१५१
ममायं माहिषः कायस्तव वोढा भविष्यति ।
इति पूर्वं महादेवो देवी प्रार्थितवान् पुरा ॥१५२
तेन देवी महादेवं जग्राह महिषासुरम् ।
त्रिषु जन्मसु पुत्रोऽभूद्रम्भस्य भगवान् हरः ॥१५३
सृष्टित्रये स रम्भोऽपि रम्भ एव व्यजायत ।
आसुरं तादृश तेपे तपः परमदारुणम् ॥१५४

ईश्वर ने कहा—आज हे देवि ! यह महिषासुर कात्यायन के द्वारा शाप दिया गया है। इसके विनाश करने वाली दौपद् होगी। इससे हे जगन्मये। महर्षि का वाक्य बिना किसी सन्देह के ही पूर्ण होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यह महिष मेरा ही शरीर है। हे जगन्मयि ! यह तुम्हारे द्वारा वरना है और इसका हनन करना है। पूर्व और पर में भी निरन्तर योग से युक्त मैं हरि हरि के स्वरूप से तुमको वहन करने में अब समर्थ नहीं हूँ ॥ १४६—१५१ ॥ मेरा यह शरीर महिष तुम्हारा वोढा होगा। यह महादेवजी ने पूर्व में पहिले देवी से प्रार्थना की थी। १५२। इससे देवी ने महिषासुर महादेव का ग्रहण किया था। तीनों जन्मों में भगवान् हर रम्भ के पुत्र हुए थे। ॥ १५३ ॥ तीनों सृष्टियों में वह रम्भ भी रम्भ ही होकर समुत्पन्न हुआ था। उसने उसी प्रकार का आसुर तप का तपन किया था जो परम दारुण था। १५४।

तथैवाराधितः शम्भुः पुत्रार्थं प्रददौ वरम् ।
तथैव महिषी भेजे प्रथम सुरताय सः ॥१५५
तस्यां तथाऽभवद्वीरो दानवो महिषासुरः ।
तथैव शेपे भगवान् मुनि कात्यायनस्तु तम् ॥१५६
इति प्रवृत्ते पूर्वेऽस्मिन् परस्मिन् स तु जन्मनि ।

महिषं पूजयित्वाऽथ देवी वरमयाचत ॥१५७
तृतीये जन्मनि वरं प्राप्य कल्पानशेषत ।
नेह मे जन्म भवितेत्येव वरमयाचत ॥१५८
तेन देवीपादले तिष्ठत्येषोऽसुरोऽधुना ।
नोत्पत्तिरपि तस्याथ सवर्तान्तादभून्नृप ॥१५९

उसी भाँति भगवान् शम्भु की आराधना की थी और पुत्रार्थ वरदान प्रदान किया था। उसी रीति से उसने अपनी महिषी का सुरत के लिये सेवन किया था। १५५। उससे उसी प्रकार से दानव महिषासुर दानव वीर हुआ था। भगवान् कात्यायन ने भी उसी प्रकार से उसको शाप दिया था।१५६। पूर्व जन्म में इस प्रकार से प्रवृत्त होने पर उसने पर जन्म में महिष ने देवी का पूजन करके वरकी याचना की थी।१५७। तीसरे जन्म में वर प्राप्त करके अशेष कल्पों में यहाँ पर मेरा जन्म न होवे—यह ही वरदान माँगा था। १५८। इस कारण से देवी के चरणों के तल में इस समय में महिषासुर स्थित रहा करता है। हे नृप! इसके अनन्तर सवर्त के अन्त से उसकी उत्पत्ति भी नहीं हुई थी ॥१५९॥

एवं देवीप्रसादेन महादेवांशसम्भव ।
परामवाप सततं प्रतिपत्तिं महासुर ॥१६०
इति ते कथितं राजन् यथा स महिषासुर ।
देवीपादतलं प्राप्य यथा सोऽद्यापि मोदते ।
प्रस्तुतं शृणु भो राजन् कथयामि नृपोत्तम ॥१६१
इति वः कथितं राजा सगरः सहितो यथा ।
और्व्वेण चक्रे सवाद देवीमहिषयोजने ॥१६२
पुनर्यदाह भूयोऽपि सगराय महात्मने ।
तच्छृण्वन्तु मुनिश्रेष्ठा गुह्याद् गुह्यतरं परम् ॥१६३

इस प्रकार से देवी के प्रसाद से महादेव जी के अंश से उत्पन्न

होने वाले महासुर ने निरन्तर परम प्रति पत्ति का लाभ किया था। ।१६०। वह आज भी देवी के चरणों के तल की प्राप्ति करके परम प्रसन्न होता है। हे राजन्! यह आपके समक्ष में सब कहकर सुना दिया है जिस तरह से महिषासुर था। हे राजन्! अब प्रस्तुत विषय का आप श्रवण कीजिए। हे नृपोत्तम! मैं आपके सामने कहता हूँ। मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—जिस तरह से सहित राजा सागर का और देवी—महिष के योजन में ओर्व्व के साथ सम्वाद किया था—यह सभी आपको बतला दिया है ।१६२। पुनः महात्मा सगर के लिये जो कहा था हे मुनि श्रेष्ठो! उसका आप लोग अब श्रवण कीजिए। यह गोपनीय से भी परम गोपनीय है ॥१६३॥



॥ कामाख्या माहात्म्य ॥

यथाह भगवान देवो भैरवाय महात्मने ।
वेतालाय नृपश्रेष्ठ तथा त्वं प्रतुस्त शृणु ॥१
उग्रचण्डा च या मूर्तिरष्टादशभुजाऽभवत ।
सा नवम्यां पुरा कृष्णपक्षे कन्या गते रवौ ॥२
प्रादुर्भूता महामाया योगिनीकोटिभिः सह ।
आपाद्भ्य तु पूर्णाया सत्र द्वादशवार्षिकम् ॥३
दक्ष कर्तुं समारेभे वृता सर्व दिवौकस ।
ततोऽ‌ङ्ग न वृतस्तेन दक्षेण सुमहात्मना ॥४
कपालीति सती चापि तज्जायेति च नो वृना ।
ततो रोषसमायुक्ता प्राणांस्तत्याज सा सती ॥५
त्यक्तदेहा सती चापि चण्डमूर्तिस्तदाऽभवत् ।
तत्र प्रवृत्ते यज्ञेऽपि तस्मिन् द्वादशवार्षिके ॥६

नवम्या कृष्णपक्षे तु कन्यायां चण्डमूर्तिधृक् ।
योगनिद्रा महामाया योगिनीकोटिभि सह ॥७

और्व मुनि ने कहा—जिस रीति से भगवान् देव ने महात्मा भैरव से कहा था वेताल के लिये कहा था हे नृप श्रेष्ठ ! आप उसी भाँति प्रस्तुत को सुनो ॥१॥ श्री भगवान् ने कहा—जो उग्र चण्डा मूर्त्ति है और जो अठारह भुजाओं वाली हुई थी वह पहिले कन्या राशिगत सूर्य के होने पर कृष्ण पक्ष में नवमी में करोड़ो योगिनियों के सहित महामाया प्रादुर्भूत हुई थी। आषाढ मास की पूर्णिमा में द्वादश वर्ष का होने वाला सत्र होता है। इस सत्र को करने के लिये प्रजापति दक्ष ने समारम्भ किया था और सभी देवों का वरण किया गया था अर्थात् आमन्त्रित थे। उनने मुझे वरण नहीं किया था। अर्थात् महात्मा दक्ष ने मुझे आमन्त्रण नहीं दिया था ॥२॥३॥४॥ वे कपाली अर्थात् कपाल धारी हैं और सती उनकी पत्नी है—इसी लिये वरण नहीं किया था। इसके पश्चात् रोष में समायुक्त होकर उस सती ने प्राणों का परित्याग कर दिया था ॥५॥ देह के त्याग करने वाली सती फिर उस समय में चण्ड मूर्त्ति हो गई थी। फिर बारह वर्ष में पूर्ण होने वाले उस यज्ञ के प्रवृत्त होने पर कन्या के सूर्य में कृष्ण पक्ष में नवमी तिथि के दिन चण्ड मूर्त्ति को धारण करने वाली योगनिद्रा महामाया ने करोड़ो योगिनियों के साथ यज्ञ का नाश किया था ॥६॥७॥

सतीरूप परित्यज्य यज्ञभङ्गमथाकरोत् ।
शङ्करस्य गणै सर्वै सहिता शकरेण च ॥८
स्वयं वभञ्ज सा देवी महासत्रं महात्मन ।
ततो देव्या महाक्रोधे व्यतीते त्रिदिवौकस ॥९
पूजयाञ्चक्रुरतुला देवी पूर्वोदितेन वै ।
पूर्वोदितविधानेन पूजामस्या दिवौकस ॥१०
एवंव परमामापुर्निर्वृतिं दुःखहानये ।

उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान न समाचरेत् ॥१६
यथा तथैव पूतात्मा व्रती देवी प्रपूजयेत् ।
पूजयित्वा महाष्टम्यां नवम्यां बलिभिस्तथा ॥१७
विसर्जयेद् दशम्यां तु श्रवणे शावरोत्सवैः ।
अन्त्यपादो दिवाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥१८
तदा सम्प्रेषणं देव्या दशम्यां कारयेद् बुध ।
सुवासिनी - कुमारीभिर्वेश्याभिर्नर्तकैस्तथा ॥१६
शङ्खतूर्यनिनादश्च मृदङ्गैः पटहैस्तथा ।
ध्वजैर्वस्त्रैर्बहुविधैर्लाजपुष्पप्रकीर्णकैः ॥२०
धूलिकर्दमविक्षेपैः क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ।
भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः ॥२१
भगलिङ्गादिशब्दैश्च क्रीडयेयुरलं जनाः ।
परैर्नाक्षिप्यते यस्तु यः परान्नाक्षिपेद् यदि ॥२२
क्रुद्धा भगवती तस्य शाप दद्यात् सुदारुणम् ।
आदिपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥२३

बहुत जाति वाले बलियों के द्वारा तथा भोजनों से—सिन्दूर—बहु वस्त्र—अनेक प्रकार के विलेपन—पुष्प जो नाना प्रकार के हों—बहुत तरह के कर्मों के द्वारा पूजन करना चाहिये। इस महाष्टमी में जो पुत्र वाला हो उसे उपवास नहीं करना चाहिये ॥१५॥१६॥ जिस-किसी प्रकार से पवित्र आत्मा वाला—व्रतधारी देवी का यजन करे। महाष्टमी में पूजा करके नवमी तिथि में बलियों का समर्पण करके बिदा करे ॥१७॥ दशमी तिथि में श्रवण में शावरोत्सवों के द्वारा जिस समय में दिवा के भाग में श्रवण का अन्तिम चरण होवे उसी समय में देवी का दशमी में बुध पुरुष को सम्प्रेषण करना चाहिये। सुवासिनियों के द्वारा—कुमारियों के वेश्याओं के—नर्तकियों के द्वारा—शंखों—तूर्यों की ध्वनियों से—मृदङ्ग और पटहों के द्वारा—ध्वज—बहुत प्रकार के

वस्त्रों से—लाजा (खील) और पुष्पों के प्रकीर्ण के द्वारा धूलि कर्दम विक्षेपों के द्वारा तथा क्रीड़ा—कौतुक मङ्गलों से भगलिङ्ग विधानों से तथा भग लिङ्ग गीतों में—भगलिङ्ग आदि शब्दों के द्वारा मनुष्यों को पर्याप्त रूप से क्रीड़ा करनी चाहिये ॥१८॥१९॥२०॥२१॥ यदि परों के द्वारा जो आक्षिप्त न हो और जो परों का आक्षेप न करे तो भगवती बहुत क्रुद्ध हो जाती हैं और परम दारुण शाप दे देती हैं। श्रवण का आदि चरण जब निशा भाग में होवे ॥२२॥२३॥

तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां न पुनर्दिवा।
अन्त्यपादो निशाभागे श्रवणस्य यदा भवेत् ॥२४
तदा देव्याः समुत्थानं नवम्यां दिनभागतः।
विसर्जनमनेनैव मन्त्रेण वत्स भैरव ॥२५
कर्तव्यमम्भास स्थाप्य विमृज्य च विभूतये।
उत्तिष्ठ देवि चण्डेशे शुभां पूजां प्रगृह्य च ॥२६
कुरुष्व मम कल्याणमष्टभिः शक्तिभिः सह।
गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके ॥२७
यत् पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे।
व्रज त्वं स्रोतसि जले तिष्ठ गेहे च भूतये ॥२८

उसी समय में नवमी में निशा के भाग में देवी का समुत्थान करे दिन में नहीं करे। निशा के भाग में जब अन्तिम चरण श्रवण का होवे ॥२४॥ उसी समय में देवी का समुत्थान नवमी में दिन के भाग में होता है। हे वत्स भैरव! इसी मन्त्र के द्वारा विसर्जन होता है।२५। कर्तव्य का जल में स्थापित करके विभूति के लिये विसर्जन करना चाहिए। हे देवि! हे चण्डेशे! आप समुत्थान कीजिए और शुभा पूजा का ग्रहण करिये ॥२६॥ अपनी आठों शक्तियों के सहित मेरा कल्याण करिए। हे देवि! हे चण्डिके! अपने परम स्थान को गमन कीजिए प्रस्थान करिए।२७। हे देवि! मेरे द्वारा जो पूजन किया गया है वह

मुझे परिपूर्ण होवे । आप स्त्रोता के जल में गमन करो और भूति के लिए गृह में संस्थित होइए ।२८।

निमज्ज्याम्भसि सन्त्यज्य पत्रिकावर्जिते जले ।
पुत्रायुधनवृद्धयर्थं स्थापितासि जले मया ॥२६
इत्यनेन तु मन्त्रेण देवी संस्थापयेज्जले ।
सर्वलोक-हितार्थाय सर्वलोकविभूतये ॥३०
दुर्गा तन्त्रेण मन्त्रेण पूजितव्ये उभे अपि ।
भद्रकालीमुग्रचण्डा महामाया महोत्सवे ॥३१
नेत्रबीज तु सर्वासा पूजने परिकीर्तितम् ।
योगिनीना तु सर्वासा मूलमूर्तेस्तथैव च ॥३२
मन्त्र तथोग्रचण्डाया पृथक् त्व शृणु भैरव ।
आद्यद्वय नेत्रबीज मन्त्रस्योपान्तमन्तरे ॥३३
वह्निनाऽन्त स्वरेणेन्दुबिन्दुभ्या तन्त्रमौग्रकम् ।
नेत्रबीज द्वितीय तु द्विधावर्तितमुच्यते ॥३४
भद्रकाल्यास्तु मन्त्रोऽय धर्मकामार्थसिद्धये ।
यदा तु वैष्णवी देवी महामाया जगन्मयी ॥३५

जल में निमज्जन करके पत्रिका वर्जित जल में भली भाँति त्याग करके पुत्र—आयु और धन की वृद्धि के लिए मेरे द्वारा जल में आपको स्थापित किया गया है ॥ २६॥ इसी मन्त्र के द्वारा देवी का जल में संस्थापन करना चाहिये । यह सब लोकों के हित के सम्पादन के लिये और सब लोगों की विभूति के लिये करे ॥ ३० ॥ महोत्सव में दुर्गा तन्त्र के मन्त्र के द्वारा भद्रकाली—महामाया उग्रचण्डा दोनों ही देवियों का पूजन करना चाहिए । ३१ । सब देवियों के पूजन में नेत्र बीज परिकीर्तित किया गया है । सब योगिनियों का तथा मूल मूर्ति का तथा उग्र चण्डा का मन्त्र हे भैरव ! आप पृथक् श्रवण कीजिए । अन्तर में मन्त्र का उपान्त आद्यद्वय नेत्र बीज है । अन्त.स्वरवह्नि से—इन्दु बिन्दुओं से औग्रक तन्त्र है । द्वितीय तो नेत्र

बीज द्विधा वर्णित कहा जाता है ॥ ३२—३४ ॥ यह भद्रका का मन्त्र है जो धर्म—काम और अर्थ की सिद्धि के लिए है। जिस समय में वैष्णवी देवी जगन्मयी महामाया है ।३५।

पूज्यते वैष्णवी देवी तन्त्रोक्ता अष्टयोगिनी ।
ता प्रोक्ता शैलपुत्र्याश्च पूर्वकल्पे च भैरव ॥३६
उग्रचण्डादयश्चाष्टौ दुर्गातन्त्रस्य कीर्तिता ।
भद्रकाल्यास्तु मन्त्रेण भद्रकाली प्रपूजयेत् ॥३७
पूजयेद् भूतिवृद्ध्यर्थमिमा एवाष्टयोगिनी ।
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनीम् ॥३८
दुर्गा शिला क्षमा धात्री दलेष्वष्टसु पूजयेत् ।
यदोग्रचण्डातन्त्रेण सा देवी तत्र पूज्यते ॥३६
योगिन्यस्तत्र पूज्या स्युरष्टावन्याश्च भैरव ।
कौशिकी शिवदूती च उमा हैमवतीश्वरी ॥४०
शाकम्भरी च दुर्गा च सप्तमी च महोदरी ।
उमायाः सौम्यमूर्तेस्तु तन्त्र त्व शृणु भैरव ॥४१
पादि समाप्तिसहित. फडन्तो नान्त एव च ।
एकाक्षरस्त्र्यक्षरश्च उमामन्त्र इति स्मृत ॥४२

आठ योगिनियों वाली तन्त्र म वर्णित वैष्णवी देवी का यजन किया जाया करता है। हे भैरव पूर्व कल्प म वे शैल की पुत्री कही गयी हैं ॥३६॥ उग्रचण्डा आदि आठ दुर्गा तन्त्र की कीर्त्ति की गयी हैं। भद्रकाली के मन्त्र के द्वारा भद्र काली का पूजन करना चाहिये। ॥३७॥ ये आठों योगिनियों का भूति की वृद्धि के लिये अभ्यर्चन करना चाहिए। अब उन आठो के नाम बतलाये जाते हैं—जयन्ती—मङ्गला—काली—भद्रकाली—कपालिनी—दुर्गा—शिला—क्षमा—धात्री इनका आठ दलो मे पूजन करे। जिस समय में उग्र चण्डा तन्त्र के द्वारा वहाँ पर वह देवी पूजी जाती है ॥३८॥ हे भैरव ! वहाँ पर आठ योगि-

नियाँ जो अन्य हैं पूजनी चाहिए अब इनके भी नाम बतलाये जाते हैं—कौशिकी—शिव दूती—उमा—हैमवतीश्वरी—शाकम्भरी—दुर्गा—सातवीं महोदरी है। हे भैरव! सौम्य मूर्त्ति उमा का तन्त्र अब आप श्रवण कीजिए ॥४०॥४१॥ समाप्ति के सहित पादि पद् जिसके अन्त में होवे और अन्त ही न होवे। एक अक्षर वाला और तीन अक्षरों से सयुत उमा का मन्त्र कहा गया है ॥४२॥

सुवर्णसदृशी गौरी भुजद्वयसमन्विताम्।
नीलारविन्द वामेन पाणिना बिभ्रती सदा ॥४३
शुक्लं तु चामर धृत्वा भर्गस्याङ्केऽस्य दक्षिणे।
विन्यस्य दक्षिण हस्त तिष्ठन्ती परिचिन्तयेत् ॥४४
विनापि शम्भु रुद्राणी भक्तस्तु परिचिन्तयेत्।
द्विभुजा स्वर्णगौराङ्गी पद्मचामरधारिणीम् ॥४५
व्याघ्रचर्मस्थिते पद्मे पद्मासनगता सदा।
एतस्या पूजने प्रोक्ता अष्टौ वेतालभैरव ॥४६
योगिन्यो नायिकाश्चापि पृथक्त्वेन व्यवस्थिता.।
जया च विजया चैव मातङ्गी ललिता तथा ॥४७
नारायण्यथ सावित्री स्वधा स्वाहा तथाऽष्टमी।
पूर्वं शुम्भो निशुम्भश्च दानवौ भ्रातरावुभौ ॥४८
बभूवतुर्महासत्त्वौ महाकायौ महाबलौ।
अन्धकस्य सुतौ द्वौ तौ दन्तिनाविव दुर्मदौ ॥४९
मया विनिहिते तस्मिन्नन्धकाख्ये महाबले।
ससैन्यवाहनौ तौ तु पातालतलमाश्रितौ ॥५०

अब ध्यान बतलाया जाता है—सुवर्ण के समान वर्ण वाली है—गौरी—दो भुजाओं से युक्त हैं—बाँये हाथ से नील कमल को सदा धारण किये रहती हैं ॥४३॥ शुक्ल चामर को धारण करके भर्ग के दाहिने अङ्क में दाहिने हाथ का विन्यास करके सस्थित हैं—ऐसा ही

परिचिन्तन करना चाहिए । ४४ । भक्त को शम्भु के विना भी रुद्राणी का ध्यान करना चाहिए । जो दो भुजाओं वाली है—स्वर्ण के सदृश परम शुभ्र अङ्गों से समन्वित है—पद्म तथा चामरों को धारण करने वाली है । व्याघ्र के चर्म पर स्थित पद्म पर सदा पद्मासन में संस्थित है । हे वेताल भैरव ! इसके पूजन में आठ योगिनियाँ बतायी गयी हैं ॥ ४५—४६ ॥ योगिनियों और नायिकाएँ भी पृथक् व्यवस्थित हैं—अब उन आठों के नाम बताये जाते हैं—जया—विजया—मातङ्गी—ललिता—नारायणी—सावित्री—स्वधा—स्वाहा ये हैं । पहिले समय में शुम्भ और निशुम्भ—ये दो भाई दानव थे ॥ ४७—४८ ॥ ये दोनों महान सत्व वाले थे । इनका विशाल शरीर था । ये महान् बल वाले थे अन्धक दानव के पुत्र थे और ये दोनों मतवाले दुर्मद गजों के ही समान थे । ४९ । ये अन्धक नाम वाले महान् बलवान् मेरे द्वारा ही विनिहत हुए थे । वे दोनों सेना के सहित रहते थे और उनके वाहन भी थे । वे पाताल तल में समाश्रित थे । ५० ।

ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं ब्रह्माणन्तौ महासुरौ ।
सम्यक् सदाऽतोषयतां स सुप्रीतो वरं ददौ ॥५१
तौ ब्रह्मवरदृप्तौ तु समासाद्य जगत्त्रयम् ।
इन्द्रत्वमकरोच्छुम्भश्चन्द्रत्वं च निशुम्भक ॥५२
सर्वेषामेव देवानां यज्ञभागानु[illegible] ।
स्वयं शुम्भो निशुम्भश्च दिक्पालत्वं च [illegible] ॥५३
सर्वे सुरगणाः सेन्द्रास्ततो गत्वा [illegible] ।
गंगावतारनिकटे महामाया [illegible] ॥५४
अनकेशः स्तुता देवी तदा [illegible] ।
मातङ्गवनितामूर्तिर्भू[illegible] [illegible] ॥५५
युष्माभिरमरैरत्र [illegible] ।
किमर्थमागता यूयं [illegible] ॥५६
[illegible]

का तपन किया था और उस समय में तप के द्वारा उन्होंने ब्रह्माजी को परम सन्तुष्ट कर लिया था। ब्रह्माजी ने बहुत ही प्रसन्न होकर उनको वरदान दिया था। ५१। वे दोनों ही ब्रह्माजी के द्वारा वर प्राप्त करके बहुत घमण्डी हो गये थे और उन्हों तीनों लोकों को प्राप्त कर लिया था। शुम्भ ने इन्द्र के पद को प्राप्त करके इन्द्रत्व कर लिया था और निशुम्भ ने चन्द्रत्व प्राप्त कर लिया था। ५२। इन्होंने समस्त देवगणों के जो यज्ञों में भाग थे उनका उपाहरण कर लिया था। स्वयं शुम्भ और निशुम्भ ने दिक्पालों के पद को प्राप्त कर लिया था। ५३। इन्द्र के सहित समस्त देवगण फिर हिमाचल पर गये थे और गङ्गावतरण के स्थल के समीप में उन्होंने महामाया की स्तुति की थी। ५४। नाना भाँति से स्तवन की हुई देवी जो कि सभी देवों के समुदायों द्वारा स्तुत हुई थी मातङ्ग वनिता का स्वरूप धारण करके उस देवी ने देवगणों से पूछा था। ५५। हे देवगणो ! यहाँ पर आपके द्वारा कौन सी भामिनी का स्तवन किया जा रहा है और आप लोग यहाँ पर किस लिये समागत हुए हैं किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये इस मातङ्ग के आश्रम की ओर आये हैं ? । ५६।

एवं ब्रुवन्त्या मातङ्ग्यास्तस्यास्तु कायकोषतः ।
समुद्भूताऽब्रवीद् देवी मां स्तुवन्ति सुरा इति ।।५७
शुम्भो निशुम्भो ह्यसुरौ वाधेते सकलान् सुरान् ।
तस्मात् तयोर्वधायाहं स्तूये तै सवर्लैः सुरैः ।।५८
विनिःसृतायां देव्यां तु मातङ्ग्याः कायकोषतः ।
भिन्नाञ्जननिभा कृष्णा साऽभूद गौरी क्षणादपि ।।५९
कालिकाख्याऽभवत् सापि हिमाचलकृताश्रया ।
तामुग्रतारामृषयो वदन्तीह मनीषिणः ।।६०
उग्रादपि भयात्त्राति यस्माद् भक्तान् सदाम्बिका ।
एतस्याः प्रथमं बीजं कथितं त्रयमेव च ।।६१

एषैवैकजटाख्या तु यस्मात्तस्माज्जटैकिका ।
शृणुतं चिन्तनं चास्याः सम्यग्वेतालभैरवौ ॥६२
यया ध्यात्वा महादेवीं भक्तः प्राप्नोत्यभीप्सितम् ।
चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥६३

इस प्रकार से यह बोलती हुई उस मातङ्गी के काय कोष से समुद्भूत हुई देवी ने कहा—ये सुरगण मेरा ही स्तवन कर रहे हैं ।५७। शुम्भ और निशुम्भ ये असुर समस्त देवों को बाधा दिया करते हैं। इसी कारण से उन दोनों के वध करने के ही लिये इन समस्त सुरों के द्वारा मेरा स्तवन किया जा रहा है ॥ ५८ ॥ मातङ्गी के काय कोष से देवी के विनिसृत होने पर वह गौरी पिसे हुए अञ्जन के समान ही एक ही क्षण में कृष्ण वर्ण की हो गयी थी। ५६। वह भी कालिका नाम वाली हो गई थी और वह हिमवान् पर्वत में समाश्रय वाली थी। ऋषिगण जो मनीषी हैं उनको यहाँ पर उग्र तारा नाम से कहा करते हैं। ६०। यह अम्बिका देवी सदा अत्युग्र भय से भी परित्राण किया करती है। इसका प्रथम बीज तीनों ही कहे गये हैं। ६१। यह ही इसी कारण से एक जटा नाम वाली है क्योंकि एक ही जटा वाली है। हे वेताल भैरवो ! इसका चिन्तन अर्थात् ध्यान किस प्रकार से करना चाहिए उसको अब आप लोग श्रवण करिए। ६२। जिस प्रकार से भक्त ध्यान करके अपना अभीप्सित प्राप्त किया करता है—वह चार भुजाओं से समन्वित हैं उनका वर्ण एकदम कृष्ण है और यह नरमुण्डों की माला से शोभायमान है। ६३।

खड्ग दक्षिणपाणिभ्यां बिभ्रतीं चामरं त्वधः ।
कर्त्रीं च खर्परं चैव क्रमाद्वामेन बिभ्रतीम् ॥६४
द्यां लिखन्तीं जटामेकां बिभ्रतीं शिरसा स्वयम् ।
मुण्डमालाधरां शीर्षे ग्रीवायामपि सर्वदा ॥६५
वक्षसा नागहारं तु बिभ्रतीं रक्तलोचनाम् ।

कृष्णवस्त्रधरा कट्या व्याघ्राजिन-समन्विताम् ॥६६
वामपाद शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम् ।
विन्यस्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवं स्वयम् ॥६७
साट्टहासा महाघोरां रावयुक्तातिभीषणाम् ।
चिन्त्याग्रे तारा सततं भक्तिमद्भि- सुखेप्सुभिः ॥६८
एतस्याः सम्प्रवक्ष्यामि या अष्टौ योगिनीः स्मृता ।
महकाल्यथ रुद्राणा उग्रा भीमा तथैव च ॥६९
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ।
भैरवी चाष्टमी प्रोक्ता योगिनीस्ताः प्रपूजयेत् ॥७०

दाहिने हाथो से वह खड्ग को धारण किये हुए हैं और अधोभाग मे चमर कर रही हैं। क्रम से बाँये हाथ से खर्पर को धारण करने वाली हैं। ६४। स्वय शिर के द्वारा एक जटा को धारण कर रही हैं। जो द्यौलोक को मानो जटा से लिख रही होवें। मस्तक में मुण्डो की माला पहिने हुए हैं और सर्वदा ग्रीवा मे भी मुण्डमाला धारण करती हैं। ६५। उनके वक्ष. स्थल मे नागो का हार है और उनके नेत्र रक्त वर्ण के हैं। कटि मे कृष्ण वर्ण के वस्त्र धारण करने वाली है तथा वायम्बर से भी समन्वित रहती हैं ॥ ६६ ॥ उनका बायां चरण शव के हृदय पर है तथा दाहिना चरण सिंह की पीठ पर संस्थापित हो रहा है और स्वयं शव को अपनी लम्बी जिह्वा से चाट रही हैं। ६७। अट्टहास करती हुई महान् घोर ध्वनि वाली अत्यन्त ही भीषण स्वरूप वाली हैं। निरन्तर सुख की इच्छा वाले भक्तियुक्त भक्तो के द्वारा आगे वह तारा देवी चिन्तन के योग्य हैं। ६८। अब इस देवी की जो आठ योगिनियाँ कही गयी हैं उनको मैं बतलाऊँगा। उनके अब नाम बतलाये जाते हैं—महाकाली—रुद्राणी—उग्रा—भीमा—घोरा—भ्रामरी—महारात्रि और आठवी भैरवी बतलायी गई है। उन योगनियो का यजन करना चाहिए ॥ ६९—७० ॥

या कामकोपाग्निःसृता कालिकायास्तु भैरव ।
सा कौशिकीति विख्याता चारुरूपा मनोहरा ॥७१
निःसृता हृदयाद् देव्या रसनाग्रेण चण्डिका ।
नैतस्याः सदृशी मूर्त्या चारुरूपेण विद्यते ॥७२
त्रिषु लोकेषु कान्त्या वा नास्यास्तुल्या भविष्यति ।
योगनिद्रा महामाया या मूलप्रकृतिर्मता ॥७३
तस्याः प्राणस्वरूपेयं देवी या कौशिकी स्मृता ।
नेत्रबीजं तथैतस्या बीजं तु परिकीर्तितम् ॥७४
मन्त्रमस्याः प्रवक्ष्यामि मूर्तिरूपं च भैरव ।
समाप्तिनान्त्यदन्त्यस्तु पञ्चवर्गादि-सबिन्दुभिः ॥७५
षष्ठस्वरेण संस्पृष्टो बिन्दुना समलंकृतः ।
कौशिकीमन्त्रमन्त्रोऽयं सर्वकामार्थदायकः ॥७६
तस्यास्तु सम्प्रवक्ष्यामि या मूर्तिरिह भैरव ।
शृणुष्वैकमना भूत्वा जगदाह्लादकारकम् ॥७७

हे भैरव ! जो कालिका के काम कोप से निकली थी वह कौशिकी—इस शुभ नाम से विख्यात हुई थी । वह परम सुन्दर—स्वरूप वाली और अत्यधिक मनोहर थी ॥७१॥ वह देवी के हृदय से निःसृत हुई थी रसना के अग्रभाग से चण्डिका निकली थी । वह इतनी अधिक सुन्दर थी कि इसके समान कोई भी अपनी मूर्ति की चारु रूपता से युक्त नहीं थी ॥७२॥ तीनों लोकों में कान्ति से इसके तुल्य कोई भी है और न होगी । जो महामाया योग निद्रा मूल प्रकृति मानी गयी है । ॥७३॥ जो यह कौशिकी देवी कही गयी है यह उसको प्राण की स्वरूप वाली है । तथा इसका नेत्र बीज बीज कहा गया है ॥७४॥ हे भैरव ! इसका मन्त्र और मूर्ति रूप को मैं कहूँगा । समाप्ति नान्त्य दन्त्य बिन्दुओं के सहित पञ्चवर्गादि जो परस्पर में संस्पृष्ट हो और बिन्दु से समलंकृत होवे यह कौशिकी मन्त्र का मन्त्र है जो समस्त काम और अर्थ

है और रत्न निर्मित केयूरों को पहिने हुये है। वह मृणाल के सदृश आयत एवं सुवृत्त तथा कोमल और शुभ बाहुओं से समन्वित है ॥८१॥ जो कञ्चुकी के समेत पीन एवं उन्नत पयोधरों वाली शोभायमान है। इसका मध्यभाग बहुत क्षीण है—पीत वर्ण के वस्त्रों वाली है और त्रिवली से विभूषित है ॥८२॥ वह देवी अपने दाहिने ओर के करों के द्वारा शूल—वज्र बाण—खड्ग और शक्ति को धारण करके विराजमान है। ॥८३॥ वह देवी अपने बाँयें करों में ऊर्ध्वादि क्रम से ही गदा—घंटा—चाप – चर्म और शङ्ख को धारण करने वाली है ॥८४॥

सिंहस्योपरि तिष्ठन्ती व्याघ्रचर्माणि कौशिकी।
बिभ्रती रूपमतुलं समरासुरमोहनम् ॥८५
एतस्याः शृणु वत्स त्वं याः पूज्या अष्टयोगिनीः।
ताः पूजिताश्च कुर्वन्ति चतुर्वर्गं नृणां सदा ॥८६
ब्रह्माणी प्रथमा प्रोक्ता ततो माहेश्वरी मता।
कौमारी चैव वाराही वैष्णवी पञ्चमी तथा ॥८७
नारसिंही तथैवैन्द्री शिवदूती तथाऽष्टमी।
एताः पूज्या महाभागा योगिन्यः कामदायिकाः ॥८८
देव्या ललाटनिष्क्रान्ता या कालीति च विश्रुता।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि कामदं शृणु भैरव ॥८९
समाप्तिसहितो दन्त्य प्रान्तस्तस्मात् पुरःसरः।
षष्ठस्वराग्निविन्द्विन्दुसहितः सादिरेव च ॥९०
कालीमन्त्रमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थदायकम्।
एतन्मूर्ति प्रवक्ष्यामि वत्सैकाग्रमनाः शृणु ॥९१

यह कौशिकी देवी सिंह के ऊपर संस्थित है तथा व्याघ्र के चर्म को अर्थात व्याघ्राम्बर को धारण किये हुए है। उनका रूप अतुल अर्थात अनुपम है—जो सभी सुरों और असुरों के मोहन करने वाला है ॥८५॥ हे वत्स ! इसकी जो आठ योगिनी पूजा के योग्य है उनके विषय में

का देने वाला है ॥७५।७६॥ हे भैरव ! उसकी जो यहाँ पर मूर्त्ति है उसको मैं बतलाऊँगा । आप एक मन वाले होकर उसका श्रवण करिये। यह जगत् के आह्लाद का करने वाला है ॥७७॥

धम्मिल्लसयनकचा विधोश्चाधोमुखी कलाम् ।
केशान्ते तिलकस्योर्ध्वे दधती सुमनोहरा ॥७८
मणिकुण्डलसंपृष्टगण्डा मुकुटमण्डिता ।
मज्ज्योनि कर्णपूराभ्यां कर्णमापूर्य सगता ॥७९
सुवर्णमणिमाणिक्यनागहारविराजिता ।
सदा सुगन्धिभि पद्मैरम्लानैरतिसुन्दरी ॥८०
माला बिभर्ति ग्रीवायां रत्नकेयूरधारिणी ।
मृणालायतवत्तैस्तु बाहुभि कोमलैं शुभैं ॥८१
राजन्ती कञ्चुकोपेत पीनोन्नत पयोधरा ।
क्षीणमध्या पीतवस्त्रा त्रिवलीप्रक्ष्यभूषिता ॥८२
शूल चक्र च बाण च खड्ग शक्ति तथैव च ।
दक्षिणे पाणिभिर्देवी गृहीत्वा तु विराजिता ॥८३
गदा घण्टा च चाप च चर्म शख तथैव च ।
ऊर्ध्वादिक्रमतो देवी दधती वामपाणिभि ॥८४

अब उसके स्वरूप का वर्णन किया जाता है—धम्मिल पुष्पों के द्वारा जिसके केश ससयन हैं—केशों के अन्त के और तिलक के ऊर्ध्व भाग में चन्द्र की नीचे की ओर मुख वाली कला को धारण किये हुए हैं और परम मनोहर है। मणियों से परिपूर्ण कुण्डलों से जिसके गण्ड स्थल संस्पृष्ट हो रहे हैं तथा जिसका मस्तक मुकुट से विभूषित है। कर्णपूरों की चन्द्रज्योति कानों का आपूरित करके सङ्गत हो रही है और वह सुवर्ण—मणि तथा माणिक्यों के सहित नागहार से विराजमान है। वह सर्वदा सुगन्ध युक्त पद्मों से जो कि म्लान नहीं हैं अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाली है ॥७८—८०॥ जो अपनी ग्रीवा में माला को धारण किये हुये

है और रत्न निर्मित केयूरों को पहिने हुये हैं। वह मृणाल के सदृश आयत एवं सुवृत्त तथा कोमल और शुभ कङ्कणों से समन्वित है ॥८१॥ जो कञ्चुकी के समेत पीन एवं उन्नत पयोधरों वाली शोभायमान है। इनका मध्यभाग बहुत क्षीण है—पीत वर्ण के वस्त्रों वाली हैं और त्रिवली से विभूषित है ॥८२॥ वह देवी अपने दाहिने ओर के करों के द्वारा शूल—वज्र बाण—खड्ग और शक्ति को धारण करके विराजमान है। ॥८३॥ यह देवी अपने बाँयें करों में ऊर्ध्वादि क्रम से ही गदा—घटा—चाप - चर्म और शंख को धारण करने वाली है ॥८४॥

सिंहस्योपरि तिष्ठन्ती व्याघ्रचर्मणि कौशिकी ।
बिभ्रती रूपमतुलं सुरासुरमोहनम् ॥८५
एतस्याः शृणु वत्स त्वं या पूज्या अष्टयोगिनीः ।
ताः पूजिताश्च कुर्वन्ति चतुर्वर्गं नृणां सदा ॥८६
ब्रह्माणी प्रथमा प्रोक्ता ततो माहेश्वरी मता ।
कौमारी चैव वाराही वैष्णवी पञ्चमी तथा ॥८७
नारसिंही तथैवेन्द्री शिवदूती तथाऽष्टमी ।
एताः पूज्या महाभागा योगिन्यः कामदायिकाः ॥८८
देव्या ललाटनिष्क्रान्ता या कालीति च विश्रुता ।
तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि कामदं शृणु भैरव ॥८९
समाप्तिसहितो दन्त्य प्रान्तस्तस्मात् पुरःसरः ।
षष्ठस्वराग्निबिन्द्विन्दुसहितः सादिरेव च ॥९०
कालीमन्त्रमिति प्रोक्तं धर्मकामार्थदायकम् ।
एतन्मूर्तिं प्रवक्ष्यामि वत्सैकाग्रमनाः शृणु ॥९१

वह कौशिकी देवी सिंह के ऊपर संस्थित हैं तथा व्याघ्र के चर्म को अर्थात् बाघम्बर को धारण किये [illegible] है। उनका रूप अतुल अर्थात् अनुपम है—जो सभी सुरों और असुरों के मोहन करने वाला है ॥८५॥ हे वत्स ! इसकी जो आठ योगिनी पूजा के योग्य हैं उनके विषय में

आप श्रवण करिये। वे पूजित होती हुई मनुष्यों के चतुर्वर्ग को सदा दिया करती हैं ॥८६॥ अब उन आठों के शुभ नाम बतलाये जाते हैं—सर्व प्रथम ब्रह्माणी कही गयी है—फिर माहेश्वरी—कौमारी—वारा ही—तथा पाँचवी वैष्णवी है—नारसिंही—ऐन्द्री—तथा आठवी शिवदूती है। इन महामाया योगिनियों का अभ्यर्चन करना चाहिए। ये कामनाओं के प्रदान करने वाली है ॥८७॥८८॥ जो देवी के ललाट से विनिर्गत हुई थी वह काली—इस नाम से प्रसिद्ध है। हे भैरव! उस काली का मन्त्र मैं बतलाऊँगा—उसका आप श्रवण करिए। मन्त्र कामनाओं का प्रदान करने वाला है ॥८९॥ समाप्ति के सहित दन्त्य है और उसके आगे रहने वाला प्रान्त होता है। छटवें स्वर—अग्नि और बिन्दु के सहित होता है तथा थादि से भी सहित होता है ॥९०॥ यही काली का मन्त्र बताया गया है। यह धर्म—काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है। अब इसकी मूर्ति का वर्णन करूँगा। हे वत्स! तुम एकाग्र मन वाले होकर उसका श्रवण करिए ॥९१॥

नीलोत्पलदलश्यामा चतुर्बाहुसमन्विता।
खट्वाङ्गं चन्द्रहासं च बिभ्रती दक्षिणे करे ॥९२
वामे चर्म च पाशं च ऊर्ध्वाधोभागत पुनः।
दधती मुण्डमालां च व्याघ्रचर्मधरा वराम् ॥९३
कृशाङ्गी दीर्घदंष्ट्रा च अतिदीर्घातिभीषणा।
लोलजिह्वा निम्नरक्त-नयना नादभैरवा ॥९४
कबन्धवाहनासीना विस्तार-श्रवणानना।
एषा ताराह्वया देवी चामुण्डेति च गीयते ॥९५
एतस्या योगिनीश्चाष्टौ पूजयेच्चिन्तयेद् यदि।
त्रिपुरा भीषणा चण्डी कर्त्री हर्त्री विधायिनी ॥९६
कराला शूलिनी चेति अष्टौ ताः परिकीर्तिताः।

एषाऽतिकामदा देवी जाड्यहानिकरी सदा ॥९७
एतस्या सदृशी काचित् कामदा न हि विद्यते ।
कौशिक्या हृदयाद् देवी नि सृता ध्यायतो हरे ॥९८

स्वरूप का वर्णन अब किया जाता है—वह नील कमल के समान श्याम वर्ण वाली हैं और चार बाहुओं से समन्वित उनका वपु है। वह अपने दाहिने कर में खट्वाङ्ग और चन्द्र हास को धारण करने वाली हैं ॥९३॥ वाम करमें पुन ऊर्ध्व और अधो भाग में चर्म और पाश को धारण किये हुये हैं। कण्ठ में नरमुन्डों की माला पहिने हुये है और व्याघ्र के चर्म को धारण करने वाली परम श्रेष्ठ हैं ॥९३॥ उनका अङ्ग कृश है और लम्बी दाढ़ों वाली है तथा अत्यन्त दीर्घ अर्थात् लम्बी एवं अत्यन्त भीषण स्वरूप से समन्वित हैं। उनकी जिह्वा अतीव चञ्चल है—निम्न रक्त वर्ण वाले नेत्रों से संयुत है—उनका समान भैरव अर्थात् नाद है ॥९४॥ मृत मनुष्य के ग्रह को वाहन बना कर उपविष्ट हैं और उनके श्रवण तथा मुख विस्तार वाले हैं। इस प्रकार के स्वरूप से सम्पन्न यह तारा देवी हैं और यह चामुण्डा—इस नाम से गान की जाया करती हैं ॥९५॥ इस देवी की आठ योगिनियाँ हैं यदि उनका यजन एवं ध्यान किया जावे। उनके ये शुभ नाम हैं—त्रिपुरा—भीषणा—चन्डी—कर्त्री—हर्त्री—विधायिनी ॥९६॥ कराला और शूलिनी—ये आठ वे कीर्तित की गयी हैं। यह देवी अति काम की हानि करने वाली हैं। अर्थात् जड़ता के भाव का विनाश कर देने वाली है। ९७॥ इस देवी के समान कोई भी कामनाओं के देने वाली नहीं है। यह देवी कौशिकी के हृदय से निकली हैं और ध्यान करने वाले हरि की यह प्रसिद्ध हैं ॥९८॥

शिवदूतीति सा ख्याता या च देवगणैर्वृता ।
मन्त्रमस्या प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थदायकम् ॥९९
यच्छ्रुत्वा साधको याति दुर्लभ शिवमन्दिरम् ।

मुन्डों की माला धारण किये हुये रहती हैं और मस्तक में जटा-जूट तथा अर्द्ध चन्द्र विराजमान रहा करता है। नागों के कुण्डलों तथा हार से शोभायमान हैं और उसके नख परम उज्ज्वल हैं ॥१०५॥

व्याघ्रचर्म-परीधानं दक्षिणे शूलखड्गधृक् ।
वामे पाशं तथा चर्म बिभ्रदूर्ध्वापरक्रमात् ॥१०६
स्थूलवक्त्रं च पीनोष्ठं तुंगमतिं भयंकरम् ।
निक्षिप्य दक्षिणं पादं सन्तिष्ठन् कुणपोपरि ॥१०७
वामपादं शृगालस्य पृष्ठे फेरुशतैर्वृतम् ।
ईदृशीं शिवदूत्यास्तु मूर्तिं ध्यायेद् विभूतये ॥१०८
ध्यानमात्रादथैतस्या नरः कल्याणमाप्नुयात् ।
पूजनादचिराद् देवी सर्वान् कामान् ददाति च ॥१०९
यः शिवाविरुतं श्रुत्वा शिवदूतीं शुभप्रदाम् ।
प्रणमेत् साधको भक्त्या तस्य कामाः करे स्थिताः ॥११०
यदा जघान जगतां रक्तबीजं हिताय वै ।
महादेवी महामाया तदास्याः कायतः सुताः ॥१११
दूतं प्रस्थापयामास शिवं शुम्भाय साम्बिका ।
तेन सा शिवदूतीति देवैः सर्वैः प्रगीयते ॥११२

यह देवी बाघम्बर का परिधान करती है। दक्षिण भुजाओं में शूल—खड्ग धारण किया करती हैं तथा बाँये करों में पाश तथा चर्म ऊर्ध्व तथा अधो भाग के क्रम से धारण करने वाली हैं ॥१०६॥ इनका मुख स्थूल है—पीन अर्थात् मोटे ओष्ठ हैं—इनकी मूर्ति बहुत ऊँची है और यह परमाधिक भयङ्कर है—यह दाहिने चरण को कुणपके ऊपर निक्षिप्त करके संस्थित रहती हैं। इनका बाँया चरण शृगाल की पीठ पर रहता है जो शृगाल सैकड़ों ही फेरुओं से घिरा हुआ होता है। इस प्रकार की शिव दूती की प्रतिमा है। इसका ध्यान विभूति की वृद्धि के लिये करना

यामाराध्य महादेवी शिवदूती शिवात्मिकाम् ॥१००
नचिराल्लभते कामान नर सर्वजयी भवेत् ।
अन्त समाप्तिसहितो विन्द्विन्दुभ्यां दशावरः ॥१०१
स्वरेणोपान्तदन्त्येन संस्पष्टोऽन्तेन पूर्वगः ।
स एव विन्दुयुगलपर्वस्थोपान्तपावकः ॥१०२
षष्ठस्वरकलाशून्यैं सहितः प्रथमस्थित. ।
मन्त्रोऽय शिवदूत्यास्तु शिवदूतीजयप्रद ॥१०३
रूपमस्या प्रवक्ष्यामि शृणु वत्सैकसम्मत ।
चतुर्भुजं महाकायं सिन्दूरसदृशद्युति ॥१०४
रक्तदन्त मुण्डमाला-जटाजूटार्धचन्द्रधृक ।
नागकुण्डलहाराभ्यां शोभित नत्त्ररोज्ज्वलम् ॥१०५

यह देवी शिवदूती नाम से प्रसिद्ध हैं और सैकड़ो देवो से सर्वदा समावृत रहा करती हैं । अब मैं इसका मन्त्र बतलाऊँगा जो धर्म—काम और अर्थ का प्रदान करने वाला है ॥ ९९ ॥ जिसका श्रवण करके साधना करने वाला व्यक्ति परम दुर्लभ भगवान् शिव के मन्दिर में गमन किया करता है । जिस महा देवी की आराधना करके जो कि शिव दूती और शिव के ही स्वरूप वाली हैं मनुष्य अवि लम्ब ही समस्त कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है और सब विजय प्राप्त कर लेने वाला हो जाता है । अन्त समाप्ति के सहित है और विन्दु तथा इन्दु से दशावर है ॥१००॥१०१॥ उपान्त दन्त्य स्वर से अन्त से पूर्व से संस्पृष्ट होता है । वह ही दो विन्दु पूर्व में स्थित उपान्त पावक है ॥१०२॥ छटे स्वर कला से शून्यों के सहित प्रथम स्थित है । यह शिव दूती का मन्त्र है जो शिवदूती के जप को प्रदान करने वाला है।१०३। हे वत्स ! अब मैं इसके स्वरूप का वर्णनकरूँगा । आप एकाग्र चित्त होकर ही इसका श्रवण करिये । इसको चार तो भुजायें हैं—परम विशाल शरीर है और सिन्दूर के समान ही इसकी आकृति है ।१०४। रक्त वर्ण वाली इसकी दन्त पंक्ति है । कंठ मे नर

मुन्डों की माला धारण किये हुये रहती हैं और मस्तक में जटा-जूट तथा अर्ध चन्द्र विराजमान रहा करता है। नागों के कुण्डलों तथा हार से शोभायमान हैं और उसके नख परम उज्ज्वल हैं ॥१०५॥

> व्याघ्रचर्म-परीधानं दक्षिणे शूलखड्गधृक् ।
> वामे पाशं तथा चर्म बिभ्रदूर्ध्वापरक्रमात् ॥१०६
> स्थूलवक्त्रं च पीनोष्ठं तुंगमतिभयंकरम् ।
> निक्षिप्य दक्षिणं पादं सन्तिष्ठन् कुणपोपरि ॥१०७
> वामपादं शृगालस्य पृष्ठे फेरुशतैर्वृतम् ।
> ईदृशीं शिवदूत्यास्तु मूर्तिं ध्यायेद विभूतये ॥१०८
> ध्यानमात्रादथैतस्या नरः कल्याणमाप्नुयात् ।
> पूजनादचिराद् देवी सर्वान् कामान् ददाति च ॥१०९
> यः शिवादूतिं अथवा शिवदूतीं शुभप्रदाम् ।
> प्रणमेत् साधको भक्त्या तस्य कामाः करे स्थिताः ॥११०
> यदा जघान जगतां रक्तबीजं हिताय वै ।
> महादेवी महामाया तदास्याः कायतः सुताः ॥१११
> दूतं प्रस्थापयामास शिवं शुम्भाय सात्विका ।
> तेन सा शिवदूतीति देवैः सर्वैः प्रगीयते ॥११२

यह देवी बाघम्बर का परिधान करती हैं। दक्षिण भुजाओं में शूल—खड्ग धारण किया करती हैं तथा बाँये करों में पाश तथा चर्म ऊर्ध्व तथा अधो भाग के क्रम से धारण करने वाली हैं ॥१०६॥ इनका मुख स्थूल है—पीन अर्थात् मोटे ओष्ठ हैं—इनकी मूर्ति बहुत ऊँची है और यह परमाधिक भयङ्कर हैं—यह दाहिने चरण को कुणपके ऊपर निक्षिप्त करके संस्थित रहती हैं। उनका बाँया चरण शृगाल की पीठ पर रहता है जो शृगाल सैकड़ों ही फेरुओं से घिरा हुआ होता है। इस प्रकार की शिव दूती की प्रतिमा है। इसका ध्यान विभूति की वृद्धि के लिये करना

चाहिए ॥१०७॥१०८॥ इस देवी के केवल ध्यान ही के करने से मनुष्य परम कल्याण की प्राप्ति कर लिया करता है। और यदि इस देवी का अर्चन किया जावे तो यह समस्त कामनाओं को प्रदान कर दिया करती है ॥१०६॥ जो कोई पुरुष शिवाओं की ध्वनि का श्रवण करके शुभों की प्रदात्री शिवदूती को साधक प्रणाम किया करता है और भक्ति की भावना से प्रतिपात करता है तो उसकी सभी कामनायें उसके हाथ ही में स्थित रहा करती हैं ॥११०॥ जिस अवसर पर समस्त जगतों की भलाई करने के लिये इसने रक्त बीज का हनन किया था तो उस समय में महामाया महादेवी इसके शरीर से विनि सृत हुई थी ॥१११॥ उस अम्बिका ने शुम्भ दैत्य के लिये शिव को ही अपना दूत बनाकर उसके पास प्रेषित किया था। उसी कारण से वह समस्त देवगणों के द्वारा शिवदूती—इस शुभ नाम से गान की जाया करती है ॥११२॥

क्षेमकारी च शान्ता च वेदमाता महोदरी।
कराला कामदा देवी भगास्या भगमालिनी ॥११३
भगोदरी भगारोहा भगजिह्वा भगा तथा।
एता द्वादश योगिन्य' पजने परिकीर्तिता ॥११४
एता द्वादश योगिन्य शिवदूत्या सदैव हि।
विचरन्ती स्वय देवी यत्र' तत्रैव गच्छति ॥११५
योगिन्यो ह्यथ सख्य स्युर्यथान्यासा तथा पुन।
चण्डिकायास्तु योगिन्न सख्योऽत्र च प्रकीर्तिता ॥११६
इति ते त्वङ्गमन्त्राणि कथितानि समासत।
कामाख्यायाश्च माहात्म्य कल्पमात्र वदामि वाम् ॥११७

इसके पूजन में बारह योगिनियाँ कीर्तित की गयी हैं—उनके शुभ नाम ये हैं—क्षेमकारी—शान्ता—वेदमाता—महोदरी—कराला—कामदा देवी—भगास्या—भग मालिनी—भगोदरी—भगारोहा—भगजिह्वा—भगा—ये द्वादश योगिनियाँ हैं जिनका पूजन कहा गया है।

॥ ११३—११४ ॥ देवी स्वयं ही विचरण करती हुई जहाँ-तहाँ पर गमन किया करती है ॥ ११५ ॥ जिस प्रकार से अन्यों की हुआ करती हैं वैसे ही पुनः ये योगिनियाँ सखियाँ होती हैं। चण्डिका की योगिनियाँ यहाँ पर सखियाँ बतायी गई हैं। ११६। ये इस रीति से आपके सामने अङ्ग मन्त्र से क्षेम में वर्णित कर दिये गये हैं। अब आप दोनों के समक्ष में कामाख्या देवी का अल्पमात्र माहात्म्य बतलाता हूँ ॥११७॥



॥ नृप धर्म कथन ॥

कथितो भवता सर्गः संशयश्चापि शातिताः।
त्वत्प्रसादान्महाभाग कृतकृत्या वयं गुरो ॥१
भूयश्च श्रोतुमिच्छामो वयमेतद् द्विजोत्तम।
कोऽन्यो भृङ्गी महाकालो जातो वेतालभैरवौ ॥२
वेतालं च महाकाल भैरवं भृङ्गिण तथा।
शृणुमो द्विजशार्दूल कथमेषां चतुष्टयम् ॥३
भुवं गते महाकाले मानुष्यस्थे च भृङ्गिणि।
वेतालभैरवाख्ये च तयोर्मूर्ते द्विजोत्तमाः ॥४
वरलब्धे च वेताले भैरवे तेन सङ्गते।
अन्धकं तपसा युक्त भृङ्गिण चाकरोद्धरः ॥५
अन्धकस्तु हर पूर्वं विरुध्यापद्मागतः।
पश्चाद्धरं समाराध्य पुत्रोऽभूत् तस्य सोऽसुरः ॥६
भृङ्गिस्नेहाद् भृङ्गिण तं संज्ञया चाकरोद्धरः।
स्नेहेन तु महाकाले बाणं बलिसुतं हरः ॥७
विष्णुना छिन्नबाहुं तु महाकालमथाकरोत्।
एवं मुनिवरस्तेषां सयतं च चतुष्टयम्।

वेतालभैरवौ भृङ्गिमहाकालौ ह्यनुक्रमात् ॥८

ऋषियों ने कहा—आपने सर्ग का वर्णन किया और जो भी कुछ संशय उसमें हुए थे उनका भी आपने निवारण कर दिया है। हे गुरो! आपके प्रसाद से हे महाभाग! हम कृत कृत्य हो गये हैं। हे द्विजोत्तमो फिर हम आपसे कुछ श्रवण करना चाहते हैं। यह अन्यभृङ्गी महाकाल कौन है और जो यह वेताल तथा भैरव समुत्पन्न हुए हैं। वेताल को महाकाल और भृङ्गी भैरव को हम सुनते हैं। इनका चतुष्टय कैसे हुआ अर्थात् चार कैसे हो गये थे ॥ १—३ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे द्विजोत्तमो! महाकाल के भूमण्डल में उत्पन्न होने पर और मनुष्यत्व में भृङ्गी के होने पर उन दोनों से ये वेताल और भैरव नामों वाले समुदभूत हुए थे। वेताल को वरदान प्राप्त होने पर और उसके साथ भैरव के सङ्गत हो जाने पर भगवान् हर ने तप में युक्त अन्धक को भृङ्गी कर दिया था। ४—५। अन्धक पहिले हर से विरुद्ध होकर आपदा में फँस गया था। इससे उसने भगवान् हर की समाराधना की थी और वह असुर उनका पुत्र हुआ था। भगवान् हरि ने भृङ्गि के स्नेह से उसका नाम भृङ्गी रख दिया था। भगवान् हर ने स्नेह में जो महा काल में था उसको बलि का पुत्र त्राण कर दिया। ॥ ६—७ ॥ भगवान् विष्णु के द्वारा कटे हुए बाहुओं वाले को महाकाल बना दिया था। इस प्रकार से हे मुनिवरो! उनका चार होना संगत होता है। अनुक्रम से वेताल—भैरव भृङ्गी और महाकाल हैं ॥ ८ ॥

यत् पृष्ट सगरेणैव मुनिमौर्व्वं महाधियम् ।
नीत्या योज्या यथा भार्या सुत आत्माऽथवा गुरो ॥६
राजनीतौ सता नीतौ सदाचारे च ये स्थिता ।
विशेषास्तेन ये प्रोक्ता औौर्वेण सुमहात्मना ॥१०
विशेषेण द्विजश्रेष्ठ श्रोतुं सम्यक तपोधन ।

इच्छामस्तान् महाभाग कथयस्व जगद्गुरो ॥११
ये ये विशेषाः कथिता और्वेण सुमहात्मना ।
तद् वः सर्वं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ॥१२
श्रुत्वैवं सगरो राजा मन्त्रकल्पादिकं पुनः ।
विशेषं परिपप्रच्छ नीत्यादीना महामुनिम् ॥१३
यया नीत्या प्रयोक्तव्यः सुत आत्मा प्रिया तथा ।
तेषां विशेषैः सहितं सदाचारं वदस्व मे ॥१४

ऋषियों ने कहा—जो राजा सगर ने महान् बुद्धिमान और्व मुनि से पूछा था, हे गुरुवर ! नीति में जिस तरह से भार्या, सुत और बोधित किये जाते हैं। राजनीति में सत्पुरुषों की नीति में और सदाचार में भिन्न हैं। महात्मा और्व ने जो विशेष कहे हैं। हे तप ही के धन वाले ! हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! उसे हम विशेष रूप से श्रवण करना भली भाँति चाहते हैं। हे जगत् के गुरुवर ! आप तो महान् भाग वाले हैं उनको आप बतलाइये ॥६—११॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—महान् आत्मा वाले और्व ने जो-जो विशेष बतलाये थे। हे मुनियों में श्रेष्ठ वरो ! वह सब आपको बतलाऊँगा आप श्रवण करिये। राजा सगर ने इस तरह से मन्त्र कल्पादिक को सुन कर उन महा मुनि से पुनः नीत्यादिक की विशेषता पूछी थी। सगर ने कहा—जिस प्रकार से नीति के द्वारा सुत के—आत्मा के और प्रिया के साथ नीति से प्रयोग करना था उनकी विशेषता के सहित जो सदाचार है उसको आप मुझे बतलाइए ॥१२—१४॥

क्रमेण शृणु राजेन्द्र यया नीत्या नियोजिताः ।
आत्मा सुता वा भार्या वा तद्विशेषं शृणुष्व मे ॥१५
ज्ञानविद्यातपोवृद्धान् वयोवृद्धान् सुदक्षिणान् ।
सेवेत प्रथमं विप्रानसूयापरिवर्जितान् ॥१६
तेभ्यश्च शृणुयान्नित्यं वेदशास्त्रविनिश्चयम् ।

यद्ब्रूयुस्ते च तत् कार्यं प्राज्ञ चैव नृपश्चरेत् ॥१७
पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चाश्वाः शरीर रथ उच्यते।
आत्मा रथी कशा ज्ञान सारथिर्मन उच्यते ॥१८
अश्वान् सुदान्तान् कुर्वीत सारथिं चात्मनो वशम्।
कशा दृढा सदा कार्या शरीर स्थिरता तथा ॥१९
अदान्तास्तु समारुह्य सैन्धवान् स्पन्दनः यथा।
अश्वानामिच्छया गच्छन्नुत्पथ प्रतिपद्यते ॥२०
तत्रावश सारथिस्तु स्वेच्छया प्रेरयन् हयान्।
नयेत् परवश सम्यग् प्रथित वीरमप्युत ॥२१

श्रौर्व मुनि ने कहा—हे राजेन्द्र ! अब आप क्रम से ही श्रवण कीजिये जिस प्रकार की नीति के द्वारा आत्मा—भृत और भार्य्या को नियोजित किया जाता है उसकी विशेषता मुझसे सुनिये ॥१५॥ ज्ञान में बड़े—वय में बड़े—विद्या—तप में बड़े वृद्धजनों का सब से प्रथम सेवन करे तथा निन्दा से रहित विप्रों का सेवन करना चाहिये। और उनसे नित्य ही वेदों और शास्त्रों के विशेष निश्चय का श्रवण करना चाहिए उन्होंने जो भी कुछ कहा है वह करना चाहिए—जो प्राज्ञ नृप है उसे उसका समाचरण करना चाहिए ॥१६॥१७॥ ये पाँच इन्द्रियाँ पाँच अश्व हैं और यह शरीर रथ कहा जाता है। आत्मा रथी अर्थात् रथ का स्वामी है अश्वों को हाँकने के लिये ज्ञान कशा (चाबुक) है इस रथ का सारथि मन होता है। अश्वों को सुदान्त करे और सारथि मन को आत्मा के वश में करना चाहिये। कशा को सदा सुदृढ़ करे तथा शरीर की स्थिरता रखनी चाहिए ॥१७—१९॥ जिस तरह से अदान्त अश्वों पर समारोहण करके रथी अश्वों की इच्छा के अनुसार गमन करता हुआ कुपथ को प्राप्त हो जाया करता है। अपनी ही इच्छा से अश्वों को प्रेरित करता हुआ सारथि यहाँ पर अवश होता है और वह परम प्रथित वीर को भी परवश कर देता है ॥२०॥२१॥

तथेन्द्रियाणि नृपतिर्विषयाणां परिग्रहे ।
स्ववश्यानि प्रकुर्वीत मनो ज्ञानं दृढं तथा ॥२२
ज्ञाने दृढे कशायां च दृढायां नृपसत्तम ।
सारथिः स्ववशो दान्तानीश: प्रेरयितुं हयान् ॥२३
अतो नृपः स्वेन्द्रियाणि वशे कृत्वा मनस्तथा ।
ज्ञानमार्गमधिष्ठाय प्रकुर्वीतात्मनो हितम् ॥२४
भोक्तव्यं स्वेच्छया भूयो न कुर्याल्लोभमासवे ।
द्रष्टव्यमिति द्रष्टव्य न द्रष्टव्य च स्वेच्छया ॥२५
श्रोतव्यमिति श्रोतव्यं नाधिकं श्रवणे चरेत् ।
शास्त्रतत्त्वामृते धीरः श्रुतिवश्यो भवेन्न हि ॥२६
एवं घ्राणं त्वचं चापि वशीकृत्येच्छया नृपः ।
स्वेच्छया नोपभुञ्जीत नोद्दामं विषयं व्रजेत् ॥२७
एवं यदि भवेद्राजा तदा स स्याज्जितेन्द्रियः ।
जितेन्द्रियत्वे हेतुश्च शास्त्रवृद्धोपसेवनम् ॥२८

इसी भाँति राजा को विषयों के परिग्रहण करने में इन्द्रियों को अपने ही वश्य करना चाहिए तथा मन और ज्ञान को सुदृढ़ रखना चाहिए ॥ २२ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! ज्ञान के सुदृढ़ होने पर कशा की सुदृढ़ता से अपने वश में रहने वाला सारथि दान्त अश्वों को प्रेरित करने में समर्थ होता है । इसीलिये नृप को चाहिए कि अपनी इन्द्रियों को तथा मन को अपने वश में रखकर ज्ञान के मार्ग में अधिष्ठित होकर आत्मा का हित सम्पादित करे ॥ २३—२४ ॥ फिर अपनी इच्छा से भोग करना चाहिए और आसव में लोभ न करे देखना है—इसमें देखना चाहिए और अपनी इच्छा से नहीं देखना चाहिए ॥ २५ ॥ जो सुनने के योग्य है उसे ही श्रवण करना चाहिए । श्रवण में अधिक का समाचरण न करे । शास्त्रों के तत्त्वामृत में धीर श्रुति वश्य नहीं होता है ॥ २६ ॥ इसी रीति से इच्छा से घ्राण—त्वचा को वशीभूत करके अपनी इच्छा

मे उपभोग न करे और उद्दाम विषय का गमन न करना चाहिए।२७। यदि राजा इसी रीति से समाचरण करने वाला होवे तो उसी समय में वह इन्द्रियों को जीत लेने वाला हो सकता है जितेन्द्रिय होने में शास्त्रों और वृद्धों का उपसेवन करना ही हेतु हुआ करता है।२८।

अवृद्धसेव्याशस्त्रज्ञो नृप शत्रुवशो भवेत्।
तस्माच्छास्त्रमधिष्ठाय भवेद्राजा जितेन्द्रियः ॥२९
धृति प्रागल्भ्यमुत्साहो वाक्पटुत्व विवेचनम्।
दक्षत्व धारविष्णुत्व दानमैत्रीकृतज्ञता ॥३०
दृढशासनतासत्यशौच्च मतिविनिश्चयम्।
पराभिप्रायवेदित्व चरित्र धैर्यमापदि ॥३१
क्लेशधारणशक्तिश्च गुरुदेवद्विजार्चनम्।
अनसूया ह्यकोपित्व गुणानेतान्नृपोऽभ्यसेत्। ३२
कार्याकार्यविभागश्च धर्मार्थे काम एव च।
सतत प्रतिबुध्येत कुर्यादवसरेऽपि तत् ॥३३
सामदान च भेदश्च दण्डश्चेति चतुष्टयम्।
ज्ञात्वोपायान्स्त तत्काले तदुपायान् प्रयोजयेत् ॥३४
सामस्तु विषये भेदो मध्यम परिकीर्तित।
दानस्य विषये साम योग्यमेवोपलक्ष्यते ॥३५

जो नृप वृद्धों का सेवन करने वाला नहीं है तथा शास्त्रों का ज्ञाता नहीं होता है वह शत्रुओं के वशीभूत हो जाया करता है। इस कारण से शास्त्रों में अधिष्ठित होकर राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिए।२९। धृति—प्रागल्भ्य—उत्साह—वाक्पटुता—विवेचन—दक्षता—धार विष्णुता—दान—मैत्री—कृतज्ञता—दृढ शासनता—सत्य—शौच—बुद्धि का विशेष निश्चय—दूसरों के अभिप्राय का ज्ञान रखना—चरित्र—आपत्ति में धीरज—क्लेशों के धारण करने की शक्ति—गुरुदेव और द्विजों का अर्चन—निन्दा न करना—क्रोधी न होना—इन गुणों का

राजा को अभ्यास करना चाहिए ॥ ३०—३२ ॥ धर्म में—अर्थ में और काम में कार्य और अकार्य का विभाग का निरन्तर प्रतिरोध करना चाहिए और अवसर होने पर उसे करना चाहिए। ३३। साम—दान—भेद और दण्ड यह चतुष्टय अर्थात् चार बातें हैं उसके कालों में उपायों का ज्ञान करके उनके उपायों का प्रयोग करे। ३४। साम विषय में भेद मध्यम कहा गया है। दान के विषय में साम योग्य ही उपलक्षित होता है। ३५।

दानस्य विषये दण्डो ह्यधम परिकीर्तित ।
दण्डस्य विषये दान तदप्यधममुच्यते ॥३६
साम्नस्तु गोचरे दण्डो ह्यधमादधम स्मृत ।
सौजन्य सतत ज्ञेय भूभृतो भेददण्डयो ॥३७
साम्नो दानस्य च तथा सौजन्य याति गोचरे ।
काम क्रोधश्च लोभश्च हर्षो मानो मदस्तथा ॥३८
एतानतिशयान राजा शत्रूनिव विनाशयेत् ।
सेव्या काले सुयुक्तो त लोभगर्वौ विवर्जयन् ॥३९
तेज एव नृपाणां तु तीव्र सूर्यस्य वै यथा ।
तत्र गर्व रोगयुक्त कामवास्त तु सत्यजेत् ॥४०
आखेटकाक्षौ स्त्रीसेवा पान चयायदूषणम् ।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्य सप्तैतानि विवर्जयेत् ॥४१
परस्त्रीषु विरक्ताम् सेवामेवान्ततस्त्यजेत् ।
सत्पुत्र निजनारीषु युक्त कुर्यान्नि वेशनम् ॥४२

दान के विषय में दण्ड अधम कहा गया है। दण्ड के विषय में दान जो होता है—वह भी अधम ही कहा जाता है। ३६। साम के गोचर अर्थात् प्रत्यक्ष होने पर जो दण्ड का प्रयोग है वह अधम से भी अधम कहा गया है। राजा के दण्ड और भेद में निरन्तर सौजन्य जानना चाहिए ॥ ३७ ॥ साम और दान की सुजनता गोचर में जाती है। काम क्रोध—लोभ—हर्ष—मान—मद—इनका अतिशय रूप में

होने वालों का राजा को शत्रुओं की तरह विनष्ट कर देना चाहिए। सयुक्त काल में ही उनका सेवन करना चाहिए। लोभ और गर्व को विवर्जित कर देवे ॥ ३८—३९ ॥ नृपों का तेज ही तीव्र होता है जिस तरह से सूर्य का हुआ करता है। उसमें गर्व रोग से युक्त होता है। नायवान् को उसका त्याग कर देना चाहिए। ४०। आखेट—अक्ष—स्त्री सेवन—पान और अर्थ दूषण—वाणी और दण्ड में कठोरता इन सबका वर्जन कर देना चाहिए। विरक्त पराई स्त्रियों से सेवन करना एकान्त रूप से वर्जित कर देवे। सती अपनी नारियों से युक्त सेवन करना चाहिए ॥४१—४२॥

रतिपुत्रफला दारास्तास्तु नैकान्ततस्त्यजेत्।
तयो सिद्धयर्थं स्त्रिय सेव्या वर्जयित्वातिसक्तताम् ॥४३
मृगया तु प्रमादाना स्थान नित्य विवर्जयेत्।
अक्षास्तथा न कुर्वीत सत्कार्यासक्तिनाशनम् ॥४४
अन्यं कृत कदाचित् तु सेवेत नात्मनाचरेत्।
अकार्यकरणे बीज कृत्याना च विवर्जने ॥४५
अकालमन्त्रभेदे च कलहे सत्कृतिक्षये।
वर्जयेत् सतत पान शौचमाङ्गल्यनाशनम् ॥४६
अर्थक्षयकर नित्य त्यजेच्चवात्मदूषणम्।
अभिशस्तेषु चोरेषु घातकष्वाततायिषु ॥४७
सतत पृथिवीपालो दण्डपारुष्यमाचरेत्।
नान्यत्र दण्डपारुष्य कुर्यान्नपतिसत्तम. ॥४८
वाक्पारुष्य च सर्वत्र नव कुर्यात् कदाचन।
रक्षणीय सदा सत्य सत्यमेक परायणम् ॥४९

जो दाराऐं रति और पुत्र के फल वाली है उनका एकान्त रूप से त्याग नहीं करे। रति और पुत्र दोनो की सिद्धि के लिए स्त्रियों का सेवन करना चाहिए किन्तु उनमें अत्यन्त आसक्ति का वर्जन कर देवे।

मृगया तो धयाशे का स्थान होता है इसका नित्य वर्जन कर देवे। कदाचित् अन्यों के द्वारा किये हुए का सेवन करे किन्तु अपने द्वारा इसका सम चरण नही करे। अक्षों का भी सेवन न करे। ये सत्कार्य और शक्ति का विनाश करने वाले होते हैं। अकार्यों के करने मे और कृत्यों के वर्जन मे यह बोज होता है ॥४३—४५॥ अकाल मन्त्र भेद मे—कलह मे सत्कार के क्षय में निरन्तर पान का वर्जन कर देवे। जो कि यह मदिरा पान शौच और मनुष्य का विनाश करने वाला होता है ॥४६॥ यह अर्थ के क्षय का करने वाला होता है। अतएव आत्मा के दूषण इसका त्याग कर देना चाहिए अभिशस्त—चोर—घातक—आततायी मे राजा को निरन्तर दण्ड की कठोरता का समाचरण करना चाहिए। श्रेष्ठ नृप को अन्य स्थलों म दण्ड की कठोरता नही करनी चाहिए।४७। ।४८। वाणी की कठोरता को तो सभी जगह कभी भी नहीं करे। सदा सत्य की रक्षा करनी चाहिए। एक सत्य म ही परायण रहे।४६।

क्षमा तेजस्विता चैव प्रस्तावान्नृप आचरेत् ।
यानासनाश्रयद्वैधसन्धयो विग्रहस्तथा ॥५०
अभ्यसेत् पड्गुणानेतास्तेपा स्थान च शाश्वनम् ।
यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ॥५१
कोगे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ।
कोपे जनपदे दण्डे चौर्वकत्र त्रय त्रयम् ॥५२
प्रस्तावाद्विनियुञ्जीत रक्षेन्नेकास्ततस्त्रिमान् ।
मित्रं शत्रापुदासीने प्रभाव त्रिष्वपीरयेत् ॥५३
उत्साहो विजिगीपाय धर्मकृत्येऽष्टवर्गके ।
शरीरयात्रानिर्वाहं क्रियेत सतत नृपः ॥५४
मन्त्रनिश्चयसम्भूता बुद्धि सर्वत्र योजयेत् ।
अमात्ये शात्रवे राज्ये पुत्रेष्वन्त पुरेषु च ॥५५

क्षमा और तेजस्विता का प्रस्ताव से नृप को समाचरण करना

चाहिए। यान, आसन, आश्रय, द्वैध, सन्धि तथा विग्रह—इन छैं गुणों का तथा इनके शाश्वत स्थान म. नृप को अभ्यास करना चाहिए। जो स्थान मे— वृद्धि मे—क्षय मे—कोष मे—जनपद मे और दण्ड मे जो प्रमाण को नहीं जानता है वह राज्य पर अवस्थित नहीं रहा करता है। यह एक-एक मे तीन तीन हैं। प्रस्ताव मे विनियोग करना चाहिए। किसी एक की ही रक्षा न कर इन सबकी रक्षा करनी चाहिए। मित्र में—शत्रु मे और उदासीन मे तीनो मे ही अपने प्रभाव कोई रित करना चाहिए॥ ५०—५३॥ नृपों को विजय की इच्छा में—धर्म कृत्य मे अग्र वर्ग मे—शरीर यात्रा निर्वाह मे निरन्तर उत्साह करना चाहिए। ॥५४॥ मन्त्र के निश्चय मे समुत्पन्न बुद्धि को सर्वत्र योजित करें— अमात्य मे—शास्त्र मे—राज्य मे—पुत्रो मे और अन्तःपुर मे बुद्धि का योजन करना चाहिए।५५।

कृषि दुर्गं च वाणिज्य खडगाना करसाधनम्।
आदान सैन्यकरयोर्बन्धन गजवाजिनो.॥५६
शून्ये ससमुत्थाना च योजन सतत जनै.।
क्षयाणा सारसेतूना बन्धन चेति चाष्टमम् ॥५७
एतदष्टसु वर्गेषु चारान् सम्यक् प्रयोजयेत्।
कार्याकार्यविभागाय चाष्टवर्गाधिकारिणाम् ॥५८
अष्टौ चारान्नियुञ्जीयादष्टवर्गेषु पार्थिव.।
दश शून्येषु युञ्जीत क्रमनः श्रृण तानि मे ॥५९
स्वामी सचिव-राष्ट्राणि मित्र कोशो बलं तथा।
दुर्गं तु सप्तम ज्ञेय राज्याङ्ग गुरुभाषितम् ॥६०
दुर्गयुक्त चाष्टवर्ग चारान्नात्मनि योजयेत्।
तस्मादिमानि शेषाणि पच चारपदानि च ॥६१
शुद्धान्तेषु च पुत्रेषु स यूयादो महानसे।
शत्रूदासीनयोश्चापि बलाबलविनिश्चये ॥६२

अष्टादशसु चैतेषु चारान् राजा प्रयोजयेत् ।
न यत्प्रकाश जानीयात् तत् तच्चारैर्निरूपयेत् ॥६३

कृषि—दुर्ग—वाणिज्य—सड़कों का दर साधन—सैन्य करों का आदान—गजों और अश्वों का बन्धन—सद्रुम भूमों के शून्य में जनों के द्वारा निरन्तर योजन और तीन चार सेतुओं का बन्धन आठवां है । इन आठ वर्गों में चारों को भली भाँति प्रयोजित करना चाहिए । कार्य और उपायों के विभाग के लिये उस वर्ग के अधिकारियों को योजित करे । राजा आठ भागों को आठ वर्गों में नियोजित करे । दश को शून्य में नियत करे । उनका क्रम से मुझसे श्रवण करिये ॥५६—५६॥ स्वामी—सचिव—राष्ट्र—मित्र—कोश—बल—दुर्ग सप्तम और गुरु भाषित राज्य के अङ्ग हैं ॥६०॥ दुर्ग से युक्त अपने अष्ट वर्ग में चारों को योजित करे । इस कारण से इन शेष पाँच चार पक्षों को शुद्धान्तों में—पुत्रों में—मृगादि में—महानस में—शत्रु और उदासीनों में—बल—जंगल के विशेष निश्चय में इन अठारहों में राजा चारों को प्रयुक्त करे । प्रकाश में इनको कोई भी न जान पावे उसी भाँति चारों के द्वारा निरूपण कर देना चाहिए ॥६१—६३॥

निरूप्य तत्-प्रतीकारमवश्य छिद्रतश्चरेत् ।
यथानियोगमेतेषां यो यो यत्रान्यथाचरेत् ॥६४
ज्ञात्वा तत्र नृपश्चारं दण्डयेद् वा वियोजयेत् ।
चारान्तु मन्त्रिणा सार्धं रहस्ये मन्त्रितो नृपः ॥६५
प्रदोषसमये पृच्छेत् तदानीमेव साधयेत् ।
स्वपुत्रे चाथ शुद्धान्ते ये तु चारा महानसे ॥६६
नियुक्तास्तानमध्यरात्रे पृच्छेत् स्वोऽपि च मन्त्रिणि ।
एताश्चारान् स्वयं पश्येन्नृपतिर्मन्त्रिणा विना ॥६७
अन्यास्तु मन्त्रिणा सार्धं निरूप्य प्रदिशेत् फलम् ।
नैकवेशधरश्चारो नैको नोत्साहवर्जितः ॥६८

सन्तुतो नहि सर्वत्र नातिदीर्घो न वामन ।
सतत न दिवाचारी न रोगी नाप्यबुद्धिमान ॥६६
न वित्तविभवैर्हीनो न भार्यापुत्रवर्जित ।
कार्यश्चारो नृपतिना तत्त्वगुह्यविनिर्णये ॥७०

उनका प्रत्तीश्वर अवश्य ही निरूपण करके छिद्र में समाचरण करे। इनका जैसा नियाम है और जो जो जहाँ पर अन्यथा चरण करे। ॥६४॥ वहाँ पर नृप को ज्ञान प्राप्त करना जो कि चारों के द्वारा किया जावे दण्ड देवे या चारों को शमन कर देवे। नृप मन्त्री के साथ एकान्त में संस्थित रहे। राजा को चाहिये कि प्रदोष के समय में पूछे और उसी समय में साधन करे। अपने पुत्र के विषय में—शुद्धान्त पुर में और जो चार महानस (रसोई गृह) में नियुक्त होवें उनसे मध्य रात्रि में पूछना चाहिये। और जो अपने मन्त्री के विषय चार हो उन से राजा बिना मन्त्री के स्वयं ही पूछे ॥६५—६७॥ अन्य जो चार हों उनमें मन्त्री के साथ निरूपण करके फल का प्रदेशन करें। चार एक वर्ण के धारण करने वाला न होवे—न एक ही होवे और न उत्साह से रहित होना चाहिए ॥६८॥ चार सर्वत्र सस्तुत नहीं होना चाहिए। वह अत्यन्त लम्बा न होवे और न बौना ही होना चाहिये। निरन्तर दिन में चरण करने वाला चार होना चाहिये। और वह रोगी तथा बुद्धि रहित भी नहीं होवे ॥६९॥ चार वित्त के वैभव से हीन भी न होवे और ऐसा भी नहीं होना चाहिए जिसके भार्या तथा पुत्र न होवे। ऐसा ही चार राजा को तत्त्व गुह्य के विशेष निर्णय में नियुक्त करना चाहिये ॥७०॥

अनेकवेषग्रहणक्षम भार्यासुतैर्युतम् ।
बहुदेशवचोऽभिज्ञ पराभिप्रायवेदकम् ॥७१
दृढभक्त प्रवुर्वीत चार शक्तमसाध्वसम् ।
अभितिष्ठेत् स्वय राजा कृपिमात्ममैस्तथा ॥७२

काम और मोक्ष के प्रत्येक का परिशोधन के द्वारा प्राप्त होकर प्राप्त किया जाता है इसी कारण से यह उपधा कही जाती है ॥७७॥

अर्थकामोपधाभ्यां तु भार्यापुत्राश्च शोधयेत् ।
धर्मोपधाभिर्विप्रान्स्तु सर्वाभिः सचिवान् पुनः ॥७८
एभिर्यज्ञैस्तथा दानैरिहैव नृपतिर्भवेत् ।
तस्माद् भवांस्तु राज्यार्थी धर्ममेव समाचरेत ॥७९
अनेनैवाभिचारेण यज्ञैर्वा पार्थिवो स्वयम् ।
प्राणांस्त्यजति राजा त्वं भविष्यसि न संशयः ॥८०
इति धर्मो नृपस्यैव अश्वमेधादिकश्च यः ।
स्वयं न कुरुते भूपस्तस्मात् त्वं कुरु सत्तम ॥८१
एवं मन्त्रैर्मन्त्रयित्वा नृपः कार्यान्तिकाद् द्विजान् ।
तैरज्ञातान् स्वयं ज्ञात्वा गर्हणीयान् तस्य तैर्मतैः ॥८२
यदि राज्याभिलाषेण सचिवोऽधर्ममाचरेत् ।
नृपतौ साधिकं कुर्याद् धर्मं तं हीनतां नयेत् ॥८३
आभिचारिकमत्यर्थं कुर्वाणं तु विघातयेत् ।
प्रवासयेद् ब्राह्मणं तु पार्थिवश्चाभिचारिणम् ॥८४

अर्थ-काम की उपधाओं से भार्या और पुत्रों का परिशोधन करे। धर्म की उपधाओं से विप्रों को और सब उपधाओं से सचिवों का शोधन करे ॥७८॥ इनके द्वारा—यज्ञों से और दानों के द्वारा यहाँ पर ही नृप होता है। इस कारण से आप राज्य के अर्थी हैं अतएव इसी भाँति धर्म का ही समाचरण करें ॥७९॥ इसी अभिचार से अथवा यज्ञों से यह राजा प्राणों का त्याग करता है और तुम राजा हो जाओगे- इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥८०॥ यही नृप का धर्म है और जो अश्वमेध आदिक हैं राजा स्वयं नहीं करता है इस कारण से हे श्रेष्ठतम ! तुम करो ॥८१॥ इस प्रकार से नृप कार्यान्तिक द्विज से मन्त्रों के द्वारा मन्त्रणा करके उनके द्वारा अज्ञातों को स्वयं ज्ञान प्राप्त करके उनसे उस

के मन का ग्रहण करे ॥८२॥ यदि राज्य की अभिलाषा में सचिव अधर्म का आचरण करे अथवा राजा के विषय में अधिक करे तो उस धर्म का हीन बना देवे ।८३॥ अत्यन्त अभिचारी कर्म को करने वाले का विघात कर देवे । राजा को चाहिए कि अभिचारिक ब्राह्मण हो तो उसको देश से बाहिर निकलवा देवे ॥८४॥

एषा धर्मोपधा ज्ञेया तैरमात्यान सुतान् जयेत् ।
एतादृशी तथैवान्यानुपधा धर्मतश्चरेत् ॥८५
कोशाध्यक्षान् समामन्त्र्य राजामात्यान् प्रतारयेत् ।
पुत्रानन्यान् प्रति तथा मन्त्रसवरणाक्षमान् ॥८६
अयं हि प्रचुरः कोषो मदायत्तो नरोत्तम ।
अन्ये तव सम्मत्या तद् यदि त्वं प्रतीक्षसि ॥८७
तवार्थलग्नादस्माकं जीवनं च भविष्यति ।
त्वं चापि प्रचुरं कोषं किं किं वा न करिष्यसि ॥८८
एवमन्यं कोषगतैरुपायैर्नृपसत्तम ।
पुत्रामात्यादिकान् सर्वान् सततं परिशोधयेत् ॥८९
कोषदोषकरान् हन्यात् कर्तुमिच्छून् विवासयेत् ।
द्वैधचित्तान् विमन्येत कुर्याद् वै कोशरक्षणम् ॥९०
दासीश्च शिल्पिनीर्वृद्धा मेधाधृतिमनो स्त्रियः ।
अन्तर्बहिश्च या यान्ति विदिता सचिवादिभिः ॥९१

यह धर्मोपधा जाननी चाहिए । इनसे अमात्यों को और सुतों को विजित करे । इस प्रकार की उसी भाँति अन्य उपधा का धर्म से समाचरण करना चाहिये ।८५। कोषाध्यक्षों को समामन्त्रित करके राजा अमात्यों का प्रतारित कर देवे । तथा पुत्रों को अथवा अन्यों को जो मन्त्र के सवरण करने में असमर्थ होवें प्रतारित कर देना चाहिए ।८६। हे नरोत्तम ! यह प्रचुर (बहुत बड़ा) कोष मेरे अधीन है यदि उसको आप प्रतीक्षा करते हैं तो आपकी सम्मति से इन्हें ले आता हूँ ॥ ८७ ॥

आपके अर्थ के नाश होने से हमारा जीवन होगा और आप भी इन प्रचुर कोषों के द्वारा क्या-क्या नहीं करोगे ॥ ८८ ॥ इस प्रकार से अन्य दोष गत उपायों से नृप श्रेष्ठ पुत्र—अमात्य आदिक सबका निरन्तर परिशोधन करे ॥ ८९ ॥ जो कोष में दोषों के करने वाले हैं उनका हनन कर देवे और जो करने की इच्छा रखते होवें उनको देश से बाहिर निकलवा देना चाहिये । जो दृढ़ चित्त वाले होवें उनको विमानित कर देवे किन्तु कोष की रक्षा हर प्रकार से करनी चाहिये ॥९०॥ दासियाँ शिल्पिनी—वृद्धा—मेधा और घृति वाली स्त्रियाँ जो बाहिर और भीतर गमन किया करती हैं तथा सचिवो आदि के द्वारा विदित हैं ॥ ९१ ॥

ता राजा रहसि स्थित्वा भार्यादिभिरलक्षित ।
अभिमन्त्र्याथ समन्त्र्य प्रेषयेन सचिवान् प्रति ॥९२
ता गत्वा हृदय बुद्ध्वा स्त्रियो विज्ञानतत्परा ।
महिषीप्रमुखा राजस्त्वा वै कामयते शुभा ॥९३
तत्राह योजयिष्यामि यदि ते विद्यते स्पृहा ।
सचिवस्त्वा कामयते त्वदयोग्यो वरवर्णिनि ॥९४
त सगमयितु शक्ता यदि श्रद्धा तवास्त्यहम ।
इत्यनेन प्रकारेण नानोपायैस्तथोत्तरै ॥९५
भार्या पुत्रदुहित्रीश्च स्नुषाश्च प्रनुस्पास्तथा ।
शोधयेन सचिवान् पुत्रान् पौत्रादीन सेवकास्तथा ॥९६
कामोपधाविशुद्धान्तु घातयेदविचारयन् ।
स्त्रियस्तु योज्या दण्डेन ब्राह्मणास्तु प्रवासयेत् ॥९७
मोक्षमार्गावसक्त तु हिंसापैशुन्यवर्जितम् ।
क्षमैकसार नृपति सचिव परित्रजयेत् ॥९८

राजा उनको भार्या आदि से अलक्षित होकर स्थित रह कर एकान्त में अभिमन्त्रणा करके तथा इसके अनन्तर भली भाँति मन्त्रणा

करके सचिवो के पास प्रेषित कर देवे ॥ ६२ ॥ वे जाकर वहाँ हृदय का ज्ञान प्राप्त करने विज्ञान मे तत्पर राजा की महिषी प्रमुख शुभ तुमको चाहती है यदि आपकी स्पृहा हो तो वहाँ पर मैं योजित कर दूँगी। सचिव तुमको चाहता है हे वरवर्णिनि! आपके योग्य भी है यदि आपकी श्रद्धा हो तो मैं उसका सङ्गम कराने के लिये समर्थ हू। इस रीति से तथा अनेक उपायो से और उत्तरो के द्वारा भार्याओं —पुत्र दुहित्रियो — स्नुषाओं तथा प्रस्नुषाओं - सचिवो—पुत्रों—पौत्रा—सेवको आदि का शोधन करना चाहिए ॥ ६३—६६ ॥ काम की उपधाओ से अविशुद्ध के बिना ही कुछ विचार किये हुए विघात कर देना चाहिए। स्त्रियो को दण्ड के द्वारा योजित करे और ब्राह्मणो को प्रवासित कर देवे। मोक्ष के मार्ग मे अवसक्त तथा हिंसा और पैशुन्य से रहित—क्षमा को ही एक सार मानने वाले सचिव का राजा को परिवर्जन कर देना चाहिए ॥६७—६८॥

मोक्षमार्गविपक्तास्तु दण्डयानपि न दण्डयेत् ।
समबुद्धिस्तु सर्वत्र तस्मात् त परिवर्जयेत् ॥६६
इति सूत्र चोपधानामुपधा बहुधा पुन ।
विवेचिता चोशनसा तच्छास्त्रे तत्र बोधयत् ॥१००
विग्रह सतत राजा परैर्न्न सम्यगाचरेत् ।
भूवित्तमित्रलाभेषु निश्चितेष्वेव विग्रहा ॥१०१
सर्वाङ्गेषु प्रसादश्च सदा कार्यो नृपोत्तमैः ।
कोषस्य सञ्चय रक्षा सतत सम्यगाचरेत् ॥१०२
मन्त्रिणस्तु नृप कुर्याद् विप्रान् विद्याविशारदान् ।
विनयाज्ञान् कुलीनाश्च धर्मार्थकुशलानृजून् ॥१०३
मन्त्रयेत तैः सम नात्यर्थं बहुभिश्चरेत् ।
एकैकेनैव कर्तव्य मन्त्रस्य च विनिश्चयम् ॥१०४
व्यस्तैः समस्तैश्चान्यस्य व्यपदेशः समन्ततः ।

सुसंवृत मन्त्रगृह स्थल वारुह्य मन्त्रयेत् ॥१०५

जो मोक्ष मार्ग विशेष रूप से सक्त हो वे दण्ड के योग्य भी हों तो भी उन्हे दण्ड नही देना चाहिये। वह सर्वत्र सम बुद्धि वाला है इसी कारण से उसको परिवर्जित कर देवे ॥९९॥ उपधाओं का यह सूत्र है। पुन उपधा का बहुत-सा विवेचन किया गया है। उशना ने इसका अच्छा विवेचन किया है। वहाँ पर उसके शास्त्र मे इसका बोध करे। ॥१००॥ राजा को दूसरो के साथ निरन्तर विग्रह का भले प्रकार से आचरण नही करना चाहिए। भूमि—वित्त—मित्र लाभो से जब ये निश्चित हो जायें तो ही विग्रह होते हैं। उत्तम नृपो के द्वारा स्वत अङ्गो में सदा प्रसाद ही करना चाहिये। कोप की रक्षा और निरन्तर सञ्चय भली भाँति करना चाहिए ॥१०१॥१०२॥ राजा को अपने मन्त्रीगण विद्या मे विशारद विप्रो को ही करना चाहिये। जो विशेष रूप से नमशास्त्र के ज्ञाता—कुलीन—धर्म और अर्थ म कुशल एव सरल स्वभाव वाले होवें ॥ १०३ ॥ उनके साथ ज्ञान की मन्त्रणा करे और अत्यन्त अधिक बहुतो के साथ कभी भी समाचरण न करे। एक-एक के ही साथ मन्त्रणा का विशेष निश्चय करे ॥ १०४ ॥ व्यस्त—समस्त सभी ओर से अन्य के व्यय देशो से सुसंवृत मन्त्रणा करने का गृह होवे उसी स्थल में समारोहण करके मन्त्रणा करे ॥१०५॥

अरण्ये नि शलाके वा न यामिन्या कदाचन।
शिशूञ्छाखामृगान् षण्डाञ्छुकान् वै सारिकास्तथा ॥१०६
वर्जयेन्मन्त्रगेहे तु मनुष्यान् विकृतास्तथा।
दूषण मन्त्रभेदेषु नृपाणा यत् तु जायते ॥१०७
न तच्छक्य समाधातु दक्षैर्नृपशतैरपि।
दण्ड्यास्तु दण्डयेद् दण्डैरदण्ड्यान् दण्डयेन्नहि ॥१०८
अदण्डयन् नृपो दण्ड्यान्नदण्ड्याश्चापि दण्डयन्।
नृपतिर्वाच्यता प्राप्य चौरकिल्विषमाप्नुयात् ॥१०९

दुर्गे नु समता कुर्यात् प्राकाराट्टालतोरणै ।
नृपितान्नगराद्राजा दूरे दुर्गाश्रय चरेत् ॥११०
दुर्गं बल नृपाणा नु नित्य दुर्गं प्रशस्यते ।
शतमेका योधयति दुर्गस्थो यो धनुर्द्धर ॥१११
शत दशसहस्राणि तस्माद् दुर्गं प्रशस्यते ।
जलदुर्गं भूमिदुर्गं वृक्षदुर्गं तथैव च ॥११२

अरण्य म अथवा निशिलोक म मन्त्रण कर किन्तु रात्रि म कभी भी मन्त्रणा नही करनी चाहिए । मन्त्रणा क गृह म छोटे बच्चो को—शाखा मृगो को (बन्दरो)-पण्डा का शुको को—सारिकाओ को तथा विट्ठत मनुष्यो को वर्जित कर देना चाहिए। नृपो के मन्त्र भेदो मे जो दूषण हो जाता है। वह परम दक्ष सैकडा नृपो के द्वारा भी समाधान नही किया जा सकता है। जो दड के योग्य हैं उनको तो अवश्य दड देवे और जो अदडनीय हा उनको नही देना चाहिए ॥ १०६—१०८ ॥ जो दड क योग्य हैं उनको दड न देते हुए और जो दड के योग्य नही हैं उनको दड देते हुए राजा निन्दा का प्राप्त करक चोर क पाप का प्राप्त किया करता है ॥१०६॥ प्राकार-अट्ट लिका और तोरणो क द्वारा दुर्ग म समता करनी चाहिए। राजा को चाहिए कि भूपन नगर म दूर म दुर्गाश्रय कर ॥११०॥ राजाओ का बल दुर्ग है और नित्य ही दुर्ग की प्रशसा की जाती है। एक ही धनुर्धारी दुर्ग म स्थित होकर सो शूरो से युद्ध किया करता है। और सौ शूर दश सहस्र वीरो क साथ युद्ध किया करता है। इसी कारण से दुर्ग का प्रशस्त कहा जाया करता है। दुर्ग कई प्रकार क होते हैं—जल दुर्ग होता है—भूमि दुर्ग है—और वृक्ष दुर्ग होता है ॥१११॥११२॥

अरण्यमरुदुर्गं च शैलज परिखोद्भवम् ।
दुर्गं कार्यं नृपतिना यथा दुर्गं स्वदेशत ॥११३
दुर्गं कुर्वन् पुर कुर्यात् त्रिकोण धनुराकृति ।

वर्तुलं च चतुष्कोणं नान्यथा नगरं चरेत् ॥११४
मृदङ्गाकृतिदुर्गं तु सततं कुलनाशनम् ।
यथा राक्षसराज्यस्य लङ्का दुर्गान्विता पुरा ॥११५
बले पुरं शोणिताख्यं तेजो दुर्गे प्रतिष्ठितम् ।
तद् यस्माद् व्यञ्जनाकारं मनोभ्रष्टं शिवावलि ॥११६
सौभाग्य शाल्वराजस्य नगरं पंचकोणकम् ।
दिवि यद् वर्तते राज्यं तच्च भ्रष्टं विख्यातः॥११७
यच्चायोध्याह्वयं भूप पुरीमिक्ष्वाकुभूभृताम् ।
धनुराकृति तच्चापि ततोऽभूद् विजयप्रदम ॥११८
दुर्गभूमौ जयेद् दुर्गा दिक्पालाश्चैव द्वारत ।
पूजयित्वा विधानेन जयं भूप समाप्नुयात् ॥११९

अरण्य मरु दुर्ग—शैल से समुद्भूत दुर्ग और परिखा से उद्भूत दुर्ग होता है । नृप को जैसा अपने देश से दुर्ग हो वैसा ही दुर्ग करना चाहिये ॥११३॥ दुर्ग की रचना करते हुए त्रिकोण और धनुष की आकृति वाला पुर बनाना चाहिए। वर्तुल और चतुष्कोण पुर की रचना करे अन्य प्रकार से नगर नहीं करना चाहिए ॥११४॥ मृदङ्ग की आकृति वाला दुर्ग निरन्तर कुल के नाश करने वाला होता है । जिस प्रकार से पहिले राक्षसों के राजा रावण की लङ्का पुरी दुर्ग से युक्त थी ॥११५॥ राजा बलि का शोणित नाम वाला पुर था और दुर्गों से में प्रतिष्ठित तेज था । क्योंकि वह व्यञ्जनाकार था और शिवा बलि मनो भ्रष्ट थी ॥११६॥ शाल्वराज का सौभाग्य नगर पाँच कोनों वाला था । जो राज्य दिव लोक में है वह भ्रष्ट हो जायेगा ॥११७॥ और जो अयोध्या नामक इक्ष्वाकु नृपों का पुर था वह भी धनुष की आकृति वाला था इसी से वह विजय प्रद हुआ था ॥११७॥ दुर्ग की भूमि में दुर्गा का यजन करना चाहिए । और द्वार पर दिक्पालों का यजन करे । विधान से पूजन करके नृप जय को प्राप्त किया करता है ॥११९॥

अतो दुर्गं नृपः कुर्यात् सततं जयवृद्धये ।
न ब्राह्मणान् सदा राजा केनाप्यवमनीकृतान् ॥१२०
अवमन्य नृपो विप्रान् प्रेत्येह दुःखभाग् भवेत् ।
न विरोधस्तु तैः कार्यः स्वानि तेषां न चाददेत् ॥१२१
कृत्यकालेषु सततं तानेव परिपूजयेत् ।
नैषां निन्दां प्रकुर्वीत नाभ्यसूयां तथाचरेत् ॥१२२
एवं नृपो महाबुद्धिस्तत्त्वमण्डलसंयुतः ।
अप्रमादी चारचक्षुर्गुणवान् सुप्रियंवदः ॥१२३
प्रेत्येह महतीं सिद्धिं प्राप्नोति सुखभोगवान् ।
यैर्गुणैर्योजितश्चात्मा तैः पुत्रानपि योजयेत् ॥१२४
नृपस्य च स्वतन्त्रत्वं सततं स्वं विनाशयेत् ।
स्वतन्त्रो भूपतनयो विकारं याति निश्चितम् ॥१२५
निर्विकाराय सततं वृद्धाश्च परियोजयेत् ।
भोजने शयने याने पुत्राणां च वीक्षणे ॥१२६
वियोजयेत् सदा दारान् भूपः कामविचेष्टने ।
अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः सततं पार्थिवेन तु ॥१२७

इसीलिये राजा को अपना दुर्ग निरन्तर जय की वृद्धि के लिये करना चाहिए। राजा ब्राह्मणों को सदा किसी से भी अवमनीकृत न करे। राजा विप्रों को अवमान करके यहां पर और मृत्युगत होकर भी दुःख का भागी होता है। उनके साथ कभी विरोध नहीं करे और उनका धन ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥१२०॥१२१॥ कृत्य के कालों में निरन्तर उनका ही परिपूजन करना चाहिए। इनकी निन्दा न करे और न इनकी अभ्यसूया करनी चाहिए ॥१२२॥ इस प्रकार से महान् बुद्धिमान तत्व मण्डल से संयुत नृप अप्रमादी—चार चक्षु—गुणवान्—प्रियं वद होता है। यहाँ पर और मृत्युगत होकर महती सिद्धि को प्राप्त होता है और सुखों के भोग वाला हुआ करता है। जिन गुणों से

अपने आपको योजित करे उन गुणों से पुत्रों को भी योजित करना चाहिए ॥१२३॥१२४॥ नृप की निरन्तर स्वतन्त्रता अपने आपका विनाश किया करती है। राजा का पुत्र स्वतन्त्र रहकर निश्चित रूप से विकार को प्राप्त हो जाता है ॥१२५॥ निर्विकार के लिये निरन्तर वृद्धों को पारियोजित करे। भोजन में—शयन में—यान में और पुरुषों के वीक्षण में सदा दाराओं को भय को काम विघट्टन में वियोजित करना चाहिए। राजा के द्वारा स्त्रियाँ निरन्तर अस्वाधीन रखनी चाहिए ॥१२६—१२७॥

ता स्वतन्त्रा स्त्रियो नित्य ह्यानय सम्भवन्ति हि।
तस्मात् कुमार महिषीमुपधाभिर्मनोहरै ॥१२८
शोधयित्वा नियुञ्जीत यौवराज्यावरोधयो ।
अन्त पुरप्रदेशे तु स्वतन्त्रत्व निषेधयेत् ॥१२९
भूपपुत्रस्य भार्याया वहि सारे तथैव च।
अय विशेष सक्षेपान्नृपधर्मो मयोदित ॥१३०
पुत्राणा गुणविन्यासे भार्याणामपि भूपते।
उशना राजनीतीनां तन्त्राणि तु बृहस्पति ॥१३१
चकारान्यान् विशेषास्तु तयोस्तन्त्रेषु बोधयेत।
एव राजा महाभागो राजनीतौ विशेषनाम्।
कुर्वन्न सीदति सदा भूयसी श्रियमश्नुते ॥१३२

वे स्वतन्त्र रहने वाली स्त्रियाँ नित्य ही हानि के लिए हुआ करती है। इस कारण से कुमार को और महिषी को मनोहर उपधाओं से शोधन करके यौवराज्य और अवरोध मे नियोजित करे। अन्तपुर के प्रवेश में स्वातन्त्र्यता का निषेध कर देना चाहिए ॥१२८॥१२९॥ राजा के पुत्र का—भार्या का तथा वहि सार में यह विशेषता सक्षेप से नृप का धर्म मैंने बतला दिया है ॥१३०॥ पुत्रों के गुणों के विन्यास में और राजा की भार्याओं के भी विषय में उशना ने और बृहस्पति ने राजनी-

तियो के तन्त्रो को किया है। अन्य विशेषताओ को उन दोनो के तन्त्रो मे समझना चाहिये। इस प्रकार से महाभाग राजा राजनीति मे विशेषता को करता हुआ कभी भी दुःखित नही होता है और सदा बहुत बड़ी श्री की प्राप्ति किया करता है ॥१३२॥



॥ सदाचार कथन ॥

सदाचारेषु राजेन्द्र विशेषाञ्छृणु सम्प्रति ।
यानवश्य नृप कुर्यात तान्मत्त सकलाञ्छृणु ॥१
साधव क्षीणदोषाश्च सच्छब्द साधुवाचक ।
तेषामाचरण यत् तत सदाचार स उच्यते ॥२
आगमेषु पुराणेषु सहितासु यथोदितान् ।
समुद्दिष्टसदाचारान् गृह्णीयात् तान् गृहस्थवत् ॥३
ऋषीन् यजेद् वेदपाठैर्देवान होमै प्रपूजयेत् ।
श्राद्धे पितृस्तर्पयेत् तु भूतानि बलिभिस्तथा ॥४
मैत्र प्रसाधन स्नान दन्तधावनमञ्जनम् ।
सर्वं गृहस्थवत् कुर्याभिषेकाद्य विधि तथा ॥५
षट्कर्मसु नियुञ्जीत राज विप्रान् समन्तत ।
तथैव क्षत्रियादोश्च स्वे स्वे धर्म नियोजयेत ॥६
य स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरत् ।
त शतेन नृपो दण्ड पुनस्तस्मिन् नियोजयेत् ॥७

और्व ने कहा—अब हे राजेन्द्र ! सदा चारो मे जो विशेषतायें है उनका श्रवण कीजिये। जिन्हे राजा को अवश्य ही करना चाहिये उन सबको आप मुझसे ही उन सबका श्रवण कीजिये ॥१॥ साधुगण क्षीण दोषो वाले होते है क्योकि सत् शब्द साधु वाचक हुआ करता है। उनका

जो भी आचरण है वही सदाचार कहा जाया करता है ॥२॥ आगमों में—पुराणों में और संहिताओं में जिस प्रकार से कहे गये हैं उन समुद्दिष्ट सदाचारों में गृहस्थ की भाँति ग्रहण करना चाहिये ॥३॥ वेदों के पाठों के द्वारा ऋषियों का यजन करे और होमों के द्वारा देवगणों का पूजन करे। श्राद्धों के द्वारा पितृगणों को तृप्त करे तथा बलियों के द्वारा भूतों को सन्तृप्त करना चाहिए ॥४॥ मैत्र—प्रसाधन—स्नान—दन्त धावन—अञ्जन यह सब गृहस्थ की ही भाँति करे तथा निषेकाद्य विधि को करना चाहिए ॥५॥ राजा को चाहिए कि षट् कर्मों में सभी ओर से विप्रों की नियुक्ति करे। उसी भाँति क्षत्रिय आदि को अपने-अपने धर्म में नियोजित करे ॥६॥ जो अपने शास्त्रोक्त धर्म का परित्याग करके परायों के धर्म का समाचरण करे उसको राजा एक सौ का दण्ड देवे और फिर उसको उसी विहित धर्म में नियोजित करना चाहिए ॥७॥

सावत्सरेषु कृत्येषु विशिष्यैतान समाचरेत्।
अवश्य पार्थिवो राजन् तान् विशेषाञ्छृणुष्व मे ॥८
शरत्काले महाष्टम्या दुर्गाया परिपूजनम्।
नीराजनं दशम्या तु कुर्याद् वै बलवृद्धय ॥९
पौषे मासि तृतीयाया कुर्यात् पुष्याभिषेचनम्।
पूजयित्वा श्रिय देवी पञ्चम्या नृपतिश्चरेत् ॥१०
श्रीयज्ञ धनधान्यस्य वृद्धये नृपसत्तम।
ज्येष्ठे दशहराया तु विष्णोरिष्टिं तथाचरेत् ॥११
रवौ हरिस्थे द्वादश्या शक्रपूजा समाचरेत।
विशिष्यैतास्तु नृपति कुर्याद् यज्ञान बहुव्ययं ॥१२
एभि वर्तयत राज्य कोपश्चापि विवर्धते।
अकृतेष्वेषु यज्ञेषु दुर्भिक्ष मरण तथा ॥१३
जायन्ते चैनय सर्वा विशिष्यैतास्ततश्चरेत।

शरतकाले महाष्टम्या दुर्गायाः पूजने विधिः ॥१४

एवं सम्वत्सर में होने वाले कृत्यों में विशेष रूप से इनका समाचरण करना चाहिये। हे राजन्! राजा उन विशेषों का अवश्य ही समाचरण करे—इनका श्रवण मुझसे करलो ॥८॥ शरत्काल में महा अष्टमी के दिन दुर्गा का परिपूजन करे। दशमी तिथि में बल की वृद्धि के लिये नीराजन करना चाहिए ॥९॥ पौष मास में तृतीया में पुष्य का अभिषेक करे। नृप पञ्चमी में श्री देवी का पूजन करके चरण करे। ॥१०॥ हे नृप श्रेष्ठ! धन धान्य की वृद्धि के लिये श्री यज्ञ का समाचरण करना चाहिए। ज्येष्ठ मास में दशहरा के दिन भगवान् विष्णु की इष्टि का समाचरण करे ॥ ११ ॥ द्वादशी में हरिस्थ रवि के दिन में इन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिए। राजा को इन यज्ञों का विशेष रूप से बहुत व्यय के द्वारा करना चाहिए ॥१२॥ इनके किये जाने पर बल—राज्य—और कोष भी वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इन यज्ञों के न किए जाने पर देश में दुर्भिक्ष (अकाल) और मरण होता है ॥१३॥ सब प्रकार की ईतियाँ होती हैं (टिड्डी आदि ईतियाँ हुआ करती हैं) अतएव इनको विशेष रूप से करना चाहिए। शरत्काल में महाष्टमी तिथि में दुर्गा के पूजन की विधि है ॥१४॥

पुरा प्रोक्तस्तु विधिना तेन कार्यं तु पूजनम्।
विधिं नीराजनस्य त्वं शृणु पार्थिवसत्तम ॥१५
कृतेन येन चाश्वानां गजानामपि वर्धनम्।
आश्विने शुक्लपक्षे तु तृतीया स्वातीयोगिनी ॥१६
ऐशान्यां स्वपुरस्यैव गृह्णीयात् स्थानमुत्तमम्।
नीराजनं ततः कुर्यात् सम्प्राप्ते दिवसेऽष्टमे ॥१७
नीराजनस्य कालस्तु पूर्वमुक्तो मया तव।
विधानमात्रं शृणु मे कृतकृत्यो भविष्यसि ॥१८
एकं हयं महासत्त्वं सुमनोहरमेव च।

पूजयेत् सप्तदिवसान गन्धपुष्पाशुवादिभि ॥१६
तृतीयादौ पजयित्वा नयेत यज्ञमण्डलम् ।
चेष्टा निरूपयस्तस्य जानीयात् तु शुभशुभम् ॥२०
परराष्टावमद स्यादश्वो यदि पलायते ।
म्रियते राजपुत्रस्तु यदि चाश्रूणि मुञ्चति ॥२१

यह विधि पहिले बतादी गयी है उसी विधि म पूजन करना चाहिए। हे पार्थिवा म परम श्रेष्ठ ! आप नीराजन की विधि का श्रवण करिये। १५। जिसके करने से अश्वो की और गजो की वृद्धि हुआ करती है। आश्विन मास म शुक्ल पक्ष म तृतीया तिथि स्वाती नक्षत्र की योग वाली हो ॥ १६ ॥ अपने पुर की ही ऐशानी दिशा म किसी उत्तम स्थान का ग्रहण करे। आठवे दिन के सम्प्राप्त हो जाने पर नीराजन करना चाहिए। १७। नीराजन (आरती) का काल तो आपको मैंने पहिले ही बतला दिया है। अब तो केवल मुझसे विधान ही का श्रवण करिये। इसमे आप कृतकृत्य हो जाँयगे। १८। हे महा मत्व ! एक अश्व जो बहुत ही सुन्दर होवे सात दिन तक गन्ध पुष्प अक्षत आदि से उसकी पूजा करे। १६। तृतीया के आदि म अर्चन करके उस यज्ञ मण्डल प ले जावे। उसकी चेष्टा का निरूपण करते हुए शुभ और अशुभ का ज्ञान प्राप्त करो। २०। यदि अश्व पलायन करता है तो पराये राष्ट्र का अवमर्द होता है। यदि वह अश्व अपने नेत्रो से अश्रुओ का मोचन किया करता है तो राजा के पुत्र की मृत्यु हो जाती है। २१।

नीयमानो न गच्छेत् तु महिषीमरण तत ।
तथैव मुखनासाक्षि शब्द कुर्याद्धया यदि ॥२२
स काष्ठाभिमुख कुर्यात् तत् काष्ठाया जयेद्रिपून् ।
उत्क्षिप्य दक्षिणाग्र तु पदमश्वो भवेत पुर ॥२३
तदा यदि समस्तांश्च नृपतिर्विजयेद्रिपून् ।

प्रातर्नीराजनं कुर्याद् दशम्यां नृपसत्तम ॥२४
तदप्राप्तौ च द्वादश्यां तस्यामेव समाचरेत् ।
कार्तिके पञ्चदश्यां वा तत्राभावे तु पार्थिव ॥२५
ऐशान्यां स्वपुरस्योच्चैर्हस्तमानेन षोडश ।
दशहस्तं तु विपुलं कुर्यादं वै तत्र तोरणम् ॥२६
द्वात्रिंशद्धस्तमात्रं तु हस्तषोडशविस्तृतम् ।
यज्ञार्थं मण्डलं कुर्यान्मध्ये वेदिं विनिर्दिशेत् ॥२७
वेद्याश्चोत्तरश्चाश्व-वेदिं कुर्यादनुत्तमाम् ।
यत्र सस्थाप्य चाश्वश्च पूजितव्य पुरोहितैः ॥२८

ले जाया हुआ वह अश्व यदि गमन न करे तो महिषी का मरण हो जाता है। यदि अश्व मुख—नासिका और नेत्रों से शब्द करे तो जिस दिशा की ओर मुख करके ध्वनि करता उस दिशा में शत्रुओं के ऊपर जय प्राप्त कराता है। यदि अश्व दाहिने पद के अग्र भाग को उत्क्षिप्त करके आगे होवे तो राजा सम्पूर्ण रिपुओं पर विजय प्राप्त किया करता है। हे नृप श्रेष्ठ ! दशमी तिथि में प्रातःकाल में ही नीराजन करना चाहिए। २२—२४। उसकी अप्राप्ति होने पर उसी द्वादशी में समाचरण करना चाहिए। हे पार्थिव ! अथवा वहाँ पर अभाव होने पर कार्तिक मास में पञ्चदशी में ऐशानी दिशा में जो अपने पुर से होवे सोलह हाथों के मान से दश हाथ विपुल वहाँ पर तोरण करे ॥ २४—२६ ॥ बत्तीस हाथ प्रमाण से युक्त और सोलह हाथ विस्तार वाला यज्ञ के लिये मण्डल बनावे और मध्य में वेदी का विनिर्देश करना चाहिये। २७। वेदी के उत्तर दिशा में बहुत श्रेष्ठ अश्व वेदी की रचना करे। जहाँ पर सस्थापित करके पुरोहितों के द्वारा अश्व का पूजन करना चाहिये। २८।

सर्जोदुम्बरशाखानामर्जुनस्याथवा नृप ।
मत्स्यशशाङ्कितैश्चक्रैर्ध्वजैश्चाप्यभिभूषयेत् ॥२९
तोरणं कनकरत्नैस्तथा नानाविधैः फलैः ।

भल्लातक शालिकुष्ठ सिद्धयर्थ सैन्धदस्य तु ॥३०
कण्ठदेशे निवध्नीयात् पुष्टिशान्त्यर्थमेव च ।
वैष्णव मण्डल कृत्वा दिक्पालाश्च नवग्रहान् ॥३१
विश्वेदेवास्तु मन्त्रेण विष्णुदूत्यान् प्रपूजयेत् ।
आज्यैस्तिलैश्च पुष्पैश्च मिश्रीकृत्य पुरोहित ॥३२
रवेस्तु वरुणस्यैव प्रजेशस्य तथैव च ।
पुरुहूतस्य विष्णोश्च होम सप्ताहमाचरेत ॥३३
एकैकस्य सहस्र वा अष्टोत्तरशत च वा ।
कुर्यात् तु प्रत्यह होम चतुर्वर्गस्य सिद्धये ॥३४
समिधश्चापि होतव्या पालाशा खादिरास्तथा ।
औदुम्बर्यश्च काश्मर्या आश्वत्थ्याश्च पुरोधमा ॥३५

हे नृप ! सर्ज—उदुम्बर की शाखाओं का अथवा अर्जुन की शाखा के मत्स्य—शख मे अङ्कित चक्रो से और ध्वजो से भूषित करना चाहिये ॥ २६ ॥ सुवर्ण और रत्नो से तथा अनेक फलो के द्वारा सैन्धव की सिद्धि के लिये भल्लातक शालिकुष्ठ तोरण कण्ठ देश मे पुष्टि और शान्ति के लिये बाँधे । वैष्णव मण्डल की रचना करके दिक्पालो और नवग्रहो का तथा विश्वेदेवाओ का और विष्णु दूतो का पूजन करना चाहिये । पुरोहित तिलो से मिश्रित घृत से और पुष्पो से रवि का—वरुण का—प्रजेश का—इन्द्र देव का—भगवान् विष्णु का होम सात दिन तक करे ॥ ३०—३३ ॥ एक-एक का एक सहस्र अथवा अष्टोत्तर शत जप करे और चतुर्वर्ग की सिद्धि के लिये प्रति दिन होम करना चाहिये । ३४ । समिधाएँ भी हवन के लिये पलाश (ढाक) अथवा खदिर की होनी चाहिये । पुरोहित के द्वारा समिधाएँ उदुम्बर (गूलर) की हों या काश्मीर की होवें तथा पीपल की होम मे ग्रहण करनी चाहिये ।३५।

सौवर्णान् राजतान् वापि मार्तिकान् वा यथेच्छया ।
कुर्यात् तु कलशानष्टौ फलाम्रास्वग्योजितान् ॥३६

क्षिपेत तेषु घटेष्वेव समङ्गहरितालकम् ।
चन्दनं च कुष्ठं प्रियङ्गुं च मनःशिलाम् ॥३७
अञ्जनं च हरिद्रां च श्वेता दन्ती तथैव च ।
भल्लातकं पूर्णकोशं सहदेवीं शतावरीम् ॥३८
वचां मनागकुसुमां सोमराजीं सुगुप्तिकाम् ।
तुत्थं च करवीरं च तुलसीदलमेव च ॥३९
एतानि निक्षिपेन्मध्ये कलशानां पुरोहितः ।
कनकैरम्बुजैर्यज्ञदारुभिः स्रुक्स्रुवौ तथा ॥४०
कर्तव्ये शान्तिकामेन नीराजनविधौ नृप ।
एवं सप्ताहपर्यन्तं पूजाभिहवनैस्तथा ॥४१
पूर्वोक्तान् पूजयित्वा तु नृपः सप्ताहमाचरेत् ।
यावन्नीराजनं कुर्यात् तावद्राजा वसेद् गृहे ॥४२

फलाधाम्बर मे योजित आठ कलश रखे वे कलश चाँदी—सुवर्ण अथवा इच्छानुसार मृत्तिका के ही होवें। उन कलशों में समङ्ग हरिताल—चन्दन—कुष्ठ—प्रियगु—मैनसिल—अञ्जन—हल्दी—श्वेत दन्ती—भल्लातक—पूर्णकोश—सहदेवी—शतावर—वच—मनगाकुसुम—सोमराजी—सुगुप्तिका—तुत्थ—करवीर—तुलसीदल—इन सब को पुरोहित कलशों के मध्य में निक्षिप्त कर देवे। हे नृप! नीराजन विधि में शान्ति की कामना से कनक—अम्बुज अथवा यज्ञ के काष्ठों के द्वारा स्रुक् और स्रुव बनवाने चाहिये। इस प्रकार से एक सप्ताह पर्यन्त पूजा करें॥३६—४१॥ इस प्रकार से पूजन करके नृप एक सप्ताह तक समाचरण करे। जब तक नीराजन करे तब तक राजा को गृह में वास करना चाहिए॥४२॥

गावो न यत्रभूमौ तु निरसेच्छान्तिमिच्छुकः ।
नारोहयेत् तुरङ्गं तु गजं वा तत्र पार्थिवः ॥४३

यावत् सप्ताहपर्यन्त यानेनान्येन वै व्रजेत् ।
भक्ष्यैर्नानाविधैश्चैव मधुपायसयावकं ॥४४
मोदकैर्वा बलि कुर्यादन्नव्यञ्जनशम्भवं ।
पूर्वोक्ताना तु देवाना सप्ताह यावदुत्तमम् ॥४५
सप्तमेहिए तु रेभन्त पूजयत तोरणान्तरे ।
सूर्यपुत्र महाबाहु द्विभुज कवचोज्ज्वलम् ॥४६
ज्वलन्त शुक्लवस्त्रेण केशानुद्ग्रथ्य वाससा ।
कशा वामकरे बिभ्रद दक्षिण तु कर पुन ॥४७
स खड्ग न्यस्य वामाया सितसैंधवसस्थितम् ।
एवविध तु रेभन्त प्रतिमाया घटेऽपि वा ॥४८
सूर्यपूजाविधानेन पूजयेत् तोरणान्तरे ।
पूजयित्वा तु रेभन्त द्विरद तुरग तथा ॥४६

शान्ति की इच्छा रखने वाले नृप को रात्रि के समय मे यज्ञ भूमि मे निवास नही करना चाहिए। राजा उस अश्व पर अथवा हाथी पर आरोहण न करे। जब तक एक सप्ताह होवे राजा को दूसरे ही किसी यान के द्वारा गमन करना चाहिए। और अनेक प्रकार के अन्न के व्यञ्जन मे सम्भूत भक्ष्यो से—मधु—पायस—यावको से अथवा मोदकों के द्वारा बलि करे। सप्ताह तक पूर्व म बतलाये हुए देवताओं की उत्तम बलि कर॥ ४३—४५ ॥ सातवें दिन म तोरण के अन्तर मे रेवन्त करते हुए का पूजन करना चाहिए। महा बाहुओ वाले दो—भुजाओ से युत—कवच म उज्ज्वल आज्वल्यमान सूर्य पुत्र का पूजन करे। शुक्ल वस्त्र म केशो का उद्ग्रथित करके कशा को बाँये हाथ म लिए हुए दक्षिण कर का खड्ग म सहित सित सैन्धव पर सस्थित वामा में न्यस्त कर। इस प्रकार के रेवन्त का प्रतिमा म अथवा घट मे तोरण के अन्तर में सूर्यदेव की पूजा के विधान स पूजन कर। रेवन्त अश्व को अथवा गज का पूजित करना चाहिए॥ ४३—४६ ॥

अहताम्बरसत्रीत स्रक्चन्दनसमन्वितम् ।
सुवर्णविद्धनिस्त्रिंश विचित्र कवचादिभि ॥५०
युक्त तु होमकुण्डस्य ऐशान्यामश्ववेदिकाम् ।
पूर्वं कृता नयेदश्वगजपालौ पृथक् पृथक् ॥५१
नीयमाने गजे चाश्वे पूर्वोक्त तु निमित्तकम् ।
यत्नाद् वीक्षेत नृपति फल चैवावधारयेत् ॥५२
होमकुण्डस्योत्तरस्या वैयाघ्रे चर्मणि स्थित ।
वेदविदा चाश्वविदा सहितो वीक्ष्य सैन्धवम् ॥५३
नीताय तस्मायाशु भक्तपिण्डी सुगन्धिनीम् ।
दद्यात् पुरोहितस्तत्र समन्त्र्य शान्तिमन्त्रकै ॥५४
भक्षणाद यदि जिघ्रेत् तदश्नीयाद् वा हय स च ।
तदा स्यात् राजकल्याण विपरीतमतोऽन्यथा ॥५५
शाखामौदुम्बरीमाम्री सकुशां च घटोदके ।
आप्लाव्याप्लाव्य तुरगान् गजान् भूप च सैनिकान् ॥५६
रथाश्च सस्पृशन्मन्त्रै शान्तिकै पौष्टिकैस्तथा ।
सेचयेत् महिनैर्विप्रैश्चतुरङ्ग पुरोहित ॥५७

अहत अम्बर (वस्त्र म) म सवीत--माला और चन्दन से समुत-- सुवण म विद्ध निस्त्रिश वाला—विचित्र--कवच आदि से युक्त-- ऐशानी दिशा म है मकुण्ड की वदिका पर जो पूर्व म हुई है अश्व और गज के पालक पृथक्-पृथक् ले जावे ॥ ५०—५१ ॥ अश्व और गज क ले जाया जाने पर राजा पूर्व म कथित निमित्त को यत्न साथ देखे और फल का भी अवधारण करे ॥ ५२ ॥ होम कुण्ड की उत्तर दिशा मे बाघम्बर चर्म पर स्थित होकर वेदो के ज्ञाता और अश्वो के ज्ञान रखने वाले के सहित सैन्धव (अश्व) को देखकर लाये हुए अश्व के लिए शीघ्र ही सुगन्धित भक्त (भात) की पिण्डी देवे । पुरोहित वहाँ पर शान्ति मन्त्रो के द्वारा अभिमन्त्रित करके ही उस देवे ॥ ५३—५४ ॥ यह अश्व

यदि उसका अवघ्राण करे अथवा अशन करे तो उस अवसर पर सब प्रकार का कल्याण होता है। और इसके विपरीत होवे तो अन्यथा हुआ करता है ॥ ५५ ॥ उदुम्बर की शाखा—आम्र की शाखा कुशा के साथ घट के जल से आप्लावित करे अश्वों का—हाथियों का—राजा का और सैनिकों का अथवा रथों का स्पर्श करे। पुरोहित शान्तिक और पौष्टिक मन्त्रों के द्वारा विप्रों के सहित चतुरङ्ग का सेचन करे। ॥ ५६—५७ ॥

दिक्पालानां ग्रहाणां च मन्त्रैश्च वैष्णवैस्तथा ।
बहुधा चाभिषिच्याथ तत सौवर्ण दर्पणम् ॥५८
वीक्षयित्वा नृप चर्त्विक् ततो मन्त्रिणमेव च ।
राजपुत्र तथामात्यानन्यानपि च सैनिकान् ॥५६
कम्पयन् द्विजशार्दूल सर्वानेव तु दर्शयेत् ।
चतुरङ्गस्य स्वस्यापि कुर्त्वव शान्तिपौष्टिके ॥६०
मृन्मय शात्रव कृत्वा चाभिचारिकमन्त्रकं ।
हृदि शूलेन विध्वा त शिर खड्गेन छेदयेत् ॥६१
आचार्यो कविका पश्चादभिमन्त्र्य हयाय वै ।
ऐन्द्रं प्राभाकरं मन्त्रैर्दाद वक्त्रे स्वय पुन ॥६२
तमनेन तु मन्त्रेण समारुह्य नृपस्तदा ।
गच्छेदुत्तरपूर्वा तु दिश सर्वैर्बलैर्युत ॥६३

दिक्पालों का और ग्रहों का वैष्णव मन्त्रों के द्वारा बहुत प्रकार से अभिषिञ्चन करके ऋत्विक् सुवर्ण के दर्पण को नृप को फिर मन्त्री को—राजपुत्र को तथा अन्य अमात्यों को और सैनिकों को दिखला करके द्विज शार्दूल कम्पन करते हुए सबको ही दिखलावे। अपने भी चतुरङ्ग का शान्ति—पौष्टिक इस प्रकार से करे ॥ ५८— ६० ॥ मिट्टी से शत्रु के हृदय मे शूल से वेध करे और शिर का खड्ग से छेदन करना चाहिए ॥ ६१ ॥ आचार्य पीछे कविका को अभिमन्त्रित करके फिर

दक्षिणा सुवर्ण—गौ—तिल आदि शक्ति से दान देवे। इस प्रकार से बलो का और राजाओ का नीराजन करके इस लोक मे और मृत्युगत होकर राजा सुस्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति किया करता है। हे अश्व! आपका उद्भव सागर से हुआ है आप अश्वामृत मे सञ्जात हैं। जिस सत्व से इन्द्र का वहन किया करते है उसी मे मेरा वहन करें। जिस सत्य से रेभन्त का—जिस सत्य से भास्कर का वहन करते हो उसी सत्य मे विजय प्राप्त करने के लिये मेरा वहन करो। इन भूप मन्त्रो के द्वारा अश्व पर आरोहण का समाचरण करना चाहिए ॥६६—७१॥

आरुह्याग्रे महिष्यास्तु शुद्धान्ते लम्बयेत ततः।
महिषी च ततो भूप पर्यङ्कोपरि सस्थितम् ॥७२
दूर्वाक्षतैः ससिद्धार्थं स्त्रीभि. सह तमर्चयेत्।
कृते तु भूमिग्रहणे तृतीयाया निराजने ॥७३
सूतक यदि जायेत तत्र दुष्यति केवलम्।
सूतकी मृतकी वापि पार्थिवस्त यथा तथा ॥७४
बलनीराजन कुर्यात तन्मात्र च विशेषतः।
सद्यः शौच भवेद्राज्ञो व्यवहारविलोकने ॥७५
तथाधिवासने यज्ञे परराष्ट्रविमर्दने।
अथ ते कथितो राजन्नीराजन क्रमो मया।
पुष्यस्नानविधानं त पार्थिव शृणु साम्प्रतम् ॥७६

महिषी के आगे समारोहण करके फिर शुद्धान्त. पुर लम्बित करे। फिर वह महिषी (पट्टाभिषिक्ता रानी) को पराङ्क पर सस्थित राजा का सिद्धार्थ के सहित दूर्वा क्षतो मे स्त्रियो के साथ अभ्यर्चन करना चाहिये। यह भजन तृतीया मे नीराजन मे भूमि के ग्रहण करने पर ही करे ॥७२॥७३॥ यदि सूतक उत्पन्न होवे तो केवल दूषित होता है। सूत की हो अथवा मृत की हो पार्थिव जैसे-तैसे राजा बल का नीराजन करे और विशेष रूप से उतना करे। व्यवहार के विलोकन मे राजा को तुरन्त ही शौच हो जाता है। तथा अधिवासन मे यज्ञ मे और

पर राष्ट्र के विमर्दन में भी शौच होता है। हे राजन्! यह मैंने आपके सामने नीराजन का क्रम बतला दिया है। अब पुष्य के स्नान का विधान आप मुझसे श्रवण कीजिए ॥७४—७६॥



॥ राज्याभिषेक वर्णन ॥

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि पुष्यस्नानविधिक्रमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण विघ्ना नश्यन्ति सन्ततम् ॥१
पौषे पुष्यर्क्षगे चन्द्रे पुष्यस्नानं नृपश्चरेत् ।
सौभाग्यकल्याणकरं दुर्भिक्षमरणापहम् ॥२
विष्ट्यादिष्टकरणे व्यतीपाते च वैधृतौ ।
वज्रे शूले हर्षणादौ योगे तु लभ्यते ॥३
तृतीयायक्तपश्चर्क्षे रविशौरिकुजेऽहनि ।
तदा समस्तदोषाणां ततः स्नानं हानिकारकम् ॥४
ग्रहदोषाश्च जायन्ते यदि राज्यपु चेतय ।
तदा पुष्ये तु नक्षत्रे कर्यान्मासान्तरेऽपि च ॥५
इयं तु ब्रह्मणा शान्तिरुद्दिष्टा गुरवे पुरा ।
शक्रादिसर्वदेवानां शान्त्यर्थं च जगत्पतिः ॥६
तुषकेशास्थिवल्मीक-कीटदेशादिवर्जिते ।
शर्करावृश्चिकश्माण्ड बहुकष्टविवर्जिते ॥७

और्व ने कहा—हे राजन्! अब मैं आपको पुष्य—स्नान की विधि के क्रम को बतलाऊँगा जिसके केवल विज्ञान से ही विघ्न निरन्तर नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥१॥ पौष मास में चन्द्र के पुष्य नक्षत्र गत होने पर राजा को पुष्य स्नान का समाचरण करना चाहिए। यह स्नान सौभाग्य और कल्याण के करने वाला होता है और दुर्भिक्ष

तथा मरण के अपहरण करने वाला होता है ॥२॥ विष्टि (भद्रा) आदि दुष्ट करण में—व्यतीपात और वैधृति में—वज्र—शूल—इषण आदि में योग में यदि इसका लाभ होता है तो तृतीया से युक्त पुष्य नक्षत्र रवि—शौरि और मङ्गल वार में तब यह समस्त दोषों की हानि करने वाला होता है ॥३॥४॥ ग्रहदोष होने हैं और राज्यों में इतियाँ होती हैं तब पुष्य नक्षत्र में और मासा नर में भी करना चाहिए ॥५॥ यह शान्ति पहले समय में ब्रह्माजी ने गुरु के लिए बताई थी और जगत्पति ने शक्र आदि समस्त देवों की शान्ति के लिये ही कहा था ॥६॥ तुष केश—अस्थि—वल्मीक कीट देश आदि से वर्जित—शर्करा—कृमि—कूष्माण्ड—बहु क्रुष्ट से रहित ॥७॥

काकोलूकश्च कङ्कश्च काकोलगृध्रशौनक ।
वर्जिते कण्टकिवन विभीतकविवर्जिते ॥८
शिग्रुश्लेष्मानकाद्या त जलौकाद्यैर्विवर्जिते ।
स्वस्थाने चम्पकाशोक बकुलादिविराजते ॥६
हंसकारण्डवाकीर्णे सरस्तीरेऽथवा शुचौ ।
पुष्यस्नानाय नृपतिगृ ह्णीयात स्थानमुत्तमम् ॥१०
तत पुरोहितो राजा नाना वादित्रनिस्वनै ।
प्रदोषसमय गच्छेत तत स्थान पूर्ववासरे ॥११
तस्य स्थानस्य कौबर्या दिशि स्थित्वा पुरोहित ।
सुगन्धचन्दनै पानै कपूराद्यधिवासितै ॥१२
गोरोचनाभि सिद्धार्थैरक्षतै सफलादिभि ।
गन्धद्वारेत्यादिभि मन्त्र सर्वानधिवासयेत् ॥१३

काक—उलूक—कङ्क—काकोल—गृध्र—शौनकों से रहित—कण्टक वाले वन में—विभीतक से वर्जित—शिग्रु श्लेष्मातकों से रहित और जलौका आदि से वर्जित—चम्पक अशोक—बकुल आदि से विराजित अपने स्थान में—हंस और कारण्डवों से समाकीर्ण में अथवा

शुचि सर के तट पर पुष्प स्नान के लिए राजा को उत्तम स्थान का ग्रहण करना चाहिए ॥ ८—१० ॥ इसके अनन्तर राजा और पुरोहित अनेक बाजों की ध्वनियों के साथ प्रदोष के समय में उस स्थान पर पूर्व दिन में गमन करें। उस स्थान की कौबेरी दिशा में पुरोहित स्थित होकर सुगन्धित चन्दन—पान—कर्पूर आदि से अधिवासित—गोरोचनाओं से—सिद्धार्थों से—अक्षतों से जो फल आदि के सहित होवे—"गन्ध द्वारा" इत्यादि मन्त्रों के द्वारा सबके अधिसितों से उस स्थान को अधिवासित करके वहाँ पर देवगणों का पूजन करना चाहिए। ॥ ११—१३ ॥

अधिवास्य तु तत्स्थानं पूजयेत् तत्र देवताः ।
गणेशं केशवं शक्रं ब्रह्माणं चापि शङ्करम् ॥१४
उमया सहितं देवं सर्वाश्च गणदेवताः ।
मातृश्च पूजयेत् तत्र नृपतिः सपुरोहितः ॥१५
मङ्गलान् कलशान् कृत्वा नानानैवेद्यसञ्चयान् ।
प्रदद्यात् पायसं स्वादुफलं मोदकयावकौ ॥१६
अधिवास्य च तत् स्थानं दूर्वासिद्धार्थकाक्षतैः ।
तत्स्थानाच्चापि भूतानि सारयेन्मन्त्रमीरयन् ॥१७
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिपालकाः ।
भूतानामविरोधेन स्नानकर्म करोम्यहम् ॥१८
ततः करौ पुटीकृत्य मन्त्रणानेन पार्थिव ।
आवाहयेदिमान् देवान् पूज्यान् पुष्याभिषेकतः ॥१९
आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभिलाषिणः ।
दिशो दिक्पालकाः सर्वे ये चान्येऽप्यंशभागिनः ॥२०
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुनर्मन्त्रं पठेदिमम् ।
अद्य तिष्ठन्तु विबुधाः स्थानमासाद्य मामकम् ॥२१

भगवान् गणेश—केशव—इन्द्रदेव—ब्रह्मा—देव शङ्कर उमा के

सहित और समस्त गण देवता और मातृगणों का पुरोहित के साथ राजा अर्चन करे ॥ १४—१५ ॥ मङ्गल कलशों को स्थापित करे और अनेक प्रकार के नैवेद्यो के समुदायों का—पायस—स्वादु फल और मोदक तथा यावक देवे। उस स्थान को अधिवासित करके जो दूर्वा व सिद्धार्थ और अक्षतों के द्वारा करना चाहिए। उस स्थान में भी भूतों को मन्त्र का उच्चारण करते हुए अपसारित करना चाहिए ॥ १६—१७ ॥ जो भूत भूमि के पालक हैं वे यहाँ से अपसरण कर जावें। भूतों का विरोध न करते हुए मैं स्नान के कर्म्म करता हूँ ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर दोनों हाथों को पुटित करके राजा इस मन्त्र के द्वारा इन पूज्य देवों का पुष्प के अभिषेक के लिये आवाहन करे ॥ १९ ॥ जो यहाँ पर पूजा के अभिलाषी देव होवें वे सब सुरगण यहाँ पर आगमन करें। सब दिशाओं के पालक होवें और जो भी अश भागी होवें वे आगमन करें। फिर पुष्पों की अञ्जलि देकर पुन. इस मन्त्र का पाठ करे। मेरे इस स्थान को प्राप्त करके आज यहाँ पर विबुध गण स्थित होवें ॥२०—२१॥

स्वपूजा प्राप्य पातारो दत्त्वा शान्ति महीभुजे ।
ततस्ता नृपती रात्रि नयत् तु सपुरोहित. ॥२२
स्वप्ने शुभाशुभ विद्यान्नृपस्तु सपुरोहित. ।
कृत्वा पूजा तु देवाना रात्रे स्थाने नृप स्वपेत् ॥२३
शुभाशुभफल स्वप्ने ज्ञेय दोषज्ञसम्मते ।
दु स्वप्नदर्शन चेत् स्यात् तदा पुण्याभिपचने ॥२४
होम चतुर्गुण कुर्याद् दत्त्वा चापि गवा शतम् ।
गोवाजिकु जराणा तु प्रासादस्य गिरेस्तरो ॥२५
आरोहण शुभकर राज्यश्रीवृद्धिकारकम् ।
दधिदेवसुवर्णाना ब्राह्मणस्य प्रदर्शनम् ॥२६
वीणादूर्वाक्षतफल पुष्पच्छत्रविलेपनम् ।
शालाशु चक्रशत्रूणा पद्मस्य सुहृदस्तथा ॥२७

लाभा क्षयकरा शस्तो रत्नकारस्य भूभृत ।
दर्शनं चोपरागस्य निगडेन च बन्धनम् ॥२८
मांसस्य भोजनं चैव पर्वतस्य विवर्तनम् ।
नाभिमध्ये तरुत्पत्तिर्मृ त प्रत्यनुरोदनम् ॥२६

रक्षा करने वाले आप अपनी पूजा प्राप्त करके और राजा को शान्ति प्रदान करके स्थित होवें। इसके उपरान्त राजा पुरोहित के साथ उस रात्रि को व्यतीत करे ॥ २२ ॥ पुरोहित के सहित राजा स्वप्न में शुभ और अशुभ का ज्ञान प्राप्त करे। देवों की पूजा करके रात्रि में स्थान में नृप को स्वपन करना चाहिए ॥ २३ ॥ शास्त्रों के ज्ञाताओं द्वारा सम्मत स्वप्न में शुभ—अशुभ के फल को जानना चाहिए। यदि बुरे स्वप्न का दर्शन होवे तो पुष्प के अभिषेचन में चौगुना हवन करना चाहिए और सौ गौओं का दान भी देवे। गौ—घोड़ा—हाथी—प्रासाद—पर्वत—वृक्ष का आरोहण शुभ करने वाला और राज्य श्री की वृद्धि का करने वाला हुआ करता है। दधि—देव—सुवर्ण—ब्राह्मण का प्रदर्शन, दूर्वा—वीणा—अक्षत—फल—पुष्प छत्र— विलेपन—शीतांशु (चन्द्र)—चक्र—धनु का—पद्म का और सुहृद का लाभ—रात्रि में क्षय करने वाले हैं। रत्नकार—भूभृत् और उपराग का देखना निगड के द्वारा बन्धन करने वाला होता है। मांस का भोजन—पर्वत का विवर्तन—नाभि के मध्य में वृक्ष की उत्पत्ति और मृत पुरुष के पीछे रुदन करना ॥ २४—२६ ॥

अगम्यागमनं कूपे पङ्कमध्यावतीर्णता ।
पर्वतस्य तथा नद्या स्रोतसा लघनं तथा ॥३०
स्वपुत्रमरणं चैव पानं रुधिरमद्ययो ।
भोजनं पायसस्यापि मनुष्यारोहणं तथा ॥३१
कल्याणसुखसौभाग्य-राज्य-शत्रुक्षयं तथा ।
एते स्वप्ना प्रकुर्वन्ति नृपस्य नृपसत्तम ॥३२

खरोष्ट्रमहिषाणां च आरोहो राज्यनाशनः ।
नृत्यं गीतं तथा हास्यं पाठश्चाप्यशुभप्रदः ॥३३
रक्तवस्त्रपरिधानं रक्तमालानुलेपनम् ।
रक्ताः कृष्णाः स्त्रियश्चैव कामयन् मृत्युमाप्नुयात् ॥३४
कूपान्तरे प्रवेशः स्याद् दक्षिणाशागतिस्तथा ।
पङ्के निमज्जनं स्नानं भार्यापुत्रविनाशनम् ॥३५

अगम्य स्त्री के साथ गमन—कूआ—कीच के मध्य में उतरना—पर्वत का—नदी का तथा स्रोत का लांघना—अपने पुत्र का मरण—रुधिर और मदिरा का पान—पायस का भोजन तथा मनुष्य पर आरोहण हे नृप श्रेष्ठ ! ये स्वप्न राजा के कल्याण—सुख—सौभाग्य—राज्य और शत्रुओं का क्षय किया करते हैं ॥ ३०—३२ ॥ गधा ऊँट और महिष का आरोहण राज्य के नाश करने वाला होता है । नृत्य—गीत—हास्य और पाठ भी अशुभ के प्रदान करने वाले हैं ॥ ३३ ॥ रक्त वस्त्र का परिधान—रक्तमाला और रक्त अनुलेपन—रक्त तथा काली स्त्री की कामना करता हुआ भी मृत्यु को प्राप्त किया करता है ॥ ३४ ॥ कूप के अन्दर प्रवेश तथा दक्षिण दिशा में गमन—कीच में निमज्जन या स्नान भार्या और पुत्र का विनाश करने वाला होता है ॥ ३५ ॥

लाभस्तस्य भवेत् स्वप्नेऽप्यरुत्पत्तिर्न पथ्यं च ।
आदाय गर्भनाडीं तु सकुलां याति खञ्जनम् ॥३६
स तु राज्यान्तरं प्राप्य महाकल्याणमाप्नुयात् ।
दीर्घं विंशतिहस्तं तु हस्तपादशविस्तृतम् ॥३७
कुर्यात् तु लक्षणोपेतं यज्ञमण्डलमुत्तमम् ।
ततोऽपरेऽह्नि पूर्वाह्णे मातॄणां पूजनं चरेत् ॥३८
पुष्ट्यलग्ना वसोर्धारा वृद्धिश्राद्धं तथैव च ।
चन्दनागुरुकस्तूरीधूमवपू रचूर्णकं ॥३९

सम्पूज्य मण्डलस्थानं तस्मिन् ह्रीं शम्भवे नमः ।
अस्त्राय हुँ फडित्येवं लिखेन्मन्त्रद्वयं बुधः ॥४०

उसका स्वप्न में लाभ होवे और नृप की उत्पत्ति हो वे गर्भ गर्भ नाडी का आदान करके कुल महित खञ्जन को जाना है ॥३६॥ यह अन्य राज्य को प्राप्ति करके महान् कल्याण को प्राप्त किया करता है । बीस हाथ दीर्घ और सोलह हाथ विस्तार से युक्त सब लक्षणों से युक्त उत्तम यज्ञ मण्डल की रचना करनी चाहिये । इसके उपरान्त दूसरे दिन में पूर्वाह्ण में मातृगणों की पूजा करे ॥३७॥३८॥ भीत में लगी हुई वसो द्वारा तथा वृद्धि श्राद्ध अर्थात् नान्दी मुख नामक श्राद्ध करे । चन्दन—अगुरु—कस्तूरी—घ्रम कर्पूर के चूर्ण से मण्डल स्थान की भली भाँति पूजा करके उसम "ह्रीं शम्भवे नमः", "अस्त्राय हुँ फट्" इन दो मन्त्रो को बुध को लिखना चाहिए ॥३९॥४०॥

मन्त्रविन्मण्डलज्ञश्च सूत्रै कम्बलसम्भवैः ।
कौशेयैर्वा स्वस्तिकाख्यं प्रथमं मण्डलं लिखेत् ॥४१
चतुर्हस्तप्रमाणं तु मण्डलं विलिखेत ततः ।
हस्तप्रमाणं पद्मं तु मण्डलस्य प्रकीर्तितम् ॥४२
द्वाराणि सार्धहस्तानि कर्णिकाकेशरोज्ज्वलम् ।
सितं रक्तं च पीतं च कृष्णं हरितमेव च ॥४३
शालिचूर्णैश्च कौसुम्भैर्हारिद्रैर्हंदुरदभवैः ।
कुर्यात तथाञ्जनैश्चूर्णै राजा मण्डलवृद्धये ॥४४
पद्मान्ततः समारभ्य ताल पश्चिमगामिनम् ।
पश्चिमद्वारमध्ये च शतहस्तं विनिर्दिशेत् ॥४५
प्रत्येकं द्वारमध्ये तु पद्मं चैवाष्टपत्रकम् ।
कुर्यान्मण्डलभागज्ञश्चूर्णैरेव पृथक् पृथक् ॥४६
चूर्णैस्तु मण्डलं कृत्वा सूत्राण्युत्सारयेत् ततः ।
उत्सार्य सूत्रं प्रथमं मण्डलं पूजयेत् ततः ॥४७

भवनाय नम इति ततो हृस्त वियोजयेत् ।
सव्यावलम्बहस्त त रज पात्र समाचरेत् ।।४८
मध्यमानातिकागुष्ठेरपरिष्टाद यथेच्छया ।
अधामुखागुली कृत्वा पातयच्च विचक्षण ।।४९

मन्त्र का ज्ञाता और मण्डल के ज्ञान रखने वाला पुरुष कम्बल से उत्पन्न सूत्रो से अथवा कौशेयों से प्रथम स्वस्तिका नामक मण्डल का लेखन करे ।।४१।। फिर चार हाथ प्रमाण वाला मण्डल लिखना चाहिए। मण्डल का पद्म एक हाथ प्रमाण वाला कहा गया है ।।४२।। डेढ़ हाथ के प्रमाण वाले द्वार होने चाहिये। वह पद्म कर्णिका के केसरों से समुज्ज्वल होवे। सफेद—लाल—पीला—कृष्ण और हरा और शाली के चूर्ण से—कौसुम्भ से तथा हरिद्रुद्भव हारिद्र से अजन के चूर्ण से मण्डल की वृद्धि के लिए रचना करे ।।४३।।४४।। पद्म के अन्दर से आरम्भ करके पश्चिमगामी ताल को और पश्चिम के द्वार के मध्य में भी हाथ विनिर्दिष्ट करना चाहिये ।।४५।। द्वार के मध्य में प्रत्येक पद्म आठ पत्रों वाला होना चाहिये। मण्डल के भाग में ज्ञाता को चूर्णों से पृथक् पृथक् ही करना चाहिए ।।४६।। चूर्णों के द्वारा मण्डल की रचना करके फिर सूत्रों को उत्सारित करे। सूत्र का उत्सारण करके प्रथम मण्डल का अर्चन करना चाहिए। "भवनाय नम" इससे फिर हाथ से वियोजित करे। सव्यावलम्ब्य हस्त रज पात्र का समाचरण करे ।।४७।।४८।। मध्यमा—अनामिका और अंगुष्ठ से इच्छानुसार ऊपर नीचे की ओर मुख वाली अंगुलियों को करके विचक्षण पुरुष पातन कर देवे ।।४९।।

समारेखा त कर्तव्या विच्छिन्ना पुष्परञ्जिता ।
अंगुष्टपर्वनैपुण्यात् समा कार्या विजानता ।।५०
समकर्णविषम न्यून विच्छिन्न पु.सराकृतम् ।
पर्वतस्पर्धिन हृस्वमानिविंम्न भदापन ।।५१

मसक्ते कलहं विद्यादूर्ध्वं रेखे तु विग्रहम् ।
अतिस्थूले भवेद् व्याधिर्नित्यं पीडाविमिश्रिते ॥५२
विन्दुभिर्भयमाप्नोति शत्रुपक्षान्न संशय ।
कृशाया चार्थहानिः स्याच्छिन्नाया मरणं ध्रुवम् ॥५३
वियोगो वा भवेत् तस्य इष्टद्रव्यसुतस्य वा ।
अविदित्वा लिखेद् यस्तु मण्डलं तु यथेच्छया ॥५४
सर्वदोषानवाप्नोति ये दोषा पूर्वमीरिता ।
सितसर्षपदूर्वाया रेखा कार्या विजानता ॥५५
विमलं विजयं भद्रं विमानं शुभदं शिवम् ।
वर्धमानं च देवं च शताक्षं कामदायकम् ॥५६
रुचिकं स्वस्तिकं चैव द्वादशैते तु मण्डला ।
यथास्थानं यथायज्ञं योजनीया विचक्षणैः ॥५७

रेखा समान करनी चाहिए जो विच्छिन्न और पुष्प रजित होवे। ज्ञाता पुरुष के द्वारा अंगुष्ठ के पर्व की निपुणता से समादी करनी चाहिए ॥५०॥ ससक्त—विषम स्थूल—विच्छिन्न—कृमरावृत—पर्यन्त अवित और ह्रस्व कभी भी नहीं लिखनी चाहिए ॥५१॥ रेखा यदि ससक्त हो तो उससे कलह जानना चाहिए और ऊर्ध्व रेखा में विग्रह होता है। अत्यधिक स्थूल होने पर व्याधि होती है—विमिश्रित होने पर नित्य पीड़ा होती है। विन्दुओं से भय को प्राप्त हुआ करता है—जो कि शत्रु के पक्ष की ओर से हुआ करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है। कृशा में अर्थ की हानि होती है और रेखा छिन्ना हो तो उसमें निश्चय ही मरण हुआ करता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अथवा अभीष्ट द्रव्य या सुत का वियोग उसका होता है। जो भी कोई न जानकर ही इच्छा के ही अनुसार मण्डल का लेखन करे तो वह सभी दोषों को प्राप्त किया करता है जो भी दोष पूर्व में बताये गये हैं। ज्ञान रखने वाले पुरुष के द्वारा सफेद सरसों और दूर्वा से रेखा करनी चाहिये ॥५४॥५५॥ मण्डल बारह होते हैं उनके नाम—विमल—

विजय—भद्र—विमान—शुभद—शिव—वर्धमान । देव—शताक्ष—कामदायक—रुचिक—स्वस्तिक—ये ही बारह मण्डल हैं। विचक्षणों के द्वारा स्थान और यज्ञ के अनुसार ही योजित करने चाहिये ॥५६॥५७॥

सागरे मथ्यमाने तु पीयूषार्थं सुरोत्करं ।
पीयूषधारणार्थाय निर्मिता विश्वकर्मण। ॥५८
कला कला तु देवानामसिखा ते पृथक् पृथक ।
यत कृतास्तु कलसास्ततस्ते परिकीर्तिता ॥५६
नवैव कलसा प्रोक्ता नामतस्तान्निबोधत ।
गोह्योपगोह्यो मरुतो मयूखश्च तथापर ॥६०
मनोहाचार्यभद्रश्च विजयस्तनु दूपक ।
इन्द्रियघ्नोऽथ विजयो नवम परिकीर्तित ॥६१
तेषामेव क्रमाद भूप नव नामानि यानि त ।
शृणु तान्यपराण्येव शान्तिदानि सदैव हि ॥६२
क्षितीन्द्र प्रथम प्रोक्तो द्वितीयो जनसम्भव ।
पवनाग्नी ततो द्वे तु यजमानस्तत पर ॥६३
कोपसम्भवनाम्या तु षष्ठ स परिकीर्तित ।
सोमस्तु सप्तम प्रोक्त आदित्यस्तु तथाष्टम ॥६४

सुरों के समूहों के द्वारा अमृत के लिये सागर के मन्थन किये जाने पर पीयूष के धारण के लिये विश्व कर्मा के द्वारा निर्मित किये गये थे ॥५८॥ क्योंकि देवों की कला-कला पृथक्-पृथक् आसन करके बे किये गये हैं इसी से व कलस नाम से कीर्तित हुए हैं ॥५६॥ कलस नौ ही बताये गये हैं। अब उनको नाम से समझ लो। गोह्योपगोह्य—मरुत—मयूख—मनोहाचार्य भद्र—विजय—तनुदूपक—इन्द्रियघ्न—विजय ये नौ कहे गये हैं ॥६०॥६१॥ हे भूप ! उनके ही जो दूसरे नौ नाम हैं उनका श्रवण करो जो सदा ही शान्ति के प्रदान करने वाले हैं। ॥६२॥ प्रथम क्षितीन्द्र कहा गया है दूसरा जन सम्भव होता है। दो

दो पवन और अग्नि हैं—फिर यजमान है। कोप सम्भव नाभि में छटवां कहा गया है। सोम सातवां कहा गया है और आदित्य आठवां है ॥६३॥६४॥

विजयो नाम कलसो योऽसौ नवम उच्यते ।
स तु पंचमुख प्रोक्तो महादेवस्वरूपधृक् ॥६५
घटस्य पञ्चवक्त्रेषु पञ्चवक्त्र स्वयं तथा ।
यथाकाष्ठा स्थित सम्यगवामदेवादिनामत ॥६६
मण्डलस्य तु पद्मान्तं पञ्चवक्त्र घट न्यसेत् ।
क्षितीन्द्र पूर्वतो न्यस्य पश्चिमे जलसम्भवम् ॥६७
वायव्ये वायव न्यस्य आग्नेये ह्यग्निसम्भवम् ।
नैर्ऋत्ये यजमान तु ऐशान्या कोपसम्भवम् ॥६८
सोममुत्तरतो योज्य भौर दक्षिणतो न्यसेत् ।
न्यस्यैव कलसांश्चैव तेषु चैतान् विचिन्तयेत् ॥६९
कलसाना मुखे ब्रह्मा ग्रीवायां शङ्कर स्थित ।
मूले तु सस्थितो विष्णुर्मध्ये मातृगणा स्थित ॥७०

ब्रह्मा है और उनकी ग्रीवा में शङ्कर स्थित रहते हैं। मूल में भगवान् विष्णु संस्थित हैं और मध्य में मातृगण विराजमान है ॥७०॥

दिक्पाला देवता सर्वा वेष्टयन्ति दिशा दश ।
कुक्षौ तु सागरा सप्त सप्तद्वीपाश्च संस्थिता ॥७१
नक्षत्राणि ग्रहा सर्वे तथैव कुलपर्वता ।
गङ्गाद्या सरित सर्वा वेदाश्चत्वार एव च ॥७२
कलसे संस्थिता सर्वे तेषु तानि विचिन्तयेत् ।
रत्नानि सर्वबीजानि पुष्पाणि च फलानि च ॥७३
वज्रमौक्तिकवैदूर्यमहापद्मेन्द्रस्फाटिकैः ।
सर्वधाममय विल्व नागरोदुम्बर तथा ॥७४
बीजपूरकजम्बीरकाश्मीराम्रातदाडिमम् ।
यव शालि च नीवार गोधूम सितसर्षपम ॥७५
कुंकुमागुरुकर्पूरमदन रोचन तथा ।
चन्दन च तथा मासीमेला कुष्ठ तथैव च ॥७६
कस्तूरीपत्रचूर्ण च जलनिर्यासकाम्बुदम् ।
शैलेय वदर जातीपत्रपुष्पे तथैव च ॥७७

दिक्पाल सब देवता दशों दिशाओं को वेष्टित किया करते हैं। कुक्षि में सात सागर हैं और सात द्वीप संस्थित हैं ॥७१॥ नक्षत्र-समस्त ग्रह तथा कुल पर्वत गङ्गा आदि सब नदियाँ—चारों वेद कलस में ये सभी स्थिर स्थित रहते हैं उनमें उनका चिन्तन करना चाहिए। रत्न—सर्वबीज—पुष्प—फल-वज्र मौक्तिक-वैदूर्य—महापद्म—इन्द्र—स्फाटिक से युक्त सर्व धाम मय बिल्व—नागररोदुम्बर—बीज पूरक—जम्बीर-काश्मीर आम्रात—दाडिम—यव—शाली—नीवार—गोधूम—सित सर्षप ॥७२—७५॥ कुंकुम—अगुर-कपूर—मदन—रोचन—चन्दन—मांसी—एला—कुष्ठ—कस्तूरी पत्र चर्ण-जल निर्यास काम्बुद-शैलेय-बदर—जातीपत्र—पुष्प ॥७६॥७७॥

कालशाकं तथा पृक्का देवीपर्णकमेव च ।
वचा धात्री समञ्जिष्ठा तुरुष्क मङ्गलाष्टकम् ॥७८
दूर्वा मोहनिका भद्रा शतमूली शतावरीम् ।
वर्णाना सरला क्षुद्रा सहदेवी गजाह्वयाम् ॥७६
पूर्णकोषा सिता पीठा गुञ्जा शिरसिकानलौ ।
व्यामकं गजदन्तं च शतपुष्पं पुनर्नवाम ॥८०
ब्राह्मी देवी शिवा रुद्रा सर्वसन्धानिका तथा ।
समाहृत्य शुभानेतान कलसेषु निधापयेत् ॥८१
कलसस्य यथादेशं विधिं शम्भुं गदाधरम् ।
यथाक्रम पूजयित्वा शम्भुं मुख्यतया यजेत् ॥८२
प्रासादेन तु मन्त्रेण शम्भुं तन्त्रेण शङ्करम् ।
प्रथमं पूजयेन्मध्ये नाना नैवेद्यवेदनैः ॥८३
दिक्पालाना घटेष्वेव दिक्पालानपि पूजयेत् ।
पूर्वं वहिः स्थापितेषु ग्रहाणां कलसेषु च ॥८४

काल शाक-पृक्का-देवी पर्णक-वचा-धात्री-मञ्जिष्ठा-तुरुष्क-मङ्गलाष्टक-दूर्वा-मोहनिका-भद्रा-शतमूली-शतावरी वर्णो की सरला-क्षुद्रा-सहदेवी-गजाह्वया-पूर्ण कोषा-सिता-पीठा-गुञ्जा-शिर सक-अनल-व्यामक-गजदन्त शत पुष्प-पुनर्नवा-ब्राह्मी-देवी शिवा-रुद्रा-सर्वसन्धानिका—इन सब का समाहरण करके कलसों में निधापित करना चाहिये ॥७८-८१॥ कलस के देश के अनुसार-ब्रह्मा-शम्भु-गदाधर का क्रम के अनुसार पूजन करके मुख्यता से भगवान् शम्भु का यजन करना चाहिए ॥८२॥ प्रासाद मन्त्र के द्वारा शम्भु का और तन्त्र के द्वारा शङ्कर का प्रथम मध्य में अनेक प्रकार के नैवेद्यों के निवेदन द्वारा पूजन करना चाहिए ॥८३॥ दिक्पालों के घटों में ही दिक्पालों का अर्चन करे। पूर्व में बाहिर स्थापित कलसों में ग्रहों का पूजन करना चाहिए ॥८४॥

नवग्रहान् पूजयेत्तु मातृर्मातृघटेषु च ।

सर्वे देवा घटे पूज्या घटास्तेषां पृथक् पृथक् ॥८५
नवैव तत्र पर्वोक्ता स्मृता मुख्यतया नृप ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च पुष्पैर्नानाविधैः फलैः ॥८६
यावकैः पायसैश्चैव यथासम्भवयोजितैः ।
पुष्यस्नानाय नृपतिः पूजयेत सकलान् सुरान् ॥८७
दक्षिणे मण्डलस्याथ कुण्डं निर्माय पायसैः ।
समिद्भिः शालिसिद्धार्थैर्घृतैर्दूर्वाक्षतैस्तथा ॥८८
केवलैश्च सद्यैर्वाज्यैः पूजितान् सकलान् सुरान् ।
होमेन तोषयेद् वृद्ध्यै नृप सात्विकपुरोहितः ॥८९
होमान्ते मण्डलोदीच्यां वेदिकायां सपट्टकम् ।
रोचनाख्यमलङ्कारास्तथा सर्वान् नियोजयेत् ॥९०
वृद्धावङ्गुलमङ्गुल्या षड्विंशाङ्गुलिकावधि ।
वृत्तं वा चतुरस्रं वा पद्मं त्रिकोणसञ्ज्ञकम् ॥९१

नवग्रहों का और मातृघरों में मातृकाओं का पूजन करना करना चाहिए। सभी देवों का घट में यजन करना चाहिए। उनके घट पृथक्-पृथक् होते हैं ॥८५॥ हे नृप ! पूर्व में नौ ही कहे गये हैं जो मुख्य तथा वर्णित हैं। भक्ष्य-भोज्य-पेय-अनेक भाँति के पुष्प और फल-यावक-पायस जो भी सम्भव योजित होवें उनके द्वारा राजा सकल सुरों का पुष्य स्नान के लिए पूजन करे ॥८६॥८७॥ मंडल के दक्षिण में कुण्ड का निर्माण करके पायस-समिधा-शाली सिद्धार्थ-दूर्वा—अक्षत तथा केवल घृत से पूजित सकल सुरों को ऋत्विक् पुरोहित के सहित नृप वृद्धि के लिए होम के द्वारा सन्तुष्ट करे ।८८।८९। होमके अन्त में मंडल के उत्तर में वेदिका में पटक के सहित—रोचना नामक तथा अलङ्कारों को सबको नियोजित करे ॥९०॥ वृद्धि में अङ्गुलि से अंगुल छब्बीस अंगुलियों की अवधि पर्यन्त वृत्त अथवा चौकोर त्रिकोण संज्ञा वाला पद्म को ॥९१॥

रत्नेशा पद्‌मध्ये तु गोमुप्टिकविनायकं ।
श्रीश्रीदृक्षवरारोहामुमादेवी शुभान्विताम् ॥८२
रत्नं सर्वेरलङ्कारैः पट्ट कार्यं द्विहस्तकम् ।
हस्तविस्तारमुच्छ्राय नवहस्त दशांगुलम् ॥८३
स्नानार्थं सार्धहस्त च पट्ट वृत्त गुणान्वितम् ।
शय्या चतुर्गुणा दीर्घा धनुर्मान तु पीठकम् ॥८४
गजसिंहकृताटोप हेमरत्नविभूषितम् ।
सिंहाख्य सार्धविस्ताराद् दण्डासनमथापि वा ॥८५
व्याघ्रचित्रकपट्टैर्वा उपधानानि कारयत् ।
अन्यर्वा निर्मिता चर्ममृदुतूलकपूरिता ॥८६
शय्या दीर्घार्धविस्तीर्णा चतहस्ता सुलक्षणा ।
वितस्त्यधिकमिच्छन्ति नृपस्या गर्वविद्यया ॥८७
अर्धचन्द्रसम मर्यादासन चतुरस्रकम् ।
उपधानानि शय्याया कर्णादिमूलभेदन ॥८८

पद्म के मध्य में गोमुष्टिक विनायक। स रत्नशो को—श्री श्री वृक्ष वरारोहा—शुभान्वित उमा देवी को सब रत्नों से और अलङ्कारों से दो हाथ का पट्ट बनाना चाहिए। वह एक हाथ विस्तार वाला और नौ हाथ दश अंगुल वाला ऊँचा स्नान के लिए डेढ़ हाथ का वृत्त तथा गुणों से समन्वित पट्ट करे। शय्या चौगुनी दीर्घ बनावे और धनुष के मान वाला पीठ करे ॥८२—८४॥ गज और सिंह के द्वारा किये हुए आटोप वाला और हेम तथा रत्नों से विभूषित सिंह नामक सार्ध विस्तार से दण्डासन को अथवा व्याघ्र चित्रक पट्टों के द्वारा उपधानों को करावे। अथवा अन्यों के द्वारा निर्मित चर्म मृदु तूल से पूरित चार हाथ वाली परिमाण में सुन्दर लक्षण से युक्त दीर्घार्ध विस्तार से युक्त शय्या गुरु विद्या से नृप को वितस्ति से अधिक की इच्छा करते हैं। आधे चन्द्र के समान चतुरस्र आसन करना चाहिए। शय्या के उपधान कर्णादि मूल भेद से करे ॥८५—८८॥

षोडशैवात्र कार्याणि वर्णचित्रयुतानि च ।
यान सिंहासनं पट्ट शय्योपकरणादिकम् ॥९९
राज्ञो नूतनयोग्य तद् वेद्या उत्तरतो न्यसेत् ।
तेषा त पश्चिमे स्वर्णरत्नौघखचिते वरे ॥१००
पर्यङ्के यज्ञदावौघनिर्मिते महदास्तरे ।
अधश्छादनसयुक्ते चर्मावृतचतुष्टये ॥१०१
वृषभस्य तथोर्णाया सिंहशार्दूलयोरपि ।
पादपीठे रत्नयुते पादावारोप्य पार्थिवः ॥१०२
तस्मिन् पर्यङ्कपीठस्थे चर्मखड्गचतुष्टये ।
नानालङ्कारभूषाढ्य नृपति रत्नशालिनम् ॥१०३
स्नापयेद् ब्राह्मणे सार्धं राजन सुखसङ्गतम् ।
सवीतकम्बल कृष्ण बहुवस्त्रैश्च शोभितम् ॥१०४
कलसैर्वलिपुष्पाद्यै शालिचूर्णैश्च स्नापयेत् ।
अष्टौ षोडश विंशाष्टशतमधिक वा वा ॥१०५

केवल सोलह ही वर्ण और चित्र से युक्त करने चाहिए । यान-सिंहासन—पट्ट शय्या के उपकरण आदि राजा के नूतन योग्य हो वह वेदी के उत्तर की ओर न्यस्त करे । उनके पश्चिम मे सब प्रकार के रत्नो के समुदाय से खचित श्रेष्ठ पर्यङ्क पर जो यज्ञ के काष्ठ के समूह से निर्मित—महान् आस्तरण वाले—अधश्छादन से सयुत हो तथा चर्म से आवृत चतुष्टय वाले—वृषभ के तथा सिंह शार्दूलो ऊर्ण ॥ आवृत—रत्नो से समन्वित पाद पीठ पर राजा अपने चरणो को समारोपित करके उस पर्यङ्क के पीठ पर स्थित चर्म खड्ग चतुष्टय म रत्नो से शोभित अनेक अलङ्कारो से युक्त नृपति का स्नपन कराये । ब्राह्मणो के साथ सुख से सङ्गत राजा को जो सम्वीत काम्बल वाला कृष्ण और बहुत से वस्त्रो से शोभित हो उसको कलशों के द्वारा बलि पुष्पादि से और शालि चूर्णो से स्नपन कराये । आठ—सोलह—बीस-एक सौ आठ अथवा अधिक कलशो की सख्या बतायी गयी है ॥९९-१०५॥

कलसाना समाख्याता अधिकस्योत्तरोत्तरम ।
जयकल्याणदैर्म-र्नैर्मङ्गलोत्थैश्च शाम्भवं ॥१०६
वैष्णवैरथ दिक्पालैर्ग्रहम-त्रंश्च मातृकं ।
आज्य तेज समुद्दिष्टमाज्य पापहर परम् ॥१०७
आज्य सुराणामाहार आज्ये लोका प्रतिष्ठिता ।
भौतान्तरिक्ष दिव्य वा यत् ते कल्मषमागतम् ॥१०८
सर्वं तदाज्यसस्पर्शात् प्रणाशनुपगच्छत ।
ततोऽपनीयगात्रात् त कम्बल वस्त्रमेव च ॥१०६
कलसं स्नापयेद् भूप पष्पस्नानीयपूरितै ।
एभिर्म-र्नैर्नरश्रेष्ठ तनुतत्त्वार्थसाधक ॥११०
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्त ये च सिद्धा परातना ।
ब्रह्मा विष्णश्च रुद्राश्च साध्याश्च समरुदगणा ॥१११
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनो यो भिषग्वरौ ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा लक्ष्मी सरस्वत ॥११२

उक्त मख्या म उत्तरोत्तर अधिक भी होती है। जय और कल्याण प्रद म त्रो क द्वारा-मङ्गलोत्थो स शाम्भवो म-वैष्णवो स-दिक्-पालो म ग्रह म त्रो से और मातृका स आज्य को तज समुद्दिष्ट किया है। आज्य पापो क हरण कर न वाला है। आज्य ही सुरगणो का आहार और आज्य म लोक प्रतिष्ठित हैं। भूमिगत—अन्तरिक्षस्थ— अथवा दिव्य अर्थात् दिवलोक गत जो भी आपका कल्मष आ गया है वह सब आज्य क सस्पश स विनाश को प्राप्त होवें। इसक अनन्तर शरीर स कम्बल और वस्त्र को अलग करक पुष्पो और स्नानीयो म पूरित कलसो क द्वारा भूप का स्नान कराव। ह नरश्रेष्ठ! शरीर क तत्त्वार्थ क साधक इन मन्त्रो स राजा का स्नान कराव जो निम्न स्थल म बताय जा रहे है—सुरगण आपका अभिषिञ्चन कर और जो सिद्ध एव पुरातन हं—ब्रह्मा, विष्णु—रुद्र-साध्य-मरुद्गण-आदित्य-वसुगण-

रुद्र-भिषग्वर दोनों अश्विनी कुमार—देवमाता अदिति—स्वाहा-लक्ष्मी—सरस्वती ॥१०६—११२॥

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृ ति श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा ।
दितिश्च सुरसा चैव विनता कद्रूरेव च ॥११३
देवपत्न्यश्च या. प्रोक्ता देवमातर एव च ।
सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु सिद्धाश्चाप्सरसा गणा ॥११४
नक्षत्राणि मुहूर्ताश्चा पक्षाहोरात्रसन्धय ।
सवत्सरा निमेषाश्च कला. काष्ठा क्षणा लवा. ॥११५
सर्वे त्वामभिषिञ्चन्त कालस्यावयवस्तथा ।
वैमानिका सुरगणा मनव सागरै. सह ॥११६
सरितश्च महानागा नागाः किंपुरुषास्तथा ।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ॥११७
सप्तर्षय सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि तु ।
मरीचिरत्रि पुलह पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥११८
भृगु सनत्कुमारश्च सनकश्च सनन्दन. ।
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्योऽभिनन्दन. ॥११९

कीर्ति—लक्ष्मी—धृति—श्री—सिनी वाली—कुहू—दिति—सुरसा—विनता—कद्रू—जो देव पत्नियाँ कही गयी हैं वे और देव माताएँ—सिद्ध और अप्सराओं के गण सब आपका अभिषिञ्चन करें ॥ ११३—११४ ॥ नक्षत्र—मुहूर्त—पक्ष—अहोरात्र— सन्धि—सम्वत्सर—निमेष—कला—काष्ठा—क्षण—लव ये काल के सब अवयव आपका अभिषिञ्चन करें । वैमानिक—अर्थात् विमानों पर संस्थित रहने वाले सुरों का समुदाय—सागरों के सहित मनुगण—सरिताएँ—महानाग—नाग—किम्पुरुष—वैखानस—महाभाग द्विज और जो वैहायस हैं—अपनी दाराओं के साथ सप्तर्षि गण—जो ध्रुव में स्थान वाले हैं—मरीचि—अत्रि—पुलह—पुलस्त्य क्रतु—अंगिरा—

भृगु—सनत्कुमार—सनक—सनन्दन-दक्ष—जैबीगव्यअभिनन्दन॥११५
११६।११७।११८।११९॥

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जावालिकाश्यपौ ।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्व कात्यायनस्तथा ॥१२०
मार्कण्डेयो दीर्घतमा शुनःशेफो विदूरथ ।
और्व संवर्तकश्चैव च्यवनोऽत्रि पराशर ॥१२१
द्वैपायनो यवक्रीतो देवरात सहात्मज ।
एते चान्ये च बहवो वेदव्रतपरायणा ॥१२२
सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधना ।
पर्वतास्तरवो नद्य पुण्यान्यायतनानि च ॥१२३
प्रजापति क्षितिश्चैव गावो विश्वस्य मातर ।
वाहनानि च दिव्यानि सर्वे लोकाश्चराचरा ॥१२४
अग्नय पितरस्तारा जीमूता खं दिशा जलम् ।
एते चान्ये च बहव पुण्यसंकीर्तना शुभा ॥१२५
तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणं ।
इत्येव शुभदैरेतैर्दिव्यमन्त्रैस्तथापरं ॥१२६

एक-दो और तीन—जावालि—कश्यप—दुर्वासा—दुर्विनीत—कण्व—कात्यायन—मार्कण्डेय—दीर्घतमा—शुनःशेफ- विदूरथ—और्व—संवर्तक—च्यवन—अत्रि—पराशर—द्वैपायन—यवक्रीत—देवरात—सहात्मज—ये और अन्य जो भी वेद व्रत में परायण हैं वे अपने शिष्यों के सहित और अपनी दाराओं के साथ तप के ही धन वाले आपका अभिषिञ्चन करें । पर्वत—वृक्ष—नदियाँ और परम पुण्य आयतन। प्रजापति—क्षिति—गौयें—विश्व की मातायें – दिव्य वाहन—सब लोक चर और अचर—अग्नियाँ—पितर—तारा—जीमूत—आकाश—दिशायें—जल—ये और अन्य बहुत से पुण्य संकीर्तन वाले तथा शुभ मद उत्पातों के निबर्हण करने वाले जलों के द्वारा आपका अभिषिञ्चन

करे । इस प्रकार से इन शुभ प्रदाता दिव्य मन्त्रों के द्वारा तथा दूसरों के द्वारा अभिषेक करे ।।१२०—१२६।।

सोरैर्नाराणं रौद्रैर्ब्रह्मशक्रसमुद्भवं ।
अपोहिष्ठा हिरण्येति सम्भवेति सुरेति च ।।१२७
मानस्तोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेत्यनेन च ।
सर्वमंगलमांगल्ये श्रीश्च ते ग्रहयोगिभि. ।।१२८
इत्येव स्नानमासाद्य गात्रमावृत्य कम्वलं ।
सर्वमंगलमन्त्रेण वस्त्र कार्पासक धियात् ।।१२६
आचम्य च ततो देवान् गुरु विप्राश्च पूजयेत् ।
ध्वजच्छत्र चामर च घण्टा चाश्वान् गजास्तथा ।।१३०
मन्त्र जप्त्वा धारयेत् तु ततो गच्छेद्धुताशनम् ।
तत्र गत्वा वह्निमध्ये वह्नेः श्रीर्वीक्ष्य पार्थिव. ।।१३१
निमित्तान्यनिमित्तानि लक्षयेत् तत्र विन्दुभि. ।
दैवज्ञकञ्चुकयमात्यवन्दिपौरजनैर्वृत ।।१३२
वादित्रघोषैस्तुमलैस्तथा तौर्यत्रिकं शुभै. ।
श्रुत्वा शेषे पुन. शान्तिमाशीर्वाच्य च यं द्विजान् ।।१३३
पूर्णां विधाय विधिवद् दक्षिणा कनकान्विताम् ।
धान्यानि चाय वासांसि दत्त्वा कुर्याद् विसर्जनम् ।।१३४

विप्रगणों का अभ्यर्चन करना चाहिए। फिर ध्वज—छत्र—चामर—घोटा—अश्व—गज का मन्त्र का जप करके धारण करें और इसके अनन्तर हुताशन के समीप गमन करना चाहिए। वहाँ पर जा कर राजा वह्नि व मध्यम वह्नि की श्री का निरीक्षण करे।१३०-१३१। वहाँ पर विद्वानों के द्वारा निमित्तों का और अनिमित्तों को लक्षित करना चाहिए दैवज्ञ (ज्योतिर्विद्) कञ्चुकि—अमात्य—बन्दीजन—पुत्रासीजन से आवृत होते हुए तुमुल वाद्यों का ध्वनियास तथा शुभ तौर्यत्रिक के साथ युक्त होकर शाप में पुनः शान्ति करे और आमी चित्त करके द्विजों को विधिपूर्वक सुवर्ण से युक्त पूर्ण दक्षिणा देवे तथा ग्राम्य और वस्त्र देकर उन सबको विदा करे ॥१३२—१३४॥

ततः शपजलैः सर्वानमात्यादीन पुरोहितः ।
सेचयेच्चतुरङ्गं च बलं चापि सराष्ट्रकम् ॥१३५
एवं कृत्वा नृपः पश्चात् त्रिरात्र संयतो भवेत् ।
मासमैथुनहीनश्च कुर्यान्माङ्गल्यसेवनम् ॥१३६
पुष्यनक्षत्रयवना तु तृतीया यदि लभ्यते ।
तस्यां पूज्या सदा देवी चण्डिका श्रवणे हि ॥१३७
पञ्चालिकाविहाराद्यैः शिशुना कौतुकैस्तथा ।
वैवाहिकेन विधिना माहयेच्चण्डिकां शिवाम् ॥१३८
चतुष्पथेषु सर्वेषु देवदेवीगृहेषु च ।
पताकाभिरलं कुर्यादेवं भुवन्न सीदति ॥१३९
एवं कृत्वा शान्तियागं तथा पुण्याभिषेचनम् ।
चतुरङ्गैः समं राजा भार्याभिस्तु नरैः सह ॥१४०
राज्यमण्डलसंयुक्तः परत्रेह न सीदति ।
नातः परतरो यज्ञो नातः परतरोत्सवः ॥१४१

इसके अनन्तर पुरोहित शाप जल से समस्त अमात्यादिक का सेचन करे। तथा तुरङ्ग का—बल का—राष्ट्र का सेचन करना

चाहिए। इस प्रकार से करके पीछे राजा तीन रात्रि पर्यन्त पूर्ण तया सयम से युक्त होकर रहे। मांस का अशन—मैथुन से रहित रहे और माङ्गल्यो का सेवन करे॥१३५॥१३६॥ यदि पुष्य नक्षत्र से युक्त तृतीया तिथि का लाभ होता है उसमे सदा शङ्करके साथ चण्डिका देवीका अर्चन करना चाहिए।१३७। पान्चायिकी विहार आदिके द्वारा तथा शिशुओं के कौतुको से—वैवाहिक विधि से शिवा चण्डिका का मोहन करना चाहिए ॥१३८॥ समस्त चतुष्पथो (चौराहो) मे और देवो तथा देवियो के मन्दिरो मे पताकाओ को लगाकर उन्हे भूषित करे और ऐसा करता हुआ कभी भी दुख नही पाया करता है ॥१३९॥ इस रीति से शान्तियणा को सुसम्पन्न करके तथा पुष्प का अभिषेचन करके चतुरङ्गो के साथ—भार्याओ और नरो के साथ राज्य मण्डल मे समन्वित यहाँ पर और परलोक मे कभी भी दुखित नही हुआ करता है और न इससे बढा और श्रेष्ठ कोई भी यज्ञ होता है और न इससे उत्तम कोई उत्सव ही हुआ करता है ॥१४०॥१४१॥

नात परतरा शान्तिर्नात. परतर शिवम् ।
अनेनव विधानन नृपतेरभिषेचनम् ॥१४२
युवराज्याभिषक च कुर्याद्राजपुरोहित ।
नृपाभिषेककरणमादौ यदि समाचरेत् ॥१४३
अनेनव विधानेन स्थिर स्यान्नृपतिस्तदा ।
अयं यज्ञ समुद्दिष्ट शक्रार्थं ब्रह्मणा पुरा ।
एव यज्ञ नृप. कृत्वा परत्रह न सीदति ॥१४४

इससे बढ़कर कोई भी शान्ति नही है और इससे अधिक कोई कल्याण एव मङ्गल नही होता है। इस ही विधान से नृप का अभिषेचन होता है। और राजपुरोहित को चाहिए कि इसी विधान से युव राज का अभिषक करे। यदि आदि नृप का अभिषेक का समाचरण करता हो तो इसी विधान से नृप सदा स्थिर होता है। प्राचीन काल

में ब्रह्माजी ने इन्द्रदेव से यही यज्ञ इन्द्र के लिये ही कहा था। इसी भाँति राजा इस यज्ञ को करके यहाँ पर और परलोक में कभी भी दुःख नहीं पाया करता है ॥१४२-१४४॥



॥ शक्र ध्वजोत्सव वर्णन ॥

अथातः शृणु राजेन्द्र शक्रोत्थानं ध्वजोत्सवम् ।
यत् कृत्वा नृपतिर्याति न कदाचित् पराभवम् ॥१
रवौ हरिस्थे द्वादश्यां श्रवणेन बिडौजसम् ।
आराधयेन्नृपः सम्यक् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥२
राजोपरिचरो नाम वसुनामापरस्तु यः ।
नृपस्तेनायमतुलो यज्ञः प्रावर्तितः पुरा ॥३
प्रावृट्काले च नभसि द्वादश्याममितेतरे ।
पुरोहितो बहुविधैर्वाद्यैस्तूर्यैः समन्वितः ॥४
प्रथमं शक्रकेत्वर्थं वृक्षमामन्त्र्य वर्धयेत् ।
सवत्सरो वाद्यैश्च कृतमङ्गलकौतुकः ॥५
उद्याने देवतागारे श्मशाने मार्गमध्यतः ।
ये जातास्तरवस्तांस्तु वर्जयेद् वासवध्वजे ॥६
बहुवल्लीयुतं शुष्कं बहुकण्टकसंयुतम् ।
कुब्जं वृक्षादनीयुक्तं लताच्छन्नतरुं त्यजेत् ॥७

और्व ने कहा—इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! अतएव आप शक्रोत्थान ध्वजोत्सव का श्रवण कीजिए जिसको सम्पादित करके राजा किसी समय में भी पराभव की प्राप्ति नहीं किया करता है ॥१॥ हरिस्थ रविवार के दिन में श्रवण से युक्त द्वादशी तिथि में राजा को इन्द्रदेव का समाराधन करना चाहिए। इसको भली भाँति करने से सब प्रकार के

विघ्नों की उपशान्ति हुआ करती है ॥२॥ राजो परिचर नाम वाला जिसका वसुनाम दूसरा है। नृप इसे करे। यह पहिले समय में अतुल यज्ञ प्रवृत्त हुआ था ॥३॥ नभ मास में वर्षा ऋतु में द्वादशी तिथि में शुक्ल पक्ष में पुरोहित बहुत प्रकार के बाद्यों और तूर्यों से समन्वित होवे ॥४॥ सबसे प्रथम इन्द्र के केतु के लिये वृक्ष का आमन्त्रित करके उसको वर्धित करना चाहिए। सम्वत्सर और वाधकि मङ्गल कौतुक किया हुआ होवे। उद्यान में—देवता के आगार में—श्मशान में और मार्ग के मध्य में जो भी तरुवर समुत्पन्न होवे उनका वासव ध्वज में वर्जन कर देना चाहिए ॥५॥६॥ जो बहुत वल्लियों से सयुत होवे-शुष्क हो-बहुत से काँटों से समन्वित हो—कुब्ज अर्थात् टेढ़ा हो वृक्ष दलीय युक्त हो तथा लताओं से छन्न तरु हो उसका परित्याग कर देना चाहिए ॥७॥

पक्षिवाससमाकीर्णं कोटरैर्बहुभिर्युतम् ।
पवनानलविध्वस्तं तरुं यत्नेन वर्जयेत् ॥८
नारीसञ्ज्ञाश्च ये वृक्षा अतिह्रस्वा अतिकृशा ।
तान् सदा वर्जयेद् धीरः सर्वदा शक्रपूजने ॥६
अर्जुनोऽप्यश्वकर्णश्च प्रियकोपक एव च ।
औदुम्बरश्च पञ्चैते केत्वर्थे ह्युत्तमा स्मृता ॥१०
अन्ये च देवदार्वाद्या शालाद्यास्तरवस्तथा ।
प्रशस्तास्तु परिग्राह्या नाप्रशस्ता कदाचन ॥११
धृत्वा वृक्षं ततो रात्रौ स्पृष्ट्वा मन्त्रमिमं पठेत् ।
यानि वृक्षेषु भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु व ॥१२
उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासवध्वजम् ।
पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम ॥१३
ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ।
ततोऽपरेऽह्नि तं छित्त्वा मूलमष्टाङ्गुरा पुन ॥१४

जो वृक्ष पक्षियों के निवास से समाकीर्ण हो अर्थात् जिस पर बहुत से पक्षियों के घोंसले होवें—जो बहुत से कोटरों से समन्वित होवें—जो वायु और अग्नि से विध्वस्त हो गया हो ऐसे तरु का यत्न-पूर्वक वर्जित कर देवे। ८। जिन वृक्षों का नाम नारी वाला हो—जो अत्यन्त छोटा हो—जो बहुत ही कृश होवें—ऐसे इन सभी वृक्षों का धीर पुरुष इन्द्र के पूजन में सदा ही वर्जन कर देवे। ९। अर्जुन—अश्वकर्ण—प्रिय कोपक—और उदुम्बर—ये पाँच वृक्ष केतु के लिये उत्तम बताये गये हैं॥ १०॥ और अन्य देवदारु आदि तथा साल आदि वृक्ष जो भी प्रशस्त हैं उनका परिग्रहण करना चाहिये और जो अप्रशस्त हैं उनको कभी भी ग्रहण न करे॥ ११॥ वृक्ष को पकड़ करके रात्रि में स्पर्श करके इस निम्न कथित मन्त्र का पाठ करना चाहिए—जो प्राणी वृक्षों पर हैं उनके लिये कल्याण होवे और आपको नमस्कार है। यह उपहार ग्रहण करके इन्द्र की ध्वजा को करें। राजा आपका वरण करता है। हे नगोत्तम! आपका कल्याण होवे॥ १२—१३॥ देवराज इन्द्र की ध्वजा के लिए इस पूजा का परिग्रहण करिए। इसके अनन्तर दूसरे दिन में उसका छेदन करके फिर आठ अंगुल मूल का ग्रहण करे। १४।

जले क्षिपेत् तथाग्रस्य छित्वैव चतुरंगुलम्।
ततो नीत्वा पुरद्वारं केतुं निर्माय तत्र वै॥१५
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे केतुं वेदीं प्रवेशयेत्।
द्वाविंशद्धस्तमानस्तु अधमः केतुरुच्यते॥१६
द्वात्रिंशत् तु ततो ज्यायान् द्वाचत्वारिंशदेव च।
ततोऽधिकः समाख्यातो द्वापञ्चाशत् तथोत्तमः॥१७
कुमार्यः पञ्च कर्तव्या शक्रस्य नृपसत्तम।
शालमय्यस्तु ताः सर्वा अपरा शक्रमातृका॥१८
केतोः पादप्रमाणेन कार्या शक्रकुमारिका।
मातृकार्धप्रमाणा तु मन्त्रिहस्तद्वयं तथा॥१९

एवं कृत्वा कुमारीश्च मातृका केतुमेव च ।
एकादश्यां सिते पक्षे यष्टिं तामधिवासयेत् ॥२०
अधिवास्य ततो यष्टिं गन्धद्वारादिमन्त्रकैः ।
द्वादश्यां मण्डलं कृत्वा वसावं विस्तृतात्मकम् ॥२१

तथा आग की ओर में चार अंगुल का छेदन करके उस जल में प्रक्षिप्त कर देवे। फिर पूर्व के द्वार पर ले जाकर वहाँ पर केतु का निर्माण करके भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में केतु का वेदी प्रवेश करना चाहिए। बाईस हाथ के मान वाला केतु अधम कहा जाता है ॥१५—१६॥ बत्तीस हाथ के मान वाला उससे ज्येष्ठ होना है। बयालीस हाथ के मान वाला भी होता है। इससे भी अधिक बावन हाथ के मान वाला उत्तम कहा गया है।१७। हे नृपश्रेष्ठ! इन्द्र की पाँच कुमारियाँ करनी चाहिएँ। वे सब काष्ठमयी होवें और दूसरी शक्रमातृकाएँ होनी चाहिए॥ १८॥ केतु के पाद के प्रमाण से ही शक्र कुमारिकाएँ करनी चाहिए। मातृका के अर्ध प्रमाण वाला तथा मन्त्री के दो हाथ करे। इस रीति से कुमारियों की रचना करके और मातृका तथा केतु को करके एकादशी तिथि में शुक्लपक्ष में उस यष्टि को अधिवासित न करे॥ १९—२०॥ फिर यष्टि का अधिवासन करके जो 'गन्ध द्वारा' आदि मन्त्रों के द्वारा किया जाना चाहिए। द्वादशी तिथि में विस्तृतात्मक वासव मण्डल करे।२१।

अच्युतं पूजयित्वा तु शक्रं पश्चात् प्रपूजयेत् ।
शक्रस्य प्रतिमां कुर्यात् काञ्चनीं दारवीं च वा ॥२२
अन्यतैजससम्भूतां सर्वाभावे तु मृन्मयीम् ।
तां मण्डलस्य मध्ये तु पूजयित्वा विशेषतः ॥२३
ततः शुभे मुहूर्ते तु केतुमुत्थापयेन्नृप ।
वज्रहस्त सुरारिघ्न बहुनेत्र पुरन्दर ।
क्षेमार्थं सर्वलोकानां पूजां प्रतिगृह्यताम् ॥२४
एह्येहि सर्वामरसिद्धसंघैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश ।

समुत्थितस्त्व श्रवणाद्यपादे गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥२५
एवमुक्तस्तन्त्रोक्तैर्दहनप्लवनादिभि ।
इति मन्त्रेण तन्त्रेण नाना नैवेद्यवेदनै ॥२६
अपूपं पायसं पानैर्गुडैर्नानाभिरेव च ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च विविधं पूजयेच्छ्रीविवृद्धये ॥२७

भगवान् अच्युत का अर्चन करके पीछे शक्रदेव का पूजन करना चाहिए। इन्द्रदेव की प्रतिमा का निर्माण सुवर्ण के द्वारा अथवा काष्ठ के द्वारा करना चाहिए ॥ २२ ॥ अन्य किसी उत्तम धातु के द्वारा निर्माण करावे अथवा सबके अभाव में मृत्तिका से परिपूर्ण करे। उस प्रतिमा को मण्डप के मध्य में स्थापित करके विशेष रूप से अर्चन करे ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर किसी परम शुभ मुहूर्त में राजा केतु को उत्थापित करे। हे पुरन्दर ! आपके हाथ में वज्र धारण किए हुए हैं आप असुरों के हनन करने वाले हैं—आपके बहुत नेत्र हैं। समस्त लोकों के कल्याण करने के लिये यह पूजा ग्रहण कीजिए ॥ २४ ॥ हे अमरों के स्वामिन ! आप वज्र के धारण करने वाले हैं और सभी देवगणों के द्वारा अभिष्टुत हैं आप यहाँ पर आगमन कीजिए—यहाँ पदार्पण करिए। आप श्रवण के आद्य पाद में समुत्थित हुए हैं—आप इस पूजा का ग्रहण कीजिए। हे भगवन् ! आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित है ॥ २५ ॥ इस रीति से उक्त तन्त्रों में वर्णित दहन और प्लवन आदि के द्वारा इस मन्त्र से और तन्त्र से तथा अनेक नैवेद्यों के निवेदनों से—अपूपों से—पायस से—पान—गुड़ और अनेक तरह के भक्ष्यों से—भोज्यों से श्री की विशेष वृद्धि के लिए पूजा करनी चाहिए ॥२६—२७॥

घटे तु दशदिक्पालान् ग्रहांश्च परिपूजयत् ।
साध्यादीन् सकलान् देवान् मातृः सर्वा अनुक्रमात् ॥२८
ततः शुभे मुहूर्ते तु ज्ञानी बर्धकिसंयुत ।
केतूत्थापनभूमिं तु यत्नवेद्यास्तु पश्चिमे ॥२९

विप्रैः पुरोहितैः सार्धं गच्छेद्राजा सुमङ्गलैः ।
रज्जुभिः पञ्चभिर्बद्धं यन्त्रश्लिष्टं समातृकम् ॥३०
कुमारीभिस्तु संयुक्तं दिक्पालानां च पट्टकैः ।
बृहद्भिरतिकान्तैश्च नानाद्रव्यैः सुपूरितैः ॥३१
यथावर्णैर्यथादेशे योजितैर्वस्त्रवेष्टितैः ।
युक्तं तं किङ्किणीजालैर्बृहद्घण्टौघचामरैः ॥३२
भूषितं मकुरैरुच्चैर्माल्यैर्बहुविधैस्तथा ।
बहुपुष्पैः सुगन्धैश्च भूषितं रत्नमालया ॥३३
चित्रमाल्याम्बरैश्चैव चतुर्भिरपि तोरणैः ।
उत्थापयेन्महाकेतुं राजकीयैः शनैः शनैः ॥३४
तमुत्थाय महाकेतुं पूजितं मण्डलान्तरे ।
प्रतिमां तां नयेन्मूलं केतोः शक्रं विचिन्तयन् ॥३५

घट में दिक्पालों और ग्रहों का अर्चन करे। अनुक्रम से आद्य आदि समस्त देवों का और सब मातृकाओं का पूजन करना चाहिए। इसके अनन्तर किसी शुभ मुहूर्त में वर्धकि से समन्वित ज्ञानी यज्ञ वेदी के पश्चिम में केतुमूलायन की भूमि में विप्रों और पुरोहितों के साथ राजा गमन करे। सुमङ्गल पाँच रज्जुओं से सुबद्ध—यन्त्र में शिलष्ट—मातृकाओं के सहित—कुमारियों से संयुक्त और दिक्पालों के पदकों से युत—बृहत् अतिकान्त सुपूरित अनेक द्रव्यों से यथा वर्ण और यथा देश में वस्त्र से वेष्टित किये हुए योजितों से युक्त उसको जो किङ्किणी के जालों से तथा बड़े घण्टाओं से और चामरों से भूषित है—मुकुरों से उच्च- माल्यों से बहुत प्रकार के सुगन्धित बहुत से पुष्पों से भूषित तथा रत्नों की माला से अमङ्गल अद्भुत—अद्भुत माल्यों और अम्बरों से तथा चारों तोरणों से राजकीयों के द्वारा धीरे-धीरे महाकेतु को उत्थापित करे। मण्डलान्तर में पूजित उस महाकेतु को उठाकर इन्द्रदेव का चिन्तन करते हुए उस प्रतिमा को केतु के मूल में ले आवे ॥२८-३५॥

यजेत् न पूर्ववत् तत्र शची मातलिमेव च ।
जयन्त तनय तस्य वज्रमैरावतं तथा ॥३६
ग्रहांश्चाप्यथ दिक्पालान् नर्वाश्च गणदेवता ।
अपृथक् पूजयेत् नु बलिभिः पायसादिभिः ॥३७
पूजितानां च देवानां सततं होमं समाचरेत् ।
होमान्ते तु बलिं दद्यात् वासवाय महात्मने ॥३८
तिलं घृत चाक्षत च पुष्प दूर्वां तथैव च ।
एतैस्तु जुहुयात् देवान् स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्नरोत्तम ॥३९
ततो होमावसाने तु भोजयेद् ब्राह्मणानपि ।
एव सम्पूजयेन्नित्य सप्तरात्र दिने दिने ॥४०
ब्राह्मणैः सहितो राजा वेदवेदाङ्गपारगैः ।
सर्वत्र शक्रपूजायां यजेत् परिकीर्तितः ॥४१
त्रातारमिति मन्त्रोऽयं वासवस्य प्रियः परः ।
एवं कृत्वा दिवाभागे शक्रोत्थापनमादितः ॥४२

वहाँ पर पूर्व की ही भाँति उसका यजन करे तथा शची—मातलि—उसके पुत्र जयन्त और ऐरावत का भी अर्चन करना चाहिए ॥ ३७ ॥ ग्रहों का—दिक्पालों का—सर्पों का—गणदेवों का अलगों में—बलियों के द्वारा और पायस आदि से पूजन करना चाहिए ॥३७॥ अर्चन किये हुए देवों का निरन्तर होम का समाचरण करे । होम के अन्त में बलि देने को महात्मा वासव के लिये देनी चाहिए ॥ ३८ ॥ हे नरोत्तम ! तिल—घृत—अक्षत—पुष्प—दूर्वा—इनके द्वारा अपने-अपने मन्त्रों से देवों का हवन करना चाहिए ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त होम के अन्त में ब्राह्मणों को भोजन करावे । इसी रीति से सात रात्रि पर्यन्त दिन-दिन में नित्य भली भाँति अर्चन करना चाहिए ॥ ४० ॥ वेदों और वेदाङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान ब्राह्मणों के सहित राजा सर्वत्र इन्द्र की पूजा में कीर्तित किया गया है ॥ ४१ ॥ 'त्रातारम्'

इन्द्र का परम प्रिय है। इस प्रकार से करके दिवा के भाग मे शक्र का उत्थापन करे ॥४२॥

श्रवणर्क्षयुतायां तु द्वादश्यां पार्थिवः स्वयम् ।
अन्तपादे भरण्यां तु निशि शक्रं विसर्जयेत् ॥४३
सुप्तेषु सर्वलोकेषु यथा राजा न पश्यति ।
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति राजा दृष्ट्वा विसर्जनम् ॥४४
शक्रस्य नृपशार्दूल तस्मान्नेक्षेत तन्नृपः।
विसर्जनस्य मन्त्रोऽयं पुराविद्भिरुदीरितः ॥४५
सार्धं सुरासुरगणैः पुरन्दरः शतक्रतोः ।
उपहारं गृहीत्वेम महेन्द्रध्वज गम्यताम् ॥४६
सूतके तु समुत्पन्ने वारे भौमस्य वा शनेः ।
भूमिकम्पादिकोत्पाते वासवं न विसर्जयेत् ॥४७
उत्पाते सप्तरात्रं तु तथोपप्लवदर्शने ।
व्यतीत्य शनिभौमौ च ह्यन्यर्क्षेऽपि विसर्जयेत् ॥४८
सूतके स्वयं संप्राप्ते व्यतीते सूतके पुनः ।
यस्मिन तस्मिन् दिने चैव सूतकान्ते विसर्जयेत् ॥४९

श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि मे राजा स्वयं भरणी के अन्तिम चरण मे रात्रि मे शक्र का विसर्जन करना चाहिए ॥ ४३ ॥ समस्त लोगों के सुप्त हो जाने पर जैसे राजा देखता है। राजा विसर्जन को देखकर छै मास मे मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। हे नृप शार्दूल ! इस कारण से नृप शक्र का विसर्जन नहीं देखे। पुरावेत्ताओं के द्वारा विसर्जन का यह मन्त्र कहा गया है ॥ ४४—४५ ॥ सुर—असुर गणो के साथ पुरन्दर शत क्रतुका इस उपहार का ग्रहण कर है महेन्द्रध्वज ! गमन कीजिए ॥ ४६ ॥ सूतक के उत्पन्न होने पर भौम अथवा शनिवार मे—भूकम्प आदि उत्पात के आने पर वासव का विसर्जन नहीं करना चाहिए ॥ ४७ ॥ उत्पात होने पर तथा उपप्लव के दर्शन होने पर

सात रात्रि को व्यतीत करके तथा शनिवार और भौमवार को छोड़कर अन्य नक्षत्र में भी विसर्जन कर देना चाहिए ॥ ४८ ॥ सूत के अप्राप्त हो जाने पर सूतक के अन्त में जिस किसी भी दिन में विसर्जन कर देवे ॥४६॥

तथा केतुं नृपो रक्षेत् पतन्ति शकुना यथा ।
न केतौ नृपशार्दूल यावन्नहि विसर्जनम् ॥५०
शनैः शनैः पातयत् तु यथोत्थापनमादितः ।
कृतं तथा यथा भग्ने केतौ मृत्युमवाप्नुयात् ॥५१
विसृष्टं शक्रकेतुं तु सालङ्कारं तदा निशि ।
क्षिपेदनेन मन्त्रेण स्वगाधे सलिले नृप ॥५२
तिष्ठ केतो महाभाग यावत् संवत्सरं जले ।
भवाय सर्वलोकानामन्तराय विनाशक ॥५३
उत्थापयेत् तूर्यरवैः सर्वलोकस्य वै पुरः ।
रहो विसर्जयेत् केतुं विशेषो यः प्रपूजने ॥५४
एवं यः कुरुते पूजां वासवस्य महात्मनः ।
स चिरं पृथिवीं भुक्त्वा वासवं लोकमाप्नुयात् ॥५५
न तस्य राज्यं दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयः क्वचित् ।
स्यास्यन्ति मृत्युर्नाकाले जनानां तत्र जायते ॥५६
तत्तुल्यः कोऽपि नान्योऽस्ति प्रियः शक्रस्य पार्थिव ।
तस्य पूजा सर्वपूजा केशवाद्याश्च तद्गताः ॥५७
सकलकलुषहारि व्याधिदुर्भिक्षनाशं
सकलभवनिवेश सर्वसौभाग्यकारि ।
सुरपतिगृहगामिर्वार्चनं शक्रकेतोः
प्रतिशरदमनेकैः पूजयेच्छ्रीविवृद्धयै ॥५८

राजा के द्वारा उसी भाँति केतु की रक्षा करनी चाहिए जिससे हे नृप शार्दूल ! केतु पर शकुन पतन न करें जब तक उसका विसर्जन

न होवे ॥५०॥ जिस प्रकार से आदि से उत्थापन होवे धीरे-धीरे पातन करना चाहिये। केतु के भग्न होने पर मृत्यु की प्राप्ति होती है ॥५१॥ हे नृप ! अलङ्कारों के सहित विसर्जन किये हुए शक्र केतु को रात्रि मे अगाध जल मे निम्न वर्णित मन्त्र के द्वारा प्रक्षिप्त कर देवे ॥५२॥ हे महाभाग केतो ! आप विघ्नों के विनाश करने वाले हैं। समस्त लोकों के भव के लिये आप जब तक सम्वत्सर होवे जल मे स्थित रहें ॥५३॥ समस्त लोकों के आगे तूर्य की ध्वनि के साथ उत्पादन करे और एकान्त में केतु का विसर्जन करना चाहिए। यही पूजन मे विशेषता है ॥५४॥ इस रीति से महात्मा वासव की जो पूजा किया करता है वह बहुत समय तक पृथ्वी का उपयोग करके अन्त मे वासव (इन्द्र) के लोक की प्राप्ति किया करता है ॥५५॥ उसके राज्य मे कभी दुर्भिक्ष नही हुआ करता है और कही पर भी व्याधियाँ तथा आँधियाँ नही होती हैं तथा मनुष्यो की अकाल मे कभी मृत्यु भी नही हुआ करती है ॥५६॥ हे पार्थिव ! उसके समान अन्य कोई भी इन्द्रदेव का प्रिय नही होता है। उसकी पूजा सब की ही पूजा है। भगवान् केशव आदि वहाँ पर ही सब विराजमान रहा करते हैं ॥५७॥ समस्त कलुषों का अपहरण करने वाला-व्याधि और दुर्भिक्ष का नाशक—सकल भवों का निवेश—सब प्रकार के सौभाग्य का सम्पादन करने वाला—शक्र केतु का सुरपति के गृह की वाणियों से वाचन प्रिय शरत्काल मे अनेकोपचारों के द्वारा श्री वृद्धि के लिये पूजन करना चाहिए ॥५८॥



॥ राजा के पालनीय नियमादि ॥

ज्येष्ठ दशहरायां तु विष्णोरिष्टि नृप श्रृणु।
येन वा विधिना कुर्यादिष्टि विष्णोर्नृपः सदाः ॥१

प्रत्यब्दं पार्थिवः कुर्यात् प्रतिमां काञ्चनीं हरेः ।
अन्यतेजोमयीं वापि दारवीं वा शिलामयीम् ॥२
तां प्रतिष्ठाप्य विधिना मानोन्मानैस्तु शिल्पिभिः ।
प्रतिष्ठां विधिवत् तस्याः कुर्याद् विप्रैः पुरोहितैः ॥३
तां संस्थाप्य सुरागारे स्वयं वा यत्नतः कृते ।
वासुदेवस्य बीजेन पूर्वोक्तविधिना तथा ॥४
सर्वोपचारैर्भक्त्या तु वासुदेवं प्रपूजयेत् ।
पूजान्ते संस्कृते वह्नौ कुण्डमध्ये स्थितो द्विजः ॥५
आज्यैः सहस्रं जुहुयादाहुतीनां हरेः प्रियम् ।
सपूज्य वासुदेवं तु होमं कृत्वा ततो द्विजः ॥६
नृपस्यानुमते तां तु प्रतिमां मण्डलं नयेत् ।
प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना ॥७

और्व ने कहा—हे नृप ! ज्येष्ठ मास के दशहरा में भगवान् विष्णु की इष्टि के विषय में अब आप श्रवण कीजिये जिस विधि से नृप को सदा भगवान् विष्णु की इष्टि करनी चाहिए ॥१॥ प्रतिवर्ष राजा को भगवान् हरि की सुवर्ण की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए अथवा किसी अन्य उत्तम धातु के द्वारा बनवावे या काष्ठ की अथवा शिला मयी प्रतिमा की रचना करानी चाहिए ॥२॥ शिल्पियों के द्वारा उसका निर्माण करावे और मानोन्मानों से उसकी विधि के साथ प्रतिष्ठा करे। विप्रों और पुरोहितों के द्वारा विधि-विधान के साथ उसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए ॥ ३ ॥ उसकी संस्थापना किसी देवालय में करावे या स्वयं द्वारा निर्मित देवालय में करे। पूर्व में वर्णित विधि से वासुदेव के बीज से सभी उपचारों के द्वारा भक्ति के द्वारा भक्ति के साथ वासुदेव भगवान् का अभ्यर्चन करे। पूजा के अन्त में संस्कार किये हुए अग्नि में जो कि कुण्ड के मध्य में स्थित होवे फिर द्विज घृत से हरि भगवान् की प्रिय एक सहस्र आहुतियों से हवन करे। द्विज भली भाँति

वासुदेव का पूजन करके फिर होम करे ॥४॥५॥६॥ नृप की अनुमति से उस प्रतिमा को मण्डल मे ले जावे। प्रतिमा के दोनों कपोलो का दाहिने हाथ से स्पर्श करना चाहिए ॥७॥

प्राणप्रतिष्ठा कुर्वीत तस्या देवस्य वै हरे ।
कृताया तु प्रतिष्ठाया प्राणाना नृपसत्तम ॥८
विष्णुप्राणास्ता प्रतिमामायान्ति नियत स्वयम् ।
प्राणेष्वथागतेष्वस्या देवत्व नियत भवेत् ॥९
अकृताया प्रतिष्ठाया प्राणाना प्रतिमासु च ।
यथापूर्वं तथाभाव स्वर्णादीना न विष्णुता ॥१०
अन्येषामपि देवाना प्रतिमास्वपि पार्थिव ।
प्राणप्रतिष्ठा कर्तव्या तस्या देवत्वसिद्धये ॥११
सुवर्ण तु सुवर्णं स्याच्छिला दारु तथा शिला ।
अन्यच्च स्वस्वरूप स्यात् प्राणस्थानमृते सदा ॥१२
वासुदेवस्य बीजेन तद विष्णोरित्यनेन च ।
तथैवाङ्गाङ्गिमन्त्राभ्या प्रतिष्ठामाचरेद्धरे. ॥१३
तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठ दत्वा शश्वच्च मन्त्रवित् ।
एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य हृदयऽपि समाचरेत् ॥१४

उस प्रतिमा मे हरिदेव का प्राण प्रतिष्ठा करे। हे नृपश्रेष्ठ ! प्राणो की प्रतिष्ठा के करने पर भगवान् विष्णु के प्राण नियत रूप से उस प्रतिमा मे आ जाया करते हैं। प्राणो के समागत हो जाने पर इस प्रतिमा मे नियत रूप से देवत्व हो जाया करता है ॥ ८—९ ॥ प्राणों की प्रतिष्ठा के न करने पर प्रतिमाओ मे जैसा पहिले भाव होता है वैसा ही स्वर्ण आदि का भाव बना रहता है और उनमे विष्णु का भाव नहीं होता है ॥ १० ॥ हे पार्थिव ! अन्य देवो की भी प्रतिमाओ मे भी प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए तभी उसमें देवत्व की सिद्धि हुआ करती है ॥ ११ ॥ प्राण स्थान के बिना सदा सुवर्ण सुवर्ण ही रहता

है—शिला शिला है और काष्ठ केवल काष्ठ ही रहा करता है। सभी अपने ही स्वरूप में रहते हैं ॥१२॥ वासुदेव के बीज से— तद्विष्णो' इत्यादि से तथा अङ्ग—अङ्गी मन्त्रों के द्वारा भगवान् हरि की प्रतिष्ठा का समाचरण करना चाहिए ॥ १३ ॥ इसी भाँति मन्त्रों के ज्ञान रखने वाला हृदय में निरन्तर अंगुष्ठ को देकर इन मन्त्रों के द्वारा प्रतिष्ठा करके हृदय में भी समाचरण करे ॥ १४ ॥

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।
असौ देवत्वसंख्यायै स्वाहेति यजुरुच्चरन् ॥१५
अङ्गमन्त्रैरङ्गिमन्त्रैर्वेदिकैरित्यनेन च ।
प्राणप्रतिष्ठा सर्वत्र प्रतिमासु समाचरन् ॥१६
प्रतिमापूजनं कुर्यादात्मन्यपि च मन्त्रवित् ।
प्राणप्रतिष्ठां प्रथमं पूजाभावविशुद्धये ॥१७
अस्मिन् प्राणप्रतिष्ठा तु प्रतिमापूजनादृते ।
न कश्चित् तु बुधः कुर्यात् कृत्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥१८
विष्णोरिष्टिमिमां कृत्वा दशम्यां पार्थिवाधम ।
तस्यामेव तु पर्णायां प्रतिमां स्थापयेत् ततः ॥१९
एवं दशहरायां तु कृत्वेष्टिं पार्थिवो हरेः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति निर्विघ्नोऽपि स जायते ॥२०
स्थापयस्यां श्रियं देवीं कुन्दैः संपूजयेत्सदा ।
वासवं गजराजस्यमुपहारैस्तथोत्तमैः ॥२१

इसके लिए प्राण प्रतिष्ठा होवे—इसके लिए प्राण क्षरण करें—यह देवत्व की संख्या के लिए स्वाहा—यह मनु का उच्चारण करे—॥ १५ ॥ वैदिक अङ्ग मन्त्रों से और अङ्गी मन्त्रों से और इसके द्वारा सबंत्र प्रतिमाओं में प्राणों की प्रतिष्ठा का समाचरण करना चाहिए ॥ १६ ॥ मन्त्रों के ज्ञान रखने वाले पुरुष को प्रतिमा के पूजन में आत्मा में भी करना चाहिए। पूजा के भाव की विशुद्धि के लिए प्रथम

प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए ॥ १७ ॥ इसमें प्राण प्रतिष्ठा को प्रतिमा के पूजन के बिना किसी भी बुध पुरुष को नहीं करना चाहिए। ऐसा करके मृत्यु को प्राप्त किया करता है ॥ १८ ॥ नृपश्रेष्ठ दशमी में इस भगवान् विष्णु की इष्टि को करके उसके पूर्ण हो जाने पर ही फिर उस प्रतिमा को स्थापित करे ॥ १९ ॥ इस प्रकार से राजा दशहरा में हरि भगवान् की इष्टि को करके सभी मनोरथों की प्राप्ति कर लिया करता है और वह विघ्नों से भी रहित होता है ॥२०॥ श्री पञ्चमी में श्री देवी का कुन्द के पुष्पों के द्वारा उस समय में प्रकृष्ट रूप से पूजन करना चाहिए। गजराज पर संस्थित वासव का उत्तम उपहारों के द्वारा अर्चन करे ॥२१॥

लक्ष्म्यास्तन्त्र महामन्त्र वासवस्य पुरोदितम् ।
अत्रापि पूजने ग्राह्य मण्डलादि यथाक्रमम् ॥२२
एव कृते पजने तु श्रीपञ्चम्या विशेषत ।
श्रीयुतो नृपतिर्भूयान्न श्रीहानिमवाप्नुयात् ॥२३
सदाचारविशेषोऽयं कथितस्तव पार्थिव ।
निषेधे तु विशेषाश्च शृणु यन श्रियेष्यते ॥२४
असापज्य तथा विष्ण शिवमग्नि परन्दरम् ।
अदत्त्वा च तथा दान च भुञ्जीत नृप क्वचित् ॥२५
हावयेदग्निहोत्र त नित्यमेव परोहितं ।
अकृत्वा चाग्निहोत्र त भञ्जन्नरकमाप्नुयात् ॥२६
नारक्षिते गृहे राजा रत्नदीपविवर्जिते ।
स्वपेत् तथा स्त्रिया सार्धं व कदाचन सविशेत् ॥२७
भुक्त्वान्न श्रीफल नाद्यात् तथा धात्रीफल नृप ।
बुद्धिक्षयकरा ह्येता माष आसवमृत्तिका ॥२८

यहाँ पर पूजन में भी वासव का पहिले कहे हुए लक्ष्मी के तन्त्र महातन्त्र का ग्रहण करना चाहिए और क्रम के अनुसार मण्डल आदि

ना भी ग्रहण करे ॥ २२ ॥ इस प्रकार से पूजन के करने पर और श्री पञ्चमी में विशेष रूप से किये जाने पर नृप श्री से समन्वित होता है और कभी भी श्री की हानि को नहीं प्राप्त किया करता है ॥ २३ ॥ हे पार्थिव ! यह सदाचार विषय मैंने आपके सामने वर्णित कर दिया है और निषेध में विषयों का श्रवण कीजिए जिससे श्री के द्वारा इष्ट किया जाता है। २४। भगवान् विष्णु का भली भाँति पूजन न करके तथा शिव—अग्नि तथा पुरन्दर का पूजन न करके तथा दान न देकर राजा को कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए। २५। पुरोहितों के द्वारा नित्य ही अग्नि होत्र का हवन कराना चाहिए। अग्नि होत्र न करके भोजन करने वाला नरक को प्राप्त किया करता है ॥ २६ ॥ रत्नदीप से रहित अरक्षित गृह में राजा को स्त्री के साथ शयन नहीं करना चाहिए और कभी वहाँ बैठना भी नहीं चाहिए ॥ २७ ॥ अन्न खाकर श्री फल का अशन न करे तथा भूप धात्री फल को भी न खावे। माष—आसन और मृत्तिका ये सब बुद्धि के क्षय करने वाले होते हैं ॥ २८ ॥

निम्बाटरुपच्युताश्च बुद्धिवृद्धिकरा मता ।
वृद्धिक्षयकरा नित्यं त्यजेद्राजा च भोजनं ॥२९
भक्षयेदन्वहं बुद्धिवृद्धिहेतुं नृपोत्तम ।
न पर्याणविहीनं तु प्रारोहेदासनं नृप ॥३०
न यानं न गजं नाश्वमारोहेद्दीनमासनं ।
नक्तन्तु विचरेद्राजा कदाचिदपि निर्जने ॥३१
मदद्दत्तु न भुञ्जीयात कदाचिदपि भोजनं ।
कदाचिन्नापि सेवेत ह्यष्टम्यां मासमैथुनं ॥३२
दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं तिलैस्तर्पणमेव च ।
न जीवत्पितृको भूप कुर्यात् कुलघ्नमाप्नुयात् ॥३३
न क्षेत्रजादीस्तनयान राज्ये राजाभिषेचयेत् ।

पितृणा शुद्धये नित्यमौरसे तनये मनये सति ॥३४
औरस क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च भागार्हास्तनया इमे ॥३५

निम्ब—अरक्ष्य न्यून वृद्धि की वृद्धि के करने वाले हैं—ऐसा माना गया है। जो वृद्धि के करने वाले हैं राजा को उनका भेदन न त्याग कर देना चाहिए ॥२६॥ नृपों मे उत्तम को प्रतिदिन वृद्धि के जो हेतु हो उन्ही का भक्षण करना चाहिए। राजा को पर्याय पर विहीन आसन पर आरोहण नहीं करना चाहिए ॥३०॥ जो आसनो में हीन होवे ऐसे यान पर—अश्व और हाथी पर भी आरोहण नृप न करे। किसी भी समय मे राजा एक अकेला निर्जन वन मे विचरण न करे।३१। राजा को चाहिए किसी भी समय मे भोजन म मद के कारण पदार्थ का अशन न करे। अष्टमी तिथि मे कभी भी मास और मैथुन का सेवन न करे ॥३२। दर्शश्राद्ध—गया श्राद्ध- तिलो स तर्पण वह राजा न करे जिसका पिता जीवित होवे। ऐसा करके पाप को प्राप्त किया करता है ॥३३॥ राजा को राज्य पर क्षेत्रज तनयो का अभिषेक नही करना चाहिए जबकि और सपुत्र होवे तो उसके होते हुय पितृगणो की शुद्धि के लिय और सपुत्र का ही अभिषेक करे ॥३४॥ और स—क्षेत्र अ—दत्तव—कृत्रिम—गूढोत्पन्न —अप विद्ध—य पुत्र भाग के योग्य हुआ करते हैं ॥३५॥

कानीनश्च सहोढश्च क्रीत पौनर्भवस्तथा ।
स्वयदत्तश्च दासश्च षडते पुत्रपामुला ॥३६
अभावे पूर्वपूर्वेषा परान् सर्मभिषेचयेत् ।
पौनर्भव स्वयदत्त दास राज्ये न योजयेत् ॥३७
दत्ताद्याश्चापि तनया निजगोत्रेण सस्कृता ।
आयान्ति पुत्रता सम्यगन्यबीजसमुद्भवा ॥३८
पितुर्गोत्रेण य पुत्र सस्कृत पृथिवीपते ।

आचूडान्त पुत्र न पुत्रता याति चान्यत ॥३६
चूडान्ता यदि सस्करा निजगोत्रेण सस्थिताः ।
दत्ताद्यास्तनयास्ते स्युरन्यथा दास उच्यते ॥४०
ऊर्ध्वं तु पचमाद् वर्षाद् दत्ताद्याश्च सुतान्नृप ।
गृहीत्वा पचवर्षीय पुत्रेष्टि प्रथम चरेत् ॥४१
पौनर्भव तु तनया जातमात्र समानयेन ।
कृत्वा पौनर्भवष्टोम जातमात्रस्य तस्य वै ॥४२

कानीन (कन्या मे उत्पन्न)—सहोढ—क्रीत (धन देकर खरीदा हुआ)—पौनर्भव—स्वय दत्त—और दास—ये छै पुत्र पांसुल होते हैं। ॥३६॥ पूर्व-पूर्वों के अभाव मे दूसरो का अभिषेक करे। जो पौनर्भव-स्वय दत्त और दास हो उसका कभी भी राज्य मे भोजन नहीं करे। ॥३७॥ दत्तक आदि पुत्र भी जो निज गोत्र के द्वारा सस्कार किये गये होवें वे अन्य के वीर्य मे समुत्पन्न हुए पुत्रता को प्राप्त हुआ करते हैं। ॥३८॥ पिता के गोत्र से राजा का जो पुत्र सस्कार किया हुआ है वह चूडा कर्म पर्यन्त पुत्र नहीं होता है अन्य मे ही पुत्रता को प्राप्त होता है ॥३९॥ यदि चूडान्त सस्कार निज गोत्र मे संस्थित होवें वे दत्तक आदि पुत्र होते हैं अन्यथा दास कहा जाया करता है ॥४०॥ हे नृप ! पाँचवें वर्ष से ऊपर दत्तक आदि पुत्रों को ग्रहण करके प्रथम पाँच वर्षीय पुत्रेष्टि का समाचरण करना चाहिये ॥४१॥ पौनर्भव पुत्र को जैसे ही समुत्पन्न होवे उसे समानीत करे पौनर्भवष्टोम को जातमात्र उसका करे ॥४२॥

सर्वास्तु कुर्यात् सस्कारान् जातकर्मादिकान्तर ।
कृते पौनर्भवष्टोमे सुत. पौनर्भव स्मृत ॥४३
एकोद्दिष्ट पितु कुर्यान्न श्राद्धं पार्वणादिकम् ।
क्रीता या वनिता मूल्यै सा दासीति निगद्यते ॥४४
तस्या यो जायते पुत्रो दास. पुत्रस्तु स स्मृतः ।

न राज्ञो राज्यभाक् स स्याद् विप्राणां नापि श्राद्धकृत्॥४५
अधम सर्वपुत्रेभ्यस्त तस्मात् परिवर्जयेत् ।
पुराण धर्मशास्त्राणि संहिताश्च मुनीरितः ॥४६
नाध्यापयेन्नृप शूद्रविहितानि यनृच्छया ।
यस्य राज्ये सदा शूद्रा पराण संहितां तथा ॥४७
पठन्ति स्यात स हीनाग राजा राष्ट्रेण सान्वय ।
संहाद वा वामन शूद्र पराण संहिता स्मृतिम् ॥४८
पठन्नरकमाप्नोति पितृभि सह पापकृत ।
शूद्रेभ्यो विहित यत्र त यज्ञ मन्त्र उदाहृतः ॥४९
तदपि ब्राह्मणाद ग्राह्या इय शूद्रै सदैव हि ।
स गोजलैन्नप शूद्र स्वधान्याहस्य दर्शने ॥५०

करना चाहिये। राजा शूद्र को व्यवहार के दर्शन में शूद्र को दीक्षित न करे ॥४६—५०॥

निवोज्य तत्र तं भूपस्तामिस्रे तेन पच्यते ।
हीनायुश्च भवेल्लोके राजा वापि सहायक: ॥५१
काणं व्यङ्गमपुत्रं वा नाभिज्ञमजितेन्द्रियम् ।
न ह्रस्वं व्याधितं वापि नृप: कुर्यात् पुरोहितम् ॥५२
कृपणस्य धन राजा न गृह्णीयात् कदाचन ।
न द्विजानां तथा दद्याद् धनानि विपुलान्यपि ॥५३
नारोहेत् कामुकोन्मत्तगज राजा कदाचन ।
आरुह्य कामुकस्तं तु परत्रेह विषीदति ॥५४
अनायुष्यं न कुर्यात् तु कर्म भूप: कदाचन ।
सतत चायुषो वृद्ध्यै यतेत सकलैर्धनै: ॥५५
न क्रूरवारे नाष्टम्यां न षष्ठ्यां च नृपोत्तम: ।
अञ्जनाभ्यञ्जने कुर्यात् ताम्बूलस्यापि भोजनम् ॥५६

राजा उसका नियोजन करके उससे तामिस्र नामक नरक में पीड़ा पाया करता है। लोक और सहायक राजा भी हीनायु हो जाता है। ॥५१॥ राजा को चाहिए कि वह काणाव्यङ्ग अर्थात् विशेष अङ्ग वाला अथवा अङ्गहीन—पुत्र रहित—अनभिज्ञ—अजितेन्द्रिय—बहुत छोटे कद वाला—रोगी को कभी अपना पुरोहित न बनावे ॥५२॥ राजा को चाहिये कि वह कभी कृपण के धन का ग्रहण न करे। द्विजों को बहुत अधिक धन भी नहीं देवे ॥५३॥ राजा कभी भी कामुक और उन्मत्त हाथी पर आरोहण न करे। उस कामुक पर समारोहण करके इस लोक में और परलोक में विषाद को प्राप्त किया करता है ॥५४॥ राजा को किसी भी समय में ऐसा कोई भी कर्म नहीं करना चाहिए जो आयु के क्षय करने वाला होवे। सम्पूर्ण धन के द्वारा राजा को अपनी आयु की वृद्धि के लिये यत्न करना चाहिए ॥५५॥ किसी भी क्रूर वार में दिन-

करके सदा वीर्य का वर्द्धन करे ॥६१॥ जो भक्ष्य वीज के क्षय करने वाला होवे उसको—भोज्य को—पानक—क्षार शाक आदि—बहुत खट्टे और बहुत तिक्त (चरपरा) का वर्जन कर देना चाहिए ॥६२॥ कासे के पात्र में और चाँदी के पात्र में स्थित तथा नदी का जल शुक्र की वृद्धि करने वाला है तथा वीर्य के क्षय करने वाला है इसका वर्जित कर देवे ॥६३॥

ताम्राय स्वर्णशीशाना पात्रस्थ फलवर्मणो ।
शुक्रवृद्धिकर तोय तदुपाशीत यत्नत ॥६४
सर्वमूलेषु कृत्येषु सदाचारेषु तिष्ठत ।
भुक्त्वेह विविधान् भोगानिन्द्र स्याल व्रजेत् परम् ॥६५
एवमौर्वस्तु सगर प्रशास मुनिपुङ्गव ।
शास्त्राणि चैव सर्वाणि सदाचाराश्च गृह्यकान् ॥६६
बहुश कथयामास सगराय महात्मने ।
तन्नास्ति यत परौर्वेण कथित सगराय न ॥६७
राजनीति मता नीतिर्यच्चान्यच्छास्त्रसम्भवम् ।
संहितासु पुराणेषु यच्चागमये स्थितम् ॥६८
सर्वं शुश्राव सगरो मुखादौर्वस्य धीमत ।
नैषा तु कथित किंचिदुद्धृत्य द्विजसत्तमा ॥६९
विष्णुधर्मोत्तरे पूर्वं मया रहसि भाषितम् ।
राजनीति सदाचार वेदवेदाङ्गसङ्गतम् ॥७०
रहस्य सतत विष्णोर्वीर्यस्य द्विजसत्तमा ।
यच्चानुदितमन्यत्र गदित वा समश्रयम् ॥७१
ग्रन्थच्छेदेन तेष युष्मभ्य कथित द्विजा ।
अनन्तमशयच्छेदि पुराण कान्तिवाह्नयम् ।
योऽभ्यसेत सतत विप्र स वेदाना फल लभेत् ॥७२

ताम्र—सोना—सुवर्ण—शीशा के पात्र में स्थित तथा फल और

चर्म में स्थित जल वीर्य की वृद्धि करने वाला होता है ऐसे ही जल का यत्न पूर्वक सेवन करना चाहिए। ६४॥ सम्पूर्ण मूल कृत्यों में और सदा चारों में स्थित रहने वाला इस लोक में अनेक भोगों का उपभोग करके परम इन्द्र के स्थान को प्राप्त किया करता है ॥६५॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—मुनियों में परम श्रेष्ठ और्व ने इस रीति से राजा सगर को शासित किया था। और उन्होंने सब शास्त्रों को—गुह्यकों को और सदाचारों को बहुत बार महात्मा सगर से कहा था। ऐसा कुछ भी नहीं था जो पहिले और्व ने सगर राजा को कह कर न सुना दिया होवे ॥६६॥६७॥ राजनीति—सत्पुरुषों की नीति और जो भी कुछ शास्त्रों में सम्भव है—संहिताओं में—पुराणों में और जो आगमों के समुदाय में है राजा सगर ने सभी कुछ धीमान् और्व के के मुख से श्रवण किया था। हे द्विजश्रेष्ठो! उनका कुछ उद्धृत करके कहा था ॥६८—६६॥ मैंने पूर्व में विष्णु धर्मोत्तर में रह स्थल में कहा था। राजनीति—सदाचार—वदों और वेदों के अङ्गशास्त्रों से मङ्गल विष्णु का रहस्य है हे द्विज श्रेष्ठो उसका वीक्षण कर लो। अन्य स्थल में जो नहीं कहा है अथवा संशय के सहित कहा है। हे द्विजो! उनमें आप लोगों के लिये सम्पूर्ण संशयों का छेदन करके कह दिया है। जो नहीं कहा है उस संशय का छेदन करने वाला कालिका नामक पुराण है। जो विप्र इसका निरन्तर अभ्यास किया करता है वह वेदों के पठन का फल प्राप्त किया करता है ॥७१—७२॥



॥ सदाचार वर्णन ॥

संक्षेपतः सदाचारो विशेषो राजनीतिषु।
श्रुतस्त्वद्वचनादौर्व सगराय यथोक्तवान् ॥१

विष्णुधर्मोत्तरे तन्त्रे बाहुल्य सर्वत पुन: ।
द्रष्टव्यस्तु सदाचारो द्रष्टव्यास्ते प्रसादतः ॥२
भूयो न संशयो योऽस्ति तदनुक्तं त्वया पुरा ।
छिन्धि विप्रेन्द्र पृच्छाम परं कौतूहलं हि न: ॥३
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति श्रूयते वेदलोकयो ।
वेतालभैरवौ यातौ पुरा वै तपसे गिरिम् ॥४
पूर्वस्त्वकृतदारौ तौ तयो पुत्रा न च श्रुता. ।
न जाता अथवा जाता यदि जाता द्विजोत्तम ।
तेषां तु सम्यगिच्छामि श्रोतुं स स्थानमुत्तमम् ॥५
अपत्रस्य गतिर्नास्ति निश्चित चेति सत्तमा ।
स्पृष्ट्वाऽपत्यैर्वा पत्रवन्तो हि स्वर्गता ॥६
जातापत्यौ च तौ विप्र यौगौ वेतालभैरवौ ।
तयोर्वंशान प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु च महर्षय ॥७

ऋषियों ने कहा—तन्त्र में सदाचार और राजनीतियों में विशेष को और्व ने राजा सगर से जिस तरह से कहा था वह आपके वचन से श्रवण किया है। फिर सबने बाहुल्य विष्णु धर्मोत्तर तन्त्र में सदाचार देखना चाहिए वह आपके ही प्रसाद से देखने के योग्य है ॥१॥२॥ फिर जो हमको संशय है जो पहिले आपके द्वारा नहीं कहा गया है। हे विप्रेन्द्र ! उसका छेदन कीजिए। हम आप से पूछते हैं। हमारे हृदय में बहुत ही अधिक कौतूहल है ॥३॥ वेदों और लोक में भी यह सुना जाता है कि जो पुत्र रहित है उनकी गति नहीं होती है। प्राचीन समय में वैताल और भैरव तप के लिए पर्वत पर गये थे ॥४॥ पूर्व में वे दोनों ही दाराओं के न ग्रहण करने वाले थे। उन दोनों के पुत्र नहीं सुने गये हैं। हे द्विजोत्तम ! वे हीं उत्पन्न नहीं हुए थे अथवा जनक उत्पन्न हुए थे। उनका उत्तम स्थान मैं भली भाँति से श्रवण करने की इच्छा करता हूँ ॥४॥५॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे सत्तमो ! बिना पुत्र

वाले की गति नहीं होती है यह निश्चित ही है। अपने पुत्रों के द्वारा अथवा भाई के पुत्रों के द्वारा पुत्रों वाले स्वर्ग में गये हैं ।६। हे विप्रो ! वे दोनों उत्पन्न सन्तानों वाले थे धीर वेताल भैरव थे। अब मैं उन दोनों के वंशों को बतलाऊँगा। हे महर्षि गणो ! आप श्रवण कीजिए ।।७।।

सम्यक सिद्धिमवाप्यैव यदा वेतालभैरवौ ।
हरस्य मन्दिरं प्राप्तौ कैलासं प्रतिहर्षितौ ।।८
तदा हरस्य वजनान्नन्दी तौ रहसि द्विजा ।
प्राहेद वचन तथ्य सान्त्वयन्निव वोधकृत ।।९
अपुत्रौ पुत्रजनने भवन्तौ शङ्करात्मजौ ।
यतता जातपुत्रस्य सर्वत्र सुलभा गति ।।१०
पन्नाम नरकं पुत्रविहीन परिपश्यति ।
न तपोभिर्न धर्मेण तन्मोचयितुमीश्वर ।।११
केवलात पुत्रजननात् तस्मान्मोक्ष प्रजायते ।
तदुत्पादयना पुत्र भवन्तौ देवयोनिषु ।।१२
अमर्त्यता तु युवयो. क्षीरपानादजायत ।
कात्यायन्यास्तत पुत्रानमर्त्या स्वसमा यत. ।।१३
तस्माद् यथा तथा पुत्रानुत्पाद्य सुरयोनिषु ।
प्रियौ भवन्तौ शिवयोर्भवत न चिरादिति ।।१४

जिस समय में वेताल और भैरव दोनों भली भाँति सिद्धि को प्राप्त करके ही कैलाश के प्रति हर्षित होते हुए भगवान् हर के मन्दिर में प्राप्त हुए थे ।।८।। हे द्विजो ! उस समय में भगवान् हर के वचन से नन्दी ने एकान्त में उन दोनों से सान्त्वना देते हुए वोध करने वाला यह तथ्य वचन कहा था ।।९।। नन्दी ने कहा—आप दोनों पुत्र सहित भगवान् शङ्कर के आत्मज हैं। पुत्र के जन्म लेने में यत्न कीजिए। समुत्पन्न पुत्र वाले की सर्वत्र सुलभ गति हुआ करती है ।।१०।। जो पुत्र से हीन पुरुष होता है वह पुन्नाम वाले नरक को देखा करता है। उस का मोचन

उधर गमन करते हुए अपने पुत्रो के समुत्पादन के लिये चेष्टा करने लग थे ॥१६॥ इसके अनन्तर एक समय मे इस भैरव ने हिमवान् पर्वत के प्रस्थ मे परम सुन्दरी और श्रेष्ठ उर्वशी अप्सरा को देखा था ॥१७॥ इसके उपरान्त परम कामुक होकर इसने उर्वशी से सुरतोत्सव की याचना की थी। वेश्या के भाव से परम प्रसन्न होती हुई उसने उससे यथेच्छ कहा था ॥१८॥ इसके अनन्तर भैरव ने उसके साथ सुरतोत्सव की क्रीडा की थी। और वह प्रसन्न हुई उर्वशी मे सुरत कौलिया के द्वारा परम प्रसन्न हुआ था ॥१९॥ सुप्रसन्न हुई उर्वशी मे भैरव के तेज स बाल सूर्य के समान प्रभा वाला सद्योजात पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥ २० ॥ उस पुत्र का परित्याग करके उर्वशी अपने स्थान को चली गयी थी भैरव पुत्र को लेकर पीछे अपने स्थान को चला गया था ॥ २१ ॥

सत्कृत्य तनय त तु भैरवो मोदसयुत ।
सुवेशमिति तन्नाम चकार सगणाधिप ॥२२
अथ त जातवयस शक्रसूर्यसमप्रभम् ।
विद्याधराधिपत्ये त सुवेशमभ्यषेचयत् ॥२३
स तु विद्याधराध्यक्षस्तनयामतिसुन्दरीम् ।
येमे गन्धर्वराजस्य धृतराष्ट्राह्वयस्य च ॥२४
तस्या तस्य सुतो जज्ञ रुरुर्नाम मनोहर ।
रुरोस्तु तनयो बाहुर्मेनाव्ययामभ्यजायत ॥२५
बाहोस्तु पुत्राश्चत्वारस्तपनाऽङ्गद ईश्वर ।
कुमुदोऽभूत् कनीयास्तु चार्वत्या तु मनोहर ॥२६
कुमदस्य सुतो जज्ञे दवसेनो महाबल ।
स देवसेन पृथिवीमवतीर्य मनोहर ॥२७
मान्धातुर्यौवानश्वस्य तनया केशिनी मुदु ।
वरयामास भार्यार्थे मृद्वङ्गीमप्सर समाम् ॥२८

भैरव ने बहुत ही आनन्द से युक्त होकर उस पुत्र का सस्कार करके गणाधिपो के सहित उसका नाम उसने सुवंश—यह रक्खा था ।।२२।। इसके अनन्तर उचित अवस्था के प्राप्त करने वाले और इन्द्र तथा सूर्य के तुल्य कान्ति से युत उस सुवंश को विद्याधरो के आधिपत्य में अभिषेक कर दिया था।२३। उसने विद्याधरो के अध्यक्ष की अत्यन्त सुन्दरी पुत्री के साथ विवाह कर लिया था जो कि गन्धर्वो का राजा और धृतराष्ट्र नाम वाला था ।।२४।। उसमे उसके परम सुन्दर रुरु नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था। रुरु का पुत्र बाहु ने मैनाकी मे जन्म लिया था। ।।२५।। बाहु के चार पुत्र उत्पन्न हुये थे जिनके नाम तपन—अङ्गद—ईश्वर और कुमुद थे। कुमुद सबसे छोटा था। कुमुद का पुत्र परम सुन्दर चार्वती मे उत्पन्न हुआ था जो महान् बलवान् देवसेन नाम वाला था। वह परम मनोहर देवसेन पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ था। उसने मान्धाता यौवनाश्व की केशिनी नाम वाली पुत्री का जो बहुत ही कोमल अङ्गो वाली अप्सरा के समान थी अपनी भार्या बनाने के लिए वरण किया था ।।२६।।२७।।२८।।

यौवनाश्वोऽपि मान्धाता शक्रस्य वचनाद् ददौ ।
केशिनी तनयां स्वीयां देवसेनाय वाञ्छया ।।२६
केशिनीमुपयम्याथ देवसेनस्तया वराह् ।
वाराणस्यां शम्भुपुर्यां हरमाराधयच्छिवम् ।।३०
आराधितो हरः प्रीतस्तस्येप्ट प्रददौ वरम् ।
सोऽप्याददे हरात् तस्मादिष्टमेव वरत्रयम् ।।३१
यावच्च सूर्यो भविता तावन् स्थास्यति संतति ।
अस्यामेव नगर्या य मद्वशस्यापि राज्यता ।।३२
प्रसन्नो मम वशे त्व नित्यमेव भविष्यसि ।
इत्यादाय वर सोऽपि देवसेनो महाधृती ।।३३
शङ्करस्य प्रसादेन चिर ता बुभूजे पुरीम् ।

देवसेनोऽथ केशिन्या जनयामास पुत्रकान् ॥३४
यूय शृणुत सप्तैतान्नामत कीर्तितास्तथा ।
सुमना वसुदानश्च ऋतुधृग् यवन कृती ॥३५

यौवनाश्व मान्धाता ने भी इन्द्र के वचन से अपनी पुत्री केशिनी को इच्छा से ही देव सेन के लिये प्रदान कर दिया था ॥२९॥ देवसेन ने केशिनी के साथ विवाह करके उसी को साथ में लेकर उसने शम्भु की पुरी वाराणसी में भगवान हर शिव की आराधना की थी ॥३०॥ आराधना किये हुए भगवान् शिव परम प्रसन्न हो गये थे और उसका अभीष्ट वरदान उसे दे दिया था। उसने भी उन भगवान् शम्भु से अपने अभीष्ट तीन वरदान प्राप्त किये थे ॥३१॥ जब तक भगवान् भास्कर रहें तभी तक मेरी सन्तति स्थित रहेगी—इसी नगरी में मेरे ही वंश की राजता रहे ॥ ३२ ॥ मेरे वंश पर आप नित्य ही परम प्रसन्न रहेंगे। इन वरों को प्राप्त करके महान् धृती वह दवमन ने भी भगवान् शङ्कर की प्रसन्नता में उस पुरी का चिरकाल तक उपभोग किया था। देवसेन ने केशिनी के उदर से पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया।॥ ३३—३४ ॥ अब आप लोग उन सातों के नामों का श्रवण कीजिए जो कि कीर्तित किये जा रहे हैं। सुमना—वसुदान—ऋतुधृक्—यवन—कृती—नील—विवर्ग—ये सात पुत्र थे जो समस्त शास्त्रों के विशारद थे। ये सभी वंश के करने वाले परम श्रेष्ठ देव सेन के पुत्र थे ॥३५—३६॥

नीलो विवर्गी ह्येते वै सर्वशास्त्रविशारदा ।
सर्वे वंशकरा पुत्रा देवसेनस्य सत्तमा ॥३६
अथ काले तु सम्प्राप्ते देवसेनोऽपि भार्यया ।
पुत्रेषु राज्य नि:क्षिप्य यातो विद्याधरालयम् ॥३७
ततस्ते तस्य तनया कृत्वा सुमनसा नृपम् ।
वसुदानादय सर्वे बुभुजुश्चात्तमां श्रियम् ॥३८
जाता सुमनस पुत्रास्तस्य शूरा महाबला ।

सुमतिश्च विरूपश्च सत्य शास्त्रार्थपारगा ॥३६
सुमतेरभवत् कन्या सुत. सत्यस्य डिण्डिम ।
विरूपस्याभवद् गाधिर्गाधेर्मित्रोऽभवत् सुत ॥४०
तेषा कल्पोऽभवद्राजा कल्पात् तु विजयोऽभवत् ।
यो विजित्य क्षिति सर्वां पार्थिवान् भूरितेजस ॥४१
शक्रस्यानुमते चक्रे खाण्डव शतयोजनम् ।
यत् सव्यसाची ह्यदहत् पाण्डुपुत्र. प्रतापवान् ।
आवहत् परमां प्रीति ज्वलनस्य महात्मन ॥४२

इसके अनन्तर समय के सम्प्राप्त होने पर देवसेन भी भार्या के सहित अपने पुत्रों पर राज्य का भार डाल कर विद्याधर क्षय को चला गया था ।३७। इसके उपरान्त उसके पुत्रो ने सुमनस को राजा बना कर वसुदाम आदि सबने उत्तम श्री का उपयोग किया था ।३८। सुमनस के तीन शूर और महा बलवान् पुत्र समुत्पन्न हुए थे । ये सभी शास्त्रों के अर्थ के पारगामी विद्वान थे उनके नाम सुमति—विरूप और सत्य थे । ।३६। सुमति की एक कन्या हुई और सत्य का पुत्र डिण्डिम हुआ था । विरूपका गाधि हुआ और गाधि का सुत मित्र नामक हुआ था ।४०। उनका राजा कल्प मे विजय हुआ था जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत कर बहुत तेज वाले राजाओ का शक्र की अनुमति से सौ योजन का खाण्डव किया था जिसको सव्य साची अर्जुन ने श्री पाण्डु का प्रताप वाला पुत्र था दग्धार कर दिया था और महान् आत्मा वाले अनल की परमाधिक प्रीति का वहन किया था ।४१।४२।

कथ स खाण्डव चक्रे विजयः शतयोजनम् ।
तद् वय श्रोतुमिच्छाम कथयस्व तपोधन ॥४३
सोमवशेऽभवद्राजा महाबलपराक्रम ।
धीर. सुदर्शनो नाम चारूप प्रतापवान् ॥४४
स वै हिमवतो नातिदूरे गत्वा महावनम् ।
सिंहान् व्याघ्रान् समुत्सार्य क्वचिच्चापि तपोधनान् ॥४५

खाण्डवी नाम नगरीमकरोत् तत्र शोभनाम् ।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णामायता शतयोजनाम् ॥४६
उच्चप्राकारसंयुक्ता साट्टालाम्युदतोरणाम् ।
निम्नाभिरतिदीर्घाभिः परिखाभिः समावृताम् ॥४७
अधृष्यामपरैर्वीरैर्नानाजनसमावृताम् ।
दीर्घिकाभिश्चोपवनैर्बहुभिश्चाप्सरोगणैः ॥४८
आकीर्णा च तथारामैरुत्तमैरपि मानवैः ।
सोत्सवाः सततं यत्र जना देवान् दिवि स्थितान् ॥४९
स्पर्धन्ते स्म मुदा युक्ता आसा-भोगसमन्विताः ।
स यं मरुत्तो राजा खात्वा भूमिं विदार्य च ॥५०

खाण्डवी मे रोपित किया था ॥ ५४—५५ ॥ भगवान् विष्णु से भी विष्णु ने उस नृप सुदर्शन को उपचार किया था और प्राय देवों का तथा मनुष्यों का जयशाली वाराणसी के स्वामी विजय को कृत सान्निध्य को युद्ध के लिये उसके वैर मे योजित किया था ॥५६—५७॥

विजयो विवर प्राप्य महाबलपराक्रम ।
सुदर्शनस्य नृपतेरवस्कन्दमथाकरोत् ॥५८
असहन् स ह्यवस्कन्ध विजयस्य सुदर्शन ।
चतुरङ्गबलेनाशु युद्धायाभिमुखोऽभवत् ॥५९
विजयो रथमारुह्य नियोज्य चतुरङ्गिणीम् ।
तत सुदर्शन योद्धुं सम्मुखोऽभवदञ्जसा ॥६०
तदा महायुद्धमासीद्विजयेन महात्मना ।
सुदर्शनस्य नृपतेर्वृत्रवासवयोर्यथा ॥६१
सुदर्शनस्य सेनानी रुमण्वान्नाम वीर्यवान् ।
यावन रथमारुह्य विजय समुखोऽभ्ययात् ॥६२
अक्षौहिण्यस्तु सन्नास्य परिवार्य समन्तत ।
व्यग्रमत्ता शत्रुसेना यावनोमुद्यतायुध ॥६३

महान् बल और पराक्रम वाले विजय ने विवर की प्राप्ति करके नृप सुदर्शन का अव स्कन्दन किया था ॥ ५८ ॥ उस सुदर्शन ने विजय के अव स्कन्ध को सहन किया था और चतुरङ्गिणी सेना से शीघ्र ही युद्ध करने के लिये समुद्यत हो गया था ॥ ५९ ॥ विजय अपने रथ पर समारूढ होकर चतुरङ्गिणी का नियोजित करके फिर सुदर्शन के साथ युद्ध करने के लिए शीघ्र ही सम्मुख हुआ था ॥ ६० ॥ फिर महात्मा विजय के साथ महान् युद्ध हुआ था । सुदर्शन राजा का युद्ध ऐसा ही था जैसे वृत्रासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ था ॥ ६१ ॥ सुदर्शन का सेनानी जिसका नाम रुमण्वान् था बहुत ही अधिक वीर्यवान् था । वह सोने के रथ पर सवार होकर विजय के सम्मुख हुआ था ॥ ६२ ॥

उद्यत आयुधों वाला होकर इसने उसकी सात अक्षौहिणी सेना को चारों ओर से घेर कर जितनी भी शत्रु की सेना थी उसको आक्रान्त कर दिया था ॥६३॥

विजयस्य च सेनानी सञ्जय स रिपुञ्जय ।
नागानीकेन जग्राह रुमण्वन्त ससैनिकम् ॥६४
तयोर्महदभूद् युद्ध सेनान्योर्वीरयोर्महत् ।
ववर्ष शरवर्षेण रुमण्वानथ सञ्जयम् ॥६५
कुर्वंश्चापि महानाद गज दृष्ट्वेव केशरी ।
रुमण्वानथ विशत्या बाणैर्विद्ध्वाथ सञ्जयम् ॥६६
क्षुरप्रेण धनुस्तस्य चिच्छेद कृतहस्तवत् ।
सोऽपि कार्मुकमादाय तदाऽन्यत् सञ्जयस्त्रिभि ॥६७
बाणैर्विव्याध भल्लेन धनुश्चिच्छेद तत्क्षणात् ।
शतान्यष्टौ च नागाना सहस्राणि च षट्पद् ॥६८
पत्तीना वाजिना त्रीणि सहस्राणि समन्तत ।
सञ्जयो निर्जघानाशु बाणवर्षै सुदारुणै ॥६९
अथान्यद् धनुरादाय रुमण्वान कुपितो भृशम् ।
भल्लेन सारथेरस्य शिर कायादपाहरत् ॥७०

विजय का जो सेनानी था उसका नाम सञ्जय था और वह रिपुओं का जीतने वाला था । हाथी की सेना के द्वारा उसने सैनिकों के सहित रुमण्वान के सामने समुपस्थित की थी ॥ ६४ ॥ उन दोनों वीर सेनानियों का बहुत भारी युद्ध हुआ था । इसके अनन्तर रुमण्वान् ने शरों की वर्षा से सञ्जय को घेर लिया था ॥६५॥ गज को देखकर केसरी की ही भाँति बड़ी भारी गर्जना करते हुए ही रुमण्वान् ने बीस बाणों के द्वारा सञ्जय को बेध दिया था ॥ ६६ ॥ कृत हस्त की तरह क्षुरप्र के द्वारा उसके धनुष को छिन्न कर दिया था । उस सञ्जय ने भी उसी समय में धनुष लेकर तीन बाणों के द्वारा प्रहार किया था

॥ ६७ ॥ बाणों से वेधन किया था और भाले से उसी क्षण में धनुष को काट दिया था। आठ सौ हाथियों पाँच छै हजार पत्तियों को और तीन सहस्र अश्वों का सञ्जय ने अपने चारों ओर सुदारुण बाणों की वर्षा से शीघ्र ही मार गिराया था ॥ ६८—६९ ॥ इसके अनन्तर दूसरी ओर से धनुष ग्रहण करके बहुत ही अधिक कुपित हो गया था और भालेके द्वारा इसके सारथि का शिर शरीर से काटकर अलग गिरा दिया था ॥७०॥

हयांश्चास्य चतुर्भिस्तु बाणैर्निन्ये यमक्षयम् ।
चतुर पञ्चभिर्बाणैर्विव्याध चापि सञ्जयम् ॥७१
सञ्जयोऽप्यतिवेगेन गदामादाय तत् क्षणात् ।
अवतीर्य रथोपस्थाद्दुमप्यजन्तमधावत ॥७२
स धावन्तं सञ्जयं तं समभ्यान् द्रुतहस्तवत् ।
शरवर्षेण महता वारयामास सञ्जयम् ॥७३
गदया भ्रामयमाणो निवार्य शरवर्षणम् ।
आससाद रणे वक्त्रं वेगवानिव महागजम् ॥७४
आसाद्य तां गदां गुर्वीमाविध्यामीव सञ्जय ।
मूर्ध्नैव प्रहारेण सद्य स व्यपाद्यत् ॥७५
स पपात महावीरः पृथिव्यां गदया हतः ।
वज्राहतो यथा शैलः प्रभूतवनसंयुतः ॥७६
इत्यन्तं निहतं दृष्ट्वा राजा सुदर्शन ।
क्रोध-संरक्तनयनो ज्वलन् इव पावक ॥७७

रुमण्वान ने शरो की वर्षा के द्वारा सच्छादित करके सञ्जय को वारित कर दिया था ॥ ७३ ॥ उसने गदा के फिराने से सिंह जैसे महान् गज हटा दिया करता है उसी भाँति शरो की वर्षा करने वाले रुमण्वान को हटाकर उसके समीप में प्राप्त हो गया था ॥ ७४ ॥ सञ्जय ने उसके पास पहुँच कर उस बड़ी भारी गदा को अविद्ध करके अपने एक ही प्रहार के द्वारा रथ के सहित उसको व्यपोथित कर दिया था ॥ ७५ ॥ गदा से हत होकर वह महान् वीर पृथ्वी म गिर गया था। जैसे वन के मध्य म भिन्न माल का फूला हुआ वृक्ष वज्र म हत होकर गिर जाया करता है ॥ ७६ ॥ राजा सुदर्शन ने रुमण्वान को गिरा हुआ देखकर वह धूम के सहित पावक की ही भाँति शोक और कोप से समाविष्ट हो गया था ॥७७॥

जज्वालाकुलदेहोऽपि क्रोधेनातीव सयुत ।
आरुह्य जवनैरश्वैर्युक्त वैयाघ्रकृत्तिना ॥७८
रथ काचन-चित्राग सिंहध्वज-विभूषितम् ।
आमुक्तो धनुरादाय विस्फाय च पुन पुन ॥७९
ससैन्य सञ्जय राजा समाद्रवत वेगवान् ।
अथास्य निशितै शस्त्रै सेनामग्रगता भृशम् ॥८०
व्यहनत सकला राजा मृगानिव मृगाधिप ।
एकामक्षौहिणीमग्रगामिनी विपुलौजसाम ॥८१
क्रोशद्वयेन व्यहनत् तमासीव दिवाकर ।
हत्वा चाक्षौहिणीमेकामासाद्य सञ्जय नृप ॥८२
वार्णं पष्ट्या तु विव्याध ध्वजमेकेन चिच्छिदे ।
सञ्जयोऽप्यथ विंशत्या हृदि विद्ध्वा सुदर्शनम् ॥८३
ललाटे त्वेकबाणेन प्राविध्यत् कृतहस्तवत् ।
क्षुरप्रेणास्य कोदण्ड छित्वा राज प्रतापवान् ॥८४

अत्यधिक क्रोध से युक्त होकर समाकुल देह वाला भी वह

ज्वलित होगया था। वह वेगवान् अश्वों से युक्त और व्याघ्र के चर्म में सयुत सुवर्ण के चित्रित अङ्गा वाले—सिंह की ध्वजा में भूषित रथ पर आरूढ होकर आमुक्त धनुष को ग्रहण करके वारम्वार विस्फारित करता हुआ वेगवान् राजा ने सैनिकों के सहित सञ्जय को समाढवित किया था। इसके अनन्तर अपने पैने अस्त्रों के द्वारा सेना के आगे बहुत ही अधिक सम्पूर्ण सेना का सिंह हिरनों को जैसे निहत करता है ठीक उसी भाँति हनन कर दिया था। बहुत ओज वाले वीरों की अभ गामिनी एक अक्षौहिणी सेना हनन कर दिया था ॥७८—८१॥ जैसे सूर्य अन्धकारों को नष्ट कर दिया करता है उसी भाँति दो कोश तक निहनन किया था। राजा एक अक्षौहिणी सेना का हनन करके सञ्जय के समीप मे प्राप्त हो गया था।८२। राजा ने आठ बाणो से वेधन किया था। और एक बाण के द्वारा ध्वजा को छिन्न कर दिया था। इसके उपरान्त सञ्जय ने भी बीस बाणो स सुदर्शन के हृदय म वेधन किया था।८३। कृत हस्त की भाँति एक बाण से ललाट में वेध किया था। क्षुरप्र के द्वारा प्रताप वाले ने राजा के दण्ड को छिन्न कर दिया था ॥८४॥

सारथिं दशभिर्वाणैः पुनर्विव्याध सञ्जय ।
कोदण्डमन्यमादाय तदा राजा सुदर्शन ॥८५
शरवर्षेण तीक्ष्णेण ववर्षातीव सञ्जयम् ।
तयोर्महदभूद् युद्ध मुनिविस्मयकारकम् ॥८६
शस्त्रैस्त्रैर्मृ शं तीक्ष्णैर्बलिवासवयोरिव ।
तत सुदर्शनो राजा भल्लेनास्य दृढ धनु ॥८७
चिच्छेद सारथिं चास्य जघान निशितै शरै ।
स्वय समस्य वाहान स सञ्जय परवीरहा ॥८८
धनुरन्यत् समादाय परिवार्य सुदर्शनम् ।
विव्याध दशभिर्वाणैर्धनुरप्यच्छिनद् दृढम् ॥८९

शरासनान्तरं राजा समादाय सुदर्शन ।
सञ्जयस्य चतुर्वाहाञ्छरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥६०
मुष्टौ धनुश्च चिच्छेद त च विव्याध पञ्चभि ।
विरथश्छिन्नबाहश्च सञ्जय खड्गचर्मणी ॥६१

सञ्जय ने फिर दश बाणो से सारथि का वेधन उसी समय मे कर दिया था। फिर राजा सुदर्शन ने अपना धनुष का आदान किया। ।८५। अत्यधिक शरों की तीव्र वर्षा से सञ्जय का निमग्न-सा कर दिया था। उन दोनों का मुनियो के विस्मय उत्पन्न करने वाला महान् युद्ध हुआ था।८६। बलि और वामन इन्द्र की ही तरह मे वह युद्ध बहुत ही तीक्ष्ण शस्त्रो से तथा अस्त्रों से हुआ था। फिर राजा सुदर्शन ने अपने भाले के द्वारा इसके दृढ धनुष को काट गिराया था।८७। उसने अपने पैने बाणो के द्वारा इसके सारथि का हनन कर दिया था। उस सञ्जय ने जो शत्रु के वीरो का हनन करने वाला था स्वयं ही अपने वाहनो को नियमित करके अन्य धनुष का आदान करके सुदर्शन को फेर कर दश बाणो से वेधन किया था और इसके सुदृढ धनुष का छेदन कर दिया था।८८।८९। सुदर्शन ने अन्य धनुष का ग्रहण करके सञ्जय के चार वाहो का यमपुरी भेज दिया था।९०। मुट्ठी मे रहने वाले धनुष को छिन्न कर दिया था और पाँच बाणो से उसको विद्ध कर दिया था। सञ्जय रथ से हीन होकर जिसके बाह छिन्न हो गये थे उसने खड्ग और ढाल को ग्रहण किया था।९१।

आदाय सम्मुख राजेऽभ्यद्रवत् कुपितो भृशम् ।
तस्य चाप तत. खड्ग क्षुरप्रेण सुदर्शन. ॥९२
द्विधा चिच्छेद भल्लेन चर्म चाप्यच्छिनत्तदा ।
अथ द्रुत तदोपेत्य सञ्जय. स्यन्दनोत्तमम् ॥९३
सुदर्शनस्य सूत तु कराभ्या पातयन् क्षितौ ।
रथाभ्याशे गतस्यास्य सञ्जयस्य सुदर्शन. ॥९४

शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसौ न्यपतद् भुवि ।
स पपात तदा तस्य रथाभ्याशे महाबल ॥६५
कृत्त परशुनाऽरण्ये पुष्पित शालवृक्षवत् ।
सञ्जय पतित दृष्ट्वा विजय क्रोधमूर्च्छित ॥६६
महता शङ्खनादेन नादयस्तु नभ स्थलम् ।
रथेन स्वर्णचित्रेण व्याघ्रचर्मविराजिना ॥६७
केतुना वृषभेणाथ योजनार्धोच्छ्रितेन च ।
नादयन् ककुभ सर्वा रथौघपरिवेष्टित ॥६८
विमुञ्चञ्छरवर्षाणि समाद च सुदर्शनम् ।
आसाद्य त नृप भूपो विजय परवीरहा ॥६९

खड्ग और ढ ल को लेकर अत्यधिक कुपित होते हुए राजा के सम्मुख धावा किया था। फिर सुदर्शन ने क्षुरप्र के द्वारा उसके चाप और खड्ग के टुकडे कर दिये थे।६२। उस अवसर मे भाले से ढाल के दो टुकडे कर दिये थे। इसके उपरान्त शीघ्र ही समीप मे जाकर सञ्जय उसके उत्तम रथ पर पहुँच गया था और सुदर्शन के सारथि को उसने अपने हाथो से भूमि पर दिया था। रथ के समीप मे गये हुए इस सञ्जय का शिर खड्ग से काट डाला था और फिर वह भूमि पर गिर गया था। वह महान् बलवान् उसके रथ के ही समीप म उस समय मे गिर गया था ॥६३—६५॥ वन म पुष्पो वाले शाल के वृक्ष की ही भाँति कटा हुआ और गिरे हुये सञ्जय का अवलोकन करके विजय क्रोध से मूर्च्छित हो गया था। ६६। बडे भारी शख की ध्वनि स नाद करते हुए जिससे आकाश मे गू ज हो उठी थी। व्याघ्र के चर्म से विराजित—स्वर्ण से चित्रित—रथ के द्वारा जो वृषभ केतु स युक्त था जो कि केतु आधे योजन ऊँचा था—सभी दिशाओ म गू ज करता हुआ रथों के समुदाय से परिवेष्टित होकर शरो की वर्षा करते हुये सुदर्शन के समीप मे प्राप्त हुआ था। शत्रु के वीरो के हनन करने वाला राजा विजय उस राजा के पास पहुँच गया था ॥६७—६९॥

हृदि विद्ध्वा त्रिभिर्बाणैस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ।
सुदर्शनोऽपि विजयं नदन्तं कुञ्जरोपमम् ॥१००
दशभिर्निशितैर्बाणैर्विद्ध्वा चिच्छेद तद् धनु ।
अर्थेन छिन्नधन्वानं अशुदेशे त्रिभि शरैः ॥१०१
निर्भिद्याथ महानादं ननाद स सुदर्शन ।
सोऽन्यद्धनु समादाय कङ्कपत्रैस्त्रिभि शरैः ॥१०२
विव्याध हृदये वीरो विजयोऽपि सुदर्शनम् ।
ततस्तन्नृपमुद्दिश्य महाशक्ति सुदीपिताम् ॥१०३
नागकन्या कोपयुक्ता लेलिहानामिवातुलाम् ।
स्वर्णदण्डा सुतीक्ष्णाग्रां तैलधौतां सुनिर्मलाम् ॥१०४
समुद्यम्याथचिक्षेप विजय शात्रवं प्रति ।
सुदर्शनस्य हृदयं सा शक्ति प्रविवेश ह ॥१०५

उसने तीन बाणों के द्वारा हृदय में बेधन करके खड़ा रह खड़ा रह-यह बोला था। सुदर्शन ने भी हाथी के समान गर्जन करते हुए विजय को अपने दश बाणों के द्वारा बेधन करके उसके धनुष को काट गिराया था। इसके अनन्तर कटे हुए धनुष वाले इसको तीन बाणों से शत्रु को बिद्ध कर दिया था। और फिर सुदर्शन ने महान नाद किया था उसने भी दूसरे धनुष का आदान किया था कङ्क पत्र वाले तीन शरों के द्वारा वीर विजय ने सुदर्शन के हृदय में बेधन किया था। इसके उपरान्त नृप का उद्देश्य करके उसने सुदीपित महा शक्ति का ग्रहण किया था।१००—१०३। वह महा शक्ति कोप से युक्त जीभ को लप लपाती हुई अनुपम नाग कन्या के ही तुल्य थी। उसमें सुवर्ण का दण्ड लगा हुआ था—उसका अग्रभाग बहुत ही तीक्ष्ण था—वह तैल से धुली हुई सुनिर्मल थी। ऐसी महा शक्ति को लेकर विजय ने शत्रु की ओर उसका प्रक्षेपण किया था। और वह शक्ति सुदर्शन के हृदय में प्रवेश कर गयी थी।१०४—१०५।

स विह्वलो रथोपस्थे ह्यधोवक्त्र उपाविशत् ।
तस्मिन् मोह-समापन्ने नृपतौ च सुदर्शने ॥१०६
तस्याग्रतस्तथा पार्श्वे ये स्थितास्तत्र सैनिकाः ।
तान् सर्वानहनद्राजा क्षणमात्राद् द्विजोत्तमाः ॥१०७
रथान् दशसहस्राणि तावन्त्येव च दन्तिनाम् ।
पञ्चविंशसहस्राणि वाजिनां च तरस्विनाम् ॥१०८
लक्षद्वयं तु पत्तीनां क्षणमात्रादपोथयत् ।
स तु लब्ध्वा ततः संज्ञां धनुरादाय वै दृढम् ॥१०९
शरवर्षेण विजयं ववर्ष स सुदर्शनः ।
निवार्य शरवर्षेण विजयं तु सुदर्शनः ॥११०
भल्लेन कार्मुकं सज्यं तस्य चिच्छेद तत्क्षणात् ।
सारथेस्तु शिरः कायाद् भल्लेनापाहरत् ततः ॥१११
हयांश्च चतुरश्चास्य प्रेषयामास मृत्यवे ।
अथैनं विरथं भूपं दशभिः कङ्कपत्रिभिः ॥११२

वह विह्वल होकर नीचे की ओर मुख वाला रथ के ही समीप में बैठ गया था। उस नृप सुदर्शन के मोह को प्राप्त हो जाने पर उसके आगे की ओर तथा पार्श्व में वहाँ पर जो सैनिक स्थित थे हे द्विजोत्तमो! राजा ने एक ही क्षण भर में उन सब को मार गिराया था।१०६।१०७। दश हजार रथों को—और उतने ही हाथियों का—बड़े वेग वाले अश्वों की बीस हजार संख्या और दो लाख पदातियों को क्षण भर में मार गिराया था। इसके उपरान्त होश में आकर तथा सुदृढ़ धनुष लेकर सुदर्शन ने विजय के ऊपर शरों की वर्षा की थी।१०८।१०९।११०। उसके सज्य कार्मुक को भाले के द्वारा उसी क्षण में छिन्न कर दिया था। और सारथि का शिर काय से दूर कर दिया था।१११। और इसके चार अश्वों को मृत्यु के मुँह में भेज दिया था। इसके अनन्तर बिना रथ वाले राजा को दश कङ्कपत्रों के द्वारा—विद्ध कर दिया था।११२।

विव्याध हृदये भूयो ननाद च सुदर्शनः ।
स च्छिन्नधन्वा विरथो गदामादाय वेगवान् ॥११३
विजयो विजयाकाङ्क्षी सुदर्शनमधावत ।
आपतन्तं महावीरं बाणवर्षैः सुदर्शनः ॥११४
ववर्ष वर्षासु यथा वारिदः पृथिवीधरम् ।
विजयः शरवृष्टिं तां प्राच्छाद्य स्वशरेण वै ॥११५
गदया तं रथारूढमाससाद तु तत्क्षणात् ।
आसाद्य तं महावीर्यं विजयोऽस्य सुदर्शनम् ॥११६
शीर्षे प्रहृत्य गदया पातयामास भूतले ।
गिरेः शृङ्गं यथा तुङ्गं वज्राशनिविदारितम् ॥११७
तथा सुदर्शनो राजा दारितो गदयाऽपतत् ।
तस्मिन्निपतिते वीरे सेनाभिस्तस्य सैनिकाः ॥११८
भयात् संप्राद्रवंस्तस्माद् दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
नष्टेषु तस्य सैन्येषु विजयः खाण्डवीं पुरीम् ॥११९

सुदर्शन ने फिर हृदय में वेधन करके फिर गर्जना की थी । वह कटे हुए धनुष वाला और बिना रथ वाला होकर वेग से युक्त ने गदा का आदान किया था ॥ ११३ ॥ विजय की इच्छा वाले विजय ने सुदर्शन पर धावा किया था । सुदर्शन ने ऊपर से पतन करने वाले महान् वीर पर बाणों की वर्षा की थी जैसे वर्षा ऋतु में बादल पर्वत पर वर्षा किया करता है । विजय ने उस बाणों की अपने शरों से प्रच्छादित करके गदा से उसी क्षण में रथ पर समारूढ़ हुए उसके समीप में समासादन किया था । उस महान वीर्य वाले के पास पहुँच कर सुदर्शन के शिर में प्रहार करके उसको भूमि पर गिरा दिया था । जिस प्रकार से वज्र के द्वारा विदीर्ण किया गया पर्वत का ऊँचा शिखर गिरा करता है ॥ ११४—११७ ॥ सुदर्शन गदा के प्रहार से विदारित होकर गिर गया था । उस वीर के गिर जाने पर उसकी सेना के सैनिक उस युद्ध स्थल से डर से

भीत होते हुए दिशा—विदिशाओं में भाग गये थे। उसकी सेना के सैनिकों के नष्ट होजाने पर विजय ने खाण्डवी नाम वाली नगरी में प्रवेश किया था ॥११८—११९॥

प्रविश्य ददृशे तत्र राशीभूतान् गिरीनिव ।
सुवर्णानां च रत्नानां सञ्चयान् बहुशः पुनः ॥१२०
दृष्ट्वा सरांसि तत्रैव प्रफुल्लकमलानि च ।
हंसकारण्डवानादैर्नादितानि समन्ततः ॥१२१
राशीन् सुवर्णरत्नानां पर्वतानिव विस्तृतान् ।
पुष्पितान् देववृक्षांश्च भ्रमद्भ्रमरभूषितान् ॥१२२
प्रासादान् विपुलाञ्छुभ्रान् कैलाससदृशान् गजान् ।
प्रस्फुटांश्च सुगन्धाढ्यान् प्रतिगेहं व्यवस्थितान् ॥१२३
उत्फुल्लनयनो राजा विजयः परवीरहा ।
मेनेऽमरावतीं तां तु पुरीम् क्षितिगतामिव ॥१२४
तं वीक्षन्तं नरपतिं नगरीं तां सुरेश्वरः ।
समेत्य विजयं प्राह सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा ॥१२५

उसने नगरी में प्रवेश करके वहाँ पर एकत्रित पर्वतों की ही भाँति राशीभूत सुवर्णों की तथा रत्नों के ढेरों को बहुत तादाद में देखा था ॥ १२० ॥ वहाँ पर खिले हुए कमलों वाले सरोवरों को देखा था जो हंसों और कारण्डवों के नाद से सभी ओर से निनादित थे।१२१। पर्वतों के ही समान सुवर्णों और रत्नों के ढेरों को देखा था—घूमते हुए भौंरों से विभूषित और पुष्पित देव वृक्षों को देखा था।१२२। बहुत से शुभ्र प्रासादों को तथा कैलास के सदृश हाथियों को देखा था जो प्रस्फुट और सुन्दर गन्ध से युक्त प्रत्येक घर में व्यवस्थित थे।१२३। शत्रुओं का हनन करने वाले विजय राजा के नेत्र प्रफुल्लित हो गये थे। उसने उस नगरी को भूमि पर समागत हुई अमरावती ही माना था।१२४। उस परम सुन्दर नगरी को देखते हुए राजा के पास सुरेश्वर ने आकर परम श्लक्ष्ण वाणी से उसको सान्त्वना देते हुए विजय से कहा था।१२५।

राजन् महावनमिदमासीद् देवगणावृतम् ।
न च गन्धर्वयक्षाणां मुनीनां च मनोहरम् ॥१२६
सर्वानुत्सार्य देवादीन् मम चाप्यप्रिये रतः ।
भङ्क्त्वा वनमिदं गुह्यमुत्साह्य च तपोवनम् ॥१२७
खाण्डवी नगरी चक्रे हठाद्राजा सुदर्शनः ।
तदिदं पुनरेव त्वं वनं कुरु नरोत्तम ॥१२८
तत्राहं विहरिष्यामि तक्षकेण समं रहः ।
मुनीनां च तपःस्थानमतुलं ते प्रसादतः ।
भविष्यति च यक्षाणां किन्नराणां च पार्थिव ॥१२९
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शक्रस्य विजयस्तदा ।
वनमेवाकरोत् तान्तु खाण्डवी शक्रगौरवात् ॥१३०
गच्छन्तु भो यथास्थानं प्रजाः सर्वा यथेच्छया ।
येषां वाञ्छास्ति लोकानां मद्राज्यगमने पुनः ॥१३१
वाराणसीं ते गच्छन्तु मयैव प्रतिपालिताम् ।
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा जना केचिन्निजास्पदम् ॥१३२
जग्मुर्वाराणसीं केचिद् विजयेनाभिपालिताम् ।
ततो धनानां तान् राशीन् रत्नानां च पृथक् पृथक् ॥१३३
मणीनां वनवानां च कुप्यानां विजयस्तथा ।
विविधैर्वारयामास पुरीं वाराणसीं प्रति ॥१३४

इन्द्रदेव ने कहा—हे राजन् ! यह महावन देवगणों से समावृत था। यह गन्धर्व—यक्ष और मुनियों से समावृत और परम मनोहर था। राजा सुदर्शन ने देव आदि सबको यहाँ से उत्सारित करके मेरे अप्रिय कार्य करने में रत होता हुआ उसने इस वन का भङ्ग करके गुह्य तपोवन को उत्साहित करके राजा ने हठ से खाण्डवी नगरी की रचना की थी। हे नरोत्तम! आप पुनः इसको उत्तम वन बना दीजिए।१२६-१२८॥ वहाँ पर मैं तक्षक के साथ एकान्त में विहार करूँगा। यह

आपके ही प्रसाद से मुनिगणों के तपश्चर्या करने का अनुपम स्थान होगा। हे पार्थिव! यह यक्षों का और किन्नरों का भी उत्तम स्थान हो जायगा ॥ १२९ ॥ मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—उस समय में इन्द्रदेव के इस वचन का विजय ने श्रवण करके इन्द्रदेव के गौरव से उस खाण्डवी नगरी को विस्तृत वन ही बना दिया था ॥ १३० ॥ समस्त प्रजाजन को इच्छा के अनुसार यथा स्थान पर गमन कर जावें। जिन लोगों की पुन मेरे राज्य में गमन करने की इच्छा होवे व वाराणसी में गमन कर जावें जो कि मेरे द्वारा ही प्रतिपालित पुरी है। इसके उपरान्त मनुष्यों ने उसके वचन का श्रवण किया और कुछ लोग अपने ही स्थान को गमन कर गये थे ॥ १३१—१३२ ॥ और कुछ लोग विजय नृप के द्वारा अभिपालिता वाराणसी में चले गये थे। इसके अनन्तर धनों की तथा रत्नों की राशियों को अलग-अलग और मणियां—कनकों और पुष्पों की राशियां को विजय ने अनेक साधनों के द्वारा वाराणसी नगरी को ही ओर वाहित करा दिया था ॥१३३—१३४ ॥

गन्धर्वाणां च देवानां यदानीतं हठात् पुरा।
रत्नदार्वादिकं यत् तु विजयं तत् प्रसाद्य च ॥१३५
तैस्तैर्नीतं च खाण्डव्यां स्वस्थानं हनिर्हर्षितं।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णां शतयोजनमायताम् ॥१३६
तां पुरीं विजयश्चक्रे नचिरादेव व वनम्।
तस्मिञ्छक्रस्य सम्मत्या तक्षकः सहितो गणः ॥१३७
उवास सुचिरं तत्र ततोऽमून्निर्जनं वनम्।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः क्रीडन्तेऽप्सरसां गणाः ॥१३८
आशसन्तश्च विजयं रणेषु विजयावहम्।
प्राप्तेऽष्टाविंशतितमे युगे द्वापरशेषतः ॥१३९
वह्निर्ब्राह्मणरूपेण भिक्षां जिष्णुमयाचत।
दातुमङ्गीकृते भिक्षां तदा पाण्डुसुतेन वै ॥१४०

गन्धर्वों की और देवों की जो पहिले हठ से रत्न दारु आदि की राशियाँ लाई गयी थी और विजय के समीप में थीं—विजय को प्रसन्न करके उन—उन्होंने प्रतिर्हापित होकर खाण्डवी में अपने स्थान को नीत किया था। विजय ने तुरन्त ही तीस योजन विस्तीर्ण सौ योजन आयत उस पुरी को वन बना दिया था। उस वन में इन्द्रदेव की सम्मति से अपने गणों के साथ तक्षक ने निवास किया था।१३५—१३७। वहीं पर तक्षक बहुत समय तक रहा था और फिर वह निर्जन वन बन गया था। वहाँ पर गन्धर्वों के साथ देवगण और अप्सराओं के समुदाय आनन्द की क्रीडा किया करते हैं।१३८। वे सब युद्धों में विजय प्रदान करने वाले विजय की चर्चा किया करते थे। अट्ठाईसवें युग के प्राप्त होने पर द्वापर के शेष में वह्नि ने विष्णु से ब्राह्मण के रूप में भिक्षा की याचना की थी। पाण्डु के सुत के द्वारा भिक्षा देने की स्वीकृति दे दी गई थी।।१४०।।

वह्नि स्वरूपमास्थाय जिष्णु वचनमब्रवीत् ।
अहमग्निः पाण्डुपुत्र यज्ञभागाभिभोजनात् ।।१४१
व्याधितोऽहं ततो व्याधि तम त्व नाशयाधुना ।
खाण्डवं नाम विपिन सपविमृगराक्षसम् ।।१४२
यदि त्व मां भोजयितुं शक्नोषि श्वेतवाहन ।
तदा मम ह्यसौ व्याधिरपयास्यति नो चिरात् ।।१४३
पुरा तु विजयो राजा खाण्डवी नाम तां पुरीम् ।
भस्मरवा वन यत्नाक्के तेन तत् खाण्डव वनम् ।।१४४
मदर्थं देवविहित वन तु श्वेतवाहन ।
विरोधात् तत् तु शक्रस्य न स्वय भोक्तुमुत्सहे ।।१४५
तस्मात् त्राहि महाभाग वने तस्मिन्नियोजय ।
यथाहं सकल भोक्तुं शक्नोमि त्वत्प्रसादतः ।।१४६
तस्य तद्वचन श्रुत्वा सव्यसाची महाबलः ।
दाहयामास विपिन तत्सर्वं प्राणिसयुतम् ।।१४७

वाहन ने अपने स्वरूप में स्थित होकर विष्णु से यह वचन कहा था—हे पाण्डु पुत्र ! मैं अग्नि हूँ—यज्ञ भागों के अभि भोजन में मैं व्यथित हो रहा हूँ। अब आप ही मेरी इस व्याधि का विनाश कीजिए। खाण्डव नाम वाला विपिन है जो पक्षी—मृग और राक्षसों से समन्वित है ॥१४१—१४२॥ हे श्वेत वाहन ! यदि आप मुझको भोजन कराने में समर्थ हैं तभी मेरी यह व्याधि शीघ्र ही नष्ट हो जायगी ॥ १४३ ॥ पहिले समय में विजय नाम वाले वे खाण्डवी नाम की उस पुरी को भङ्ग करके इसको वन बना दिया था इसी कारण से यह खाण्डव वन है। हे श्वेत वाहन ! यह देवों के द्वारा विहित वन मेरे ही लिए था। इन्द्रदेव के विरोध में मैं स्वयं इसका भाग करने का उत्साह नहीं करता हूँ ॥१४४—१४५॥ हे महाभाग ! इसी कारण से आप परित्राण करिए और उस वन में नियोजन कीजिए। जिस रीति से मैं सम्पूर्ण का भोग करने के लिए आपके प्रसाद से मैं समर्थ हो सकता हूँ ॥ १४६ ॥ महान् बलवान् सव्यसाची ने उसके इस वचन का श्रवण करके उस सम्पूर्ण वन को जो कि प्राणियों से समन्वित था दग्ध कर दिया था ॥१४७॥

देवकीतनयेनासौ वासुदेवेन पालित ।
खाण्डव दाहयामास ज्वलनस्य हिते रत ॥१४८
सुप्रीत प्रददौ तस्मादर्जुनाय महात्मने ।
वह्निर्धनुश्च गाण्डीव वारुण देवनिर्मितम् ॥१४९
अक्षय्ये चेषुधी दिव्ये कृपाइत्याश्चतुरो हयान ।
हनुमताधिष्ठित तु महान्त वानरध्वजम् ॥१५०
खड्ग च त्रिशिख तीक्ष्ण दत्त्न सव्यसाचिने ।
नीरोगश्चाभवद् वह्निस्तथा जिष्णुप्रसादत. ॥१५१
सर्वाधिकेन धनुषा तेन खड्गेन चेतुना ।
तदश्वस्यन्दनेनापि विजिग्ये फाल्गुनो रिपून् ॥१५२

एवं भैरववंशेषु सञ्जातो विजयो नृपः ।
खाण्डवं नाम विपिनं चकार सुमहाकृती ॥१५३
विजयस्य सुता जातास्त्रयोदश महाबलाः ।
द्युतिमान् सौम्यदर्शी च भूरिः प्रद्युम्न एव च ॥१५४
क्रतुस्तुण्डो विरूपाक्षो विक्रान्तोऽथ धनंजयः ।
प्रहर्ष प्रबलः केतुस्तथोपरिचरोऽपरः ॥१५५

यह देवकी के आत्मज भगवान् वासुदेव के द्वारा पालित है। अग्नि के हित करने में रति रखने वाले ने उस खाण्डव वन को जला दिया था ॥१४८॥ परम प्रसन्न होकर वह्नि ने इसी कारण से महात्मा अर्जुन को गाण्डीव धनुष जो देवों द्वारा निर्मित और वारुण था प्रदान किया था ॥ १४६ ॥ और अक्षय—दिव्य औषधियाँ दी थीं और सुरूप में मयुत चार अश्व—हनुमानजी से अधिष्ठित वानर ध्वजा वाला महान् रथ—वज्र—तीक्ष्ण त्रिगाब अग्नि ने सव्य साची (अर्जुन) को दिये थे। तथा विष्णु के प्रसाद से वह्नि रोग से रहित होगया था ॥१५०—१५१॥ फाल्गुन (अर्जुन) ने उन वाणों से—उस धनुष से—वज्र से—केतु से उन अश्वों वाले रथ से शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी ॥१५२॥ इस प्रकार से भैरव के वंशों में विजय नृप जो महा आकृति वाला था उसने खाण्डव को विपिन कर दिया था ॥ १५३ ॥ विजय राजा के महान् बल वाले तेरह पुत्र हुए थे। उनके नाम द्युतिमान—सौम्यदर्शी—भूरि—प्रद्युम्न—क्रतु—तुण्ड-विरूपाक्ष—विक्रान्त—धनञ्जय—प्रहर्ष-प्रबल—केतु और उपरिचर थे ॥ १५४—१५५ ॥

एषां राजाऽभवद् वीरः शेषोपरिचरस्तु यः ।
वाराणस्यां नगर्यां यो यज्ञलक्ष पुराऽकरोत् ॥१५६
लक्षयज्ञकरः कोऽपि नासीन्नापि भविष्यति ।
राजा क्षितौ महाभागो यथोपरिचरस्तथा ॥१५७
एषां सूतिप्रसूतैश्च व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।

चिरेण तान् क. सख्यातुं शक्नोति भुवि मानुष. ॥१५८
क्रमाद् भैरववशेन व्याप्त लोकत्रयं स्थिदम् ।
एतद् व. कथित विप्रा. सन्तानं भैरवस्य तु ॥१५६
येषा श्रुत्वा कथामात्र नापुत्रो जायते नरः ।
इद य कीर्तयेत् पुण्य चरित विजयस्य तु ॥१६०
सतत विजयस्तस्य जायते न पराभव ।
एकाग्रमनसा यस्तु शृणुयादिदमुत्तमम् ।
तस्य वशस्य विच्छेदो न कदाचिद् भविष्यति ॥१६१

इन सबका राजा वीर हुआ था जो शेपोपरिचर था जिसने वाराणसी नगरी मे पहिले एक लाख यज्ञ किये थे ॥ १५६ ॥ एक लाख यज्ञों के करने वाला कोई भी नही हुआ था और न भविष्य मे भी होगा। पृथ्वी मे महाभाग राजा था वह जैसा उपरिचर था वैसा ही था ।१५७। इनके पुत्र—पौत्र—प्रपौत्रो से ही यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। भूमण्डल मे ऐसा कौन-सा मनुष्य है जो बहुत लम्बे समय में भी उनकी गिनती कर सकता हो। अर्थात् ऐसा कोई भी मनुष्य नही है ॥१५८॥ क्रम से भैरव के वश से यह तीनो ही लोक व्याप्त हो रहे हैं। हे विप्रो ! यह मैंने आपके समक्ष मे भैरव की सन्तति का वर्णन कर दिया है। इनकी केवल कथा ही का श्रवण करके जो पुत्र रहित होवे ऐसा वह कभी भी हो नही सकता है। विजय के इस परम पवित्र चरित्र का कीर्तन किया करता है उसका सदा ही विजय ही होता है और पराभव कभी भी नही हुआ करता है। जो एकाग्र मन से इस उत्तम चरित्र का श्रवण करता है उसके वश का विच्छेद कभी भी नहीं हुआ करता है और न होगा ही ॥१५६—१६१॥



॥ षोड शोपचार वर्णन ॥

उपाचारान् प्रवक्ष्यामि शृणु षोडश भैरव ।
यैः सम्यक् तुष्यते देवी देवोऽप्यन्यो हि नन्दितः ॥१
आसनं प्रथमं दद्यात् पौष्पं दारवमेव वा ।
वास्त्र वा चार्मणं कौश मण्डलस्योत्तरे सृजेत् ॥२
यदैव दीयते पद्मे मण्डलस्य तदुत्सृजेत् ।
वाक्पुष्पतोयैः कुसुमं विना यच्छादकं भवेत् ॥३
पद्मस्य तद्बहिर्देशे द्वारादौ विनिवेदयेत ।
अर्घ्यं पाद्य चाचमनं स्नानीयं नेत्ररञ्जनम् ॥४
मधुपर्कं च गन्धं च पुष्पं पद्मे निवेदयेत् ।
प्रतिमासु च प्रद्योग्य गात्रे दातुं च तत् तनौ ॥५
दद्याद् योग्य तु पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम् ।
पौष्पासन यद् विहितं यस्य तद् यदि गर्भकम् ॥६
निवेदयेत् तदा पद्मं विपुलं द्वारि चोत्सृजेत् ।
पौष्पं पुष्पौघरचितं कुशसूत्रादिसंयुतम् ॥७
अतिप्रीतिकर देव्या ममाप्यन्यस्य भैरव ।
यज्ञकाष्ठसमुद्भूतमासनं मसृणं शुभम् ॥८

श्री भगवान् ने कहा—हे भैरव ! मैं अब सोलह उपचारों का वर्णन करता हूँ। उनका आप श्रवण कीजिए। भक्ति भाव से जिनसे जिनसे देवी भली भाँति से सन्तुष्ट हुआ करती है और अन्यदेव भी परम प्रसन्न होते हैं।१। सबसे प्रथम आसन देना चाहिए। वह आसन पौष्प हो अथवा काष्ठ का होवे। चाहे वह वस्त्र का हो—चर्म का हो या कौश होवे। उसे मण्डल के उत्तर की ओर ही सृजन करना चाहिए। ।२। जिस समय में वह पद्म में दिया जाता है उसे मण्डल के उत्तर में ही रखे। कुसुम के बिना वाक् पुष्प और जल से जो छादक होवे।३। उस पद्म के बाहिर के भाग में द्वार आदि पर विशेष रूप से निवेदित

करना चाहिए। अर्घ्य—पाद्य—आचमन—स्नानीय—नेत्र रञ्जन—मधुपर्क—गन्ध और पुष्प पग में निवेदित करे। और प्रतिमाओं में और गात्र में देने के लिये जो भी योग्य होवे वह तनु में देना चाहिए। और नैवेद्य भोजन आदि जो होवे वह आगे देना चाहिए। पीप्पा सव जो जिसको विहित किया गया है वह यदि गर्भक हो तो उस समय में पद्म से निवेदन करना चाहिए और विपुल को द्वार में उत्सृजन करे। पीप्प जो होता है वह पुष्पों के समुदाय से रचित हुआ करता है और कुश तथा सूत्र आदि से सयुत होता है। हे भैरव! यह देवी का—मेरा और अन्य का भी अत्यधिक प्रिय करने वाला होता है। यज्ञ के काष्ठ से समुद्भूत आसन मसृण और शुभ हुआ करता है। ४—८।

नोच्छ्राय नातिविस्तीर्णमासन विनियोजयेत्।
अन्यद दारुभव चापि दद्यादासनमुत्तमम् ।।९
सकण्टक क्षीरयुत दारुसारविवर्जितम्।
चैत्यश्मशानसम्भूत वर्जयित्वा विभीतकम् ।।१०
वल्कल कोपज शाण वस्त्रमेतत् त्रय मतम्।
रोमज कम्बल चैतदनेन तु चतुष्टतम् ।।११
अनेन रचित दद्यादासन चेष्टभूतय।
सिंहव्याघ्रतरक्षूणा छागस्य महिषस्य वा ।।१२
गजाना तुरगाणा च कृष्णसारस्य चमण।
चमरस्याथ रामस्य मृगाणा नवभेदिनाम् ।।१३
चर्मभि सर्वदेवानामासन प्रीतिद श्रुतम्।
वस्त्रेषु कम्बल शस्तमासन देवतुष्टये ।।१४
राङ्कव चार्मण श्रेष्ठ दारव चन्दनोद्भवम्।
यच्चासन कुशमय तदासनमनुत्तमम् ।।१५
सर्वेषामपि देवानामृषीणा च यतात्मनाम्।
योगपीठस्य सदृशमासन स्थानमुच्यते ।।१६

आसन ऐसा होना चाहिए जो बहुत ऊँचा न होवे और न बहुत विस्तृत होना चाहिए। ऐसे ही आसन को विनियोजित करे। अन्य लकड़ी से बनाया हुआ भी उत्तम दवे।६। वह आसन दारु (काष्ठ) के भार से रहित तथा काँटों से युक्त एवं और न मथुन—चैत्य श्मशान में समुत्पन्न औदि भी तब का छोड़कर ही काष्ठ का आसन बनाना चाहिए।१०। वस्त्र के आसन के लिये वल्कल (वृक्ष की छाल)—कापस और शाण अर्थात् सनका—ये ही तीन आसन माने गये है। रोमज अर्थात् रोमों से बनाया हुआ कम्बल—ये चार होते है।११। अपने इष्टदेव की मूर्ति के लिये इसके द्वारा विरचित आसन ही देना चाहिए। सिंह—व्याघ्र—तरक्षु—छाग—महिष—गज—तुरग—कृष्ण रुरु सूकर—राम य मृगो के नौ भेद हैं।१२। इनके चर्मों के द्वारा आसन बनाया जाया करता है जो सभी देवों के निय प्री त का देने वाला होता है—ऐसा सुना गया है। कम्बों के आसनों में कम्बल का आसन प्रशस्त होता है और देवो की तुष्टि के लिये हुआ करता है।१४। चर्म के आसन में रुरु के चर्म का आसन श्रेष्ठ होता है तथा काष्ठ के आसनो में चन्दन का श्रेष्ठ माना गया है।१५। सभी देवों का मयन मानस वाले ऋषियों का योग पीठ के सदृश आसन तथा स्थान कहा जाता है ॥१६॥

आसनस्य प्रदानेन सौभाग्य मुक्तिमाप्नुयात्।
शम्बरो रोहितो रामो न्यङ्कुरङ्कुशशो रुरु ॥१७
एणश्च हरिणश्चेति मृगा नवविधा मता।
हरिणश्चापि विज्ञेयो पञ्चभेदोऽत्र भैरव ॥१८
ऋष्य खड्गो रुरुश्चैव पृषतश्च मृगस्तथा।
एते बलिप्रदानेषु चर्मदानेषु कीर्तिता ॥१९
सर्वेषा तैजसाना च आसन श्रेष्ठमुच्यते।
आयसं वर्जयित्वा तु काम्यं सीसकमेव वा ॥२०

शिलामय मणिमय तथा रत्नमय मतम् ।
आसन देवनाम्यस्तु मुक्त्यं भुक्त्यं समुत्सजेत् ॥२१
अत्रैव साधकाना च आसन शृणु भैरव ।
यत्रासीन पूजयस्तु सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥२२
ऐन्धन चार्मण वास्त्र तैजस च चतुष्टयम् ।
आसन साधकाना च सतत परिकीर्तितम् ॥२३
तत् सर्वमासन शस्त पूजाकर्मणि साधके ।
न यथेष्टासनो भूयात् पूजाकर्मणि साधक ॥२४

देवी के लिये आसन के समपण से परम सौभाग्य और मुक्ति की प्राप्ति की जाया करती है। मृग नौ प्रकार के माने गये है अर्थात् निम्नाङ्कित इनके नौ भेद होत है—शम्बर—रोहित—राम—न्यङ्कु—अङ्कुशाग—रुरु—राण और हरिण—ये नौ भेद हैं। हे भैरव ! हरिण भी यहाँ पर पाँच भेदों वाला समझना चाहिए।१७।१८। ऋष्य—खड्ग—रुरु—पृषत—तथा मृग—ये बलि के प्रदान करने म तथा चर्म दान में कीर्तित किये गये है।१६। और सभी तैजसो के आसन परम श्रेष्ठ कहे जाया करत हैं। धातु के आसनो म केवल लौह को छोडकर कांसा—सीसा—शिलामय—मणिमय—ये रत्नमय माने गये है। देवताओ के लिये आसन मुक्ति अर्थात् सासारिक सुखो के उपभोग और मुक्ति अर्थात् सासारिक बन्धनो म छुटकारा पाने के लिय समुत्सृजित करना चाहिए।।२०।२१। हे भैरव ! और यहाँ पर ही साधना करने वालो के आसनो के विषय मे भी श्रवण कर लीजिए। जिन पर बैठ कर अभ्यर्चन करता हुआ सब प्रकार की सिद्धियो को प्राप्त कर लिया करता है।२२। साधकों के लिये चार प्रकार के आसन निरन्तर बताये गये है—ऐन्धन (काष्ठका)—चार्मण (चमक)—वास्त्र (वस्त्रका)—और तैजस अर्थात् धातु निर्मित ये चार हैं। १३। साधक को पूजा के कर्म म वे सभी आसन प्रशस्त होते हैं ॥२४॥

काष्ठादिकासन कुर्यात् सितमेव सदा बुधः ।
चतुर्विंशत्यङ्गुलेन दीर्घं काष्ठासन मतम् ॥२५
षोडशांगुलविस्तीर्णमुच्छ्राय   चतुरंगुलम् ।
षडङ्गुलं वा कुर्यात् तु नोच्छ्रितञ्ज्ञान आचरेत् ॥२६
पूर्वोक्तं वर्जयेद् वर्ज्यमासन पूजनेऽप्यपि ।
वस्त्रं द्विहस्तान्नो दीर्घं सार्द्धहस्तान्न विस्तृतम् ॥२७
न त्र्यङ्गुलात् तथोच्छ्रायं पूजाकर्मणि साश्रयेत् ।
यथेष्ट चार्मण कुर्यात् पूर्वोक्त सिद्धिदायकम् ॥२८
षडङ्गुलाधिकं कुर्यान्नोच्छ्रित च कदाचन ।
काम्बलं चार्मणं शैलं महामायाप्रपूजने ॥२९
प्रशस्तमासन प्रोक्तं कामाख्यायास्तथैव च ।
त्रिपुरायाश्च सतत विष्णोश्चापि कुशासनम् ॥३०
बहुदीर्घं बहूच्छ्रायं तथैव बहुविस्तृतम् ।
दारुभूमिसम प्रोक्तमाश्मापि सर्वकर्मणि ॥३१
पृथक् पृथक् कल्पयेत्तु वहिर्द्वारि तथासनम् ।
न पत्रमासन कुर्यात् कदाचिदपि पूजने ॥३२

बुध पुरुष को चाहिए कि सर्वदा काष्ठ आदि का आसन सित ही रक्खे। काष्ठ का आसन चौबीस अंगुल प्रमाण वाला दीर्घ होना चाहिए—यही शास्त्र—सम्मत होता है ॥ २५ ॥ सोलह अंगुल के विस्तार से युक्त और चार अंगुल ऊँचाई वाला होना चाहिए। अथवा छै अगुल ऊँचा करे। इससे ऊँचा कभी नही करे ।२६। पूर्व में कहे हुए को वर्जित कर देवे । जो आसन वर्जित हैं वह पूजन मे वर्जन के ही योग्य होता है । वस्त्र का आसन दो हाथ से बड़ा नही होना चाहिए । और डेढ हाथ से अधिक विस्तृत नहीं होवे । ।२७। तीन अगुल से ऊँचा आसन कभी भी पूजा के कर्म मे साश्रित नहीं करना चाहिए । चर्म का आसन जितना भी अभीष्ट हो करे।

पूर्व मे वर्णित आसन सिद्धि का प्रदान करने वाला हुआ करता है।२८। छै अगुल से ऊँचा कभी भी नहीं करना चाहिये। कम्बल का आसन तथा चर्म का आसन और शैल अर्थात् शिला का आसन महामाया के प्रकृष्ट पूजन मे परम प्रशस्त आसन कहा गया है तथा कामाख्या देवी के यजन मे इसी को श्रेष्ठ बताया गया है। सदा त्रिपुरा देवी के पूजन मे और भगवान् विष्णु के अर्चन मे भी कुशा का आसन प्रशस्त माना गया है।२५।३०। बहुत दीर्घ—बहुत ऊँचा—और बहुत विस्तार वाला काष्ठ और भूमि के समान ही कहा गया है और पाषाण का भी आसन सभी कर्मों मे प्रशस्त होता है।३१। द्वार मे बाहिर आसन पृथक्-पृथक् ही कल्पित करे। पत्रो का आसन कभी पूजन मे नही करना चाहिए ॥३१॥३२।

न प्राण्यङ्ग-समुद्भतमस्थिज द्विरदादृते।
मातङ्गदन्तसञ्जात काम्यिकेष्वासन चरेत् ॥३३
चार्म पूर्वोदित ग्राह्य तथा गन्धमृगस्य च।
सलिले यदि कुर्वीत देवताना प्रपूजनम् ॥३४
तत्राप्यासन आसीनो नोत्थितस्तु कदाचन।
तोये शिलामय कुर्यादासन कौशमेव वा ॥३५
दारव तैजस वापि नान्यदासनमाचरेत्।
आसनारोपणस्थान स्थानाभावे तु पूजक ॥३६
आसन कल्पयित्वा तु मनसा पूजयेज्जले।
यद्यासितु न सस्थान विद्यते तोयमध्यत ॥३७
अन्यत्र वा तदा स्थित्वा देवपूजा समाचरेत्।
इत्येतत् कथित पुत्र पूज्यपूजकसङ्गतम् ॥३८
आसन पाद्यमनुना शृणु वेताल भैरव।
पादार्थमुदक पाद्य केवल तोयमेव तत् ॥३६
तत् तैजसेन पात्रेण शखेनापि प्रदापयेत्।
धर्मार्थकाममोक्षाणा सस्थान पाद्यमिष्यते ॥४०

गज को छोड़कर किसी भी प्राणी के अङ्ग से निर्मित आसन तथा अस्थियों से रचित आसन ग्रहण नहीं करे। मातङ्ग के दाँतों से निर्मित आसन कामिक कर्मों में समाचरित करना चाहिए ।३३। चर्म का आसन नहीं ग्रहण करना चाहिए जो पूर्व में कहा गया है। तथा गन्ध मृग के चर्म का आसन लेवे। यदि जल में देवताओं का पूजन करे। वहाँ पर भी आसन पर बैठे हुए साधक को कभी भी उठना नहीं चाहिए। जल में शिलामय अथवा कुशा का ही आसन करे ॥३४॥३५॥ काष्ठ का अथवा तैजस अर्थात् धातु निर्मित आसन का ग्रहण करे तथा अन्य आसन को नहीं समाचरण करे। स्थान के अभाव में तो पृथक् आसन का आरोप के सम्थान को ही आसन कल्पित करके मन से जल में पूजन करे। यदि जल के मध्य में बैठने का सम्थान नहीं होवे तो अन्य स्थान में ही बैठकर उस समय में देव की पूजा का समाचरण करना चाहिए। हे पुत्र ! यहाँ आपको मैंने पूज्य और पूजक का जो मङ्गल विषय है वह सब कह बता दिया है ।३६।३७।३८। हे वेताल भैरव ! आसन और इसमें पाद्य का श्रवण कीजिए। चरणों के प्रक्षालन के लिए जो जल है वही पाद्य होता है अथवा केवल वह जल ही होता है।३९। वह पाद्य किसी उत्तम धातु से निर्मित पात्र के द्वारा और शंख के द्वारा भी देना चाहिए। पाद्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का सम्थान होता है ॥४०॥

तदासमोत्तर दद्यान्मूलमन्त्रेण सर्वतः।
कुशपुष्पाक्षतैश्चैव सिद्धार्थैश्चन्दनैस्तथा ॥४१
तोयैर्गन्धैर्यथालब्धैरर्घ्यं दद्यात् तु सिद्धये।
अर्घ्येण लभते कामानर्घ्येण लभते धनम् ॥४२
पुत्रायु-सुखमोक्षाणि दानादर्घ्यस्य वै भवेत्।
न दद्याद् भास्करायार्घ्यं शङ्खतोयैर्विचक्षण ॥४३
तथा न शुक्तिपात्रेण विष्णवेऽर्घ्यं निवेदयेत्।
दद्यादाचमनीयं तु सुगन्धिसलिलं शुभैः ॥४४

कर्पूरवासितं वापि कृष्णागुरुविधूपितैः ।
यथा तथा सुगन्धैर्वा प्रसङ्ग फेनवर्जितं ॥४५
तत् तैजसेन पात्रेण शङ्खेनापि प्रदापयेत् ।
उदकं दीयते यत् तु प्रसन्नं फेनवर्जितम् ॥४६
आचमनाय देवेभ्यस्तदाचमनमुच्यते ।
केवलं तोयमात्रेण तद् वा दद्यान्न मिश्रितम् ॥४७
वासितं तु सुगन्धाद्यैः कर्त्तव्यं यदि लभ्यते ।
आयुर्बलं यशोवृद्धि प्रदायाचमनीयकम् ॥४८

उस समय में आसन के उत्तर में सभी ओर से मूल मन्त्र के द्वारा कुश-पुष्प-अक्षत-सिद्धार्थ-चन्दन तथा यथा लब्ध अर्थात् जो भी प्राप्त हो सकें उनसे सिद्धि के लिए अर्घ्य देना चाहिए। अर्घ्य से कामनाओं का लाभ होता है और अर्घ्य देने से धन की प्राप्ति हुआ करती है।४१। ।४२। अर्घ्य से पुत्र-आयु सुख-मोक्ष की प्राप्ति हुआ करती है। विचक्षण पुरुष को कभी भी शङ्ख के द्वारा जल का अर्घ्य भास्कर के लिये नहीं देना चाहिए।४३। सीप के पात्र से भगवान् विष्णु के लिए अर्घ्य निवेदित नहीं करे। सुगन्ध से युक्त जल में ही जो परम शुभ होवे आचमनीय समर्पित करे।४४। कर्पूर से वासित और कृष्णा गुरु से धूपित जिस प्रकार से सुगन्धित होवें वैसे ही प्रसङ्गों से और फेनों से रहित जल से तैजस (धातु निर्मित) पात्र के द्वारा और शङ्ख के द्वारा भी निवेदित करे। जो भी जल दिया जाता है वह स्वच्छ और फेनों से रहित ही होना चाहिए।४५।४६। देवों के लिए जो आचमन करने को जल दिया जाता है वह ही आचमनीय कहा जाया करता है। अथवा केवल जल ही से देवे और मिश्रित नहीं देवे।४७। सुगन्धित पदार्थों से उस जल को वासित करे। यदि इस प्रकार से प्राप्त होता है। आचमनीय का समर्पण करके साधक आयु—बल और यश की वृद्धि प्राप्त किया करता है।४८।

लभते साधको नित्य कामाश्चैव यथोत्थितान् ।
दधिसर्पिर्जलं क्षौद्रं सिता ताभिश्च पञ्चभिः ॥४९
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवौघतुष्टये ।
जलं तु सर्वतः स्वल्पं सितादधिघृतं समम् ॥५०
सर्वेभ्यश्चाधिकं क्षौद्रं मधुपर्के प्रयोजयेत् ।
तद् दद्यात् कांस्यपात्रेण रौक्मश्वेतमयेन वा ॥५१
ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ पूर्वे चेष्टे च पूजने ।
मधुपर्कः प्रदिष्टोऽत्र सर्वदेवौघतुष्टिदः ॥५२
धर्मार्थकाममोक्षाणां साधकः परिकीर्तितः ।
मधुपर्कः सौम्यसौम्य-तुष्टि-पुष्टि-प्रदायकः ॥५३
पिष्टातकोऽथ कस्तूरी रोचनं कुङ्कुमं तथा ।
गुडं क्षौद्रं पञ्चगव्यं सर्वौषधिगणस्तथा ॥५४
सिता निर्णेजनं तैलं स्निग्धस्नेहेन तन्तुतिना ।
प्राग्ने तोयमिति प्रोक्तं स्नानीयं कल्पकोविदैः ॥५५
स्वर्णरत्नोदकं चैव कर्पूराद्यधिवासितम् ।
तैजसं कांस्यपात्रैर्वा शङ्खैर्वा तन्निवेदयेत् ॥५६

साधक अपने हृदय में उठे हुए मनोरथों की भी प्राप्ति किया करता है। सभी देवों की तुष्टि के लिये मधुपर्क दिया करता है। दधि-घृत—जल—मधु—मिश्री—इन्हीं पाँचों से मिश्रित करके मधुपर्क बनाया जाता है। इसमें जल तो बहुत ही थोड़ा होना चाहिए और मिश्री—घृत और दधि समान परिमाण में होने चाहिए। इन सबसे अधिक मधु मधुपर्क में प्रयुक्त करे। यह मधुपर्क काँसे के पात्र के द्वारा—सुवर्ण अथवा चाँदी के पात्र में ही समर्पित करे। ज्योतिष्टोम और अश्वमेध आदि में—पूर्व में और इष्ट में पूजन में यह मधुपर्क प्रविष्ट होता है जो सभी देवों के समुदाय की तुष्टि के लिये हुआ करता है ॥४९—५८॥ यह मधुपर्क धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष का साधन कीर्तित किया गया है। मधु-

पर्क सौख्य—भोग्य—तुष्टि—पुष्टि का प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥५३॥ पिष्टातक—कस्तूरी—रोचन—कुंकुम—गुड—मधु—पञ्च-गव्य—सर्वोषधियो का समुदाय—सिता (मिश्री)—निर्णेजन—तैल—स्निग्ध स्नेह मे तिल—प्रान्त मे जल—ये सभी पदार्थों को कथ्य कोविदो के द्वारा स्नानीय अर्थात् स्नान का जल कहा गया है ॥५४—५५॥ इस स्नानीय जल को स्वर्ण और रत्नो का जल जो कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों से अधिवासित करे और उसको तैजस अर्थात् उत्तम धातु पात्रों के द्वारा—काँसे के पात्रो से अथवा शखो के द्वारा निवेदित करना चाहिए ॥५६॥

मण्डले केशरे देयमादित्यप्रतिमासु च ।
शिवलिङ्गे तथा भोगे पीठे देवतानो तथा ॥५७
सद्य स्निग्धे मृन्मये वा सर्पि सिन्दुरजे तथा ।
श्रीचन्दनप्रतिष्ठे वा लेपयेत् प्रतिमाततौ ॥५८
स्वस्तिस्थापिते खडगे स्नापयेद् दर्पणेऽथ वा ।
एव दद्यात् तु स्नानीय महादेव्यै विशेपतः ॥५९
रवि विष्णुशिवेभ्यो वा यत्र तत्र प्रपूजने ।
पूजक. स्नानदानात् तु चिरायुरुपजायते ॥६०
सम्यक् स्नानप्रदानात् तु कल्पान्त स्वर्गभागभवेत् ।
यदेव दीयते पाद्यं गन्धपुष्पादिक तथा ॥६१
उपाचारास्तथा सर्वानर्घ्यपात्राहितैर्जलै. ।
अमृतीकरणार्थंस्तु सस्कृतैस्त्वभिपिच्य तै. ॥६२
प्रदद्यादिष्टदेवेभ्यो गृह्णाति च ततः स्वयम् ।
अर्घ्यपात्राणि तैस्तोयैर्विना यद्विनिवेदनम् ॥६३
दीयते चेष्टदेवेभ्यः सर्वं तन्निष्फल भवेत् ।
रागाल्लोभात् प्रमादाद् या ह्यर्घ्यं पात्रामृतीकृतम् ॥६४

आदित्य की प्रतिमाओ मे मण्डल मे और केशर मे देना चाहिए।

शिवजी के लिङ्ग मे तथा भोग मे—पीठ मे तथा देवता के तनु म देना चाहिए। मद्य म्मिन मे—मृत्तिका मे निर्मित मे—घृत और सिन्दूर से निर्मित मे अथवा श्री चन्दन प्रतिष्ठ मे प्रतिमा के तनु म लेपन करना चाहिए ॥ ५८ ॥ स्वास्तिक मे स्थापित मे—शङ्ख मे अथवा दर्पण में स्नपन कराना चाहिए। इसी प्रकार से और विशेष रूप से महादेवी के लिये स्नानीय को समर्पित करना चाहिए ॥५६॥ सूर्य—विष्णु—शिव के लिये जहाँ—तहाँ पर पूजन मे पूजक स्नानीय के समर्पण करने से चिरायु को प्राप्त किया करता है ॥ ६० ॥ भली भाँति स्नानीय के समर्पण करने से पूजक कल्प के अन्त तक स्वर्ग के निवास का अधिकारी हो जाया करता है। जिस समय में हो पाद्य तथा गन्ध और पुष्प प्रभृति दिये जाया करते हैं। तथा सभी उपचार समर्पित किय जाते हैं। इन सबको अर्घ्य पात्र म अवस्थित जलो से अमृतीकरण आदि कर तथा मुत्स्पर्श करे और फिर उनके द्वारा अभिषिञ्चन करना चाहिए। इसके उपरान्त ही इष्ट देवो की सेवा में समर्पित करना चाहिए। उस समर्पित को देव स्वयं ही ग्रहण किया करते हैं। अर्घ्य पात्रो को उस प्रकार के जलो के बिना जो निवेदन किया जाता है। ऐसा जो समर्पण है जो अपने इष्ट देवो के लिये किया जाता है वह सभी समर्पण निष्फल ही हुआ करता है जो राग से—प्रसाद मे अथवा लोभ मे किया जाया करता है वह फल हो नही होता है। अर्घ्य पात्र मे अमृती करन होना चाहिए ॥६१—६४॥

तोय स्त्रुत स्यात् पात्रात् पुन. कुर्यात् तदामृतम्।
स्वल्पावशेषतोये तु पात्रस्थे ह्यमृतीकृते ॥६५
तत्रान्यदुदकं दद्यात् तत्तत्तेनैवामृत भवेत्।
बहूनि यदि पुष्पाणि माला वा प्रचुरा यदि ॥६६
दीयन्ते चार्घ्यपात्रस्थैर्जले. संसिच्य चोत्सृजेत्।
अन्यतोयैर्यदुत्सृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः ॥६७

तन्न गृह्वातीष्टदेवो दत्तं विधिशतैरपि ।
सस्कृते त्वर्घ्यपात्रे तु नवभिः प्रतिपत्तिभिः ॥६८
तिष्ठन्ति सर्वतीर्थानि पीयूषाणि च सर्वत. ।
तस्मात् तत्र स्थितैस्तोयैरभ्युक्ष्योपचारानुत्सृजेत् ॥६६
न योग्यमर्घ्यपात्रेषु निधाय विनिवेदयेन् ।
इदं ते भैरव प्रोक्त पट्क चैवासनादिकम् ।
वस्त्रादि दश वक्ष्यामि शृणु विज्ञानवृद्धये ॥७०

पात्र से जल स्रुत होता है फिर उसको अमृत करना चाहिए। अमृतीकृत जल जब पात्र मे स्वल्प अवशेष रहे तो उस समय मे उसमे अन्य जल दे देवे। वह उससे ही अमृत हो जाया करता है। यदि बहुत से पुष्प होवें और यदि प्रचुर मात्राएँ होवें तो अर्घ्य पात्र मे स्थित जलो से ससिञ्चन करके दी जाया करती हैं और उक्त जन करना चाहिए। दूसरे जलो से जो अर्घ्य पात्र म स्थित से भिन्न होवें जो उत्सृजन किया जाये तो सैकडो विधियो से भी समर्पित किये गये को इष्टदेव ग्रहण नही किया करते है। नवीन प्रति पत्तियो के द्वारा सस्कृत अर्थात् सस्कार किये हुए अर्घ्य पात्र मे जो स्थित रहते हैं ॥६५—६८॥ वहाँ पर तो सभी तीर्थ और सभी ओर से पीयूष स्वरूप स्थित रहा करते हैं। इस कारण से उसमे स्थित रहने वाले जल से ही अभ्युक्षण करके ही उपचारो का उत्सृजन करना चाहिए ॥६६॥ अर्घ्य पात्रो मे योग्य को निधान न करके जो विनिवेदन करे वह निवेदन करना उचित नही होता है। हे भैरव ! आपके सामने यह आसन आदि का षट्क वर्णन करके बता दिया गया है। अब वस्त्रादि दश को बतलाऊँगा। उसका आप श्रवण विज्ञान की वृद्धि के लिए करिये ॥७०॥

—::—

॥ देवाधरान के अन्य उपचार ॥

कार्पास कम्बल वाल्क कोशज वस्त्रमिष्यते ।
तत्पूर्व पूजयित्वैव मन्त्रैर्देवाय चोत्सृजेत् ॥१
निर्दश मलिन जीर्ण छिन्न गात्रावलिङ्गितम् ।
परकीय ह्याखुदष्ट सूचाविद्ध तथोषितम् ॥२
उप्तकेश विधौत च श्लेष्ममूत्रादिदूषितम् ।
प्रदाने देवतान्यश्च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥३
वर्जयेत् स्वोपयोगेन यज्ञादावुपयोजने ।
उत्तरीयोत्तरासङ्ग निचोलौ मोदचेलक ॥४
परिधान च पञ्चैतान्यस्यूनानि प्रयोजयेत् ।
शाण वस्त्र निशार च तथवानपवारणम् ॥५
चण्डातक तथा हरय पञ्च स्यूतान्यदुष्टये ।
पताकाध्वजकुण्डादौ स्यूत वस्त्र प्रयोजयेत् ॥६
अन्यत्रावरणादौ च तद्विनाशस्य तेन तत् ।
रक्त शौशेयवस्त्र च महादेव्यै प्रशस्यते ॥७
पीत तथैव कौशेय वासुदेवाय चोत्सृजेत् ।
रक्त तु कम्बल दद्याच्छिवाय परमात्मने ॥८

श्री भगवान् ने कहा—कपास का अर्थात् सूतो निर्मित—कम्बल—वाल्क अर्थात् छाल से रचित और कोशज वस्त्र ही अभीष्ट हुआ करता है। उनका ही पूर्व म मन्त्रो के द्वारा पूजन करके देवो के लिए उत्सृजित करना चाहिए।१। निर्दश अर्थात् कीडा क द्वारा कटा तथा कुतरा हुआ—मैला—जीर्ण—छिन्न और गात्र म अवलिङ्गित अर्थात् अङ्ग पर धारण किया हुआ—पराया और चूहो क द्वारा काटा हुआ—सुई स विद्ध तथा उपित गुप्त केश और विधौत एव श्लेष्मा मूत्र आदि स दूषित देवताओं के लिये प्रदान म और देव तथा पित्र्य कर्म मे वर्जित कर देना चाहिये। अपने उपयोग म यज्ञादिक म उपयोजन म उत्तरीय-उत्त-

रासङ्ग-निचोल-मोद धौतक और परिधान--इन पांचों को बिना सिले हुए ही प्रयुक्त करने चाहिए सब की वस्त्र-निशार तथा आतप-वारण-घण्डा तक और दृश्य--इन पांचों को मिले हुए ही उत्सृजित करे। पताका और ध्वजा तथा कुण्डादि में मिले हुए वस्त्र का प्रयोग करना चाहिए ॥१—६॥ और अन्यत्र आवरणादि में उससे उसके विनाश के होने से रक्त वस्त्र और कौशेय वस्त्र महादेवी के लिये प्रशस्त होता है। ।७। पीत और कौशेय (रेशमी) वस्त्र भगवान् वासुदेव के लिए उत्सृजन करना चाहिए। परमात्मा शिव के लिए रक्त वर्ण का कम्बल समर्पित करे ॥७॥८॥

विचित्र सर्वदेवेभ्यो देवीभ्योऽशु निवेदयेत् ।
कार्पासं सर्वतोभद्र दद्यात् सर्वेभ्य एव च ॥९
नैकान्तरक्त दद्यात् तु वासुदेवाय चैलकम् ।
तथा नैकान्तनील तु शिवाय विनिवेदयेत् ॥१०
नीलीरक्त तु यद्वस्त्र तत् सर्वत्र विवर्जितम् ।
दैवे पित्र्ये तूपयोगे वर्जयेत् तु विचक्षण ॥११
नीलीरक्त प्रमादात्तु यो दद्याद् विष्णवे बुध ।
निष्फला तस्य तत्पूजा तदा भवति भैरव ॥१२
विचित्रे वाससि पुनर्लग्न नीलीविरञ्जितम् ।
वस्त्र दद्यान्महादेव्यै नान्यस्मै तु कदाचन ॥१३
द्विपदा ब्राह्मणो यद्वद् वासा वासवो यथा ।
तथा भूषणवर्गेषु वस्त्रमुत्तममुच्यते ॥१४
वस्त्रेण जीर्यते लज्जा वस्त्रेण हीयते त्वघम् ।
तस्मात् स्यात् सर्वत सिद्धिश्चतुवर्गप्रद च तत् ॥१५
वस्त्र ते कथित पुत्र सर्वप्रीतिप्रदायकम् ।
भोग्य भूपोत्तम नित्य भूषणानि शृणुध्व मे ॥१६

समस्त देवों के लिये और देवियों के लिये विचित्र वस्त्र का

निवेदन करना चाहिए। कपास का सर्व तो सब प्रभो के लिये निवेदित करे।६। ऐतान्तर रक्त अर्थात् बहुत ही लाल चेलक भगवान् वासुदेव के लिए नहीं निवेदित करना चाहिए। इसी भांति एक दम नीला वस्त्र शिव के लिए समर्पित नहीं करना चाहिए।१०। नील और रक्त जो भी वस्त्र है वह सभी जगह पर विशेष रूप से वर्जित होता है। विचक्षण पुरुष को देव और पितृ के उपयोग में उसका वर्जन कर देना चाहिए। जो बुध पुरुष प्रमाद से नील रक्त वस्त्र को भगवान् विष्णु के लिए निवेदित करता है हे भैरव! उसकी वह पूजा निष्फल ही हुआ करती है।१२। विचित्र वस्त्र में जो कोई नील वर्ण की विराजित हुई होवे तो ऐसे वस्त्र को महादेवी के लिए ही निवेदित करना चाहिए अन्य किसी देवता को कभी भी निवेदित न करे।१३। जिस रीति से दो पदों वालों में ब्राह्मण और देवों में इन्द्रदेव होते हैं उसी भांति भूषण वर्गों में वस्त्र उत्तम कहा जाया करता है।१४। वस्त्र से लज्जा जीर्ण होती है और वस्त्र के द्वारा अघ हीन अर्थात् नष्ट हो जाता है—वस्त्र से सभी प्रकार की सिद्धि होती है अतः वस्त्र चारों वर्गों के फल का प्रदान करने वाला होता है॥१५॥ हे पुत्र! आपके सामने यह वस्त्र सब प्रीति का देने वाला कह दिया गया है। यह भोगने के योग्य उत्तम भूषा है जो नित्य ही होता है। अब भूषणों के विषय में मुझसे श्रवण करो॥१६॥

किरीटं च शिरोरत्नं कुण्डलं च ललाटिका।
तालपत्रं च हारश्च ग्रैवेयकमधोर्मिका॥१७
प्रालम्बिकारत्नसूत्रमुत्तङ्गोतसंमालिका।
पार्श्वद्योतो नखद्योतो ह्यङ्गुलोच्छादकस्तथा॥१८
जूटालकं मानवको मूर्धतारावलम्बिका।
अङ्गदो बाहुवलयः शिखाभूषण इङ्क्रिका॥१९
प्रागदण्डवन्धमुद्भासना भिषूरोऽथ मालिका।

सप्तकी शृंखल चैव दन्तपत्र च कर्णक ॥२०
ऊरुसूत्र च नीवी च मुष्टिबन्ध प्रकीणकम् ।
पादाङ्गद हसकञ्च नूपुर क्षुद्रघण्टिका ॥२१
मुखपट्टमिति प्रोक्ता अलङ्कारा सुशोभना ।
चत्वारिंशदमी प्रोक्ता लोके वेदे तु सौख्यदा ॥२२
अलङ्कारप्रदानेन चतुवर्गप्रसाधनम् ।
एतेषा पूजन कृत्वा प्रदद्यादिष्टसिद्धये ॥२३
तेषा दवतमुच्चाय पूजयेत् तु विचक्षण ।
शिरोगतानि वा दद्यात् सौवर्णानि तु सवदा ॥२४

भूषण बताये जाते है—किरीट—शिरोरत्न—कुण्डल—ललाटिका-ताल पत्र—हार—ग्रैवेयक—ऊर्मिका—प्रालम्बिका—रत्न सूत्र-उत्तङ्ग—तक्ष मालिका पार्श्वद्योत—नख द्योत—अङ्गुलीच्छादक—अङ्गद—बाहुवलय—शिखा भूषण—इंगुक-प्राग्दण्डबन्ध—उद्भासना-भिपूर-मालिका-सप्तमी-शृङ्खाल-दन्तपत्र कर्णक-ऊरुसूत्र-नीवी-मुष्टिबन्ध-प्रकीणक-पादाङ्गद-हसक-नूपुर-क्षुद्रघण्टिका-मुख पट्ट—ये परम सुशोभन अलङ्कार कहे गए हैं। ये कुल चालीस होते हैं जो लोक और वेद में सौख्य के प्रदान करने वाले है ॥१७-२२॥ अलङ्कारों के प्रदान करने से चारों (धर्म अर्थ-काम-मोक्ष) वर्गों का प्रसाधन होता है। इनका पूजन करके ही इष्ट की सिद्धि के लिए समर्पण करना चाहिए। ।२३। विचक्षण पुरुष को उनके दैवत का उच्चारण करके ही पूजन करना चाहिए। अथवा शिरोगत सौवर्णों का सर्वदा समर्पित करना चाहिए ॥२४॥

चूडारत्नादिकानीह भूषणानि तु भैरव।
ग्रैवेयकादिहसान्त सौवर्ण राजत च वा ॥२५
निवेदयेत् तु देवेभ्यो नान्यत् तैजससम्भवम् ।
रीतिरङ्गादि सजात पात्रोपकरणादिकम् ॥२६

दद्यादायुसमर्जं तु भूपणं न कदाचन ।
घटाचामरकुम्भादिपात्रोपकरणादिकम् ॥२७
तद्भूपणान्तरे दद्यादस्मान तदुपभूपणम् ।
सर्वं ताम्रमयं दद्याद यत किंचिद भूपणादिकम् ॥२८
सर्वत्र स्वर्णवन ताम्रमर्घ्यपात्रे ततोऽधिकम् ।
पजार्घ्यपात्रनैवेद्याधारपात्र च पानकम ॥२९
औदुम्बरं सदा विष्णोः प्रीतिदं तोषदं तथा ।
ताम्रे देवाः प्रमोदन्ते ताम्रे देवाः स्थिताः सदा ॥३०
सर्वप्रीतिकरं ताम्रं तस्मात ताम्रं प्रयोजयेत ।
स्वोपयोगे नरः कुर्याद् देवानामपि भैरव ॥३१
ग्रीवोर्ध्वदेशे रौप्यं तु न कदाचिच्च भूपणम् ।
प्रावारः पानपात्र च गण्टको ग्रहमेव च ॥३२

हे भैरव ! सदा रत्न आदि भूषण ग्रैवेयक से आदि लेकर हंस के अन्त तक सब सुवर्ण से निर्मित होवे अथवा रजत (चाँदी) से रचित होने चाहिए । २५ । इन्हीं को देवताओं के लिए समर्पित करना चाहिए और अन्य तैजस अर्थात धातुओं से विरचितों को निवेदित नहीं करना चाहिए । रीति रङ्ग आदि से निर्मित पात्र और उपकरण आदि ही होने चाहिए । २६ । आयसमर्ज भूषण कभी भी निवेदित नहीं करे । घटा चामर कुम्भ आदि पात्र तथा उपकरण आदि होते हैं । २७ । इन भूषणों की बीच में इनसे उपभूषण देवे । सब ताम्रमय जो कुछ भी भूषण आदि हैं निवेदित करे । २८ । सर्वत्र ताम्र स्वर्ण की ही तरह से देवे और अर्घ्य पात्र में अधिक देना चाहिए । पूजा का अर्घ्य पात्र--नैवेद्य का आधार पात्र--पालव है । २९ । भगवान् विष्णु के लिए सदा उदुम्बर (गूलर वृक्ष) से निर्मित प्रीति तथा सन्तोष देने वाले होते हैं । ताम्र पात्र में देवगण प्रसन्न हुआ करते हैं क्योंकि ताम्र में देव सदा स्थित रहा करते हैं । ३० । ताम्र सबके लिए प्रीति का करने वाला

हुआ करता है अतएव ताम्र का प्रयोग करना चाहिए। हे भैरव ! अपने उपयोग में भी ताम्र का ही प्रयोग करे और देवगणों के भी उपयोग में इसका प्रयोग करना चाहिए। ।३१। ग्रीवा के ऊपर के भाग में कभी भी रौप्य (चाँदी का) भूषण का प्रयोग न करे। अब उपभूषण बताए जाते हैं-प्रावार-शान पात्र-मण्डक और गृह हैं ।।३२।।

पर्यङ्कादि यदन्यच्च सर्वं तदुपभूषणम् ।
अयोमयमृते कांस्यमृते यद्भूषणं भवेत् ।।३३
स्वर्णरौप्यस्य चाभावे त्वधः कार्ये नियोजयेत् ।
एतेषां भूषणादीनां तद् दातुं शक्यते नरैः ।।३४
तत् तद् दद्यात सम्भवे तु सर्वमेव प्रदापयेत् ।
चतुर्वर्गप्रदं त्वित्थं भूषणं सर्वसौख्यदम् ।।३५
तुष्टिपुष्टिप्रीतिकरं यथाशक्त्योष्टये सृजेत् ।
इदं वा भूषणं प्रोक्तं सर्वदेवस्य तुष्टिदम् ।।३६
गन्धं च सम्यक् शृणुत पुत्रौ वेतालभैरवौ ।
चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहाकर्षित एव वा ।।३७
रसः सम्मर्दजो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव वा ।
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवानां प्रीतिदायकः ।।३८
गन्धचूर्णं गन्धपत्रं चूर्णं सुमनसस्यथा ।
प्रशस्तगन्धयुक्तानां पत्रचूर्णानि यानि तु ।।३९
तानि गन्धवहानि स्युः सगन्धः प्रथमः स्मृतः ।
घृष्टो मलयजो गन्धः सचूर्णीकृतमेरुणा ।।४०

पर्यङ्क आदि जो और दूसरे हैं वे सब उपभूषण हैं। जो अयोमय अर्थात् लौह से परिपूर्ण के बिना और काँसे के बिना भूषण होता है वह सुवर्ण और रौप्य के अभाव में शरीर में नीचे नियोजित करना चाहिए। इन भूषण आदि में जो भी नरों के द्वारा दिया जा सकता है, वही वही सम्भव होने पर सब ही देना चाहिए। इस प्रकार से

भूषण चतुर्वर्ग का दाता और सब सौख्य का प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥३३—३५॥ अपनी शक्ति के ही अनुसार तुष्टि और पुष्टि के करने वाला यह इष्ट के लिए सृजन करे। अथवा यह सभी देवों की तुष्टि का देने वाला भूषण कहा गया है। ३६। हे पुत्रो! हे वेताल और भैरव! अब भली भाँति गन्ध का श्रवण कीजिए। यह गन्ध पाँच प्रकार का होता है जो देवों को प्रीति को प्रदान करने वाला है। चूर्णीकृत—घृष्ट अर्थात् घिसा हुआ—दाह को आकर्षित करने वाला—सम्मर्दन से समुत्पन्न रस अथवा प्राणी के अङ्ग से उद्भव ये ही पाँच भेद हैं ॥३७॥३८॥ गन्ध का चूर्ण—गन्ध पत्र—पुष्पों का चूर्ण—प्रशस्त गन्ध से पुष्पों के पत्रों का चूर्ण जो हैं वे सब गन्ध बहु होते हैं। वह प्रथम गन्ध कहा गया है। घृष्ट मलय से समुत्पन्न गन्ध है जो मद से द्वारा घूर्णीकृत है ॥३९॥४०॥

अगुरुप्रभृतिश्चापि यन्य पङ्क प्रदीयते।
गन्धो दृष्टवामघृष्टोऽस्य द्वितीय परिकीर्तित ॥४१
देवदावंगुरुपद्मगन्धराशान्त चन्दना।
प्रियादीना च यो दग्ध्वा गृह्यते दाहगो रस ॥४२
सदाहापर्पितो गन्धस्तृतीय परिकीर्तित।
सुगन्धकरवीविल्वगन्धीनि तिलक तथा ॥४३
प्रभृतीना रसो योऽसौ निष्पीड्य परिगृह्यते।
सशम्मर्दोद्भवो गन्ध सम्मर्दज इतीष्यते ॥४४
मृगनाभिसमुद्भूतस्तत्कोषोद्भव एव वा।
गन्ध प्राण्यङ्गज प्रोक्तो मोदद स्वर्गवासिनाम् ॥४५
पङ्कं रगन्धसाराद्य क्षोदे घृष्टे च सस्थिता।
चन्द्रभागादयश्चापि रसे पङ्के च सङ्गता ॥४६
गन्धसार सर्वरस गन्धादौ च प्रयुज्यते।
मृगनाभिर्मवेद् घृष्टश्चूर्णोऽप्यन्यस्य योगत ॥४७

तथ सर्वं तु सर्वत्र गन्धो भवति पञ्चधा ।
धृष्टादिभावादन्योन्य गन्ध प्रीतिकर पर ॥४८

अगुरु प्रभृति भी गन्ध है जिसका पंक प्रदान किया जाया करता है । घिस कर भी अघृष्ट गन्ध द्वितीय कहा गया है । ४१ । देव दारु—अगुरु—पद्म—ब्रह्म शाल शाराज चन्दन प्रियादि का जो दाघ करके ग्रहण किया जाता है वह दाह से समुत्पन्न रस है । ४२ । दाह के साथ आकर्षित गन्ध तीसरा कहा गया है । मृगन्ध—करवी—विल्व गन्धी—, तिलक प्रभृति का जो रस है वह निपीडन करके ही परिग्रहीत किया जाया करता है । वही सम्मर्द से उत्पन्न गन्ध सम्मर्दज—इस नाम से अभीष्ट हुआ करता है ॥४३॥४४॥ मृग की नाभि से समुत्पन्न—उसके कोष उद्भूत गन्ध प्राणी के अङ्ग से जायमान कहा गया है जो स्वर्ग के निवासियों का भी मोह देने वाला है । ४५ । कर्पूर गन्ध सारादि क्षोद के धृष्टि होने पर मन्थित होते हैं । चन्द्र भाग आदि भी रस म और पक में सङ्गत हैं । ४६ । गन्ध सार सर्व रस और गन्धादि में प्रयुक्त किया जाता है । मृग नाभि और धृष्ट चूर्ण भी अन्य के योग से होता है । ४७ । इस रीति से सभी जगह पर गन्ध पाँच प्रकार का होता है । धृष्ट आदि भाव से परस्पर में पर गन्ध प्रीति के करने वाला होता है ॥४८॥

गन्धस्य विस्तरो भेद प्रोक्त काम्बीयकादय ।
सर्व पञ्चविधेष्वेव प्रविष्टो भवति क्षणात् ॥४६
गन्धो मलयजो यस्तु दैवे पित्र्ये च सम्मत ।
तस्य पङ्को रसो वापि चूर्णो वा विष्णुतुष्टिद ॥५०
सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भव ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयज सदा ॥५१
कृष्णागुरु सकर्पूर सहितो मलयोद्भव ।
वैष्णवीप्रीतिदो गन्ध कामाख्यायाश्च भैरव ॥५२

जवा, तर्वारिका, कुब्जक, मगर कर्णिकार, रोचना, चम्पक, आम्रातक, बाण, ववंरामल्लिका—अशोक, लोध्र तिलक अटरूप, शिरीष, शमी, द्रोण, पद्म, उत्पल,वकारण, श्वेतारुण तिमरुध्य पलाश खदिर,वनमाला मैवन्ती, कुमुद, कदम्ब ॥६१—६४॥

चक्र कोकनद चैव तण्डिलो सिन्दिर्णिका ।
नागकेशरपुन्नागो केतक्यञ्जलिका तथा ॥६५
दौहृदा बीजपूरश्च नमेरु शाल एव च ।
त्रपुपी चण्डविल्वश्च श्लिष्टो एवंविधास्तथा ॥६६
एवमाद्युक्तकुसुमैः पूजयेद् वरदां शिवाम् ।
अपामार्गस्य पत्रं तु ततो भृङ्गारपत्रकम् ॥६७
ततोऽपि गन्धिनीपत्रं वलाहकमतः परम् ।
तस्मात् खदिरपत्रं तु वञ्जुलस्तवकं तथा ॥६८
आम्रं तु वकपुष्पं तु जम्बुपत्रं ततः परम् ।
बीजपूरस्य पत्रं तु ततोऽपि कशपत्रकम् ॥६९
दूर्वाङ्कुरं ततः प्रोक्तं शमीपत्रमतः परम् ।
पत्रमामलकं तस्मादामनः पत्रमन्ततः ॥७०
सर्वतो बिल्वपत्रं तु देव्याः प्रीतिकरं मतम् ।
पुष्पं कोकनदं पद्मं जवा बन्धूक एव च ॥७१
पद्मं बिल्वस्य मदस्यो वैष्णवीतुष्टिदं मतम् ।
सर्वेषां पुष्पजातीनां रक्तपद्ममिहोत्तमम् ॥७२

चक्र, कोकनद, तण्डिल, सिन्दिर्णिका, नाग केसर, पुन्नाग, केतकी, अञ्जलिका, दोहदा, बीजपूर—नमेरु, शाल, त्रपुषी चण्डविल्व, श्लिष्टो पाँच प्रकार की एवमादि वर्णित पुष्पों के द्वारा वरदा शिवा का अर्चन करना चाहिए । अपामार्ग के पत्र, भृङ्गार के पत्र, गन्धिनी के पत्र, बलाहक इससे भी पर है । उससे खदिर का पत्र, वञ्जुलस्तवक, आम्र, बकपुष्प, इसमे भी पर जम्बु का पत्र, बीजपूर का पत्र,

इससे भी पर कुश पत्र है ॥ ६५—६६ ॥ इससे भी पर दूर्वा का अङ्कुर कहा गया है । इससे पर शमी का पत्र इससे पर आमलक पत्र और उससे अन्त में आमलक पत्र है । सबसे अधिक प्रीति के करने वाला देवी को बिल्व पत्र होता है । काञ्चनद पुष्प, पद्म, जया, बन्धुक—इन सबमें बिल्व का पत्र वैष्णवी देवी की तुष्टि देने वाला माना गया है । सब पुष्पों की जातियों में रक्त पद्म अतीव उत्तम होता है । ॥ ७०—७२ ॥

रक्तपद्मसहस्रेण यो माला सम्प्रयच्छति ।
भक्तियुक्तो महादेव्यै तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७३
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
स्थित्वा मम पुरे श्रीमांस्ततो राजा क्षितौ भवेत् ॥७४
एवमेव बिल्वपत्रं न देवीप्रीतिकरं सतम ।
तत्सहस्रकृता माला पूर्ववत् फलदा भवेत् ॥७५
विचार्य बहुनोक्तेन समासेनेदमुच्यते ।
उक्तानुक्तेन्यपर्णैर्जलजे स्थलसम्भवे ॥७६
पत्रैः सर्वेषामाम सर्वोषधिगणैरपि ।
दत्तं सर्वपुष्पैश्च पत्रैरपि शिवां यजेत् ॥७७
पूजयेत् परमेशानीं पुष्पाभावेऽपि पत्रकं ।
पत्राणामप्यभावे तु तृणगुल्मौषधादिभिः ॥७८
ओषधीनामभावे तु तत्फलैरपि पूजयेत् ।
अर्चायां अर्थोऽपि सदभावे तु सर्वतो ॥७९
नित्यमन्यायप्यलाभे तु मानसीं भक्तिमाचरेत् ।
[illegible]

सहस्र करोड़ और सौ करोड़ कल्पों तक वह मानव मेरे पुत्र में स्थित रहकर फिर वह श्रीमान् भू मण्डल में राजा हुआ करता है ॥ ७४ ॥ सभी पत्रों में बिल्व पत्र देवी की परमाधिक प्रीति करने वाला माना गया है। उन बिल्व पत्रों की एक सहस्र को बनाई हुई माला पूर्व की ही भाँति फल देने वाली हुआ करती है ॥ ७५ ॥ इस विषय में बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है। साधारण रूप से यही कहा जाता है कि कहे हुए तथा न कहे हुये पुष्पों में स्थल में समुत्पन्न सतजा से तथा सब पत्रों से जो भी जैसा लाभ होता है वह सर्वौषधियों के समुदाय से भी होता है। सभी वन में समुत्पन्न पुष्पों से और पत्रों के द्वारा भी शिवा का यजन करना चाहिए ॥ ७६—७७ ॥ परमेशानी का पूजन पुष्पों के अभाव में पत्रों के द्वारा भी अर्चन करना चाहिए। यदि पत्रों का भी अभाव हो तो उस अवसर में तृण गुल्म और औषध आदि के भी द्वारा यजन करे ॥ ७८ ॥ औषधियों के भी अभाव में उनके फलों के द्वारा ही यजन करना चाहिए। अथवा अक्षतों से या जलों के द्वारा यजन करे। इनके भी अभाव में सरसों से जो सित हों उनसे पूजन करे। सित के भी न प्राप्त होने पर मानसी भक्ति का समाचरण करना चाहिए। बीज दन्तक पत्रों से और पुष्पों की राशि के द्वारा पूजन करे ॥७९-८०॥

तुलसीकुसुमैः पत्ररच्चयच्छ्रीविवृद्धये ।
पुरश्चरणकार्येषु बिल्वपत्रयुतैस्तिलैः ॥८१
साक्षतैः सघृतैर्वापि शिवामुद्दिश्य यत्नतः ।
जुहुयादनलं वृद्धं सस्कृतं कामवृद्धये ॥८२
सङ्कल्पितः कामसिद्धयै सङ्ख्यया यः कृतो जपः ।
तदन्ते पूजनं यत्तु विहितं क्रियते द्विजैः ॥८३
पुरश्चरणसंज्ञं तु कीर्तितं द्विजसत्तमः ।
तस्मिन् पुराणके पूर्वं पूर्वोक्तविस्तरोदितैः ॥८४
विधानैः पूजयेद् देवीं कामाख्यां वैष्णवीमपि ।

यथासम्भवमेवात्र दद्यात् षोडश साधकः ॥८५
उपारास्तथैवोक्तान् विधिकृत्यान्न लघयेत् ।
सम्पूर्णं पूजनं कृत्वा कल्पोक्तं शतधा जपेत् ॥८६
जपान्ते जुहुयादग्निं होमान्ते तु बलित्रयम् ।
त्रिजातीयं तु वितरेत्तौर्यत्रिकमतः परम् ॥८७
पत्नी स्वयं वा भ्राता वा गुरुर्वा विनियोजयेत् ।
नैवेद्यादीनि सर्वाणि स्वपुत्रः शिष्य एव वा ॥८८

तुलसी के कुसुमों अर्थात् मञ्जरियों से और तुलसी दलों से श्री की वृद्धि के लिये अर्चन करे । पुरश्चरण के कार्यों में विल्व पत्रों से युक्त तिल—अक्षत अथवा घृत से शिवा का उद्देश्य लेकर यत्नपूर्वक काम की वृद्धि के लिए संस्कार की हुई वृद्ध अग्नि में हवन करना चाहिए । ॥ ८१—८२ ॥ कामना की वृद्धि के लिये सन्ध्या से जो जप का सङ्कल्प किया गया है । उसके अन्त में जो पूजन किया है वह द्विजों के द्वारा करना चाहिए ॥ ८३ ॥ श्रेष्ठ द्विजों ने जिसको पुरश्चरण के नाम से कीर्त्तित किया है उसमें पूर्व में पुराण में पूर्वोक्त और विस्तार से वर्णित विधानों के द्वारा कामाख्या और वैष्णवी देवी का भी पूजन करे । जहाँ तक भी सम्भव हो साधक को यहाँ पर सोलह उपचार समर्पित करने ही चाहिए ॥ ८४—८५ ॥ उसी भाँति षोडश पूर्वोक्त उपचारों का और विधान के कृत्यों का लंघन नहीं करना चाहिए । सम्पूर्ण पूजन करके कल्पोक्त का सौ बार जप करे ॥ ८६ ॥ जाप के अन्त में अग्नि में होम करे और होम के अन्त में तीन बलि देवे । तीन जाति की बलियों का वितरण करे तथा इसके उपरान्त नृत्य गीत करना चाहिए ।८७। पत्नी-स्वयं अथवा भाई या गुरु-अपना पुत्र अथवा शिष्य सब नैवेद्य आदि का विनियोजन कराना चाहिए ॥ ८८ ॥

यज्ञावसाने दद्यात् तु गुरवे दक्षिणां शुभाम् ।
चामीकरं तिलान् गाञ्च तदशक्तौ तु चेलकम् ॥८९

अष्टम्यां शुक्लपक्षस्य ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
नवम्यां वा चतुर्दश्यां महादेव्याः पुरश्चरेत् ॥६०
आदद्याद गुरुवक्त्रात् तु विधिना विस्तरेण तु ।
कल्पोदितेन सम्पूज्य विधिष्वेनासु भैरव ॥६१
सम्पूर्णपूजां नो कृत्वा न दद्यान्मन्त्रमीप्सितम् ।
न पुरश्चरणं वापि कुर्यात् कृत्वाऽवसीदति ॥६२
नित्यपूजा सा तु पुनः सम्पूर्णा यदि शक्यते ।
कल्पोदितं पूजयितुं तदा कुर्यादतन्द्रितः ॥६३
न चेद् विस्तरशः कर्तुं देव्याः पूजां तु भैरव ।
कल्पोक्तां वाऽन्यदेवस्य तत्राय विधिरुच्यते ॥६४
मार्जनाद्यैस्तु संस्कृत्य स्थण्डिलं मण्डलं लिखेत् ।
पात्रस्य प्रतिपत्तिं तु कृत्वा दाह प्लवं तथा ॥६५
ध्यायेदात्मानमथ च संस्कृत्याङ्गस्वरूपतः ।
अगुष्ठाद्यस्त्रपर्यन्तं द्वादशाङ्गस्य शुद्धये ॥६६

यज्ञ की समाप्ति हो जाने पर श्री गुरुदेव को शुभ दक्षिणा देनी चाहिए। सुवर्ण—तिल—गौएँ दक्षिणा में दवे। और इनके दने की शक्ति न होवे तो केवल नेत्रक ही निवेदित करे ॥ ८९ ॥ मास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी तिथि में ब्रह्मचर्य रखने वाला तथा इन्द्रियों का जीत लेने वाला रहे और नवमी में अथवा चतुर्दशी में महादेवी का पुरश्चरण करे ॥ ९० ॥ हे भैरव ! श्री गुरुदेव के मुख से आदान करना चाहिए। जो भी विधि और विस्तार कल्प में कहा गया हो उससे इन उक्त विधियों में भली भाँति पूजन करे। सम्पूर्ण पूजा को न करके ईप्सित मन्त्र को नहीं देना चाहिए। अथवा पुरश्चरण भी नहीं करे। यदि ऐसा करता है तो अवसाद प्राप्त किया करता है ॥ ९१—९२ ॥ वह नित्य पूजा है यदि की जा सकती है तो सम्पूर्ण पूजा कर उस समय में अतन्द्रित होकर ही कल्प में वर्णित पूजन करना चाहिए। ९३। हे भैरव ! यदि विस्तार

से देवी की पूजा करना न होवे तो कल्प में कथित अन्य देव की पूजा करे। वहाँ पर यह ही विधि कही जाती है ॥ ६४ ॥ मार्जन आदि के द्वारा भूमिका संस्कार करके स्थण्डिल में मण्डल लिखना चाहिए। पात्र की प्रतिपत्ति करके तथा दाह सब करे ॥ ६५ ॥ और इसके अनन्तर आत्मा का ध्यान करे। अङ्ग के स्वरूप से संस्कार करके अगुंष्ठ से आदि लेकर अस्त्र पर्यन्त द्वादश अङ्गों की शुद्धि के लिये करे।६६।

अर्घ्यपात्रेऽष्टधा जप्त्वा उपचारान् प्रसेचयेत् ।
आधारशक्तिप्रमुख मूलवर्णान् प्रयुज्य च ॥६७
हृदिस्था देवता ध्यात्वा वहिःकृत्य च वायुना ।
आरोप्य मण्डले दद्यादुपचारान् यथाविधि ॥६८
पूजयित्वा षडङ्गानि तथाष्टौ दलदेवताः ।
पुष्पाञ्जलित्रय दत्वा जप्त्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ॥६६
मुद्रामग्रे प्रदर्श्याथ ततः पश्चाद् विसर्जयेत् ।
सर्वेषामेव देवानामेष एव विधिः स्मृतः ॥१००
सम्यक् कल्पोदिता पूजा यदि कर्तुं न शक्यते ।
उपचारास्तथा दातु पञ्चैतान् वितरेत् तदा ॥१०१
गन्ध पुष्पं च धूप च दीप नैवेद्यमेव च ।
अभावे पुष्पतोयाभ्यां तदभावे तु भक्तितः ॥१०२
संक्षेपपूजा कथिता तथा वस्त्रादिक पुनः ।
पुरश्चरणकृत्ये च प्रदीप शृणु भैरव ॥१०३
दीपेन लोकाञ्जयति दीपस्तेजोमयः स्मृतः ।
चतुर्वर्गप्रदो दीपस्तस्माद् दीपैर्यजेच्छ्रियम् ॥१०४

अर्घ्य पात्र में आठ बार जप करके उपचारों का प्रसेचन करना चाहिए। आधार शक्ति में प्रमुख मूल वर्णों का प्रयोग करे और हृदय में संस्थित देवता का ध्यान करके और वायु के द्वारा बाहिर करके मण्डल में आरोप करके विधि के अनुसार उपचारों

को देना चाहिए ॥ ६७—६८ ॥ छँ अङ्गा का पूजन करक उमी भाति दल देवताओ का यजन करे । फिर तीन पुष्पाञ्जलियां का देकर—जप करके—स्तवन करके और प्रणाम करे ॥ ६६ । दवता के सामन मुद्रा को प्रदर्शित करत पीछे विसजन करना चाहिए । मभी देवताओ की यह ही विधि कही गयी है ॥१०० ॥ यदि कल्प म कही हुइ पूजा यदि भली भांति नही की जा सकती है ता उपचारो का उस भांति दन क लिय उम समय म इन पाचा को सदा वितरित करे ॥१०१॥ ग ध—पुष्प—धूप—दीप और नैवेद्य—य पाच है । अभाव म पुष्प और ताप के द्वारा करे और इनके भी अभाव म भक्ति की भावना स ही करना चाहिए । यह सक्षेप पूजा कह दी गयी है तथा फिर वस्त्रादिक भी बता दिये गये है । हे भैरव ! पुरश्चरण क कृत्य मे प्रदीप क विषय म आप श्रवण कीजिए । १०२—१०३ । दीप क द्वारा लोका क ऊपर जप प्राप्त कर लेता है और यह द्वीप तेजोमय बताया गया है । यह दीप चारो वर्णों के प्रदान करने वाला हुआ करता है इस कारण से दीपा के द्वारा श्री के ऊपर जय प्राप्त करना चाहिए ॥१०४॥

सतत पुष्पदीपाभ्या पूजयेद यस्तु दवताम् ।
ताभ्यामेव चतुर्वंग कथिता नात्र सशय ॥१०५
पुष्पैर्देवा प्रसीदन्ति पुष्पे देवाश्च सस्थिता ।
चराचराश्च सकला सदा पुष्परसा स्मृता ॥१०६
किंचाति बहुनोक्तेन पुष्पस्योक्तिमतल्लिका ।
पर ज्योति पष्पगत पुष्पणव प्रसीदति ॥१०७
त्रिवगसाधन पुष्प तुष्टिश्रीपुष्टिमोक्षदम् ।
पुष्पमूले वसेद ब्रह्मा पुष्पमध्ये तु केशव ॥१०८
पुष्पाग्र तु महादेव सर्वे देवा स्थिता दले ।
तस्मात् पुष्पैर्यजद देवान्नित्य भक्तियुतो नर ॥१०९
उच्चारित नाममात्र जायते सर्वभूतय ।

घृतप्रदीप- प्रथमस्तिन्नतैलोद्भवस्तत ॥११०
सार्पपफलनिर्यासजातो वा राजिकोद्भव ।
दधिजश्चान्नजश्चव दीपा सप्त प्रकीर्तिता ॥१११
पद्मसूत्रभवा दभगर्भसूत्रभवाऽथवा ।
शणजा वादरी वापि फलकोषोद्भवा तथा ॥११२

जो पुरुष निरन्तर ही पुष्पों और दीपों के द्वारा देवता का अर्चन किया करता है। इन दोनों ही से चारों वर्गों की प्राप्ति कही गयी है—इसमें लेश मात्र भी सशय नहीं है ॥ १०५ ॥ पुष्पों में देवगण परम प्रसन्न हुआ करते हैं और पुष्पों में देवगण संस्थित रहा करते हैं। चर और अचर समस्त सदा पुष्पों का ही रस कहे गये हैं ॥ १०६ ॥ अत्यधिक कहने से क्या लाभ है। पुष्पों के विषय में कथन मनल्लिका है। पुष्पों में रहने वाली परम ज्योति है अतएव पुष्प से ही प्रसन्न होती है ॥ १०७ ॥ तीन वर्गों का अर्थात् धर्म—अर्थ और काम का सा धन है। यह पुष्प तुष्टि—पुष्टि—श्री और मोक्ष के प्रदान करने वाला है। पुष्प के मूल में ब्रह्माजी रहा करते हैं और पुष्प के मध्य में केशव का निवास है। १०८। पुष्प के अग्रभाग में महादेवजी विराजमान रहा करते हैं और सभी देवगण दल में संस्थित रहते हैं। इस कारण से पुष्पों के द्वारा देवों का यजन करना चाहिए और भक्ति की भावना से संयुत होकर नित्य ही अर्चना करे। १०९। नाम मात्र का उच्चारण करना सब विभूति लिये होता है। अब दीपक के भेदों के विषय में बतलाया जाता है—घृत का दीप, जो सर्व प्रथम होता है—तिलों के तैल से बनाया हुआ—सरसों के तैल का दीपक—पत्तों के निर्यास से बनाया हुआ दीप—राजिक अर्थात् राई के तेल से तैयार किया हुआ दीपक—दधि से बनाया हुआ और अन्न से किया हुआ दीपक—ये सात प्रकार के दीप कहे गये हैं ॥ ११०—१११ ॥ दीप में वर्तिकायें पाँच प्रकार की होती हैं—पद्म के सूत्र से बनी हुई—दर्भ के मध्यस्थ सूत्र से

निर्माण की गयी—अश्म से निर्मित कदरी—फल कोष से उद्भूत हुई वर्तिका ।११२॥

वर्तिका दीपकृत्येषु सदा पञ्चविधा स्मृताः ।
तैजसं दारवं लौहं मार्त्तिक्यं नारिकेलजम् ॥११३
तृणध्वजोद्भवं वापि दीपपात्रं प्रशस्यते ।
दीपवृक्षाश्च कर्तव्यास्तैजसाद्यैस्तु भैरव ॥११४
वृक्षेषु दीपो दातव्यो न तु भूमौ कदाचन ।
सर्वसहा वसुमती सहते न त्विदं द्वयम् ॥११५
अकार्यपादघातं च दीपतापं तथैव च ।
तस्माद् यथा तु पृथिवी तापं नाप्नोति वै तथा ॥११६
दीपं दद्यान्महादेव्यै अन्येभ्योऽपि च भैरव ।
कुर्वन्त पृथिवीतापं यो दीपमुत्सृजेन्नरः ॥११७
स तामिस्रं नरकं प्राप्नोत्येव शतं समाः ।
सुवृत्तवर्ति सुस्नेहं पात्रभग्नं सुदर्शनं ॥११८
सूच्छ्रायं वृक्षकोटौ तु दीपं दद्यात् प्रयत्नतः ।
लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरंगुलात् ॥११९
न स दीप इति ख्यातो ह्योघवह्निस्तु स स्मृतः ।
नेत्राह्लादकरः स्वचिद् रत्नापविवर्जितः ॥१२०

दीपक के कृत्यों में वर्तिका सदा ही पांच तरह की बनायी गई हैं। किसी धातु से निर्मित जो भी उत्तम धातु होवे—काष्ठ से बना हुआ—लोहे का—मृत्तिका से निर्मित—नारियल से बनाया हुआ अथवा तृण ध्वज से उद्भूत दीपक का पात्र प्रशस्त होता है। हे भैरव ! दीप वृक्ष अर्थात् दीवट तैजस अर्थात् उत्तम धातुओं का ही बनानी चाहिए। ॥११३-११४॥ वृक्षों पर ही अर्थात् दीवट पर ही दीप रखना चाहिए और भूमि पर दीपक कभी भी नहीं रखना चाहिए। यह भूमि सभी को सहन करने वाली होती है किन्तु दो बातों को यह सहन नहीं किया

करती है—एक तो बिना ही किसी काम के पादों का घात करना और दूसरा दीपक का ताप यह नहीं सहा करती है। इस कारण से जिस तरह से भी यह पृथ्वी ताप प्राप्त न करे वैसे ही करना चाहिए अर्थात् दीपक को भूमि पर कभी नहीं रखना चाहिए ॥ ११५—११६ ॥ हे भैरव ! महादेवी के लिये तथा अन्य देवों के लिये भी दीप समर्पित कर जो मानव पृथिवी को ताप देता हुआ दीपक का उत्सृजन किया करता है वह मनुष्य तान्त्र ताप नामक नरक को सौ वर्ष तक निश्चित रूप से प्राप्त किया करता ही है—इसमें कुछ संशय नहीं है। सुवृत्त वत्ती वाला—सुन्दर स्नेह से युक्त अर्थात् घृतादि से संयुत—पात्र भग्न—देखने में भी अच्छा दीपक होना चाहिए ॥११७—११८॥ सुन्दर ऊँचाई से युक्त वृक्ष की कोटि पर ही प्रयत्न पूर्वक दीपक रखना उचित है और उसका ही देवता के लिये उत्सृजन करे। चार अंगुल से जिस दीप का ताप प्राप्त किया जाया करता है वह दीपक—इस नाम से ख्यात नहीं होता है। वह तो वाह्निका एक समूह ही है—ऐसा सुना गया है। दीपक नेत्रों का आह्लाद करने वाला—सुन्दर लौ वाला और धूरी से नाम से रहित ही होना चाहिए॥११९-१२०॥

सुशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः ।
दक्षिणावर्तवर्तिस्तु प्रदीपः श्रीविवृद्धये ॥१२१
दीपवृक्षस्थिते पात्रे शुद्धस्नेहप्रपूरिते ।
दक्षिणावर्तवर्त्यां तु चारुदीप्तः प्रदीपकः ॥१२२
उत्तमः प्रोच्यते पुत्र सर्वतुष्टिप्रदायकः ।
वृक्षेण वर्जितो दीपो मध्यमः परिकीर्तितः ॥१२३
विहीनः पात्रतैलाभ्यामधमः परिकीर्तितः ।
शाणं वा दारवं वस्त्रं जीर्णं मलिनमेव वा ॥१२४
उपयुक्तं च नादद्याद् वर्तिकार्थं तु साधकः ।
उपदद्यान्नूतनमेव सततं श्रीविवृद्धये ॥१२५

कोषज रोमज वस्त्र वर्तिकार्थं न चाददेत् ।
न मिश्रीकृत्य दद्यात् तु दीपे स्नेहघृतादिकान् ॥१२६
कृत्वा मिश्रीकन स्नेह तामिस्र नरक व्रजेत् ।
वसामज्जास्थिनिर्यासै स्नेहै प्राण्यङ्गसम्भवै ॥१२७
प्रदीप नैव कुर्यात त कत्वा पङ्केऽवसीदति ।
अस्थिपात्रेऽथ वा पच्येद दुर्गन्धास्थिपवासिनि ॥१२८

सुन्दर शिखा से युक्त—शब्द से रहित—बिना धूंआ वाला—अत्यधिक छोटा भी न होवे और जिसम वत्ती दक्षिणावर्त्त वाली हो ऐसा प्रदीप ही श्री की वृद्धि के लिये हुआ करता हैं । १२१ । दीपक का पात्र दीप के वृक्ष पर अर्थात् दीवट पर स्थित होवे और शुद्ध घृतादि से भरा हुआ हो तथा जिसकी बत्तिका दक्षिण की ओर रहने वाली हो और सुन्दर दीप्ति म समन्वित हो ऐसा ही दीप होना चाहिए । १२२ । हे पुत्र ! ऐसा ही दीपक उत्तम कहा जाया करता है जो सबकी तुष्टि के देने वाला होवे । जो दीपक वृक्ष से अर्थात् दीवट से रहित होता है वह मध्यम कहा जाता है । १२३ । जो पात्र और तैल से रहित होता है वह दीपक अधम ही कहा गया है । शण अथवा काष्ठ निर्मित—जीर्ण तथा मलिन वस्त्र का साधक उपयुक्त ही देवे और और अनुप युक्त वत्ती के लिये कभी भी ग्रहण न करे । निरन्तर नूतन ही वत्ती के लिये ग्रहण करे । इसी से श्री की वृद्धि होती है ॥१२४॥१२५॥ कोष से उत्पन्न--रोम से उद्भूत वस्त्र को वत्ती के लिये कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए और दीपक मे स्नेह घृतादि का मिश्रण करके कभी भी न दवे ॥१२६॥ जो घृतादिक का दीपक मे मिश्रण करके रखता है वह तामिस नरक म जाता है । वसा—मज्जा—अस्थियो का निर्यास के स्नेहा (चिक्नाई) से तथा किसी भी प्राणी के अङ्ग मे समुत्पन्न स्नेह से दीपक की रचना कभी भी नही करनी चाहिए । यदि ऐसा कोई भी मनुष्य करता है तो वह पङ्क म अवमाद प्राप्त किया करता है । दुर्गन्ध अस्थि पवासी अस्थियो के पात्र मे कभी पचन नहीं करे ॥१२७॥१२८॥

नैव दीप प्रतातव्यो विबुधैं श्रीविवृद्धये ।
नैव निर्वापयद् दीप कदाचिदपि यत्नत ॥१२६
सतत लक्षणोपेत देवार्थमुपकल्पितम् ।
न हरेज्ज्ञानतो दीप तथा लोभादिना नर ॥१३०
दीपहर्ता भवेदन्ध काणो निर्वापको भवेत् ।
उद्दीप्तदीप्तप्रतिम काष्ठकाण्डसमुदभव ॥१३१
बिल्वेध्मोदभवमेवाथ दीपालाभे निवेदयेत् ।
उल्मुक नैव दीपार्थं कदाचिदपि चोत्सृजेत् ॥१३२
प्रसन्नार्थं तु त दद्यादुपचाराद् वहिष्कृतम् ।
एव वा कथितो दीपो धूप च शृणुत सुतौ ॥१३३
नासाक्षिरन्ध्रसुखद सुगन्धोऽतिमनोहर ।
दह्यमानस्य काष्ठस्य प्रयतस्येतरस्य च ॥१३४
परागस्याथवा धूमो निस्तापो यस्य जायते ।
स धूप इति विज्ञयो देवाना तुष्टिदायक ॥१३५
राशीकर्तनं चैवत्र तंद्रव्यं परिधूपयेत् ।
तुषाग्निवत्तु'ला कृत्वा न तत् फलमवाप्नुयात् ॥१३६

ऐसा दीपक विबुध पुरुषो के द्वारा श्री की विशेष वृद्धि के लिये कभी भी नहीं देना चाहिए। दीपक को यत्नपूर्वक कदाचित् भी निर्वापित नहीं करे ॥१२६॥ निरन्तर ही देवों के लिये सुन्दर लक्षणो से युक्त ही दीपक उप कल्पित करना चाहिए। ज्ञान पूर्वक तथा लोभ आदि से मनुष्य को दीपक का हरण नहीं करना चाहिए ॥१३०॥ जो दीपक का हरण किया करता है वह अन्धा होता है और जो दीपक को बुझा दिया करता है वह काना हुआ करता है उद्दीप्त दीप्ति की प्रतिमासे युक्त काष्ठ के काण्ड से समुद्भत अथवा बिल्व के इध्म से उत्पन्न का ही दीपक के अभाव मे निवेदित करना चाहिए। दीपक के लिये उल्मुक का कभी भी उत्सृजन न करे ॥१३१॥१३२॥ प्रसन्नता के ही लिय उपचार से

दष्टिपूत उसको देवे। हे पुत्रो ! इस प्रकार से दीपक के विषय में सब कुछ कह दिया गया है। अब आप लोग धूप के विषय में श्रवण करिए।१३३। धूप भी ऐसी ही होनी चाहिए जो नासिका के रन्ध्रों (छिद्रों) के लिये सुख प्रदान करने वाली होवे और मनका हरण करने वाला सुन्दर गन्धसे युक्तहोवे दाह किये गये काष्ठ का—प्रयत का अथवा अन्य का अथवा पराग का जिसका धूप ताप रहित होवे वह धूप देवगणों की तुष्टि के देने वाला होता है—ऐसा ज्ञान लेना चाहिए ॥ १३४—१३५ ॥ उन द्रव्यों को सबको एक समूह में एकत्रित करके परिधूपित नहीं करे। तुषाग्नि मे वर्त्तुल करके धूप न देवे। ऐसा करने से धूप देने का जो भी कुछ फल प्राप्त हुआ करता है वह कभी भी प्राप्त नहीं होता है। जब उसका कोई भी फल ही नहीं है तो वैसा नहीं करे ॥१३६॥

श्रीचन्दन च सरल. साल कृष्णागुरुस्तथा ।
उदयः सुरयम्कन्दो रक्तविद्रुम एव च ॥१३७
पीतशाल. परिमलो विमर्दो काशलस्तथा ।
नर्मरुर्देवदारुश्च विल्वमारोऽय खादिर ॥१३८
सन्तानः पारिजातश्च हरिचन्दनवल्लभौः ।
वृक्षेप धूपाः सर्वेषा प्रीतिदा. परिकीर्तिताः ॥१३९
अगलः सह मूत्रेण श्रीवासः पट्टवासकः ।
कर्पूरः श्रीकरश्चैव परागः श्रीहरामलौ ॥१४०
सर्वोपधीव जातोव वराहश्चूर्ण उत्कलः ।
जातीकोपम्य चूर्ण च गन्धः कस्तूरिका तथा ॥१४१
क्षोदे वृत्ते च गदिता धूपा एते उदाहृता ।
यक्षधूपो वृक्षधूपः श्रीपिष्टोऽगुरु शर्करः ॥१४२
पत्रिवाह. पिण्डधूपः सुगोलः कण्ठ एव च ।
अन्योन्ययोगा निर्यासा धूपा एते प्रकीर्तिता. ॥१४३

एतैर्विधूपयेद देवान् धूमिभि कृष्णवर्त्मना ।
येषा धूपोदभवंर्घ्राणैस्तुष्टि गच्छन्ति जन्तव ।।१४४

अब यह बताया जाता है किन किन वृक्षो को धूप के लिये ग्रहण करना चाहिए । श्री चन्दन —सरल शाल तथा कृष्णा गुरु—उदय—सुरयस्कन्द—पाशल- नमेरु—देव दारु -बिल्वमार—खादिर—सन्तान—पारिजात—हरिचन्दन—वल्लभ—इन वृक्षों की धूप सभी देवो के लिये प्रीति देने वाली परिकीर्त्तित की गयी है ।।१३७—१३६ । सूत्र के साथ अराल —श्री वास—पट्ट वासक—कपूर—श्रीकर—पराग—श्रीहर—आमल—सर्वौषधीव—आनीव वराह—चूर्ण—उत्कल—जाती कोष का चूर्ण—गन्ध—कस्तूरिका—क्षोद वृत्त में कही हुई ये धूप उदाहृत है । यक्ष धूप—वृक्ष धूप—श्री पिष्ट—अगुरु—प्रसर्ज—हरि बाहू—पिण्ड धूप—रगाल—कण्ठ—अन्योन्य योग—निर्यास—ये धूप कीर्त्तित किये गये है ।।१४०—१४३।। इन धूपो के द्वारा देवो को धूपित करना चाहिए । जो धूप वाला होवे और कृष्ण वर्त्म स धूपित करे । जिन की धूपा से उद्भूत घ्राणो के द्वारा जन्तुगण तुष्टि को प्राप्त हुआ करते हैं ।।१४४।।

निर्यासश्च परागश्च काष्ठ गन्ध तथैव च ।
कृत्रिमश्चेति पञ्चैते धूपा प्रीतिकरा परा ।।१४५
न यक्षधूप वितरेन्माधवाय कदाचन ।
न रक्त विद्रम मद्य सुरच कद्रिल तथा ।।१४६
यक्षधूप पुत्रिवाह पिण्डधूप सुगोलक ।
कृष्णागुरु मकर्पूरो महामायाप्रिय स्मृत ।।१४७
वृकधूपेन वा देवी महामाया प्रपूजयेत् ।
मेदोमज्जासमायुक्तान न पाधून् विनियोजयेत् ।।१४८
परकीयास्तथाघ्रातास्तेऽपि कृत्याभिमर्दितान् ।
पुष्प धूप च गन्ध च उपचारास्तथापरान् ।।१४९

येन तुष्यति कामाख्या त्रिपुरा वैष्णवी तथा ॥१५४
सौवीर यामुन तुत्थ मयूरयामुन तथा ।
दुर्विका मेघनीलश्च अञ्जनानि भवन्ति षट् ॥१५५
स्रवद्द्रुम च सौवीर यामुन प्रस्तर तथा ।
मयूरग्रीवक रत्न मेघनीलस्तु तैजसम् ॥१५६
घृष्टानि ग्राह्य चैतानि शिलायां तैजसेऽथ वा ।
प्रदद्यात सर्वदेवेभ्यो देवीभ्यश्चापि पुत्रक ॥१५७
घृततैलादियोगेन ताम्रादौ दीपवह्निना ।
यदञ्जन जायते तु दर्विका परिकीर्तिता ॥१५८
सर्वाभावे तु तद दद्याद् देवीभ्यो दाहजाञ्जनम् ।
महामाया जगद्धात्री कामाख्या त्रिपुरा तथा ॥१५९
आप्नुवन्ति महातोष षड्भिरेभिः सदाञ्जनैः ।
विधवा नाञ्जन कुर्यान्महामायार्यमुत्तमम् ॥१६०

हे पुत्र ! उसी भाँति यह धूप त्रिपुण्या को तथा नित्य ही मातृकाओं को और समस्त पीठ देवों को और रुद्र आदि को भी प्रिय हुआ करता है ॥१५३॥ यह धूप हमने आप दोनों को बतला दिया है । अब नेत्रों के रञ्जन के विषय में आप दोनों श्रवण करिये । जिसके द्वारा कामाख्या देवी, त्रिपुरा देवी तथा वैष्णवी देवी परम प्रसन्न हुआ करती है ॥१५४॥ अञ्जन छै प्रकार के हुआ करते हैं उनके नाम ये हैं—सौवीर, यामुन, तुत्थ, मयूरयामुन, दुर्विका मेघनील, ये छै होते हैं । ॥१५५॥ स्रवद् द्रुम, सौवीर, यामुन, प्रस्तर, मयूर ग्रीवक, रत्न, मेघ नील, तैजस ॥१५६॥ ये घिसे हुए ग्रहण करने के योग्य होते हैं । चाहे शिला पर घिस हुए होवे या किसी उत्तम धातु पर घृष्ट किये गये हों । हे पुत्र ! यह सभी देवों के लिये समर्पित करे और सभी देवियों को भी सेवा में निवेदित करना चाहिए ॥१५७॥ घृत और तैल आदि के योग से ताम्र आदि पर दीपक की अग्नि के द्वारा जो अञ्जन बनाया

जाता है वही दर्विका, इस नाम से कहा गया है ॥१५८॥ सरका यदि अभाव हो तो देवियों की सेवा में इस दारु से समुत्पन्न अञ्जन को ही समर्पित करना चाहिए। महामाया देवी—जगत् की धात्री कामाख्या देवी तथा त्रिपुरा देवी इन उपर्युक्त छै प्रकार के अञ्जनों से जब ये निवेदित किये गये हों तो सदा ही महान तोष को प्राप्त हुआ करती हैं अर्थात् उनको परमाधिक प्रसन्नता इनकी हुआ करती है। महामाया के लिये प्रस्तुत इस उत्तम अञ्जन का विधवा नारी को कभी अपने उपयोग में नहीं लेना चाहिए। इसका तात्पर्य यही है कि विधवा नारी के द्वारा यह अञ्जन नहीं बनाना चाहिए ॥१६०॥

नादत्ते त्वञ्जनं देवी वैष्णवी विधवाकृतम् ।
न मृत्पात्रे योजयेत् तु साधको नेत्ररञ्जनम् ॥१६१
न पूजाफलमाप्नोति मृत्पात्रविहिताञ्जनैः ।
चतुर्वर्गप्रदो धूप कामद नेत्ररञ्जनम् ॥१६२
तस्माद् द्वयमिदं दद्याद् देवेभ्यो भक्तितो नर ।
इति वा गदितो धूपस्तथोक्तं नेत्ररञ्जनम् ।
नैवेद्यं तु महादेव्या शृण्वेकाग्रमना पुन ॥१६३

वैष्णवी देवी कभी भी विधवा नारी के द्वारा तयार किये हुए अञ्जन को स्वीकार नहीं किया करती हैं। साधना करने वाले को चाहिए कि मिट्टी के पात्र में नेत्र रञ्जन को योजित न करे ॥१६१॥ मिट्टी के पात्र में विहित अञ्जन को निवेदन करने में पूजा के फल की भी प्राप्ति कभी नहीं हुआ करती है। ऐसा अञ्जन नहीं देना चाहिए क्योंकि जब इस अञ्जन को देवी स्वीकार ही नहीं किया करती हैं तो वह पूजा अधूरी होकर निष्फल हो जाया करती है। धूप चारों वर्गों का प्रदान करने वाला होता है और नेत्र रञ्जन कामनाओं के देने वाला हुआ करता है ॥१६२॥ इस कारण से धूप और नेत्र रञ्जन इन दोनों का ही देवगणों के लिए भक्ति की भावना द्वारा मनुष्य को समर्पण

करना चाहिए । इस प्रकार से हमने आप दोनों के समक्ष में धूप और नेत्र रंजन इन दोनों को बतला दिया है । अब एकाग्र मन वाले होकर महादेवी के लिए जो भी नैवेद्य समर्पित करना चाहिए उसके विषय में श्रवण करिए ।।१६३।।



।। षोडशोपचार निर्णय ।।

प्रसार्य दक्षिण हस्त स्वय नम्रशिरा पुन ।
दक्षिण दर्शयन् पार्श्वं मनसापि च दक्षिण ।।१
सकृन् त्रिर्वा वेष्टयेयुर्देव्या प्रीति प्रजायते ।
स च प्रदक्षिणो ज्ञेय सर्वदेवौघतुष्टिद ।।२
अष्टोत्तरशत यस्तु देव्या कुर्यात् प्रदक्षिणम् ।
सर्वकाममवाप्याथ पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ।।३
मनसापि च यो दद्यात् देव्यै भक्त्या प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणाद् यमगृहे नरकाणि न पश्यति ।।४
कायिको वाग्भवश्चैव मानसस्त्रिविध स्मृत ।
नमस्कार श्रतस्तज्ज्ञैरुत्तमाधम मध्यम ।।५
प्रसार्य पादौ हस्तौ च पतित्वा दण्डवत् क्षितौ ।
जानुभ्यामवनिं गत्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ।।६
क्रियते यो नमस्कार उत्तम कायिकस्तु स ।
जानुभ्या न क्षितिं स्पृष्ट्वा शिरसास्पृश्य मेदिनीम् ।।७

*श्री भगवान् ने कहा—*दक्षिण हाथ को प्रसारित करके फिर स्वयं नम्र शिर वाला होवे और दाहिने पार्श्व को दर्शित करता हुआ मन से भी दक्षिण होवे ।। १ ।। एक बार अथवा तीन बार वेष्टित करें । इसके करने से देवी की प्रीति हुआ करती है । और उसको प्रदक्षिण

जानना चाहिए। वह सभी देवों की समष्टि के लिए तुष्टि देने वाला होता है ॥ २ ॥ और जो एक सौ आठ बार देवी की प्रदक्षिणा किया करता है वह पुरुष अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करके पीछे अन्त समय में मोक्ष की प्राप्ति का लाभ किया करता है ॥ ३ ॥ जो मन से भी भक्ति की भावना से देवों के लिये प्रदक्षिणा (परिक्रमा) किया करता है वह इस प्रदक्षिणा के ही पुण्य-प्रभाव से ही यमराज के गृह में अर्थात् यमम की पुरी में जाकर नरकों को कभी नहीं देखा करता है ॥ ४ ॥ नमस्कार भी काया में होने वाला—वाणी के द्वारा समुत्पन्न हुआ और मन से किया हुआ तीन प्रकार का हुआ करता है जो उसके ज्ञान रखने वालों के द्वारा उत्तम-मध्यम और अधम तीन प्रकार का सुना गया है ॥ ५ ॥ इस नमस्कार करने का भी उक्त तीनों श्रेणियों में करने का क्रम है। जो अपने दोनों हाथों को और पैरों को फैलाकर भूमि में एक दण्ड की भाँति गिरकर अपने घुटनों से भूमि में जाकर शिर से फिर भूमि में गमन करके अर्थात् शिर से भूमि का स्पर्श करके नमस्कार अपने आठों अङ्गों के सहित किया जाता है वही उत्तम नमस्कार होता है जो काया के ही द्वारा किया जाया करता है। इसी को कायिक कहा गया है। जो अपने घुटनों से भूमि का स्पर्श करके और शिर से पृथ्वी का स्पर्श करके किया जाता है वह नमस्कार मध्यम श्रेणी का कायिक कहा गया है ॥ ६—७ ॥

क्रियते यो नमस्कारो मध्यमः कायिकः स्मृतः ।
पुटीकृत्य करौ शीर्षे दीयते यद् यथा तथा ।
अस्पृष्ट्वा जानुशीर्षाभ्यां क्षितिं सोऽधम उच्यते ॥८
या स्वयं गद्यपद्याभ्यां घटिताभ्यां नमस्कृतिः ।
क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकस्तूत्तमस्तु सः ॥९
पौराणिकैर्वैदिकैर्वा मन्त्रैर्वा क्रियते नतिः ।
स मध्यमो नमस्कारो भवेद् वाचनिकः सदा ॥१०

यत् तु मानुष्यवाक्येन नमनं क्रियते सदा ।
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु पुत्रकौ ॥११
इष्टमध्यानिष्टगतैर्मनोभिस्त्रिविधं पुनः ।
नमनं मानसं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ॥१२
त्रिविधे च नमस्कारे कायिकश्चोत्तमः स्मृतः ।
कायिकैस्तु नमस्कारैर्देवास्तुष्यन्ति नित्यशः ॥१३
अयमेव नमस्कारो दण्डादिप्रति नामभिः ।
प्रणाम इति विज्ञेयः स पूर्वं प्रतिपादितः ॥१४

जो अपने दोनों करों को पुटित करके अर्थात् जोड़ कर जिस किसी प्रकार से अपने शिर में लगाकर ही नमस्कार किया जाता है और जिसमें घुटनों और मस्तक को भूमि में स्पर्श नहीं करके ही किया जाता है वह नमस्कार अधम कोटि का कहा जाया करता है ॥८॥ ये तीन तरह के नमस्कार काया से किये जाने वाले होते हैं। तथा जो नमस्कार गद्य तथा पद्य के द्वारा घटित करके किया जाता है और भक्ति की भावना से होता है वह वाचिक अर्थात् वाणी के द्वारा किया जाने वाला उत्तम श्रेणी का नमस्कार होता है ॥९॥ जो पुराणों में कहे हुए अथवा वेदों में कहे हुए मन्त्रों के द्वारा नमस्कार किया जाया करता है वह सदा ही वाणी द्वारा किया हुआ मध्यम कोटि का नमस्कार होता है ॥१०॥ और जो मनुष्य के वाक्य के ही द्वारा सदा नमस्कार किया जाता है, हे पुत्रो ! वह वाणी से ही किया हुआ अधम श्रेणी वाला नमस्कार समझना चाहिए जो सभी नमस्कारों में नीच कोटि का होता है ॥११॥ मन के द्वारा भी किया हुआ नमस्कार उत्तम-मध्यम और अधम ये तीन प्रकार का कहा गया है। जो मन को पूर्ण तथा संलग्न करके किया जावे तथा आधे मन से केवल खाना पूरी ही की जावे अथवा मन को इष्टगत न करके ही किया जाया करता है ये तीन प्रकारों वाला अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम मानस नमस्कार होता है ॥१२॥ इन तीनों प्रकार

के नमस्कारो मे कायिक अर्थात् शरीर के द्वारा किये जाने वाला नमस्कार ही उत्तम होता हैं। कायिक नमस्कारो मे ही देवगण नित्य परम प्रसन्न हुआ करते है ॥१३॥ यह ही नमस्कार जो दण्ड आदि के द्वारा प्रति नामो से पूर्व मे प्रतिपादित किया गया है उसी को प्रणाम जान लेना चाहिए ॥१४॥

नैवेद्येन भवेत् सर्वं नैवेद्येनामृत भवेत् ।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च नैवेद्येषु प्रतिष्ठिता ॥१५
सर्वयज्ञमय नित्यं नैवेद्य सर्वतुष्टिदम् ।
ज्ञानदं कामद पुण्य सर्वभोग्यमय तथा ॥१६
मनसापि महादेव्यं नैवेद्य दातुमिच्छति ।
यो नरो भक्तियुक्त. सन् स दीर्घायु सुखी भवेत् ॥१७
महामाया सदा देवीमर्चयिष्यामि भक्तित ।
नानाविधैस्तु नैवेद्यैरिति चिन्ताकुलस्तु य. ।
स सर्वकामान् सम्प्राप्य मम लोके महीयते ॥१८
मनसापि च यो दद्याद् देव्यै भक्तया प्रदक्षिणम् ।
स दक्षिणे यमगृहे नरकाणि न पश्यति ॥१६
देवमानुषगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगा ।
नमस्कारेण तुष्यन्ति महात्मानः समन्तत. ॥२०
नमस्कारेण लभते चतुर्वर्ग महामनि. ।
सर्वत्र सर्वसिद्धयर्थं नातरेव प्रशस्यते ॥२१

नैवेद्य के द्वारा सभी कुछ होता है और नैवेद्य से अमृत होता है। धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष ये चारो परम पुरुषार्थ नैवेद्यो मे ही प्रतिष्ठित रहा करते हैं। १५। नैवेद्य नित्य ही समस्त यज्ञो से परिपूर्ण होता है और यह नैवेद्य सब देवो की तुष्टि के प्रदान करने वाला है। यह नैवेद्य ज्ञान के देने वाला—काम अर्थात् मन की कामनाओ का प्रदान करने वाला—तथा पुण्य को देने वाला एव सभी भोग्यो से परिपूर्ण

हुआ करता है ।१६। जो मनुष्य महादेवी के लिए मन के द्वारा भी नैवेद्य के समर्पित करने की इच्छा किया करता है वह मानव भक्ति से युक्त होता हुआ दीर्घ आयु वाला और सुखी हुआ करता है ।१७। जो मनुष्य सदा ही महामाया देवी की भक्ति से अनेक प्रकार के नैवेद्यों के द्वारा अर्चना करूँगा—ऐसी चिन्ता से आकुलित रहा करता है वह सभी मन की कामनाओं की प्राप्ति करके अन्त में मेरे ही लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ।१८। जो पुरुष मन में भी देवी के लिए भक्ति भाव से प्रदक्षिणा देता है वह फिर दक्षिण यम राज की पुरी में कभी भी नरकों को नहीं देखा करता है ।१९। नमस्कार का बड़ा भारी महत्व होता है। देव-मनुष्य-गन्धर्व, यक्ष, राक्षस पन्नग और महान् आत्माओं वाले चारों ही ओर से नमस्कार करने से तुष्ट अर्थात् प्रसन्न हुआ करते हैं। ।२०। महती मति वाला पुरुष नमस्कार के द्वारा चारों वर्गों का लाभ प्राप्त किया करता है। सभी जगह सबकी सिद्धि के लिए नमस्कार ही प्रशस्त माना जाया करता है। अर्थात् नमस्कार का करना सबकी प्राप्ति के लिये परम उत्तम साधन माना गया है ।।२१।।

नत्या विजयते लोकान्नत्यायुरपि वर्धते ।
नमस्कारेण दीर्घायुरच्छिन्ना लभते प्रजा ।।२२
नमस्कुरु महादेव्यै प्रदक्षिणमथो कुरु ।
नैवेद्यं देहि नितरामिति यो भाषते मुहुः ।
सोऽपि कामानवाप्येह मम लोके प्रमोदते ।।२३
विदधाति च नैवेद्यं महादेव्यै सुभक्तिमान् ।
दातुं प्रति नरः सोऽपि देवीलोकमवाप्नुयात् ।।२४
इति वा कथिता सम्यगुपचारास्तु षोडश ।
किमन्यद्रुचितं वा तत् कथयिष्यामि पृच्छतो ।।२५

नमस्कार से लोकों पर मानव विजय प्राप्त किया करता है और नमस्कार से आयु की भी वृद्धि होती है—नमन करने से मानव दीर्घ

आयु वाला होता है और नमस्कार से अविच्छिन्न सन्तति का लाभ प्राप्त किया करता है जो कि सन्ततियों का क्रम कभी भी टूटता नही है । २२ । अतएव महादेवी के लिये नमस्कार करो और प्रदक्षिण होकर ही नमस्कार करो । तात्पर्य यह है कि देवी को दक्षिण भाग में स्थित करके ही नमस्कार करना चाहिये । जो निरन्तर 'नैवेद्य दीजिए'—यह कहा करता है और बार-बार बोलता है वह मानव भी अपने समस्त मनोरथों की प्राप्ति करके मेरे ही लोक में आनन्द प्राप्त करता है । । २३ । जो सुन्दर भक्ति वाला पुरुष महा देवी के प्रति समर्पित करने के लिये नैवेद्य को किया करता है वह मनुष्य भी देवी के लोक को अन्त मे प्राप्त किया करता है । २४ । इस तरह से आप दोनों को मैंने षोडश (सोलह) उपचार जो अभ्यर्चन के हुआ करते है बतला दिये है। जो कि भली भाँति के होते हैं । अब आप दोनों की क्या रुचिकर हैं अर्थात् अब आप दोनों क्या पूछना पसन्द करते है उसी को बतला दूँगा ।।२५।।



।। कामाख्या कवच माहात्म्य वर्णन ।।

कामाख्यायाश्च माहात्म्य शृणुतं च वदामि वाम् ।
साग तद् सरहस्यं च शृणु वेताल भैरव ।।१
एकदा गरुडेनाशु विष्णुर्विष्णुपरायणो ।
गच्छन् देवीं तु कामाख्या नीलस्यामाससाद ह ।।२
आसाद्य त गिरिश्रेष्ठमवज्ञाय भ केशवः ।
गच्छ गच्छेति गरुड चोदयामास तं मनो ।।३
तं च देवी महामाया कामाख्या जगता प्रभुः ।
गरुडेन समं कृष्ण स्तम्भयामास रोदसी ।।४
स तु गन्तुं महामाया-मायया परिमोहितः ।

न गन्तुमथ वागन्तुमशकद् वद्धवत् स्थित ॥५
अशक्त गरुड दृष्ट्वा गमने गरुडध्वजः ।
क्रुद्धस्त पर्वतश्रेष्ठमुत्सारयितुमुद्यत ॥६
तत कराभ्या त शैल क्रोडीकृत्य जगत्पति ।
अभूत् क्षमश्चालयितु मनागपि न केशव ॥७

श्री भगवान् ने कहा—आप दोनो श्रवण कीजिए मैं कामाख्या देवी के माहात्म्य का वर्णन करूंगा। हे वेताल ! हे भैरव ! अङ्गों के संहृत उस रहस्य से युक्त को आप दोनो सुनिए । १ । एक समय में भगवान् विष्णु पदापन में शीघ्र ही अपने वाहन गरुड के द्वारा गमन करते हुए नील पर्वत पर विराजमाना कामाख्या देवी के समीप मे प्राप्त हुए थे । २ । उस परम श्रेष्ठ पर्वत पर पहुँच कर उसका ज्ञान प्राप्त करके उन भगवान् के शव न गरुड को गमन करने की गति मे 'चलो-चलो' इस प्रकार से प्रेरित किया था । ३ । समस्त जगता को समुत्पन्न करन वाली महामाया कामाख्या देवी ने उन भगवान् श्रीकृष्ण को गरुड के साथ आते हुए जान कर आकाश मे ही स्तम्भित कर दिया था । ४ । व वहा पर गमन करने के लिये समुद्यत थे किन्तु महामाया की माया मे ऐस परिमोहित हो गये थ कि वे न तो आगे गमन करने मे और न वापिस आगमन करने म समथ हुए और वृद्ध की ही भाँति वही पर स्थित रह गय थ । ५ । भगवान् गरुडध्वज ने गरुड को गमन करने म असमर्थ देखकर व बहुत क्रुद्ध हुए थे और उस श्रेष्ठ पर्वत को उत्साहित करने के लिय समुद्यत हुए थे । ६ । इसके अनन्तर जगतो के स्वामी श्री कृष्ण ने अपन करो के द्वारा उस पवत को गोद मे ले लिया था किन्तु वे केशव प्रभु उसको थोडा-सा भी चालित करने मे समर्थन ही हुए थे अर्थात् तनिक भी न हिला सके थे ॥७॥

त चिचालयिषु शैल कामाख्या क्रोधतत्परा ।
सिद्धसूत्रेण वैकुण्ठ ववन्ध गरुडेन हि ॥८

स बद्ध्वा सिद्धसूत्रेण ग्राहाग्रे लवणार्णवे ।
चिक्षेप हेलया देवी सक्षेपात् प्रापतत् तलम् ॥६
स सागरतलं प्राप्त पुनरेव स्वमायया ।
यन्त्रयित्वा समाक्रम्य अग्राहाब्धितल स्थितम् ॥१०
स प्रयत्नेन महता नोत्प्लुतिं कर्तुमिष्टवान् ।
महायत्न प्रभुर्वाणि पुनरुन्मज्जने हरि ॥११
तस्यासार प्रसार च कामाख्या प्रतिषेधयेत् ।
ज्ञानोद्गमनमप्यस्य सा देवी प्रतिषेधयेत् ॥१२
नत प्रज्ञानरहित प्रसारासारवर्जित ।
गरुडेन सम तोयतले शीर्णममूच्चिरम् ॥१३
मार्गमाणस्तु स स्रष्टा सागरान्तरसस्थितम् ।
हरिमामादयामास विशीर्ण प्राकृत यथा ॥१४

जिस समय म उस पर्वत का चालित करने की इच्छा और प्रयत्न करते हुए केशव भगवान् को देखा था तो महादेवी कामाख्या बहुत ही क्रोधित हुई थी और उस देवी ने सिद्ध सूत्र के द्वारा भगवान् वैकुण्ठनाथ को गरुड के साथ बाँध दिया था । ८। उनको सिद्ध सूत्र से बाँध कर ग्राहाग्र क्षार समुद्र म देवी ने हला ही से उनको प्रक्षिप्त कर दिया था और वे म.शरण करने स तल मे प्रपतित हो गए थे । ६। सागर के तले मे प्राप्त हुए उन भगवान् केशव को फिर भी अपनी माया से मन्त्रित करके फिर वहाँ पर समाक्रान्त होकर सागर के तले म स्थित हुए उनको ग्रहण कर लिया था । १०। उन केशव प्रभु ने बड़ा भारी प्रयत्न किया था । सागर के तले से ऊपर और महान् प्रयत्न करते हुए भी रहे कि पुन उन्मज्जित हो जावें । हरि न सब कुछ यत्न किया था कि उनके असार और प्रसार का उसदेव न रोक दिया था । ।११।१२। इसके अनन्तर वे प्रज्ञान स रहित हो गये थे तथा असार-प्रसार म अर्थात् हिलने डुलने स भी शून्य हो गय थे और गरुड के ही

साथ वे चिरकाल तक सागर के जल के तल में ही शीर्ण रहे थे । १३ । सृजन करने वाले ने उनकी जब बहुत खोज की तो उनको सागर के तल में समवस्थित हुए हरि को पाया था और वे ऐसे विशीर्ण हो रहे थे जैसे कोई साधारण प्राणी होता है ॥१४॥

तमासाद्य सतार्क्ष्यं तु स्रष्टा लोकपितामहः ।
हस्ताभ्यां त समादाय वोत्प्लावयितुमिष्टवान् ॥१५
तमुत्प्लावयितुं शक्तो नाभूल्लोकपितामहः ।
स्वयं च देवीमायाभिर्बद्धः सन् विस्मयन् स्थितः ॥१६
मार्गमाणास्तु ते सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः ।
चिरेण चाथ कालेन समासेदुर्जलान्तरे ॥१७
तावासाद्य ततः सर्वे सुराः शक्रपुरोगमाः ।
समुत्प्लावयितुं यत्नं चक्रुर्नाशक्नुवश्च ते ॥१८
ततः सर्वेऽपि ते देवा मोहिता मायया भृशम् ।
विधिविष्णू स्थितौ यत्र तत्र ते तत्र संस्थिताः ॥१९
मार्गमाणोऽथ तान् सर्वान् देवान् देवगुरुस्ततः ।
बृहस्पतिर्महादेवं हिमवत्-सानुसंस्थितम् ॥२०
समासाद्य स देवानां वृतान्तं देवपूजितः ।
पृष्टवान् सादरं सम्यक् स्तुत्वा नत्वा यथाविधि ॥२१

सृजन करने वाले लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने गरुड के सहित उनको प्राप्त करके उन्होंने अपने दोनों करों के द्वारा ऊपर लाने की भी इच्छा की थी । १५ । किन्तु लोकों के पितामह भी उनको उत्प्लावित करने में समर्थ नहीं हुए थे । और स्वयं भी देवी की माया से बद्ध होकर विस्मय करते हुए ही स्थित रह गये थे । १६ । फिर समस्त देवगण जिनमें इन्द्र सबके नायक थे सबके सब खोज करते हुए बहुत अधिक समय में उन्होंने सागर के दूषित जल के मध्य में उन दोनों को प्राप्त किया था और फिर सब इन्द्र आदि देवों ने उनको जल से ऊपर लाने

का बड़ा भारी प्रयत्न किया था किन्तु वे भी ऐसा न कर सके थे अर्थात् ऊपर उनके ले आने में समर्थ नहीं हुए थे। १७।१८। इसके अनन्तर वे सब देवगण भी देवी की माया से अत्यधिक मोहित होगए थे। जिस रीति से जल के तले में भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी स्थित थे उसी प्रकार से वे सब भी वहीं पर संस्थित रह गए थे। १९। उस समय में देव गुरु बृहस्पति ने उन सबकी खोज करते हुए चल थे और हिमालय की शिखर पर विराजमान महादेवजी के समीप में पहुँचे थे। देवों के द्वारा पूजित महादेवजी ने देवों का सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे पूछा था तब बड़े आदर के साथ देव गुरु ने उनको प्रणाम करके तथा स्तवन यथा विधि करके बृहस्पतिजी ने महादेवजी से निवेदन किया था। ॥२०—२१॥

महादेव जगद्धाम जगत्प्रशमकारण ।
ब्रह्मादीन्मार्गमाणोऽहं देवांस्त्वा समुपस्थित ॥२२
ब्रह्मा विष्णुश्च न ब्रह्मसदने नापि नाकत ।
सस्थितौ नापि कुत्रापि ज्ञायेते ह्यन्यदा यथा ॥२३
तस्मिन् समय देव चिन्तयि त्वं देवदेवता ।
कुत्र तिष्ठन्ति यस्माद् वा तथा भूत्वा ह्यवस्थिता ॥२४
अनुयास्यामि तान् सर्वानुपदेशात् तव प्रभो ।
सैषा स्थितिं त्व कथय यदि ते वर्तते दया ॥२५
तस्य तद् वचन श्रुत्वा तदुद्देशमह पुन ।
तत् सर्वमुक्तवान् सर्वं यथा बद्धाश्च मायया ॥२६
अवज्ञाता महादेवी महामाया जगन्मयी ।
तेन तन्मायया बद्धो विष्णुस्तिष्ठति सागरे ॥२७
न मार्गमाणास्त्रिदशा ब्रह्माद्या मायया पुन ।
निबद्धा निकटे तस्य स्थिताश्चात्यर्थमयता ॥२८
देवगुरु ने कहा—हे महादेव ! आप तो समस्त जगत्

गतागतविहीनाश्च जडवज्ज्ञानवर्जिताः ।
किमर्थमभवन् देवास्तन्मे भाषन्तु सम्प्रति ॥३३
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महादेवस्य केशव ।
शनैर्भर्गमुवाचेद ब्रह्मादीनां पुरस्तदा ॥३४

यदि आप भी उनकी खोज करते हुए वहाँ पर जाते हैं और मेरे बिना अकेले ही वहाँ पर गमन करते हैं तो आप भी वहाँ पर उसी भाँति बद्ध हो जायेंगे और फिर वहाँ से आने में समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥ २९ ॥ इस कारण से मैं ही वहाँ पर जाता हूँ जहाँ पर गरुडध्वज प्रभु स्थित हैं। मैं ही ब्रह्मा और इन्द्र आदि उन सबका क्रम से मोचन करा दूँगा ॥ ३० ॥ इस प्रकार से देवगुरु के साथ मिलकर वृषभध्वज ने कहा था और फिर जहाँ पर देवों के समुदाय स्थित थे वहीं पर वे महेश्वर गये थे ॥ ३१ ॥ वहाँ पर आकर महादेवजी ने भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी से तथा अन्य सब देवगणों से बातचीत करके पूछा था कि आप सब यहाँ पर किस लिये स्थित हो रहे हैं ॥ ३२ ॥ आप सब तो गमन और आगमन से रहित हो रहे हैं तथा एक जड की भाँति ज्ञान से वर्जित हो रहे हैं आप सब ऐसे किस लिए हो गये हैं ? हे देवगणो ! यह अब मुझे बतलाइए ॥ ३३ ॥ उन महादेवजी के इस वचन का श्रवण करके केशव भगवान् ने धीरे से ब्रह्मा आदि देवों के आगे उस समय में महादेवजी से यह कहा था ॥३४ ॥

नीलकूटस्य शिखरादूर्ध्वभागेन गच्छता ।
वियता गरुडस्थेन मया नीलो महागिरिः ॥३५
धृतः करेण चोद्धर्तुं गरुडागतिवारणे ।
तत्र मां सा महामाया कामाख्या कामरूपिणी ॥३६
योगनिद्रा स्वयं धृत्वा चिक्षेपाम्बुधिपुष्करे ।
ततोऽहं तलमासाद्य तोयराशेः सवाहनः ॥३७
पतितो निवसाम्यत्र चिरमन्धकसूदन ।
निवसामि चिरं चाहमत्र सागरतोयके ॥३८

हैं तथा जगत् के प्रशमन के कारण स्वरूप हैं। मैं इन्द्र आदि देवों की खोज करता हुआ ही इस समय मे आपकी सेवा मे उपस्थित हुआ हूं। ।२३। इस समय मे ब्रह्माजी और विष्णु भगवान् न तो ब्रह्म सदन मे है और न स्वर्ग मे ही हैं। वे कहीं पर भी समवस्थित नहीं जाने जाते हैं। जैसे अन्य समय या स्थान में होवें ऐसा भी नहीं जाना जा रहा है। हे देव ! आप तो देवों के भी देव हैं। मेरे इस महान् संशय का छेदन कीजिए। वे इस समय में कहां पर स्थित हैं, किस कारण से स्थित हो रहे है और ऐसे किस प्रकार से वे अवस्थित हो रहे है ।२४। हे प्रभो ! मैं अब आपके ही उपदेश से उन सबके पीछे अनुगमन करूँगा। यदि आपके हृदय मे दया हो तो अब उन सबकी स्थिति के विषय मे मुझे बतलाइए ।२५। महादेवजी ने देवगुरु के उन वचनों का श्रवण किया था और उनके उद्देश्य का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था। फिर महादेवजी ने कहा था जो कि कर्म हुआ था और जिस प्रकार से वे सब माया से बद्ध हुये थे यह सभी कुछ बतला दिया था ॥२६॥ महामाया जगन्मयी महादेवी को भी अब ज्ञात करा दिया था। इसी कारण से उस देवी की माया से बद्ध हुए भगवान् विष्णु सागर के जल मे स्थित है ।२७। उनकी खोज करते हुए देवगण ब्रह्मा आदि सब फिर माया मे बद्ध हुए उनके ही समीप मे अत्यन्त संयत होते हुए स्थित रहते हैं ॥२८॥

तास्तु मार्गयितुं यासि यदिह त्वं मया विना ।
यद्धस्तथैव त्वं चापि मायातु भविता प्रभुः ॥२९
तस्माद् गच्छाम्यहं तत्र यत्रास्ते गरुडध्वज ।
ब्रह्मेन्द्राद्यास्तथा गुप्तान्मोचयिष्ये च तान् क्रमात् ॥३०
इत्युक्त्वा गुरुणा सार्धं सम्भूय स वृषध्वजः ।
देवौघा यत्र तिष्ठन्ति गतस्तत्र महेश्वरः ॥३१
तत्र गत्वा महादेवो विष्णुमाभाष्य वेधसम् ।
सर्वांस्तान् परिपप्रच्छ किमर्थं संस्थितास्त्विह ॥३२

गतागतविहीनाश्च जडवज्ज्ञानवर्जिताः ।
किमर्थमभवन् देवास्तन्मे भाषन्तु सम्प्रति ॥३३
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महादेवस्य केशवः ।
शनैर्भर्गमुवाचेदं ब्रह्मादीनां पुरस्तदा ॥३४

यदि आप भी उनकी खोज करते हुए वहाँ पर जाते हैं और मेरे बिना अकेले ही वहाँ पर गमन करते हैं तो आप भी वहाँ पर उसी भाँति बद्ध हो जायेंगे और फिर वहाँ से आने में समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥ २९ ॥ इस कारण से मैं ही वहाँ पर जाता हूँ जहाँ पर गरुड़ध्वज प्रभु स्थित हैं । मैं ही ब्रह्मा और इन्द्र आदि उन सबका क्रम से मोचन करा दूँगा ॥ ३० ॥ इस प्रकार से देवगुरु के साथ मिलकर वृषभध्वज ने वहाँ या और फिर जहाँ पर देवों के समुदाय स्थित थे वहीं पर वे महेश्वर गये थे ॥ ३१ ॥ वहाँ पर जाकर महादेवजी ने भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी से तथा अन्य सब देवगणों से बातचीत करके पूछा था कि आप सब यहाँ पर किस लिये स्थित हो रहे हैं ॥ ३२ ॥ आप सब तो गमन और आगमन से रहित हो रहे हैं तथा एक जड़ की भाँति ज्ञान से वर्जित हो रहे हैं आप सब लोग किस लिए हो गये हैं ? हे देवगणो ! यह अब मुझे बतलाइए ॥ ३३ ॥ उन महादेवजी के इस वचन का श्रवण करके केशव भगवान् ने धीरे से ब्रह्मा आदि देवों के आगे उस समय में महादेवजी से यह कहा था ॥ ३४ ॥

नीलकूटस्य शिखरादूर्ध्वभागेन गच्छता ।
वियता गरुडस्थेन मया नीलो महागिरिः ॥३५
धृतः करेण चोद्धर्तुं गरुडापतिवारणे ।
तत्र मां सा महामाया कामाख्या कामरूपिणी ॥३६
योगनिद्रा स्वयं धृत्वा चिक्षेपाम्बुधिपुष्करे ।
ततोऽहं तलमासाद्य तोयराशेः सवाहनः ॥३७
पतितो निवसाम्यत्र चिरमन्धकसूदन ।
निवसामि चिरं चाहमत्र सागरतोयके ॥३८

नाद्यापि सा महामाया नुदते मा महेश्वर ।
मदर्थमागता देवा ब्रह्मेन्द्राद्या समन्ततः ॥३९
तेऽपि बद्धा महादेव्या मायापाशेन वै हठात् ।
तस्मान्नो ह्यनुग्रहणीष्व नयेदानीं शिवालये ॥४०
तां च प्रमादयिष्याम सम्यगवन्धविहिंसया ।
हरेस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यहं च करुणायुतः ॥४१
उवाच परमप्रीत्या विधिविष्णु प्रति स्वयम् ।
ईश्वर्या कामपूर्वाया कवचं सुमनोहरम् ॥४२

श्री भगवान् ने कहा—नील कूट के शिखर पर से ऊपर की ओर आकाश में गरुड के द्वारा गमन करते हुए मैंने महान् गिरि नील को हाथ से पकड़ लिया था। और मैं उसको ऊपर उठाना चाहता था क्योंकि वह गरुड की गति का कारण करने वाला था। वहीं पर काम-रूपों वाली उस महामाया कामाख्या जो योग निद्रा थी मुझको पकड़ कर मुझको महासागर के जल में फेंक दिया था। फिर मैं तल में पहुँच कर जो समुद्र का था अपने वाहन के सहित गिर गया था। हे अन्धक के सूदन करने वाले ! मैं बहुत अधिक समय से निवास कर रहा हूं। मैं यहाँ पर ही इस महा सागर के जल में ही चिरकाल से ही रहता हूँ॥३५—३८॥ हे महेश्वर ! वह महामाया मेरे ऊपर दया नहीं कर रही है और अभी तक भी मैं वैसा ही हो रहा हूँ। मेरे ही लिये सभी ओर से ब्रह्मा आदिक सब समागत हुए थे॥ ३६॥ महा देवी ने हठ से उन सबको भी माया के पाश से बद्ध कर दिया था। इस कारण से आप हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिए और अब आप मुझको शिवालय में ही ले चलिए॥ ४०॥ और हम लोग इस बन्धन की विशेष हिंसा से उस महादेवी को प्रसन्न करेंगे। भगवान् हरि के उस वचन को सुनकर मैं करुणा से युक्त हो गया था अर्थात् मुझे दया आ गयी थी॥ ४१। फिर मैं परम प्रीति से स्वयं ही ब्रह्माजी और भगवान् विष्णु से बोला था। कामपूर्वा ईश्वरी का एक सुमनोहर कवच है॥४२॥

यद्‌ध्वा शरीरे चाप्लाव्य पश्चाद् गच्छन्तु तां प्रति ।
अहं निबद्धकवचस्तेनाह मायया त्विह ॥४३
न बद्धो मम संसर्गान् तथा चेह बृहस्पतिः ।
तस्माद् यूयं तु कवचं शृणुध्वं वचनान्मम ॥४४
येन सौख्यात् समुत्प्लुत्य द्रक्ष्याम परमेश्वरीम् ।
ॐ कामाख्याकवचस्य ऋषिर्बृहस्पतिः स्मृतः ॥४५
देवी कामेश्वरी तस्य अनुष्टुप्छन्द इष्यते ।
विनियोगः सर्वसिद्धौ त च शृण्वन्तु देवताः ॥४६
शिरः कामेश्वरी देवी कामाख्या चक्षुषी मम ।
सारदा कर्णयुगलं त्रिपुरावदनं तथा ॥४७
कण्ठे पातु महामाया हृदि कामेश्वरी पुनः ।
कामाख्या जठरे पातु शारदा मां तु नाभितः ॥४८
त्रिपुरा पार्श्वयोः पातु महामाया तु मेहने ।
गुदे कामेश्वरी पातु कामाख्योरुद्वये तु माम् ॥४९

इस कवच को शरीर में बाँधकर और आप्लावित होकर पीछे मेरी ओर गमन करें। मैं भी कवच बाँधे हुए हूँ इसी कारण से माया के द्वारा यहाँ पर उसके द्वारा मेरे समर्ग में ही बृहस्पति को निबद्ध नहीं किया गया है। इस कारण से तुम लोग मेरे वचन से उस कवच का श्रवण कर लीजिए ॥ ४३—४४ ॥ जिसके द्वारा सुख के साथ भली भाँति उपप्लुत होकर परमेश्वरी का दर्शन करेंगे। ॐ कामाख्या कवच के ऋषि बृहस्पति कहे गये हैं ॥४५॥ उसकी देवी कामेश्वरी देवी है तथा छन्द अनुष्टुप् होता है। उसका विनियोग सबकी सिद्धि में होता है। हे देवताओ ! उसका आप श्रवण कीजिए ॥४६॥ शिर तो कामेश्वरी देवी है और कामाख्या मेरे नेत्र हैं। शारदा दोनों कान हैं तथा त्रिपुरीदेवी मुख है ॥ ४७ ॥ कण्ठ में महामाया रक्षा करें फिर हृदय में कामेश्वरी रक्षा करे। कामाख्या जठर में रक्षा करें और शारदा मुझको नाभि में

रक्षा करें। ४८। त्रिपुरा दोनों पार्श्वों में रक्षा करे। मेढ़ में महामाया रक्षा करे। गुद में कामेश्वरी रक्षा करे और कामाख्या मुझको दोनों ऊरुओं में रक्षित करे।४६।

जानुनो शारदा पातु त्रिपुरा पातु जङ्घयोः।
महामाया पादयुगे नित्यं रक्षतु कामदा ॥५०
केशे कोटेश्वरी पातु नासाया पातु दीर्घिका।
भैरवी दन्तसंघाते मातङ्ग्यवतु चाङ्गयो ॥५१
बाहुवोर्मां ललिता पातु पाण्योस्तु वनवासिनी।
विन्ध्यवासिन्यङ्गुलिषु श्रीकामा नखकोटिषु ॥५२
रोमकूपेषु सर्वेषु गुप्तकामा सदावतु।
पादाङ्गुलिपार्ष्णिभागे पातु मां भुवनेश्वरी ॥५३
जिह्वायां पातु मां सेतुः कः कण्ठाभ्यन्तरेऽवतु।
लः पातु चान्तरे वक्ष इः पातु जठरान्तरे ॥५४
सामीन्दुः पातु मां वस्ताविन्दुर्बिन्द्वन्तरेऽवतु।
तकारस्त्वचि मां पातु रकारोऽस्थिषु सर्वदा ॥५५
लकारः सर्वनाडीषु ईकारः सर्वसन्धिषु।
चन्द्रः स्नायुषु मां पातु बिन्दुर्मज्जासु सन्ततम् ॥५६

दोनों घुटनों में शारदा देवी रक्षा करे और त्रिपुरा देवी दोनों जाँघों में रक्षा करे। दोनों पादों में महामाया रक्षा करे और कामदा नित्य ही रक्षा करें ॥५०॥ केश में कोटेश्वरी रक्षा करे और नासिका में दीर्घिका रक्षा करे। दाँतों के समुदाय में भैरवी रक्षा करे तथा दोनों अङ्गों में मातङ्गी रक्षा करे ॥ ५१ ॥ ललिता मेरी बाहुओं में रक्षा करे और दोनों पाणियों में वनवासिनी रक्षा करे। अंगुलियों में विन्ध्य-वासिनी देवी रक्षा करे और नखों की कोटियों में श्री कामा रक्षा करे। ।५२। समस्त रोम कूपों में सदा गुप्त कामा परित्राण करें। पैरों की अंगुलियों में तथा पार्ष्णिभाग में मेरी भुवनेश्वरी रक्षा करे।५३।

जिह्वा में मेरी सेतु रक्षा करे तथा कण्ठ के भीतर के रक्षा करे। वक्षस्थल के अन्तर में न रक्षा करे और जठर के अन्तर में इ रक्षा करे। ।५४। वस्ती में मेरी मामीन्द्र रक्षा करे। विन्दु के अन्तर में इन्दु रक्षा करे। तकार मेरी त्वचा में रक्षा करे। रकार सवदा अस्थियों में रक्षा करे ।५५। समस्त नाडियों में लकार रक्षा करे और ईकार सभी सन्धियों में मेरी रक्षा करे। स्नायुओं में मेरा परिपालन चन्द्र करे तथा निरन्तर विन्दु मज्जाओं में मेरी रक्षा करे ॥५६॥

पूर्वस्या दिशि चाग्नेय्या दक्षिणे नैर्ऋते तथा ।
वारुणे चैव वायव्या कौवेरे हरमन्दिरे ॥५७
तानि प्रत्येकतो देवा आरुह्यारुह्य तत्क्षणात् ।
पपुः सस्नुः पूर्ववत् ते प्रीतिमापुस्तथातुलाम् ॥५८
निरामयास्तथा जग्मुर्विस्मयाविष्टचेतना ।
स्तुवन्त प्रणमन्तश्च कामाख्यायोनिमण्डलम् ॥५९
ततो देवगुरुं नत्वा मां स्तुत्वा च मया पुनः ।
विसृष्टास्त्रिदिवं याता हर्षोत्फुल्लविलोचना ॥६०
माहात्म्यमीदृशं दृष्ट्वा कामाख्यायास्तु भैरव ।
कवचं चेदृशं प्रोक्तं तत्त्वमासाद्य पुत्रक ॥६१
यथेष्टविनियोगेन तामासाद्य सुखी भव ।
कामाख्यायश्च माहात्म्य किमन्यत् कथयामि ते ॥६२
यस्या योनिशिलायोगात्लोहाद्या यान्ति स्वर्णताम् ।
यद्योनिमण्डले स्नात्वा सकृत् पीत्वा च मानव ।
नेहोत्पत्तिमवाप्नोति परं निर्वाणमाप्नुयात् ॥६३

पूर्व दिशा में—आग्नेयी में—दक्षिण में तथा नैऋत में—वारुण में—वायव्य में—कौवेर में—हर मन्दिर में प्रत्येक में उनको देवों ने तत्क्षण में आरोहण कर-करके पान किया था—स्नान किया था और पूर्व की ही भाँति उन्होंने अतुल प्रीति को प्राप्त किया था ॥५७—५८॥ वे सब

नीरोग होकर अर्थात् परम स्वस्थ होते हुए वहाँ से गमन कर गये थे और परम विस्मय मे आकृष्ट चेतना वाले होगये थे। वे सभी स्तवन करते हुए तथा प्रस्तवन करते हुए गये थे जो कि कामाख्या देवी के योनि मण्डल की स्तुति करते हुए ही वहाँ से प्रमाण कर गये थे। ५६। इसके अनन्तर देव गुरु को उन्होंने प्रणाम किया था और मुझको भी अभिवादन किया था और मेरी स्तुति की थी। फिर मैंने उनको विदा किया था और वे सब देवगण हृदय से विकसित लोचन वाले होते हुए स्वर्ग को चले गए थे। ६०। हे भैरव! कामाख्या देवी का ऐसा ही माहात्म्य है और देवी का कवच भी इसी तरह का है जो कहा गया है। अब हे पुत्र! तत्व को प्राप्त करके अपने अभीष्ट के अनुसार विनियोग करके उसके द्वारा उसकी प्राप्ति करके सुखी होओ। यह कामाख्या का माहात्म्य है। अब अन्य मैं क्या तुमको बतलाऊँ। ६१—६२॥ जिसकी योनि के शिला तल से आयोग से लौह आदि धातुएँ सुवर्ण हो जाया करती है। जो मानव इस के योनि मण्डल में स्नान करके और एक बार करता है और परम निर्वाण को प्राप्त किया करता है। ॥ ६३ ॥



॥ मातृका न्यास वर्णन ॥

मातृकान्यासमधुना श्रृणु वेताल भैरव।
तेन देवत्वमायाति नरोऽपि विहितेन वै ॥१
वाग ब्रह्माणीमुखा देव्यो मातृका परिकीर्तिता।
तासा मन्त्राणि सर्वाणि व्यञ्जनानि स्वरास्तथा ॥२
चन्द्रबिन्दुप्रयुक्तानि सर्वकाम प्रदानि च।
ऋषिस्तु मातृमन्त्राणा ब्रह्मैव परिकीर्तित ॥३

प्रोक्तश्छन्दश्च गायत्री देवता च सरस्वती ।
शरीरशुद्धिमुन्ये तु सर्वकामार्थसाधने ॥४
विनियोग समुद्दिष्टो मन्त्राणा न्यूनपूरणे ।
अकारेण सम कादिवर्गो य प्रथम स्मृत ॥५
तैश्चन्द्रविन्दुमयुक्तैस्तत्रस्थैरक्षरैर्बहि
आकार च तथोच्चार्य अगुष्ठाभ्या नमस्तथा ॥६
प्रथम मातृकामन्त्रमगुष्ठद्वयतो न्यसेत् ।
परे वर्गा स्वर सार्धं य वान्य न्यासकर्मणि ॥७

श्री भगवान न कहा—हे वताल भैरव ! अब तुम मातृका न्याम का श्रवण करो जिसके द्वारा मनुष्य भी किय जान से देवत्व का प्राप्त कर लिया करता है ॥ १ ॥ वाणु और ब्रह्मादी प्रमुख जिनम हैं एसी देविया मातृका पर कीर्तित की गयी हैं उनक प्रयोग किय हुए मन्त्र और सब व्यन्जन तथा स्वरो को जो चन्द्र विन्दु स समन्वित हैं, सभी कामनाओ के प्रदान करन वाले हैं। मातृका मन्त्रो का ऋषि ब्रह्मा ही कह गय हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ इनका छन्द गायत्री कहा गया है और इनका देवता सरस्वती देवी है। शरीर शुद्धि मुख्य म और सब कामाय साधन म विनियोग समुद्दिष्ट किया गया है जो मन्त्रो की न्यूनता क पूरण करने म होता है। अकार क सम कादि वर्ग है जो प्रथम कहा गया है ॥४॥५॥ वहाँ पर स्थित चन्द्र विन्दु स मयुक्त उन अक्षरो स बाहिर आकार का उसी भाँति उच्चारण करके तथा अगुष्ठो म नम —इसको कह करके सबस प्रथम दो अगुष्ठों से मातृका मन्त्र का न्यास करना चाहिए। परम स्वरो क साथ वर्ग अथवा जो अन्य न्यास कर्म म होवें ॥६॥७॥

ते सर्वे चन्द्रविन्दुभ्या युक्ता कार्यास्तु सर्वत ।
ह्रस्वेकारश्च वर्गेण दीर्घकारान्तकेन तु ॥८
तर्जन्योर्विन्यसेत् सम्यक स्वाहान्तेन तु पूर्ववत् ।
ह्रस्वोकारष्टवर्गेण दीर्घोरान्तकेन तु ॥९

मध्यमायुगले सम्यग्वपडन्तेन विन्यसेत् ।
एकारादिटवर्गन्तु ऐकारान्तेन चैव हुम् ॥१०
न्यसेदनामिकायुग्मे नियतं तत्र भैरव ।
ओकारादिपवर्गं तु औकारान्तमशेषतः ॥११
वौषडन्त कनिष्ठाया विन्यसेत् कार्यसिद्धये ।
अकारादियकारादिवर्गेण क्षान्तकेन तु ॥१२
अइत्यन्तेन वलयोविन्यसेत् पाणिपृष्ठयोः ।
वषट्कार शेषभागे अस्त्रन्यासे नियोजयेत् ॥१३
हृदयादिषडङ्गेषु पूर्ववत् क्रमतो न्यसेत् ।
अगुष्ठाद्युक्तवर्गैस्तु क्रमात् षड्भिस्तथाविधैः ॥१४

वे सब चन्द्र बिन्दुओं से युक्त सब ओर से ही करने चाहिये। ह्रस्व इकार से और दीर्घ ईकारान्त क वर्ग से पूर्व की ही भाँति जिसमें स्वाहा अन्त में होवे भली भाँति तर्जनियों में विन्यास करना चाहिए। एकार जिसके आदि में होवे ऐसा वर्ग को और ऐकारान्त से हुम् को अनामिकाओं के जोड़े में हे भैरव ! नियत रूप से वहाँ पर न्यास करे। ओकार जिसके आदि में होवे ऐसे पवर्ग को और अशेष को औकार अन्त वाला तथा वौषट् अन्त मे लगाकर कार्य की सिद्धि के लिए कनिष्ठिका मे न्यास करना चाहिए। अकार जिसके आदि में होवे ऐसे यकारादि वर्ग से और क्ष के अन्त वाले से तथा अ इ अन्त वाले वल को पाणियों के पृष्ठों में न्यास करे। शेष भाग म वषट्कार अस्त्र न्यास करना चाहिए। हृदय आदि छँ अङ्गों में पूर्व की ही भाँति क्रम से न्यास करे। अगुष्ठ जिनके आदि में होवे ऐसे—उक्त वर्गों से क्रम से उसी प्रकार छँ ओं से करे ॥८—१४॥

पुनस्तथा पादजानुसक्थिहृत्येषु पार्श्वयोः ।
यस्तो च विन्यसेन्मन्त्रान् क्रमात् पूर्ववदक्षरैः ॥१५

बाह्वो. पाण्योस्तथा कट्या नाभौ च जठरे तथा ।
स्तनयोरपि विन्यास तथा षड्भिः समाचरेत् ॥१६
वक्त्रे च चिवुके गण्डे कर्णयोश्च ललाटके ।
अंसे कक्षे च षडवर्गे. पूर्ववन्न्यासमाचरेत् ॥१७
रोमकूपे ब्रह्मरन्ध्रे गुदे जघायुगे तथा ।
नखेषु पादपाण्योश्च तथा पूर्ववदाचरेत् ॥१८
एव तु मातृकान्यास य. कुर्यान्नरसत्तम. ।
स सर्वयज्ञपूजासु पूतो योग्यस्तु जायते ॥१६
नात: परतर मन्त्र विद्यते क्वचिदेव हि ।
यत्सर्वकाद पुण्य चतुर्वर्गप्रद परम् ॥२०
वाग्देवता हृदि ध्यात्वा मूर्तिसर्वाक्षराणि च ।
त्रिधा च मातृकामन्त्रैः सक्रमश्च पिवेज्जलम् ॥२१

फिर उसी प्रकार से पाद—जानु—सक्थि—गुह्य—मे और दोनो पार्श्वो मे तथा वक्ष मे पूर्व की ही भाँति अक्षरो के द्वारा क्रम से मन्त्रो का न्यास करना चाहिए । १५ । दोनो बाहुओ मे—दोनो हाथो म—कटि मे—नाभि म—जठर मे—दोनो स्तनो म उसी प्रकार छं ओ के द्वारा विन्यास का समाचरण करे । १६ । मुख मे—चिवुक मे—गण्ड मे—दोनो कानो मे—ललाट मे—दोनो असो मे—कक्ष मे षड् वर्गो से पूर्व का ही भाँति न्यास करना चाहिए । १७ । रोम कूप मे—ब्रह्म रन्ध्र मे—गुद मे—दोनो जघाओ मे —नखो म—दोनो हाथो मे और पादो मे उसी क्रम से पूर्व की ही भाँति समाचरण करना चाहिए । १८ । इस रीति स जा श्रेष्ठ मनुष्य मातृकाओ का न्यास किया करता है वह समस्त यज्ञ पूजाओ म पूत (पवित्र) और योग्य हो जाया करता है । १६ । इसस परम श्रेष्ठ मन्त्र कही पर भी विद्यमान नही है । जो सब कामनाओं का देने वाला—पुण्यमय—और परम चारो वर्गो का प्रदान करने वाला है । २० । वाग्देवता का हृदय मे ध्यान करके और सब

अक्षरों की मूर्त्तियों का ध्यान करके तीन बार क्रम युक्त मातृका मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जल का पान करे ॥२१॥

स वाग्मी पण्डितो धीमान् जायते च वर कवि ।
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तान् स्वरान् पूर्वं पठेद् बुध ॥२२
व्यञ्जनानि तु सर्वाणि केवलानि पठेत् तत ।
अकारादिक्षकारान्तान्येव श्वासेश्च पूरकं ॥२३
जल करतले गृह्य पठित्वाक्षरसञ्चयम् ।
अभिमन्त्र्य तु तत् तोय प्रथम पूरकं पिबेत् ॥२४
कुम्भकेन द्वितीय त तृतीयन्त्वथ रेचकं ।
एव सकृत् त्रिवार त पीत्वा तोय विचक्षण ॥२५
दृढाङ्ग पण्डितो भूयात् पुत्रपौत्रसमन्वित ।
त्रिसन्ध्यमथ प त्वेव मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ॥२६
तोय कवित्वमाप्नोति सर्वान् कामास्तथैव च ।
सतत कुरुते यस्तु मातृकामन्त्रमन्त्रितम् ॥२७
तोयपान महाभाग पूरकुम्भकरेचक ।
स सर्वकामान् सम्प्राप्य पुत्रपौत्रसमृद्धिमान ॥२८

वह कवित्व को प्राप्त हो जाता है तथा जो सभी कामों को मातृका मन्त्रों से मन्त्रित करके निरन्तर करता है। २७। हे महाभाग! पूरक-कुम्भक—रेचका से जल का पान करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके पुत्र पौत्र—समृद्धि वाला हो जाता है ॥२८॥

भूत्वा महाकविर्लोके बलवान् सत्यविक्रम. ।
सर्वत्र वल्लभो भूत्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥२९
राजानमथवा राजपुत्र भार्यामथापि वा ।
वशीकरोति नचिरान्मातृकामन्त्रपानत. ॥३०
न्यासक्रमे क्रम. प्रोक्तो वर्गक्रम इहैव तु ।
अक्षराणा क्रमेणाथ तोयपान समाचरत् ॥३१
ये ये मन्त्रा देवतानामृषीणामथ रक्षसाम् ।
ते मन्त्रा मातृकामन्त्रे नित्यमेव प्रतिष्ठिता ॥३२
सर्वमन्त्रमयश्चाय सर्ववेदमयस्तथा ।
चतुर्वर्गप्रदश्चायं मातृकामन्त्र उच्यते ॥३३
इति ते कथित पुत्र मातृकान्यासमद्भुतम् ।
विभागमथ मुद्राणा शृणु वेताल भैरव ॥३४

वह लोक म महा कवि बलवान् और सत्य विक्रय वाला तथा सर्वत्र वल्लभ होकर अन्त में मोक्ष प्राप्त किया करता है ॥ २९ ॥ वह राजा—राजपुत्र और भार्या को वश मे कर लेता है। वह शीघ्र ही मातृका मन्त्र के पान से वश में कर लेता है ॥ ३० ॥ न्यास क्रम मे क्रम कहा गया है। यहा पर ही वर्ग क्रम कहा गया है। अक्षरो के क्रम से जल का पान करे।३१। जो-जो मन्त्र देवो क ऋषियो के—राक्षसो के हैं वे सब मन्त्र मातृका मन्त्रो मे नित्य ही प्रतिष्ठित हैं ॥ ३२ ॥ यह मातृका मन्त्र सब मन्त्रो से तथा वेदों से परिपूर्ण है। यह चतुर्वर्गप्रद यह मातृका मन्त्र कहा जाता है।३३। हे पुत्र! यह अद्भुत मातृका न्यास तुमको बता दिया है। अब हे वेताल भैरव! मुद्राओं का विभाग सुनो।३४।

॥ मार्कण्डेय कथन ॥

दक्षस्य तनया चाभूत् सुरभिर्नाम नामत ।
गवा माता महाभागा सर्वलोकोपकारिणी ॥१
तस्या तु तनया जज्ञे कश्यपात् तु प्रजापतेः ।
नाम्ना सा रोहिणी शुभ्रा सर्वकामदुघा नृणाम् ॥२
तस्या जज्ञे शुन शेफान्मुनेरतिनपोधनान् ।
कामधेनुरिति ख्याता सर्वलक्षणसंयुता ॥३
सा सिताभ्रप्रतीकाशा चतुर्वेदचतुष्पदा ।
स्तनैश्चतुर्भिर्धर्मार्थकामप्रसवकारिणी ॥४
सा सुवर्णशरीरा तु कालेन महता सती ।
निर्मल यौवन प्राप कामधेनुर्मनोहरम् ॥५
ता चरन्ती मेरुपृष्ठे चारुरूपा सुलक्षणाम् ॥६
ददर्श स तु वेताल कामुकश्चाभ्यपद्यत ॥७

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—प्रजापति दक्ष की पुत्री नाम से सुरभि हुई थी। वह गौओं की माता थी और वह महाभागा सभी लोकों के उपकार करने वाली थी। १। प्रजापति कश्यप से उसके उदर से एक तनया ने जन्म ग्रहण किया था। नाम से वह रोहिणी थी। वह शुभ्रा और मनुष्यों के सम्पूर्ण कामनाओं का दोहन करने वाली थी। । २। उसमें अतीव तपोधन शुन शेफ मुनि से जिसने जन्म प्राप्त किया था वह समस्त सुलक्षणों से युक्त कामधेनु—इस नाम से प्रख्यात हुई थी। ३। वह सित मेघ के सदृश थी और चारों वेदों के चरणों वाली थी। वह अपने चारों स्तनों के द्वारा धर्म—अर्थ और कामों के प्रसव करने वाली थी। ४। सुवर्ण के समान शरीर वाली उस काम धेनु ने जो सती थी—बहुत काल के होने पर निर्मल और परम मनोहर यौवन को प्राप्त किया था। ५। मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर सञ्चरण करती

हुई—चारु स्वरूप वाली—सुन्दर लक्षणों से समन्वित उसको वेताल ने देखा था और वह उसका सौन्दर्य देखकर कामुक हो गया था अर्थात् वेताल के हृदय में काम वासना समुत्पन्न हो गयी थी ॥६।७॥

तं कामुकं च वेतालं विदित्वा कामधेनुका ।
पशुधर्मान् स्वयं भेजे तं पुत्र शशभृद्भृतः ॥८
सोऽप्याप तस्या परममामोदं शङ्करात्मजः ।
सा चापि परमा तस्मिन् मुदमापातिहर्षिता ॥९
तयोः प्रवृत्ते सुरते तस्या गर्भोऽभवत् तदा ।
काले प्राप्ते तु सुषुवे कामधेनुर्महावृषम् ॥१०
सोऽचिरेणैव कालेन सुमहान् वृषभोऽभवत् ।
महाककुदसंयुक्तश्चारुशृङ्गसमन्वितः ॥११
उत्क्षिप्य विचलत्-कर्णयुगलो दीर्घवालधिः ।
ककुदेन च शृङ्गाभ्यां कर्णाभ्यां समसिताभ्रवत् ॥१२
विचलन् ददृशे देवैः शृङ्गैरिव सिताचलः ।
वेतालस्त्वकरोत् तस्य नाम शृङ्गः इति द्विजाः ॥१३
स तु शृङ्गो ज्ञानशाली समाराधयदीश्वरम् ।
सोऽपि तुष्टो वरं तस्मै ददाविष्टं हरः प्रभुः ॥१४

उस कामधेनु ने उस वेताल को कामुक जान कर उसने पशु धर्म में स्वयं ही उस चन्द्रशेखर के पुत्र का स्वयं ही सेवन किया था ॥८॥ उस भगवान् शङ्कर के पुत्र ने उस कामधेनु से परम आनन्द की प्राप्ति की थी और उसने भी उससे आनन्द को प्राप्त करके बहुत ही हर्षित हुई थी ॥९॥ उन दोनों में सुरत क्रीडा में प्रवृत्त हो जाने पर उसमें उस समय में गर्भ स्थित हो गया था। जब प्रसव काल प्राप्त हुआ तो उस समय में उसने महावृष को प्रसूत किया था ।१०। वह थोड़े ही समय में सुमहान् वृषभ हो गया था। उसके बहुत बड़ा ककुद था और सुन्दर सींगों से वह युक्त था ॥११॥ उत्क्षेपण करके विचलित दोनों कानों

वाला था और बहुत लम्बी उसकी पूँछ थी वह ककुद म—सींगों म और कानों से सित अभ्र के ही समान था ॥१२॥ विचरण करते हुये उसे शृङ्गों से सिताचल की ही भाँति देवों के द्वारा वह देखा गया था। वेताओं ने उसका नाम हे द्विजो ! शृङ्ग—यही रक्खा था।१३। वह शृङ्ग बहुत ज्ञानवान् था और उसने ईश्वर की समाराधना की थी। वह भगवान् शम्भु भी उस पर परम तुष्ट हो गये थे और उसने उसको अभीष्ट वरदान दिया था ॥१४॥

तमेव वाहनं चक्रे कृत्वा देवतनुं वृषम् ।
सुचिरायुश्च बलवान् पृथिवीधारण क्षम ॥१५
शृङ्गो नाम महातेजा केतु सोऽप्यभवत् प्रभो ।
शृङ्गो भत्वा मतो यस्माच्छङ्करस्य महात्मन ॥१६
अत शृङ्ग इति ख्यातिमथ प्राह महेश्वर ।
स तु शृङ्गो महादेवे ध्यानासक्ते क्वचित् क्वचित् ॥१७
वरुणस्य गृहं गत्वा सुरभेस्तनयास्तु या ।
रूपयौवनसम्पन्ना भेजऽल सुरतेन ता ॥१८
वरुणस्य गृहे गाव सवलक्षणसयुता ।
तिष्ठन्ति सततं विप्रास्तासु तासु सुता पुन ॥१९
बह्वयस्तु च समुत्पन्नास्तया सूतिप्रसूतिभि ।
सर्वं जगदिदं व्याप्तं तेभ्यो यज्ञ प्रवर्तते ॥२०
आज्येन देवास्तुष्यन्ति यज्ञा आज्ये प्रतिष्ठिता ।
यज्ञाधानमिदं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥२१

भगवान् हर ने उस वृष को देव शरीर वाला बनाकर उसको ही अपना वाहन बना लिया था। वह बल वाला और चिराय था तथा पृथ्वी के धारण करने म समर्थ था ॥१५॥ शृङ्ग महान् तेज वाला था और वह प्रभु का केतु भी हो गया था। क्योंकि शृङ्ग होकर वह महान् आत्मा वाले भगवान् शङ्कर का प्यारा हो गया था। अतएव

रहा करता है । २२। वे सब गौएँ वेताल के वश में ही होने वाली हैं और सदा सबकी प्रिय होती हैं । जो महात्मा वेताल के इस चरित्र का नित्य श्रवण किया करता है और इनके वंशो से जन्म को सुनता है वह सर्व सुखी और बलवान् हुआ करता है । उस पुरुष की न तो गौयें नष्ट होती है और न कभी विभव ही विनष्ट हुआ करते हैं । २३ । २४ । उस पुरुष को भूत-पिशाच आदि भी कभी नही देखा करते हैं । वेताल स्वय ही उनकी निरन्तर रक्षा के कर्म का समाचरण किया करता है । २५ । हे विप्रो ! यह मैंने आपको बतला दिया है जिस तरह से वेताल और भैरव दोनो ने जन्म लिया था और पुत्रो को जन्म ग्रहण कराया था । अब तो आपके सभी सशय विच्छिन्न हो गये होगे । २६ । जिस तरह से कालिका देवी ने शकर मोहित किया था और जैसे शरीर के अर्ध मे उत्पन्न हुई थी और भगवान् शम्भु ने जैसे-तैसे किया था—यह सब कह दिया है । २७ । जो मनुष्य कालिका के लिये 'आपको नमस्कार है—ऐसा स्वय कहता है उस पुरुष के हाथ मे ही मुक्ति तो स्थित रहा करती है और तीनो का अर्थात् धर्म—अर्थ—काम का वर्ग मुक्ति के ही वश मे रहने वाला इनका अनुगामी हुआ करता है । २८ ।

इति व कथित पुण्य पुराण कालिकाह्वयम् ।
मन्त्रयन्त्रमय शुद्ध ज्ञानद कामद परम् ।।२६
इति गुह्यतम लोके वेदेषु च तथा द्विजा ।
देवगन्धर्वसिद्धाद्यै स्पृहणीयमिद सदा ।।३०
अधीत च श्रुत मत्तो वसिष्ठेन महात्मना ।
इद पुराणममृतं कालिकाह्वयमुत्तमम् ।।३१
तेन गुप्तमिद सर्वं कामरूपे सुरालये ।
तमिदानी समाख्यात व्यक्तोकृत्य महर्षय ।।३२
युष्माभिरपि नो देय गोप्य लोकेषु सर्वदा ।
शठाय चलचित्ताय नास्तिकायाजितात्मने ।।३३

भक्तिश्रद्धाविहीनाय न दातव्यं कदाचन ।
इदं सकृत् पठेद् यस्तु पुराणं कालिकाह्वयम् ॥३४
स कामानखिलान् प्राप्य शेषऽमृतमवाप्नुयात् ।
मन्दिरे लिखितं यस्य पुराणमिदमुत्तमम् ॥३५
सदा तिष्ठति नो तस्य विघ्नं सजायते द्विजा ।
योऽधीतेऽहन्यहन्येतद गुह्यं तन्त्रमिदं परम् ॥३६
अधीता सकला वेदास्तेनेह द्विजसत्तमा ।
तस्मान्नवाधिकोऽन्योऽस्ति कृतकृत्या विचक्षण ॥३७

यह इस रीति से परम पुण्यमय कालिका नाम वाला पुराण आपको वर्णित करके सुना दिया है। जो मन्त्रों और यन्त्रों से परिपूर्ण है—शुद्ध—ज्ञान का देने वाला—कामनाओं का दाता परम श्रेष्ठ है। । २६ । हे द्विजगणो ! यह लोक में और वेदों में भी परम गोपनीय है। इसके लिये देव—गन्धर्व और सिद्ध आदि सभी सदा स्पृहा किया करते है। ३० । इस परमोत्तम कालिका नामक पुराणामृत को महात्मा वसिष्ठ ने मुनने ही सुना था और अध्ययन किया था। ३१ । यह काम रूप सुरालय में भी इसी कारण से गुप्त है। हे महर्षिगणो ! उसको इस समय में प्रकट करके ही भली भाँति आख्यान किया है। ३२ । आप लोग भी इसको नहीं देवें। यह सर्वदा लोकों में गोपन करने के योग्य है। जो शठ हो—चञ्चल चित्त वाला हो—नास्तिक हो—अविजित आत्मा वाला हो—भक्ति और श्रद्धा से रहित होवे उसको इसे कभी भी नहीं देना चाहिए। जो एक बार भी इस कालिका नामक पुराण का पाठ करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके शेष में अमृतत्व अर्थात् देवत्व का प्राप्त किया करता है। जिसके मन्दिर में यह लिखा हुआ उत्तम पुराण सदा स्थित रहता है हे द्विजो ! उसका कभी भी विघ्न नहीं होता है। जो इसको प्रति दिन इसका गोपनीय अध्ययन करता है जो कि यह परम तन्त्र है। हे द्विज श्रेष्ठो ! उसने यहाँ पर ही सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर लिया है। इस कारण

से इससे अधिक अन्य कुछ भी नहीं है। विचक्षण पुरुष इसके अध्ययन से कृत कृत्य हो जाता है ॥३३—३७॥

स सुखी वल्लवांल्लोके दीर्घायुरपि जायते ॥३८

यो लोकमीश सतत बिभर्ति य पालयत्यन्तकरस्तथान्ते ।
इद समस्त भ्रममभ्रम वा मदीयरूप च नमोऽस्तु तस्मै ॥३९

प्रधानपुरुषो यस्य प्रपञ्चो योगिना हृदि ।
य पुराणाधिपो विष्णु प्रसीदतु स च शिव ॥४०

यो हेतुरुग्र पुरुष पुराण सनातन शश्वत ईश्वर पर ।
पुराणकृद वेदपुराणवेद्य प्रस्तौमि तन्नौमि पुराणशेष ॥४१

इति सकलजगद् बिभर्ति यासा मधुरिपुमोहकरी रमास्वरूपा ।
रमयति च हर शिवास्वरूपा वितरतु वो विभव शुभानि माया ॥४२

इसके अध्ययन तथा श्रवण करने वाला पुरुष परम सुखी तथा लोक में बलवान् और दीर्घ आयु वाला भी हो जाता है। ३८। जो निरन्तर लोक का बिभरण किया करता है। जो पालन करता है और अन्त में विनाश करने वाला है। यह सम्पूर्ण भ्रम या अभ्रम से युक्त है मेरा ही स्वरूप है अतएव उसके लिये नमस्कार है। ३९। योगियों के हृदय में जिसका प्रपञ्च प्रधान पुरुष है—जो पुराणों का अधिप भगवान् विष्णु और वह भगवान् शिव आप सबके ऊपर प्रसन्न होवें। ४०। जो उग्र हेतु है—पुराण पुरुष है—जो शाश्वत तथा सनातन पर ईश्वर है—जो पुराणों का करने वाला और वेदों तथा पुराणों के द्वारा जानने के योग्य है उस पुराण शेष के लिये मैं प्रस्तवन करता हूँ और अभिवादन करता हूँ। ४१। जो इस प्रकार से समस्त जगत् का विशेष रूप से भरण किया करती है—जो मधु रिपु को भी मोह कर देने वाली है—जिसका स्वरूप रमा है और शिवा के स्वरूप से जो भगवान् शङ्कर का रमण कराया करती है वह माया आप के विभव को और शुभों को वितरित करे ॥४२॥

॥ कालिका पुराण (द्वितीय खण्ड) समाप्त ॥